प्रेम-पंथ ऐसो कठिन

प्रवचन-क्रम

1. परिपूर्ण जीवन का दर्शन ही ईश्वर-दर्शन..2
2. परमात्मा यानी हृदय...26
3. चुप-चुप ही चाहा जाता है..49
4. अब जुनूं राहनुमा जिंदगी राही होगी...71
5. वह तुम्हें सदा से याद कर रहा है...94
6. प्रेम अव्याख्य है...119
7. मेरा संदेश मेरा संदेश बन कर पहुंचाओ..145
8. वह आया हुआ है, तुम भागे हुए हो!..169
9. ममता बंधन, प्रेम मुक्तिदायी..192 10..स्वर्ग तो हमारा स्वभाव है
.... 218
11...प्रेम निर्धूम शिखा है
.... 242
12..जगत की सबसे बड़ी चुनौतीः ईश्वर की खोज
.... 267
13...बीजरूप प्रेम से सुवासरूप प्रेम की ओर
.... 291
14..शून्य हो जाने का साहस ही संन्यास है
.... 315
15...सांझ तक भी लौट आने वाला भूला नहीं कहाता
.... 343

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
पहला प्रवचन

परिपूर्ण जीवन का दर्शन ही ईश्वर-दर्शन

पहला प्रश्नः साधु-संतों से सुना है कि भक्ति-मार्ग ही एकमात्र सरल
और सुगम मार्ग है। लेकिन रहीम का प्रसिद्ध वचन हैः
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोई निबहत नाहिं।।
इस विरोधाभास पर कुछ कहें।

सागर! साधु-संत वही कहते हैं, जो तुम सुनना चाहते हो। वह नहीं जो है।
वैसा नहीं, जैसा है; वरन वैसा, जैसा तुम्हें प्रीतिकर लगेगा, मधुर लगेगा।
वैसा, जैसा है, कटु भी हो सकता है, कठोर भी हो सकता है। तुम सांत्वना चाहते हो, सत्य नहीं। सत्य को तो तुम सूली देते हो। तुम मलहम-पट्टी चाहते हो, चिकित्सा नहीं। क्योंकि चिकित्सा तो कभी-कभी शल्य- चिकित्सा भी होती है।
साधु-संत तुम्हारी पीठ थपथपाते हैं, तुम्हें प्रसन्नचित्त करते हैं। क्षणभंगुर है वह प्रसन्नता। और उनका पीठ थपथपाना तुम्हारे किसी काम न आएगा। लेकिन हां, थोड़ी राहत मिलती है। क्षण भर को सही, थोड़ी आशा बंधती है। तुम्हारे साधु-संत तुम्हारी आशा पर जीते हैं। वे सपनों के सौदागर हैं। उन्हें भलीभांति पता है तुम क्या चाहते हो। एक बात तो सुनिश्चित रूप से उन्हें ज्ञात है कि तुम सत्य नहीं चाहते। सत्य के साथ तो तुम बहुत दुर्व्यवहार करते हो। तुम मधुर झूठ चाहते हो, मीठा झूठ चाहते हो। तुम झूठों का एक जाल चाहते हो, जिसमें सुरक्षित तुम अपने जीवन को जैसा जी रहे हो वैसा ही जी सको। तुम्हें जीवन का रूपांतरण न करना पड़े।
सिगमंड फ्रायड ने अपने बहुत महत्वपूर्ण वचनों में एक वचन यह भी कहा
है कि मैं ऐसी कोई संभावना नहीं देखता भविष्य में कि आदमी बिना भ्रम के जी सकेगा।
भ्रम जैसे आदमी के लिए अनिवार्य भोजन है। तुम्हें बड़े-बड़े भ्रम चाहिए, तुम्हें बड़े-बड़े झूठ चाहिए--स्वर्ग के, नरक के, पाप के, पुण्य के। तुम्हें इतने झूठ चाहिए, तो तुम कहीं उन झूठों की सहायता लेकर, उन झूठों की बैसाखियां लेकर किसी तरह अपनी जिंदगी को गुजार पाते हो। कोई तुमसे कह दे कि तुम लंगड़े हो, तो तुम्हें पीड़ा होती है। कोई कह दे कि तुम अंधे हो, तो तुम्हें पीड़ा होती है। कोई कह दे कि ये तुम्हारे पैर नहीं हैं, लकड़ी है, बैसाखियां हैं, तो तुम्हें अच्छा नहीं लगता। इसीलिए तो हम अंधे को भी सूरदास जी कहते हैं। बुरा न लग जाए!
साधु-संत परजीवी हैं, तुम्हारे ऊपर निर्भर हैं। तुमसे रोटी पाते हैं, तुमसे वस्त्र पाते हैं, तुमसे सम्मान पाते हैं। वे तुम्हारे नौकर-चाकर हैं। तुम उन्हें सम्मान देते हो, सत्कार देते हो, उसके बदले में तुम उनसे सांत्वना चाहते हो। लेन-देन है, व्यवसाय है, समझौता है, सौदा है। इसलिए साधु-संत क्या कहते हैं, बहुत सोच-समझ कर पकड़ना। गौर से देख लेना। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सिर्फ तुम्हारे झूठों को सहारा दिया जा रहा है? तुम्हारे घावों को सहलाया जा रहा है? भुलाया जा रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि धर्म के नाम पर तुम्हें अफीम पिलाई जा रही है?
मजदूर स्त्रियां काम करने जाती हैं तो बच्चों को अफीम खिला देती हैं। अफीम में मस्त पड़े रहते हैं बच्चे--रोते नहीं, गाते नहीं, चिल्लाते नहीं। मां दिन भर काम करेगी, बच्चा अफीम में मस्त झाड़ के नीचे टोकरी में पड़ा रहेगा।
कार्ल मार्क्स ने कहा है कि धर्म ने आज तक आदमी को अफीम दी है।
और इसमें बहुत दूर तक सचाई है। कम से कम जिनको तुम साधु-संत कहते हो, उनके संबंध में तो यह बात सौ प्रतिशत सच है। हां, दो-चार लोगों को छोड़ दो-- एक बुद्ध को, एक कृष्ण को, एक महावीर को, एक क्राइस्ट को, एक मोहम्मद को, ऐसे कुछ लोग छोड़ दो, वे अपवाद हैं--बाकी जो भीड़-भाड़ है कुंभ के मेले में

तुम्हारे साधु-संतों की, उनके संबंध में मार्क्स बिल्कुल ठीक कहता है कि जनता को अफीम पिलाई गई है।
लेकिन तुम अफीम मांगते हो। तुम कहते हो, किसी तरह जिंदगी को झेलने योग्य बना दो। तुम्हारी जिंदगी दुखपूर्ण है, यह सच है। यह दुख मिट भी सकता है, यह भी सच है। मगर दुख को मिटाना अफीम से नहीं होता। दुख को मिटाने के लिए श्रम करना होगा, साधना करनी होगी। दुख को मिटाने के लिए दुख की आधारभूत जड़ें काटनी होंगी। दुख है तो उसके कारण हैं। उन कारणों को मिटाना होगा। बीमारी है तो उसकी वजह है। सिर्फ बीमारी के लक्षण मिटाने से बीमारी न मिट जाएगी।
तुम्हें बुखार चढ़ा है, तुम्हारे साधु-संत कहते हैंः ठंडे पानी में बैठ जाओ; शरीर गर्म है, ठंडा हो जाएगा। शरीर तो ठंडा होगा ही होगा, तुम भी ठंडे हो जाओगे। मरीज का इलाज नहीं है यह, यह मरीज की मौत है। शरीर गर्म है, यह तो लक्षण है। तुम्हारे भीतर रोग है कहीं। और जब तक रोग है, शरीर उत्तप्त रहेगा। शरीर तो केवल भीतर चल रहे किसी महाभारत की खबर दे रहा है, कि तुम्हारे भीतर अंतर-युद्ध छिड़ा है। उस अंतर-युद्ध के कारण सब उत्तप्त हो गया है। उस अंतर-युद्ध को समाप्त करना होगा, तो शरीर का ताप जाएगा। ठंडे पानी में बिठा देने से ताप नहीं जाएगा। मरीज मर सकता है, बीमारी समाप्त नहीं होगी।
लेकिन ठंडे पानी में बैठना अच्छा लगेगा। अच्छे लगने से ही कोई बात अच्छी नहीं हो जाती।
साधु-संत तुम्हारे लक्षणों का इलाज करते हैं। इलाज भी कहां करते हैं! लक्षणों के लिए तुम्हें व्याख्याएं दे देते हैं। निश्चित साधु-संत लोगों को समझा रहे हैं कि यह कलिकाल है, यह समय बहुत बुरा है। जैसे कि पहले कोई अच्छे समय रहे हैं! समय ही बुरी चीज है। समय के पार जाने में अच्छाई है। सभी युग कलियुग हैं। सतयुग न कभी रहा है, न है, न होगा। सतयुग तो सिर्फ तुम्हारी कल्पना है--अफीम! पहले लोग सोचते थेः सतयुग पहले हो चुका; वह एक ढंग की अफीम थी। एक तरह के पंडित-पुरोहित ने उसका उपयोग हजारों साल तक किया और आदमी को सुलाए रखा। फिर धीरे-धीरे उस अफीम का प्रभाव कम हो गया-- लोग उसके आदी हो गए--उससे फिर नशा नहीं आना संभव रहा। जब एक आदमी अफीम रोज-रोज खाता रहे, तो धीरे-धीरे उस अफीम का परिणाम समाप्त हो जाता है। वह अफीम आदत हो जाती है। फिर नशा नहीं लाती। तो फिर नई अफीम की जरूरत पड़ती है। कम्युनिज्म नई अफीम है। कम्युनिज्म कहता है कि सतयुग आगे आने वाला है। पुरानी अफीम कहती थी कि राम-राज्य पहले हो चुका। नई अफीम कहती हैः राम-राज्य आगे आने वाला है। जो पुरानी अफीम से बच गए हैं, वे नई अफीम की दुकान पर पहुंच गए हैं। वे वे ही लोग हैं जो काशी और काबा जाते थे, वे ही क्रेमलिन जाते हैं। वे वे ही लोग हैं जो गीता और कुरान में अपनी सांत्वना खोजते थे, अब दास कैपिटल और कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में खोजते हैं। मगर बात नहीं बदली। पहले पीछे था स्वर्ग, अब आगे है स्वर्ग। और जिंदगी अभी है! और जिंदगी यहीं है! और जिंदगी में कुछ भी करना हो तो अभी करना होगा, आज करना होगा, तत्क्षण करना होगा! मगर तत्क्षण करने के लिए तो हमारी तैयारी नहीं। हम तो कहते हैं, कोई हमें एक प्यारा सपना दे दो कि हम सपने को ओढ़ लें और सो जाएं। तो तुम्हारे साधु-संत कह रहे हैं कि कलियुग है, बुरा समय है, बड़ा कठिन समय है। इस कठिन समय में तो बस भक्ति-मार्ग ही एक सरल उपाय है। तपश्चर्या कठिन है, योग कठिन है, और सब ध्यान कठिन हैं, भक्ति सरल है--गए मंदिर में, उतार ली आरती, चढ़ा दिए दो फूल, सिर पटका पत्थर की किसी मूर्ति पर, कि घर के ही एक कोने में भगवान को बना लिया--खुद का ही बनाया हुआ भगवान, खुद ही उसके सामने सिर झुका कर बैठ गए, इन खेलों का नाम भक्ति है। यह सरल है। निश्चित ही सरल है। और सस्ता क्या हो सकता है? और तुम सोचते हो कि बस हल हो गया। कलियुग है, समय कठिन है, सुगम मार्ग हाथ लग गया।
और छोटे-छोटे लोगों की बात छोड़ो! जयप्रकाश नारायण अधमरी हालत में लटके हैं, जबरदस्ती मशीनों पर लटकाए गए हैं--विनोबा ने उनको दो संदेश भेजे। पहला संदेश भेजा एक संदेशवाहक के हाथ। जयप्रकाश न बोल सकते हैं, न बोलने की हालत में हैं, न लोगों को पहचानते हैं, और विनोबा क्या संदेश

पहुंचाते हैं, मालूम है? कि शाकाहारी हो जाओ! कि जब तक मांसाहार न छोड़ोगे, तब तक स्वस्थ न होओगे!
यह कोई वक्त है? और जिंदगी भर क्या किया? जयप्रकाश जिंदगी भर वर्षों विनोबा के चरणों में बैठे रहे, तब न उनसे कहा कि शाकाहार करो, मांसाहार छोड़ो! मांसाहारी बने रहे और सर्वोदयी बने रहे। मांसाहारी बने रहे और गांधीवादी बने रहे। मांसाहारी बने रहे और अहिंसा पर प्रचार करते रहे। अब मरते वक्त, जब कि न होश है, न सुनने-समझने की क्षमता है--अपनी सगी बहिन को भी नहीं पहचान पाए; लोग जाते हैं, उनको आंख खोल कर देखते हैं, कुछ पहचान नहीं पाते--ऐसी नब्बे प्रतिशत मृत अवस्था में उनको संदेश भेजा जा रहा है, साधु-संत संदेश भेज रहे हैंः शाकाहारी हो जाओ! अब तो शाकाहारी हैं ही, अब कौन मांसाहार कर रहा है? कौन मांसाहार करवाएगा?
और दूसरा संदेश भेजा है कि राम-हरि, राम-हरि जपते रहना। सांस बाहर जाए
तो राम कहना, सांस भीतर जाए तो हरि कहना। राम-हरि, राम-हरि जपते रहना।
यह आदमी मर रहा है, जिंदगी भर न राम जपा, न हरि जपा, और अब तो कुछ होश भी नहीं है--अब सांस के साथ राम-हरि, राम-हरि जपते रहना! और तुम भी कहोगे कि विनोबा ने भी क्या धार्मिक संदेश भेजे हैं!
धार्मिक नहीं हैं, सिर्फ एक ही बात की खबर देते हैं कि ये लोग सठिया गए हैं। इन्हें खुद भी होश-हवास नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं और क्या कर रहे हैं। तुम्हारे साधु-संत तुमसे वही कहे चले जाते हैं जो तुम्हें प्रीतिकर लगे। जिंदगी में तो नहीं कहा कि मांसाहार छोड़ दो, क्योंकि तब तो प्रीतिकर न लगता; अब तो कहने में कोई अड़चन नहीं है, अब तो शाकाहारी होकर मरा जा सकता है। मरते वक्त कोई भी शाकाहारी हो जाता है। जिंदगी भर राम-हरि, राम-हरि की कोई फिकर की नहीं; तब तो और राजनीति के हजार गणित बिठाने थे। अब मरते वक्त राम-हरि, राम-हरि कह लो! और बस राम-हरि, राम-हरि कह लिया कि पहुंच गए परमात्मा के लोक में, मिल जाएगा मोक्ष। तुम्हारे साधु-संत सिर्फ तुम्हें सांत्वना दे रहे हैं। और सांत्वना के बदले में तुमसे सत्कार ले रहे हैं, तुमसे सम्मान ले रहे हैं।
तो पहली तो बात मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि साधु-संतों से सावधान! बुद्ध-पुरुष कुछ बात और। बुद्ध-पुरुषों को तो तुम गाली दोगे, अपमान करोगे, सूली लगाओगे, जहर पिलाओगे, पत्थर मारोगे। साधु-संतों की पूजा करोगे! जिसकी भी तुम पूजा करो, जरा सोच लेना--क्यों कर रहे हो पूजा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह तुम्हें भुलावे देता है--मीठे भुलावे, सुंदर भुलावे, मनमोहक सपने! तुम जो चाहते हो, वैसा ही। तुम तपश्चर्या नहीं करना चाहते, तुम ध्यान नहीं करना चाहते, राम-हरि, राम-हरि जपते रहना।
ध्यान कठिन है। क्योंकि ध्यान के लिए विचार की सारीशृंखला तोड़नी होगी।
ध्यान संघर्ष है। क्योंकि जब तक तुम मन के पार न जाओगे, ध्यान उपलब्ध
न होगा।
राम-हरि, राम-हरि जपना बिल्कुल आसान है। लेकिन राम-हरि जपना भक्ति नहीं है, सिर्फ तोतारटंत है। तो तोते भी रट लेते हैं राम-हरि, राम-हरि। एक दफा सिखा दो उन्हें। वह तो ओंठों की बात है। तुम्हारे हृदय में परमात्मा का स्मरण उतना ही कठिन है, शायद ज्यादा ही कठिन है, जितना ध्यान। मैं रहीम से राजी हूं। रहीम ठीक कहते हैंः
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
जैसे कोई घोड़े पर चढ़ कर, घोड़े पर बैठ कर, जंगल में आग लगी हो और उसमें
से गुजरे।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
जंगल भरा है आग से, सारे जंगल में आग है, और कोई घोड़े पर चढ़ कर उस जंगल में से गुजरे--जैसा वह कठिन है--
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोई निबहत नाहिं।।
प्रेम-पंथ इतना ही कठिन है, सबसे नहीं निभता। राम-हरि जपते रहना, उससे प्रेम-पंथ नहीं निभ जाएगा! उससे तुम अपने को धोखा दे लेना; शायद और अपने आस-पास जो मूढ़ इकट्ठे हों, उनको धोखा दे लेना; मगर प्रेम-पंथ न सधेगा।

प्रेम को समझो, उसका अर्थ समझो। प्रेम का अर्थ क्या होता है?
प्रेम के तीन अर्थ होते हैं। पहला अर्थ, जिसको तुम सामान्यतया जानते हो, जिसको हम कहते हैंः प्रेम में गिरना, फालिंग इन लव। वह गिरना ही है। वस्तुतः गिरना है। जब कोई प्रेम में गिर जाता है, तो उसका अर्थ क्या होता है?
उसका अर्थ होता है कि उसने अपनी स्वायत्तता खो दी, निजता खो दी, वह दूसरे का गुलाम हो गया। तुम एक स्त्री के प्रेम में गिर गए, तुम उस स्त्री के गुलाम हो गए; या किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गए, तो तुम उस पुरुष के गुलाम हो गए। अब यह एक गुलामी का नया सिलसिला शुरू हुआ, जिसका तुमने बड़ा सुंदर नाम दिया हैः प्रेम। अब तुम उस स्त्री के बिना नहीं रह सकते, अब वह स्त्री तुम्हारी अनिवार्यता हो गई, तुम्हारी आवश्यकता हो गई, उसके बिना तुम्हें मुश्किल होगी, कठिनाई होगी, जीना व्यर्थ मालूम होगा; अकेलापन लगेगा, खालीपन लगेगा। उस स्त्री ने तुम्हारी आत्मा में जगह बना ली। और निश्चित ही जिसके ऊपर तुम निर्भर हो जाओगे, वह तुम्हारा मालिक हो गया। और मालिक जब कोई हो जाएगा तो प्रीतिकर नहीं लगेगा, दुखद लगेगा।
इसलिए प्रेम के ये सारे संबंध दुख में ले जाते हैं, कलह में ले जाते हैं। क्योंकि कौन किसको अपना मालिक बनाना चाहता है? गए थे प्रेम करने और हो गया कुछ और। गए थे राम-भजन को, ओटन लगे कपास। सोचा तो था कि प्रेम में उठेंगे और प्रेम मुक्ति लाएगा, लेकिन प्रेम लाया बंधन, कारागृह, जंजीरें। जिस पर तुम निर्भर हो, उसको तुम कभी क्षमा नहीं कर सकते। उस पर तुम क्रुद्ध ही रहोगे। इसलिए पति पत्नियों पर क्रुद्ध हैं, पत्नियां पतियों पर क्रुद्ध हैं। कहते हों, न कहते हों, उसका सवाल नहीं है; मगर भीतर क्रोध की आग है। और कारण?
कारण पत्नी नहीं है, न पति है, कारण तुम्हारी निर्भरता है। निर्भरता
के प्रति रोष पैदा होता है। कोई नहीं चाहता कि अपनी आत्मा को बेचे और गुलाम हो जाए। मगर जिसको तुम प्रेम कहते हो वह ऐसा ही प्रेम है कि उसमें आत्मा बेचनी पड़ती है और गुलाम होना पड़ता है। और तुम जिसके गुलाम होते हो, वह तुम्हारा गुलाम हो रहा है। यह एक पारस्परिक गुलामी है। पति पत्नियों को गुलाम कर रहे हैं, पत्नियां पतियों को गुलाम कर रही हैं। यह एक-दूसरे पर गुलामी थोपी जा रही है। और दोनों की आत्माएं मरती हैं। और धीरे-धीरे दोनों अपंग हो जाते हैं।
तुमने वह देखी न, स्कूलों में बच्चे दौड़ करते हैं, लंगड़ी दौड़, जिसमें
दो टांगें दो बच्चों की बांध दी जाती हैं, तो तीन टांगों से दौड़ना पड़ता है। लंगड़ी दौड़ का नाम विवाह है। उसमें दो व्यक्तियों की एक-एक टांग बांध दी गई, अब तीन टांग से उनको भागना पड़ता है। दोनों एक-दूसरे पर नाराज होते हैं। क्योंकि दोनों की गति में बाधा पड़ती है। एक पूरब जाना चाहता है, एक पश्चिम जाना चाहता है, और नहीं जा सकते। एक तेजी से जाना चाहता है, दूसरा नहीं तेजी से जाना चाहता; तो सदा दूसरे का ध्यान रखना पड़ता है। और हर बार दूसरे के लिए झुकना पड़ता है। और जब दूसरा तुम्हें झुकाता है तुम्हारी मजबूरी के क्षण में, तो उसकी मजबूरी के क्षण में तुम उसे झुकाते हो। यह एक तरह की दुश्मनी हुई, दोस्ती न हुई। एक तरह का शोषण हुआ, प्रेम न हुआ।
यह तो साधारण प्रेम है जिसको तुम जानते हो। इस प्रेम ने तुम्हारे जीवन को नरक बना दिया है। इस प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं रहीम। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन! यह तो कठिन है ही नहीं। यह तो बड़ा सरल है। दुनिया में सभी इसको सम्हाल लेते हैं। इसमें कठिनाई क्या होगी? हर घर में चल रहा है, हर परिवार में चल रहा है, हर व्यक्ति में चल रहा है। यह तो बड़ा सरल है।
इससे ऊंचा एक प्रेम होता है। उसको प्रेम में गिरना नहीं कह सकते। उसको हम कहेंगेः प्रेम में होना, बीइंग इन लव। वह बड़ी और बात है। उसका स्वभाव मैत्री का है। खलील जिब्रान ने ठीक कहा है कि सच्चे प्रेमी मंदिर के दो स्तंभों की भांति होते हैं। बहुत पास भी नहीं, क्योंकि बहुत पास हों तो मंदिर गिर जाए। बहुत दूर भी नहीं, क्योंकि बहुत दूर हों तो भी मंदिर गिर जाए।... देखते हो ये स्तंभ, जिन्होंने च्वांग्त्सु-मंडप को सम्हाला हुआ है? ये बहुत पास भी नहीं हैं, बहुत दूर भी नहीं हैं। थोड़ी दूरी, थोड़े पास।

तो ही छप्पर सम्हला रह सकता है। एकदम पास आ जाएं तो छप्पर गिर जाए; बहुत दूर हो जाएं तो छप्पर गिर जाए। एक संतुलन चाहिए।
असली प्रेमी न तो एक-दूसरे के बहुत पास होते हैं, न बहुत दूर होते हैं। थोड़ा सा फासला रखते हैं, ताकि एक-दूसरे की स्वतंत्रता जीवित रहे। ताकि एक-दूसरे की स्वतंत्रता में व्याघात न हो, अतिक्रमण न हो। ताकि एक-दूसरे की सीमा में अकारण हस्तक्षेप न हो।
मैं एक छोटे बच्चे के साथ घूमने गया हुआ था। एक बगीचे के सामने तख्ती लगी थीः नो ट्रेसपासिंग, प्रवेश निषिद्ध। वह छोटा बच्चा नई-नई अंग्रेजी भाषा सीख रहा था, उसने पढ़ाः नो ट्रेसपासिंग। फिर थोड़ा सोच-विचार में पड़ गया।
मैंने उससे पूछा कि तू क्या सोच रहा है?
वह कहने लगा कि मैं यह सोच रहा हूं कि क्या दुनिया में ऐसी भी कोई जगह
है जहां तख्ती लगी होः ट्रेसपासिंग; कि यहां प्रवेश आमंत्रित है; ऐसी भी कहीं कोई तख्ती होगी दुनिया में?
इस दुनिया में तो नहीं होगी। यहां तो हर एक अपने को सम्हाले है। या तो गुलाम हो गया है किसी का, तो इतना दब गया है, रुंद गया है दूसरों के पैरों से, कि अब कहने वाला ही नहीं बचा कोई। और या फिर इतना घबड़ा गया है दबने से कि भाग गया है जंगल में, अकेला बैठा है, चारों तरफ तख्ती लगा दी हैः नो ट्रेसपासिंग। उसी को तो हम संन्यासी कहते हैं, साधु कहते हैं, जो जंगल भाग जाता है, चारों तरफ तख्ती लगा देता हैः नो ट्रेसपासिंग। लक्ष्मण-रेखा खींच कर बैठ जाता हैः भीतर मत आना। क्योंकि डरता है कि भीतर तुम आए कि गुलामी शुरू हुई।
दुनिया में लोग हैं जो रौंदे जा रहे हैं। और कुछ लोग हैं जो भाग गए हैं। ये दोनों अपंग हैं। प्रेम में होने का अर्थ होता हैः हम पास भी होंगे इतने कि हमें एक-दूसरे से कोई भय का कारण नहीं, और हम इतने दूर भी होंगे कि हम एक-दूसरे को रौंद भी न डालेंगे, हमारे बीच आकाश होगा। और तुम्हारा निमंत्रण होगा तो मैं आऊंगा, और मेरा निमंत्रण होगा तो तुम मेरे भीतर आओगे। मगर निमंत्रण पर। यह हक न होगा, अधिकार न होगा।
रवींद्रनाथ के एक उपन्यास में एक युवती अपने प्रेमी से कहती है कि मैं विवाह करने को तो राजी हूं, लेकिन तुम झील के उस तरफ रहोगे और मैं झील के इस तरफ।
प्रेमी की बात समझ के बाहर है। वह कहता हैः तू पागल हो गई है? प्रेम करने के बाद लोग एक ही घर में रहते हैं।
उसने कहा कि प्रेम करने के पहले भला एक घर में रहें, प्रेम करने के बाद
एक घर में रहना ठीक नहीं, खतरे से खाली नहीं। एक-दूसरे के आकाश में बाधाएं पड़नी शुरू हो जाती हैं। मैं झील के उस पार, तुम झील के इस पार। यह शर्त है तो विवाह होगा। हां, कभी तुम निमंत्रण भेज देना तो मैं आऊंगी। या मैं निमंत्रण भेजूंगी तो तुम आना। या कभी झील पर नौका-विहार करते अचानक मिलना हो जाएगा। या झील के पास खड़े वृक्षों के पास सुबह के भ्रमण के लिए निकले हुए अचानक हम मिल जाएंगे, चौंक कर, तो प्रीतिकर होगा। लेकिन गुलामी नहीं होगी। तुम्हारे बिना बुलाए मैं न आऊंगी, मेरे बिना बुलाए तुम न आना। तुम आना चाहो तो ही आना, मेरे बुलाने से मत आना। मैं आना चाहूं तो ही आऊंगी, तुम्हारे बुलाने भर से न आऊंगी। इतनी स्वतंत्रता हमारे बीच रहे, तो स्वतंत्रता के इस आकाश में ही प्रेम का फूल खिल सकता है।
ऐसा दूसरा प्रेम बहुत कठिन है।
और रहीम जिसकी बात कर रहे हैं वह तो तीसरा प्रेम है, वह तो अति कठिन है। यह दूसरा प्रेम भी शायद कभी-कभी संभव हो जाता है--किसी कवि को, किसी चित्रकार को, किसी मूर्तिकार को, किसी संगीतज्ञ को। पहला प्रेम तो साधारण, आम जन का प्रेम है; पृथक जन का प्रेम है; भीड़-भाड़ का, भेड़ों का। दूसरा प्रेम मनुष्यों का प्रेम है, जिनकी थोड़ी गरिमा है, जिनमें थोड़ा बोध है, प्रतिभा है। दूसरा भी बहुत कठिन है। और रहीम तो तीसरे प्रेम की बात कर रहे हैं। पहला प्रेमः फालिंग इन लव, प्रेम में गिरना।
दूसरा प्रेमः बीइंग इन लव, प्रेम में होना।

और तीसराः बीइंग लव, प्रेम ही होना।
तीसरा कोई संबंध ही नहीं है, उसका दूसरे से कोई नाता ही नहीं है। वह तो प्रेम की चैतन्य दशा है। वह तो भीतर से उमगता हुआ प्रेम है सारे अस्तित्व के प्रति--इस कूकती कोयल के प्रति, इन पक्षियों की आवाजों के प्रति, सूरज की इन किरणों के प्रति, वृक्षों के प्रति, लोगों के प्रति--यह सारे समग्र अस्तित्व के प्रति। सच पूछो तो प्रति का सवाल ही नहीं है। किसी का पता नहीं है उस प्रेम पर। जैसे कोई झरना फूट रहा हो, या जैसे किसी फूल से सुगंध उठ रही हो। वह किसी पते-ठिकाने पर नहीं जा रही। वह पहले पोस्ट-आफिस नहीं जाएगी, वह किसी पोस्टमैन पर सवार नहीं होगी, वह किसी लिफाफे में बंद नहीं होगी। वह उड़ेगी खुले आकाश में। जिसको लेना हो, ले ले। और न लेना हो तो न ले। जैसे दीये से झरता प्रकाश है। वह झर रहा है सिर्फ, वह दीये का स्वभाव है। ऐसे प्रेम की बात कर रहे हैं रहीम। ऐसा प्रेम तो बुद्धों का होता है।
ऐसा प्रेम तो उनका ही होता है जो ध्यान की परम अवस्था को उपलब्ध हो गए। ऐसा प्रेम तो ध्यान का परिणाम है। और ऐसा प्रेम सरल नहीं हो सकता--जैसा तुम्हारे साधु-संत कह रहे हैं।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोई निबहत नाहिं।।
यह सबसे निभ नहीं सकता। यह तो विरले, बहुत विरले, बड़े जागरूक पुरुष इस अवस्था को उपलब्ध हो पाते हैं। और जो ऐसे प्रेम को जानते हैं, वे ही परमात्मा को जानते हैं। और ऐसे प्रेम का नाम भक्ति है। मंदिर में चढ़ा आए दो फूल, जला आए एक दीप, कि उतार आए आरती, कि करवा ली घर में सत्यनारायण की कथा, कि मरते वक्त हरि-राम, हरि-राम जपते रहे, या खुद न बना जपते तो किसी पंडित-पुजारी को बिठा कर जपवाते रहे हरि-राम, हरि-राम, इससे नहीं होगा! रहीम इस प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं। वे तो प्रेम के उस पंथ की बात कर रहे हैं जो परमात्मा से मिला देता है। वह तो अति कठिन है, कठिन से कठिन है। गौरीशंकरों पर चढ़ जाना आसान, चांद-तारों पर पहुंच जाना आसान, प्रेममय हो जाना सर्वाधिक कठिन है।
मैं तो रहीम से राजी हूं, तुम्हारे साधु-संतों से नहीं। तुम्हारे साधु-संत तो तुम्हें खिलौने दे रहे हैं, घुनघुने दे रहे हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी ने विज्ञापन पढ़ा। विज्ञापन बड़ा प्रीतिकर था, जैसे कि विज्ञापन होते हैं। जरा विज्ञापनों को गौर से देखा करो! वे तुम्हारी मनोदशा की खबर देते हैं।
केडिलक कार का विज्ञापन होता है, तो विज्ञापन में लिखा होता हैः समथिंग टु बिलीव इन! कार, उसका विज्ञापनः समथिंग टु बिलीव इन! कुछ जिस पर भरोसा किया जा सके, विश्वास किया जा सके, जिस पर श्रद्धा की जा सके! सोचो, किन लोगों के लिए यह विज्ञापन दिया जा रहा है? ईश्वर पर श्रद्धा हट गई है, जीवन से श्रद्धा हट गई है, प्रेम से श्रद्धा हट गई है, सारी बहुमूल्य श्रद्धाएं समाप्त हो गईं। अब केडिलक कार पर श्रद्धा करनी पड़ेगी। अब कुछ तो चाहिए, श्रद्धा करने को कुछ तो चाहिए। श्रद्धा खाली रह गई है। तो लोग कारों में भरोसा कर रहे हैं, कारों में श्रद्धा कर रहे हैं।
या कोकाकोला का विज्ञापन पढ़ोः एवरीथिंग गोज वेल विद कोकाकोला।
तो अगर पत्नी से झगड़ा है, कोकाकोला लाओ! अगर घर में वैमनस्य है, तो रेफ्रिजरेटर में कोकाकोला की बोतलें भर कर रखो! हर चीज बड़े रंग से चलती है, मौज से चलती है--बस कोकाकोला संग में हो, सब ठीक होता है। लोग कर रहे हैं इस तरह के अभ्यास। अब और तो कोई उपाय नहीं रहा। बाइबिलें धोखा दे गईं, गीताएं काम नहीं पड़ीं, अब कोकाकोला पर भरोसा करो! कुछ तो चाहिए! तुम्हारे विज्ञापन तुम्हारे ही संबंध में खबर देते हैं।
एक आदमी ने पढ़ा कि एक नया आविष्कार हुआ है, एक ऐसे संगीत-वाद्य का कि न बिजली की जरूरत, न बैटरी की जरूरत; जंगल में ले जाओ, कहीं भी जाओ--संगीत सुनो! तत्क्षण उसने मनीआर्डर किया। पच्चीस रुपये। सस्ता भी था, महंगा भी नहीं था--ऐसा संगीत-वाद्य। सीखने की कोई जरूरत नहीं, यह भी उसमें। किसी स्कूल में नहीं जाना, सीखना नहीं, बैटरी नहीं, बिजली नहीं--कहीं भी, जंगल में बैठो! बड़ी सुंदर पार्सल आई। बड़ी उत्सुकता से, आतुरता से खोली, सारा घर

इकट्ठा हो गया, निकला एक घुनघुना! जहां जाओ, वहीं बजाओ। सीखने की कोई जरूरत नहीं। न बैटरी की, न बिजली की जरूरत।
तुम्हारी भक्ति घुनघुनों जैसी है, खेल-खिलौनों जैसी है। और साधु-संत
कह रहे हैं कि भक्ति का मार्ग बड़ा सरल, बड़ा सुगम। और तुम्हें जंचती है बात। जंचती है, क्योंकि तुम चाहते हो कि कोई सुगम बात हो, घुनघुने जैसी बात हो; न सीखनी पड़े, न बिजली की जरूरत, न बैटरी की जरूरत; न तपना पड़े, न गलना पड़े, न जीवन को समर्पित करना पड़े, कुछ भी न करना पड़े। एक गोबर के बना कर गणेश जी बिठाल लिए। चलो गौ-गोबर ही सही! पवित्र गोबर के बना लिए! चढ़ा दी फूल की माला, हाथ जोड़ कर बैठ गए, झूठे आंसू बहाने लगे, गणपति की प्रार्थना करने लगे--और तुमने सोचा हो गया सब, भक्ति हो गई। तुम्हें भी लगेगा कि साधु-संत ठीक ही कह रहे हैं, मामला बिल्कुल सरल है, अड़चन क्या है इसमें?
लेकिन यह भक्ति ही नहीं है। तुमने जो चाहा, साधु-संतों ने तुम्हें दे दिया। घुनघुना चाहा, घुनघुना दे दिया। उन्हें घुनघुने बेचने हैं, तुम घुनघुनों के खरीददार हो, दोनों के बीच मेल बन जाता है। दोनों एक-दूसरे से प्रसन्न। वे तुमसे प्रसन्न हैं, तुम उनसे प्रसन्न हो।
तुम्हारे साधु-संत साधु-संत नहीं हैं, सिर्फ शोषक हैं। तुम्हारी कमजोरियों का शोषण किया जा रहा है। मगर इस ढंग से किया जा रहा है और इतनी सदियों से किया जा रहा है और इतना प्राचीन है शोषण कि तुम्हें याद भी नहीं आता कि यह शोषण शोषण है। तुम्हें तो लगता है, यह सत्संग हो रहा है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः प्रेम-मार्ग निश्चित ही सर्वाधिक कठिन मार्ग है। इससे तुम यह मत समझना कि मैं तुमसे यह कह रहा हूंः तुम प्रेम को उपलब्ध न हो सकोगे। मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रेम-मार्ग असंभव है। इतना ही कह रहा हूं, सस्ता नहीं है। इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हारे झूठे आयोजनों से उपलब्ध न होगा। तुम्हें कसौटी पर से गुजरना होगा।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
आग की कसौटी से गुजरना होगा, अग्नि-परीक्षा देनी होगी। पकोगे अग्नि में तो ही निखरोगे, कुंदन की तरह स्वच्छ होगा स्वर्ण तुम्हारा। प्रभु के चरणों में चढ़ने के योग्य होगा स्वर्ण तुम्हारा। तुम आभूषण बनोगे। आग से बिना गुजरे यह नहीं हो सकता। और प्रेम से बड़ी आग नहीं है दुनिया में। और सब आगें तो शरीर को जला सकती हैं, प्रेम है अकेला जो आत्मा को जलाता है और निखारता है। और आगें तो बाहर रह जाती हैं, प्रेम है अकेली आग जो भीतर अंतरतम तक जाती है; जो तुम्हें पोर-पोर निखारती, कोर-कोर निखारती। जो तुम्हारे रोएं-रोएं को शुद्ध कर जाती है, तुम्हारी श्वास-श्वास को शुद्ध कर जाती है।
लेकिन तुम्हें तब तीसरे ढंग का प्रेम सीखना होगा। तुम्हें प्रेम होना होगा। प्रेम करना नहीं, प्रेम संबंध नहीं, वरन प्रेम तुम्हारे अंतर की दशा होनी चाहिए। तुम्हें प्रेमपूर्ण होना होगा।
पहला प्रेम कामवासना है, दूसरा प्रेम मैत्री है, तीसरा प्रेम करुणा है। और जब प्रेम करुणा बनता है, तो परमात्मा का द्वार बनता है। लेकिन इस प्रेम तक जाने के लिए तुम्हें ध्यान का उपाय करना ही है। उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है दूसरा। क्योंकि प्रेम का अर्थ होता है, मस्तिष्क से हृदय में उतर आना। और मस्तिष्क तुम्हें जकड़े हुए है। और तुम्हारे साधु-संत समझा रहे हैं कि राम-हरि जपते रहना। वह राम-हरि तुम कहां जपोगे? शब्द तो मस्तिष्क में ही होते हैं, हृदय में नहीं जाते।
लेकिन विनोबा का संदेश जयप्रकाश नारायण को दिया गया। अनेक लोगों को लगा होगाः बड़ा धार्मिक संदेश!
यह देश तो बड़ा अजीब है। इस देश के साधु-संत, इस देश के नेता एक से एक अदभुत हैं! जयप्रकाश मरे ही नहीं और पार्लियामेंट ने शोक-संवेदना प्रकट कर दी, और देश के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने घोषणा कर दी कि मर गए! मोरारजी देसाई का मनोविश्लेषण करवाना जरूरी है। अगर फ्रायड से पूछो तो वह कहेगा कि वे चाहते हैं कि मर जाएं। इसलिए जल्दी घोषणा कर दी। भीतर चाह थी। आकांक्षा की पूर्ति वही है कि किसी तरह मरें, झंझट मिटे। मरने की जरा भी

खोजबीन न की गई। आश्चर्य! किसी से पूछताछ न की गई। सरकार का इतना बड़ा आयोजन है, बड़े-बड़े नेता जसलोक अस्पताल में बैठे हुए हैं, जसलोक अस्पताल चौबीस घंटे प्रधानमंत्री से फोन से जुड़ा हुआ है। लेकिन बिना कोई खोज-खबर किए, किसी एक आदमी ने अफवाह उड़ा दी कि मर गए--उस आदमी का भी पक्का पता नहीं चल रहा कि कौन? किसी ने यूं ही मजाक कर दिया हो, बंबई से किसी ने फोन ही कर दिया हो उठा कर--मगर इतनी जल्दी भरोसा कर लिया? जिनसे हमारा प्रेम होता है वे तो मर भी जाते हैं तो भी भरोसा नहीं आता कि मर गए।
तुम जानते हो यह बात। अगर तुम्हारा किसी से प्रेम है, वह मर जाए, तो मर जाने के बाद भी कई दिन लग जाते हैं यह भरोसा लाने में कि मर गया। बार-बार भूल जाती है यह बात कि मर गया। कैसे यह हो सकता है? यह हो ही नहीं सकता। किसी मां का बेटा मर जाए, मरी लाश सामने पड़ी है, मगर वह मान नहीं पाती, वह पूछती है--कैसे? यह हो कैसे सकता है? मेरा बेटा मर कैसे सकता है? नहीं- नहीं, मरा नहीं है। शायद सो गया है; शायद बेहोश हो गया है; शायद लौट आएगा। मर जाने पर भरोसा नहीं आता है, यहां जिंदा आदमी बैठा है, रेडियो पर खबर
दे दी गई, पार्लियामेंट में शोक-संवेदनाएं हो गईं, राज्य-सभाओं में शोक-संवेदनाएं हो गईं, दफ्तर बंद हो गए, झंडे झुका दिए गए। इस तरह की मूढ़ता किसी और देश में घट सकती है? भारत धन्य है! धन्य हैं इसके नेता! और धन्य हैं इसके साधु-संत! इसका कोई मुकाबला ही नहीं दुनिया में, यह बेजोड़ है।
कहीं भीतरी आकांक्षा है कि खत्म हो जाए यह आदमी। कहीं बड़े गहरे अचेतन में छुपा भाव है, वही प्रकट हो गया है। इसीलिए इतनी जल्दी भरोसा कर लिया बिना एक बार भी पूछताछ किए। और दूसरी तरफ विनोबा जैसे लोग हैं, वे कह रहे हैंः हरि-नाम जपते रहना। एक तरफ मोरारजी देसाई हैं, वे कहते हैंः तैयारी करो, अरथी बांधो, राम-नाम सत है! एक तरफ राम-नाम सत करवाने वाले लोग हैं, एक तरफ कह रहे हैंः हरि-नाम जपते रहना!
सस्ती बातें!
प्रेम को उपलब्ध होना है तो मस्तिष्क से सारी चेतना हृदय की तरफ प्रवाहित होनी चाहिए। यह बड़ी क्रांति है, रूपांतरण है। यह कोई छोटा काम नहीं है। यह बड़े से बड़ा काम है जो आदमी जीवन में कर सकता है। यह बड़ी से बड़ी चुनौती है। चेतना मस्तिष्क में जाकर अटक गई है। क्योंकि तुम्हारा सारा शिक्षण, तुम्हारे स्कूल, तुम्हारे विद्यालय, तुम्हारे विश्वविद्यालय, तुम्हारा समाज, संस्कृति, सभ्यता, सबका एक ही आग्रह है कि चेतना को मस्तिष्क में ले जाओ। तो गणित सिखाओ, तर्क सिखाओ, भूगोल-इतिहास सिखाओ--सब सिखाओ, एक प्रेम भर नहीं सिखाया जाता। एक प्रेम की झलक भर मत उतरने देना। प्रेम को तो बिल्कुल काट ही दो। आदमी को ऐसे हमने गुजरना सिखाया है कि हृदय से बच कर निकल जाता है। हृदय रास्ते पर आता ही नहीं। हमें हृदय का मार्ग ही भूल गया है। तो अगर हम भक्ति भी करते हैं तो वह भी मस्तिष्क में ही रहती है, वह भी हृदय तक नहीं आती। और हृदय तक न आए, तो भक्ति ही नहीं है, प्रेम ही नहीं है।
हृदय तक लाने का उपाय क्या है?
ध्यान की कुदाली से काट डालने होंगे विचार के सारे तंतु। ध्यान की तलवार से विचार की सारी की सारी जड़ें काट डालनी होंगी, ताकि चेतना मस्तिष्क से मुक्त हो जाए। और मस्तिष्क से मुक्त हो तो तत्क्षण हृदय में प्रवेश हो जाती है। प्रेम ध्यान की परिणति है। और आज का मनुष्य तो बिना ध्यान के प्रेम की तरफ नहीं जा सकता।
मुझसे अक्सर लोग पूछते हैं कि मैं भक्ति पर इतना बोलता हूं, और करवाता
तो हूं आश्रम में ध्यान! कारण साफ है। आधुनिक मनुष्य इतना मस्तिष्क से भर गया है कि ध्यान से ही उसके मस्तिष्क को अब तोड़ा जा सकता है। और मस्तिष्क से उसके संबंध शिथिल हो जाएं, मस्तिष्क से उसकी ऊर्जा मुक्त हो जाए, तो दूसरी कोई जगह ही नहीं है तुम्हारे भीतर जहां ऊर्जा जा सके। दो ही स्थान हैं, या तो मस्तिष्क या हृदय। या तो तर्क या प्रेम। या तो गणित या काव्य। अगर गणित, तर्क से मुक्त हो जाए तुम्हारी चेतना, तो तत्क्षण, अपने आप चेतना की लहर हृदय में पहुंच जाएगी। और उस हृदय में लहर का पहुंच जाना सबसे अपूर्व घटना है। मगर उसके लिए मस्तिष्क से मुक्त होना! और मस्तिष्क में

हमारे बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं। वही हमारी शिक्षा, वही हमारा तादात्म्य, वही हमारा अहंकार, उसी में तो हम नियोजित हैं। उसको छोड़ना सरल नहीं हो सकता; साधु-संत झूठी बातें कहते हैं। तुम सुनना चाहते हो झूठी बातें तो तुमसे झूठी बातें कही जाती हैं।
छोटे बच्चे भूत-प्रेत की परीकथाएं सुनना चाहते हैं तो उनको भूत-प्रेत
की और परियों की कथाएं सुनाई जाती हैं। ऐसे ही तुम छोटे बच्चे हो। तुम सस्ती बातें सुनना चाहते हो, सस्ते साधु-संत हैं, जो गांव-गांव घूम कर तुम्हें तृप्ति देते रहते हैं, तुम्हारी मलहम-पट्टी करते रहते हैं; तुम्हारे घावों को उघड़ने नहीं देते, तुम्हारी बीमारियों को प्रकट नहीं होने देते; तुम्हारे रोगों को ढांके रखते हैं, फूलों में सजाए रखते हैं। और यह ठीक भी है। तुम जो भाषा समझते हो, वही भाषा वे बोलते हैं, तो ही तुम उन्हें सम्मान दोगे, तो ही उनका व्यवसाय चलेगा। भाषा-भाषा की बात है। मैंने सुना है--

एक नेता ने
दूसरे नेता को
जन्मदिन पर बधाई
देते हुए लिखा
ईश्वर करें, आपके
उदघाटन भाषण की मीटिंग में
नहीं हो हूटिंग,
न ही पथराव हो
विरोधियों के आक्रोश से, गुरु बचाए न ही छात्रों द्वारा घेराव हो शनि की कृपा से
आपका क्षेत्र
बाढ़, अकाल
और सूखाग्रस्त घोषित हो जाए
राहत कार्य
के अंतर्गत
आपकी सारी गरीबी धुल जाए,
राजनीति में सदा, यूं ही
चलती रहे तिजारत
वर्षगांठ मुबारक!
भाषा भाषा की बात है। अब राजनेता किसी दूसरे राजनेता को अगर वर्षगांठ में मुबारक भी भेजे तो और क्या मुबारक भेजे? इसी तरह की भाषा समझी जा सकती है।
तुम जो चाहते हो, तुम्हें दिया जाता है। और जब तुम जो चाहते हो वही तुम्हें मिलता है, तो तुम बड़े प्रसन्न होते हो। तुम्हारी धारणाएं, अंधी धारणाएं, तुम्हारे अंधविश्वास परिपुष्ट किए गए, तुम्हारा अहंकार मजबूत हुआ, तुम प्रसन्नचित्त लौटते हो।
सदगुरु के पास जाओगे तो झकझोरे जाओगे, तोड़े जाओगे, मिटाए जाओगे। सदगुरु के पास जाने के लिए साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए। सदगुरु के पास बैठने के लिए तैयारी चाहिए, कि गर्दन कटे तो कट जाए। कबीर कहते हैंः कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ, जो घर बारै आपना चलै हमारे साथ। घर जलाने की हिम्मत चाहिए। सरल नहीं है भक्ति। घर जलाना है; आग में उतरना है। कठिन है, क्योंकि अहंकार का बीज टूटेगा, तो तुम्हारे भीतर प्रेम का अंकुर उठेगा। बीज अगर टूटने से डरे, बीज अगर मरने से डरे, तो पौधा कभी पैदा न हो।

अंधकार में
दबा हुआ मैं
मुझको अनजाना रहने दो!
जीवन-शक्ति तुम्हें जो दी है

उससे बेधो
तमस-भार यह
बढ़ो जिधर तुमको पुकारता है प्रकाश रवि की किरणों का!
नाता मत तोड़ो धरती से,
यह माता है!
जीवन-रस तुमको देती है!
पर न अनसुनी करो
व्योम की भी पुकार,
उस ओर बढ़ो तुम
मुक्त वायु में!
तुम्हें पल्लवित पुष्पित होकर नत-मस्तक ही सहना होगा भार फलों का!
तभी सार्थक मैं भी होऊंगा!
छोड़ो मेरा मोह
बढ़ो तुम रवि-किरणों की ओर,
बढ़ो ले मुक्त वायु में सांस
सदा तुम मुक्त गगन की ओर!

बीज टूटता है तो पीड़ा तो होगी। लेकिन बीज बिना टूटे वृक्ष न हो सकेगा।
और वृक्ष होने के लिए दो अपूर्व काम करने होते हैं। एक, जमीन से नाता गहराना होता है। बीज जमीन में भी पड़ा रहे तो उसका नाता नहीं होता--ख्याल रखना। बीज तो टूटता है, जब उसमें जड़ें निकलती हैं, तब जमीन से नाता होता है। तो एक तरफ तो बीज टूट कर जमीन में अपनी जड़ें फैलाता है, भूमि से अपना नाता बनाता है, भूमि से रस लेता है। और दूसरी तरफ आकाश की तरफ उठना शुरू होता है; पल्लव निकलते हैं, अंकुर निकलते हैं। अदभुत यात्रा है, विरोधाभासी। एक तरफ जमीन में उतरने लगती हैं गहरी जड़ें और दूसरी तरफ उठने लगती हैं शाखाएं आकाश की ओर।
मेरी दृष्टि में संन्यासी ऐसा ही व्यक्ति है जो एक तरफ भूमि में जड़ें जमाता है और दूसरी तरफ आकाश की ओर पंख फैलाता है। जो भूमि में ही रह जाते हैं, वे नासमझ हैं। और जो भूमि के डर के कारण सिर्फ आकाश की आकांक्षा करने लगते हैं, वे भी उतने ही नासमझ हैं। जिनको तुम गृहस्थ कहते हो, वे भूमि में ही पड़े रह जाते हैं, बीज की तरह। और जिनको तुम अब तक साधु-संत कहते रहे हो, वे भाग खड़े होते हैं भूमि से, डर के कारण कि कहीं भूमि में जड़ें न जम जाएं, कहीं संसार जकड़ न ले। भाग जाते हैं दूर जंगल में, इस आशा में कि इस तरह आकाश की तरफ उड़ सकेंगे। लेकिन आकाश की तरफ जाने का एक ही उपाय है--बड़ा विरोधाभासी उपाय है--भूमि में जाओ गहरे, तो आकाश में उठोगे ऊंचे। जितनी होगी गहराई तुम्हारी जड़ों की, उतनी ऊंचाई होगी तुम्हारी शाखाओं की। अगर तुम पाताल छू लोगे जड़ों से, तो तुम आकाश छू लोगे अपने फूलों से।

अंधकार में
दबा हुआ मैं
मुझको अनजाना रहने दो!
जीवन-शक्ति तुम्हें जो दी है
उससे बेधो
तमस-भार यह
बढ़ो जिधर तुमको पुकारता है प्रकाश रवि की किरणों का!
नाता मत तोड़ो धरती से,
यह माता है!
जीवन-रस तुमको देती है!
पर न अनसुनी करो
व्योम की भी पुकार,

उस ओर बढ़ो तुम
मुक्त वायु में!
तुम्हें पल्लवित पुष्पित होकर नत-मस्तक ही सहना होगा भार फलों का!
तभी सार्थक मैं भी होऊंगा!
छोड़ो मेरा मोह
बढ़ो तुम रवि-किरणों की ओर
बढ़ो ले मुक्त वायु में सांस
सदा तुम मुक्त गगन की ओर!

इस दोहरे रूप को जो एक साथ सम्हाल लेता है, इस द्वंद्व को जो एक साथ सम्हाल लेता है, इस द्वैत के बीच जो अद्वैत साध लेता है आकाश और पृथ्वी के बीच, वही मेरा संन्यासी है। जो संसार में होकर और संसार का नहीं है। संसार में जड़ें जमाए है, मगर जिसकी अभीप्सा आकाश की है। जो शरीर में है और आत्मा की तलाश में लगा है। शरीर जिसका मंदिर है। यह अस्तित्व परमात्मा का मंदिर है।
मैं तुम्हें किसी ऐसे प्रेम की शिक्षा नहीं दे रहा हूं जो जीवन-विरोधी हो। मैं तुम्हें ऐसे प्रेम की शिक्षा दे रहा हूं कि जिसके माध्यम से ही तुम्हें परिपूर्ण जीवन के दर्शन होंगे। परिपूर्ण जीवन का दर्शन ही तो ईश्वर-दर्शन है। ईश्वर और है क्या? जीवन की समग्रता, जीवन की परिपूर्णता, जीवन की पूरी निश्छलता, जीवन का पूरा निर्दोष रूप, जीवन का परम निखार, जीवन की आत्यंतिक ऊंचाई। और काश ऐसा हो सके, तो राम-राज्य अभी हो सकता है। मेरे लिए अभी है! जो व्यक्ति भी जागा, वह राम-राज्य में है। राम-राज्य से मेरा मतलब दशरथ के बेटे राम से नहीं है। राम से मेरा अर्थ हैः प्रभु का राज्य। जिसको जीसस किंगडम ऑफ गॉड कहते हैं, प्रभु-राज्य।

आएगा वह दिन, बहुत ही शीघ्र आएगा।
जब मही बिल्कुल बदल कर
स्वच्छ, शीतल, सौम्य, शोभायुक्त, नई हो जाएगी,
जिस तरह कोई नहा कर स्वच्छ हो जाए।

व्योम यह उजली किसी कोमल विभा से पूर्ण होगा।
और यह नैराश्य का तम भाग जाएगा।
आदमी को पंख निकलेंगे।
जहां तक स्वप्न उड़ता है
वहां तक आदमी निर्बंध होकर उड़ सकेगा।

बसंती वायु के मादक झकोरों में
उड़ेंगे रक्तलोचन श्वेत पारावत खुशी से।
सुनेगी शांति का कूजन मही सर्वत्र सुख से।
गगन पर जो घिरेंगे मेघ वे पीयूष देंगे।
दिवस में सूर्य से संजीवनी, निशि में सुधाकर से
सुधा की बूंद टपकेगी।

नहीं, मैं भविष्य की बात नहीं कहता। मैं यह नहीं कह सकता--आएगा वह दिन, बहुत ही शीघ्र आएगा। नहीं, मैं तो कहता हूंः आ ही गया है वह दिन, सदा से आया हुआ है वह दिन। अमी झरत, बिगसत कंवल। अभी झर रहा अमृत, अभी कमल खिल रहे हैं। तुम आंख खोलो। तुम जरा सजग होओ। तुम जरा ध्यान के जल में स्नान करो। गंगाओं में नहीं, यमुनाओं में नहीं, नर्मदाओं में नहीं--ध्यान में! ध्यान की सरस्वती में थोड़े नहाओ। उस अदृश्य ध्यान की धारा में थोड़े उतरो। मन के विचार, मन के कोलाहल को थोड़ा जाने दो। शांत, मौन निर्विचार--और तुम्हारे भीतर उठेगी एक लपट, जो तुम्हारे अतीत को भस्मीभूत कर देगी। और जो तुम्हारे भविष्य को सदा के लिए विदा कर देगी। रह जाएगा शुद्ध वर्तमान। और उस

वर्तमान में उठती है प्रेम की गंध। उस वर्तमान में झरता है प्रेम का प्रकाश। मगर कठिन है बात!
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोई निबहत नाहिं।।
हिम्मत हो तो चुनौती स्वीकार करो! तो चढ़ो इस तुरंग पर! तो चलो चलें, आग
तो लगी है जंगल में। जिनके भीतर थोड़ी भी क्षमता है, प्रतिभा है, वे इस चुनौती को स्वीकार करेंगे ही, क्योंकि यह चुनौती अभियान है।
सिर्फ नपुंसक, सिर्फ कायर मुंह ओढ़ कर चुनौती को इनकार करके रह जाते हैं, सिर्फ आलसी। और उनकी भीड़ है। और साधु-संत उन पर जीते हैं। तो वे समझाते हैं कि भक्ति-मार्ग बड़ा सरल है। घंटी बजा दी टुन-टुन-टुन, और भक्ति- मार्ग पूरा! खुद भी न बजाई तो एक नौकर रख लिया घंटी बजाने के लिए, उसने बजा दी, भक्ति-मार्ग पूरा! तिलक-चंदन लगा लिया, भक्ति-मार्ग पूरा!
पागल हो गए हो? जलना होगा! प्राणों के अंतरतम को निखारना होगा! प्रेम तुम्हारी सर्वाधिक शुद्ध दशा है। और शुद्ध का ही शुद्ध से मिलन हो सकता है। प्रेम तुम्हारे न होने की दशा है, शून्य की, निर-अहंकार की। और शून्य से ही महाशून्य का मिलन हो सकता है। कठिन है, मैं कहता, लेकिन असंभव नहीं। और सच तो यह है, कठिन है, इसलिए रसपूर्ण है। सस्ता होता, बाजार में बिकता होता, मजा ही क्या रह जाता! कठिन है, चुनौती है, अभियान है, पुकार है। जिनमें भी थोड़ा बल है, वे जगेंगे और यात्रा पर निकलेंगे।
लेकिन एक बात अंत में जोड़ दूं--अंत में जोड़ रहा हूं, क्योंकि पहले यह बात मैं कहता तो तुम गलत समझते। जिस दिन तुम प्रेम को जान लोगे, उस दिन तुम भी शायद कहो कि सरल है, सुगम है। क्यों? क्योंकि प्रेम तुम्हारी निजता है, तुम्हारा स्वरूप है। इसलिए जान कर तो कोई कह सकता है कि सरल है, सुगम है। लेकिन उस सरलता और सुगमता का कलियुग से कोई संबंध नहीं है। उस सरलता और सुगमता का तुमसे कोई संबंध नहीं है। हां, बुद्ध को, नारद को, मीरा को सरल है, सुगम है। सच तो यह पूछो, मंजिल पहुंच कर सभी को सुगम हो जाती है। पहुंच कर। मगर यह बात उनको मत कहना जो रास्ते पर हैं। उन्हें तो कठिन है। उन्हें तो पुकारे जाना, उन्हें तो नये-नये और निमंत्रण दिए जाना। नहीं तो वे कहीं भी शिथिल होकर बैठ जाएंगे, किसी मील के पत्थर को छाती से लगा लेंगे। पहुंच कर तो सभी मंजिलें सुगम हो जाती हैं। बड़े से बड़ी खोज सत्य की, एक बार हो गई, तो सुगम हो जाती है। जानते ही सुगम हो जाती है।
मगर यह मंजिल पर पहुंचने वाले की बात है। अगर बुद्ध कबीर को कहें कि सुगम है, तो ठीक। कि कबीर दादू को कहें कि सुगम है, तो ठीक। मगर यह गुफ्तगू है, यह संत आपस में एक-दूसरे को कहें तो ठीक। यह बीमारों से कहने की बात नहीं है कि सुगम है। नहीं तो बीमार तो अपना चादर ओढ़ कर पड़े रहेंगे; कि सुगम ही है तो फिर जाना कहां? और कलियुग है, तो हरि-नाम जपते रहना और शाकाहार करते रहना, सब ठीक हो जाएगा। जिंदगी भर करो मांसाहार, जिंदगी भर कभी हरि- नाम न लेना, मरते वक्त हरि-नाम ले लेना!
और यही साधु-संत तुम्हें कहानियां सुनाते हैं कि एक पापी मर रहा था और उसने अपने बेटे को पुकारा, लेकिन ऊपर का परमात्मा धोखे में पड़ गया। बेटे का नाम भगवान का नाम था--जैसा कि पुराने दिनों में सभी नाम भगवान के नाम होते थे। किसी का नाम ईश्वर, किसी का नाम भगवान, किसी का राम, किसी का कृष्ण, किसी का अब्दुल्ला, किसी का रहीम, किसी का कुछ, लेकिन ये सब नाम परमात्मा के हैं। ये उसी के गुण हैं। तो बुलाया तो अपने बेटे को, ऊपर के राम ने समझा कि मुझे बुला रहा है--और पापी तत्क्षण बैकुंठ चला गया! शायद उसी हिसाब से लोग सोचते हैंः मरते वक्त याद कर लेंगे। जब बड़े-बड़े पापी बैकुंठ चले गए हैं--सिर्फ अपने बेटे को बुला रहे थे और ऊपर का परमात्मा धोखे में आ गया कि मुझे बुला रहे हैं--तो हम तो ऊपर के ही परमात्मा को बुला रहे हैं, हमारा बैकुंठ तो निश्चित है।
काश, इतना आसान होता! जिंदगी जीनी होगी प्रेम में, जिंदगी जीनी होगी प्रेम के आधार पर, जिंदगी का पूरा मंदिर बनाना होगा प्रेम से, प्रेम की ईंटों से चुनना होगा जीवन का मंदिर, तभी इसका अंतिम शिखर--मृत्यु-- परमात्मा के चरण को छू पाएगा, अन्यथा नहीं। मरते वक्त राम का नाम लेने से

कुछ भी न होगा। राम का नाम लेने की जरूरत ही अगर मरते वक्त पड़े, तो समझना कि जिंदगी बेकार गई। क्योंकि जिसने जिंदगी प्रेम से जी है, वह राम का नाम नहीं लेगा मरते वक्त--राममय होगा, नाम क्या लेगा! राम ही राम होगा--बाहर, भीतर, सब ओर। राम के ही सागर में होगा। नाम किसका लेना है! नाम तो परायों का लिया जाता है, औरों का लिया जाता है।
विनोबा ने ऐसा तो नहीं लिखा कि हे जयप्रकाश, मरते वक्त जयप्रकाश-जयप्रकाश रटते रहना। लिखा हैः राम-हरि जपते रहना। तो राम-हरि यानी कुछ और, दूर, पराए। जो जानता है, वह क्या अपना ही नाम जपेगा? वही मैं हूं, वही तुम हो, वही सब में व्याप्त है, वही सर्वव्यापी है।
लेकिन जानो तो सरल, बहुत सुगम; क्योंकि स्वभाव, स्वरूप, तुम्हारी निजता। लेकिन जब तक नहीं जाना, बहुत कठिन, अति कठिन।
रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोई निबहत नाहिं।।

दूसरा प्रश्नः क्या प्रभु के लिए अभीप्सा पर्याप्त है?

शोभा! अभीप्सा से क्या प्रयोजन है, इस पर सब निर्भर होगा। अगर अभीप्सा केवल कामना के लिए दिया गया सुंदर नाम है, तो पर्याप्त नहीं। अगर अभीप्सा वासना को ही पहनाया गया सुंदर परिधान है, तो पर्याप्त नहीं। अगर अभीप्सा सच में ही अभीप्सा है... अभीप्सा का अर्थ होता हैः प्रज्वलित अग्नि। तुम्हारे भीतर एक ही आकांक्षा रह गई...
ऐसा समझो--फरीद से किसी ने पूछा कि मैं ईश्वर को पाना चाहता हूं, क्या करूं? फरीद ने कहा, आ मेरे साथ नदी पर, हम स्नान करें। या तो स्नान करने में ही अगर हाथ अवसर लगा, तो जवाब दे दूंगा। और नहीं तो फिर स्नान करके घाट पर बैठ कर दे दूंगा।
जिज्ञासु थोड़ा तो डरा कि यह मामला क्या है? यह बात क्या कह रहा है? यह
कह रहा है, अगर मौका लगा तो स्नान करने में ही जवाब दे दूंगा! मगर फिर भी सोचा कि फकीर तो इस तरह की अल्हड़पन की बातें कहते हैं। चलो देखें, क्या करता है? क्या जवाब देता है नहाने में?
उसे कुछ पता नहीं था। जवाब दिया गया। जैसे ही वह नहाने उतरा--फरीद भी उसके साथ उतरा--जैसे ही उसने डुबकी मारी, फरीद उसके ऊपर चढ़ बैठा। दबा दिया उसको, उसके सिर को। फरीद तगड़ा, मस्त फकीर था। और जिज्ञासु तो तुम जानते हो जैसे होते हैं--दुबले-पतले, दार्शनिक वृत्ति के आदमी, हड्डी-मांस... मांस तो था नहीं, हड्डी-हड्डी! मगर फरीद है कि दबाए जा रहा है।
मगर जब मौत सामने आ जाए तो अस्थिपंजर भी जिंदा हो जाते हैं! जब देखा कि
अब मामला बिल्कुल खतरनाक ही हो गया है, आखिरी स्थिति आ गई, अब और एक क्षण कि मौत आई, तो उस अस्थिपंजर दार्शनिक ने एक झटका दिया और फरीद को फेंक दिया! उठ आया बाहर।
फरीद ने पूछा, कहो, कैसा रहा? कुछ अनुभव हुआ?
उसने कहा, क्या खाक अनुभव हुआ! यह कोई उत्तर है? मैं आया था प्रश्न पूछनेः ईश्वर कैसे खोजा जाए? यह उत्तर है? मारे डालते थे! मैं तो साधु-संत समझ कर आया था, तुम तो हत्यारे मालूम होते हो। वह तो मेरी आयु शेष होगी, सो बच गया। अन्यथा तुम्हें देख कर मुझे शक होता है कि मैं बचा कैसे? निकला कैसे?
फरीद कहने लगा, मैं यह पूछता हूं कि जब मैंने तुम्हें दबाया, तो तुम्हारे भीतर कितनी वासनाएं थीं?
उसने कहा, कितनी वासनाएं? सब वासनाएं खो गईं, एक ही वासना बची कि किसी तरह बाहर निकल आऊं।
फिर क्या हुआ?
उसने कहा, फिर तो यह वासना भी खो गई। फिर तो यह पता ही नहीं रहा कि मैं क्या कर रहा हूं, क्या हो रहा है। फिर तो एक अनजानी अभीप्सा थी श्वास लेने की! वह भी शब्दों में नहीं थी, मेरे भीतर शब्द बनाने की फुरसत भी नहीं थी, सुविधा भी नहीं थी। प्राण संकट में हों तो कोई शब्द और विचार इत्यादि में

पड़ता है? मेरा रोआं-रोआं एक ही पुकार से भरा था--वह पुकार भी मैं अब शब्द दे रहा हूं, तब शब्द नहीं थे।
फरीद हंसने लगा, उसने कहा, तो तुम समझ गए। तुम आदमी समझदार हो, बुद्धू नहीं हो। बस जिस दिन तुम ईश्वर को पाने के लिए ऐसी ही अभीप्सा से भर जाओगे, उस दिन ईश्वर मिल जाएगा। अब रास्ता लगो। अब अपने काम से लगो। अब जाओ, उत्तर हो गया। सत्संग पूरा हो गया।
यह है सत्संग।
अभीप्सा का अर्थ क्या है? ऐसे ही जैसे तुम चाहते हो कि एक बड़ा मकान बना लें? बन जाए तो ठीक, न बने तो ठीक। ऐसे ही जैसे तुम चाहते हो कि थोड़ा धन कमा लें? कि यह सुंदर स्त्री जा रही है, यह मिल जाए? ऐसे ही तुम परमात्मा को चाहते हो? तो यह अभीप्सा नहीं है। यह वासना का ही नया रूप है। तुम्हारे मन में लोभ जगा। तुमने देखा कुछ लोगों को, कुछ साधु, कुछ संत, कुछ फकीर, वे ईश्वर की बातें करते हैं। वे कहते हैंः ईश्वर को पाकर बड़ा आनंद मिलता है। तुम सोचते हो, चलो यह भी करके देख लें। और सब तो करके देख लिया, यह भी क्यों छोड़ें! अब आए ही हैं जिंदगी में तो चलो ईश्वर को भी थोड़ा चख लें! तुम्हारे मन में लोभ जगता है।
और कभी अगर तुम संयोग से किन्हीं बुद्धों के पास आ गए, तो बड़ा ही प्रगाढ़ लोभ जगता है कि जो इन्हें हुआ है, हमें भी हो जाए। ईर्ष्या भी जग सकती है, जलन भी जग सकती है, स्पर्धा भी जग सकती है, अहंकार को चोट भी लग सकती है--कि अगर इस बुद्ध को हो गया, महावीर को हो गया, कृष्ण को हो गया, तो मुझे क्यों नहीं? मुझे भी होना चाहिए! मैं भी पाकर रहूंगा!
अगर ऐसी महत्वाकांक्षा है, तो अभीप्सा नहीं। तो फिर अभीप्सा काफी नहीं है।
लेकिन अगर वैसी अभीप्सा है जैसी फरीद ने समझाई कि तुम्हारे भीतर सच
ही बिना किसी लोभ के, जीवन की व्यर्थता को जान कर, जीवन की अर्थहीनता को जान कर, जीवन के सारे अनुभवों को देख कर एक भाव साफ हो गया है कि यहां पाने योग्य कुछ और नहीं है, जानने योग्य कुछ और नहीं है; सत्य को जानना है, उस अदृश्य को जानना है जो सबको सम्हाले हुए है; क्योंकि उसी को जान कर हम परम विश्राम को उपलब्ध हो सकेंगे, अन्यथा यह आपाधापी जारी रहेगी; और सब पा लिया, और सब पाकर देख लिया, और देख लिया कि कुछ भी मिलता नहीं, हाथ खाली के खाली हैं। अगर ऐसे अनुभव से तुम्हारे भीतर एक प्रज्वलित अग्नि की लपट उठे, या किसी बुद्ध के सत्संग में संक्रामक हो जाए उसकी प्यास, वह तुम्हें उकसा दे, तुम्हें जला दे, तुम्हें आतुरता से भर दे, तुम्हारे भीतर एक विरह-अग्नि पैदा हो जाए, तो अभीप्सा पर्याप्त है। कुछ और चाहिए नहीं। प्यास पूर्ण हो जाए, तो परमात्मा उसी क्षण घट जाता है।

नयन नहीं मिलते नयनों से, मन का ज्वार मिला करता है।
दीप नहीं जलते दीपक में संचित नेह जला करता है।
ज्योति धूम से नेह जोड़ कर,
बाती जल काजल बन जाती।
दिवा रश्मि का हाथ पकड़ कर,
नभ के अंतर में खो जाती।
चरण नहीं चलते प्रिय पथ पर, प्यासा हृदय चला करता है।

चरणों से नहीं पहुंचता कोई परमात्मा तक, प्यासे हृदय से पहुंचता है।
दीपक नहीं जलते, दीपक में वह जो स्नेह का तेल जो भरा है, वह जो प्रीति जो भरी है, वह जलती है।
नयन नहीं मिलते नयनों से, मन का ज्वार मिला करता है।
तुम्हारे मन में ज्वार उठेगा, तो परमात्मा से मिलन होगा। आंखों से आंखें थोड़े ही मिला सकोगे।
दीप नहीं जलते दीपक में संचित नेह जला करता है।
ज्योति धूम से नेह जोड़ कर,
बाती जल काजल बन जाती।

दिवा रश्मि का हाथ पकड़ कर,
नभ के अंतर में खो जाती।
चरण नहीं चलते प्रिय पथ पर, प्यासा हृदय चला करता है।
प्यास ही ले जाती है। पूर्ण प्यास पूर्ण तक ले जाती है। जगाओ प्यास को! तुम्हारा लोभ न हो प्यास, ईर्ष्या न हो, महत्वाकांक्षा न हो, शुद्ध प्रेम हो।

क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

नीर भरे, ज्यों नभ आंगन में,
उमड़े पावस मेघ सजीले!
और तृषित ज्यों शत-शत युग के,
चातक के नव बाल हठीले।
नहीं जानती इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है। क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

पल में अंकित हो जाती हैं,
ओंठों पर स्वर्णिम मुसकानें।
और दूसरे क्षण नयनों में,
सावन की रिमझिम अनजाने।
क्या बतलाऊं इस जीवन में रुदन अधिक या हास अधिक है।
क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

धूप-छांह सी आश-निराशा
पल में आती, पल में जाती।
विगत कहानी बन रह जाता,
भावी सपना बन छा जाती।
क्या बतलाऊं अधिक निराशा या उर में विश्वास अधिक है।
क्या बतलाऊं इन नयनों में नीर अधिक या प्यास अधिक है।

सब तुम्हारी आंखों पर निर्भर है। प्यास को तो प्यास बनाना ही है, नीर
को भी प्यास बनाना है। आंसू-आंसू प्यास बन जाए। तुम्हारी आंखें उसे तलाशने ही लगें, खोजने ही लगें। और ऐसा ही नहीं कि मंदिरों और मस्जिदों में खोजें--वह तो झूठी खोज है। मंदिर-मस्जिद में वह कभी किसी को मिला नहीं।
हां, जिन्हें कहीं और मिल गया है, उन्हें मंदिर और मस्जिद में भी मिल जाता है, वह दूसरी बात। लेकिन मंदिर-मस्जिद में पहले वह किसी को नहीं मिलता।
पहले तो तुम्हें तलाशना होगा इस विराट अस्तित्व में। और यहां वह खूब है।
घना होकर है। सघन होकर है। यहां बादल-बादल उससे भरा है। यहां तलाशो।
वृक्षों की हरियाली में झांको। पत्तों में खोजो उसके हस्ताक्षर। झरनों में बैठ कर उसकी कलकल आवाज सुनो, वहां तुम्हें ओंकार का नाद सुनाई पड़ेगा।
तारों में देखो, और कभी-कभी तुम्हें उसकी झलक और उसकी रोशनी बरसती मालूम पड़ेगी। और अपने अंतर में झांको, और अपने हृदय में टटोलो--और कभी-कभी उसका हाथ हाथ में आ जाएगा। जैसे-जैसे ये अनुभव बढ़ने लगेंगे, वैसे-वैसे भरोसा, श्रद्धा जन्मेगी।
मैं विश्वास का पक्षपाती नहीं हूं। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि ईश्वर में विश्वास करो। विश्वास का ईश्वर तो झूठा होता है। हिंदू का होता है, मुसलमान का होता है, ईसाई का होता है--मगर झूठा होता है। मैं तो कहता हूं, ईश्वर को जानना है, विश्वास नहीं करना है। जिसे जाना जा सकता है, उस पर विश्वास क्यों करो? विश्वास तो वे ही लोग कर लेते हैं जो जानने की झंझट से बचना चाहते हैं।
मेरे देखे, तुम्हारे तथाकथित आस्तिक जरा भी आस्तिक नहीं हैं। छिपे हुए नास्तिक हैं। नास्तिक कम से कम ईमानदार है, तुम्हारे आस्तिक बेईमान हैं। नास्तिक कम से कम इतना तो कहता है कि मुझे मालूम नहीं है, मैं कैसे

मानूं? मुझे कोई प्रमाण नहीं मिलता, मैं कैसे मानूं? प्रमाण दो तो मैं मान लूं। नास्तिक कम से कम इतनी तो ईमानदारी बरत रहा है। मगर आस्तिक तो महा बेईमान है। वह कहता है, प्रमाण भी नहीं है, पता भी नहीं है, लेकिन मैं मानता हूं क्योंकि मेरे पिताजी मानते हैं, मेरे पिताजी के पिताजी मानते रहे हैं, हमारी पीढ़ियों में सदा से यह चला आया है, हम हमेशा से मानते रहे हैं। उधार, अंधविश्वास तुम्हें कहीं न ले जाएंगे। उनसे अभीप्सा पैदा नहीं होगी। ज्यादा से ज्यादा छोटा-मोटा लोभ पैदा हो सकता है। और लोभ गंदा होता है, कुरूप होता है। गंदे लोभ से कोई ईश्वर तक नहीं पहुंचता। एक आदमी तिजोड़ी भरता रहता है--गंदा लोभ तिजोड़ी भरवाता है। फिर उसको मौत करीब आने लगती है तो डर लगता है कि अब मौत करीब आ रही है, कुछ आगे के लिए भी कर लूं, तो उसी गंदी तिजोड़ी में से कुछ निकाल कर दान भी करता है। मगर वे ही गंदे हाथ और वही गंदी आकांक्षा कि अब ईश्वर पर भी कब्जा पा लूंगा।
मैंने सुना है, एक मारवाड़ी मरा।... मारवाड़ी नाराज न हों। मैं भी क्या करूं? मारवाड़ी मरते हैं। इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है।... वह बड़ा अकड़ कर स्वर्ग पहुंच गया। मारवाड़ी था, अपनी पगड़ी-वगड़ी लगाए, मारी दस्तक उसने जाकर जोर से स्वर्ग पर। पैसे वाला था! अकड़ से गया था! दरवाजा खोला देवदूत ने, पूछा कि आप कौन हैं? और यहां कैसे दस्तक मार रहे हैं? और कैसे अकड़े खड़े हैं? उसने कहा, मैं फलां-फलां सेठ हूं, स्वर्ग आया हूं! देवदूत ने पूछा, आपने किया कुछ जिसकी वजह से आप स्वर्ग आए हैं? तो उसने कहा, हां, किया क्यों नहीं? एक अंधी औरत को मैंने तीन पैसे दिए थे।
साधु-संत समझा रहे हैं तुम्हें कि यहां दो एक पैसा, वहां मिले एक करोड़ गुना। ब्याज की भी कोई सीमा होती है! चक्रवृद्धि ब्याज भी इतना नहीं होता! लाटरी भी इस तरह नहीं खुलती है! तीन पैसे में तो उसने समझो कि अरबों-खरबों का काम कर लिया है।
देवदूत भी जरा हैरान हुआ, इसकी अकड़ भी देखी, कहाः अच्छा, खाता-बही देखते हैं। खाता-बही देखी। दिए थे तीन पैसे उसने। मारवाड़ी को देख कर उसे भरोसा तो नहीं आया कि इसने दिए होंगे, मगर दिए थे। बड़ी चिंता में पड़ गया। अपने सहयोगी से पूछा कि भई, क्या करना? इसने तीन पैसे दिए हैं जरूर, दान तो किया है। मगर इस आदमी को स्वर्ग में लेना! तीन पैसे के पीछे! तीन पैसे में स्वर्ग खरीद ले! तो बड़ी सस्ती हो गई बात! सहयोगी ने कहा, ऐसा करो, इसको चार पैसे दे दो--ब्याज सहित--और कहो कि नरक जा!
उसे चार पैसे दे दिए गए और कहा कि नरक जा।
यह तो उसने सुना ही नहीं था, साधु-संतों ने कभी बताया ही नहीं था कि ब्याज सहित लौटा दिया जाएगा और कहा जाएगा नरक जाओ। साधु-संत असली बातें तो बताते ही नहीं! उतना बताते हैं जितना तुम्हारे हृदय को सांत्वना दे, संतोष दे।
तुम्हारे पुण्य अगर तुम्हारे लोभ से ही प्रभावित हैं, लोभ से ही निकले हैं, उनका कोई अर्थ नहीं है, वे तुम्हें नरक ले जाएंगे। और तुम जिस ईश्वर पर विश्वास करते हो--सिर्फ विश्वास--जिसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है जीवंत, जिसकी तुम्हें कोई झलक नहीं मिली है, तुम उसके लिए समर्पित हो भी कैसे सकते हो? मैं तुमसे विश्वास करने को नहीं कहता।
शोभा! अभीप्सा काफी हो सकती है, अगर अंधविश्वास न हो। अगर जिज्ञासा हो, खोज हो, मुमुक्षा हो, अगर सत्य को जान लेने की--सत्य फिर कैसा ही क्यों न हो--जैसा हो वैसा ही जान लेने की निष्पक्ष भाव-दशा हो, तो अभीप्सा काफी है। वही तुम्हें निखार देगी। वही तुम्हें पहुंचा देगी।
परमात्मा शब्द को तुम एक तरफ रख दो तो चलेगा। सत्य से काम चल जाएगा। आत्मा से काम चल जाएगा। परमात्मा शब्द से ही थोड़ी भ्रांति शुरू हो जाती है। परमात्मा से लगता हैः दूर वहां आकाश में बैठा कोई सिंहासन पर सारे संसार को चला रहा है।
ऐसा कोई भी नहीं कहीं सिंहासन पर बैठा है। और न कोई ऐसा कहीं बैठा संसार को चला रहा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, परमात्मा सिद्धांत है--जगत की लयबद्धता का सिद्धांत। जगत के भीतर जो सुसंबद्धता है, उसका सिद्धांत। जगत के भीतर जो संगीत है, उसका सिद्धांत। तुम अपने भीतर थोड़ा

संगीत खोजो, अपने बाहर थोड़ा संगीत खोजो, तुम अपने भीतर थोड़ी लय खोजो और बाहर थोड़ी लय खोजो, और जहां भी तुम्हें लय की प्रतीति हो, साक्षात्कार हो, जानना कि परमात्मा के बहुत करीब हो। उसके पैरों की आवाज सुनाई पड़ने लगी। मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि यहां आश्रम में इतना संगीत, इतना नृत्य-- ऐसा तो हम किसी आश्रम में नहीं देखते।
वे आश्रम ही न होंगे। जहां संगीत न हो, जहां नृत्य न हो, जहां गीत न उठ रहे हों, जहां प्रेम की सुवास न उठ रही हो, वे आश्रम ही न होंगे--मरघट होंगे। लेकिन इस देश में मरघट ही आश्रम बन गए हैं। और मरे-मराए लोग वहां इकट्ठे हो गए हैं। हरि-नाम जपते रहना!
अमरीका के एक विश्वविद्यालय में एक सर्वे किया गया कि ऐसे कितने लोग हैं जिनके जीवन में कोई ऐसा एकाध भी अनुभव हुआ हो जिससे उन्हें परमात्मा का प्रमाण मिलता है। हजारों लोगों से पूछताछ की गई। सकुचाते, क्योंकि यह बात ऐसी हो गई है आज की दुनिया में। आज की दुनिया में तुम किसी से कहो कि मुझे परमात्मा का अनुभव हुआ है, तो लोग समझेंगे तुम पागल हो गए। होश की बातें करो! किसको बुद्धू बना रहे हो? आज तो तुम्हें अगर अनुभव भी हो जाए कुछ, तो तुम कह न पाओगे, अपनी पत्नी से भी कहते डरोगे। और आज ही ऐसा नहीं है कुछ, पहले भी ऐसा था।

मोहम्मद को जब पहली दफा परमात्मा का अनुभव हुआ, तो वे घर भागे आए-- बुखार चढ़ गया उनको, हाथ-पैर कंपने लगे, पसीना-पसीना! थर्मामीटर तो था नहीं उन दिनों, लेकिन एक सौ दस डिग्री से कम नहीं रहा होगा। अनुभव ऐसा था! एकदम पत्नी से कहा कि जितनी दुलाइयां घर में हैं, सब मेरे ऊपर डाल दे, मैं कंप रहा हूं।
पत्नी ने पूछा, अचानक हुआ क्या? घर से तो ठीक-ठाक गए थे।
उन्होंने कहा, अभी तू पूछ मत! या तो मैं कवि हो गया हूं या पागल हो गया हूं।
दो बातें कहीं, कि या तो मैं कवि हो गया हूं या पागल हो गया हूं। जो दोनों बराबर, एक ही मतलब रखती हैं; पर्यायवाची। जब दो-तीन घंटे के बाद थोड़ी सी राहत मिली, पत्नी ने पूछा, कुछ कहो तो, बात क्या है? तुम आंखें फाड़े-फाड़े देखते हो! तुम कुछ नये-नये मालूम पड़ते हो! तो मोहम्मद ने कहा, मैं तुझसे कहता हूं, किसी और को मत कहना...
वह पहली मुसलमान थी, मोहम्मद की पत्नी। वह मोहम्मद से उम्र में बड़ी थी। मोहम्मद छब्बीस साल के थे, वह चालीस साल की थी। अनुभवी भी थी। मोहम्मद को उसने सम्हाला। वह घड़ी सम्हालने की थी। एक नया जन्म हुआ था। मोहम्मद द्विज हो गए। उसने मां का काम किया।
मोहम्मद ने कहा, तुझसे मैं कहता हूं, क्योंकि मैं सोचता हूं तू हंसेगी नहीं, तू समझ सकेगी। कुछ हुआ। मैंने आवाज सुनी। अपने ही भीतर से आती और फिर भी बाहर से आती! ... कुरान की पहली आयत उतरी थी। परमात्मा के पहले पदचिह्न दिखाई पड़े थे।... मोहम्मद ने कहा, मैं मानता नहीं कि यह सच हो सकता है। मैंने सपना देखा हो, मैं किसी विभ्रम में पड़ गया हूं, या मुझे बुखार चढ़ा है, सन्निपात है, कुछ भी हो सकता है।
लेकिन पत्नी ने कहा, मैं तुम्हें देख रही हूं, तुम्हारे चेहरे पर ऐसी आभा है, ऐसा तेज जैसा मैंने कभी नहीं देखा; तुम्हारी आंखों में ऐसी गहराई है जैसी मैंने कभी नहीं देखी; और तुम्हारे पास ऐसी सुगंध है जैसी मैंने कभी नहीं पाई; तुम एक नई ही लयबद्धता में बंधे हो। तुम घबड़ा जरूर गए हो, तुम्हारा सारा अस्तित्व डगमगा गया है, लेकिन कुछ अनूठा हुआ है! निश्चित ही तुम परमात्मा के करीब से गुजर गए हो। उसका आंचल तुम्हें छू गया है। घबड़ाओ मत।
पत्नी ने सम्हाला। दिनों तक सम्हाला। फिर धीरे-धीरे और आयतें उतरनी शुरू हुईं। वर्षों लगे कुरान को उतरने में--एक दिन में नहीं उतरा कुरान, वर्षों में उतरा; धीरे-धीरे उतरा। जैसे-जैसे मोहम्मद राजी होते गए वैसे- वैसे उतरा।

तो आज ही नहीं कि तुम किसी से कहो जाकर कि मुझे ईश्वर का अनुभव हुआ तो कोई भरोसा कर लेगा! और आज तो ऐसी पत्नी भी पाना मुश्किल है कि जो तुम्हें इतना सहारा दे सके।
तो जब विश्वविद्यालय के लोग पूछने गए लोगों से, तो लोग इधर-उधर देखें। लोग बताना भी चाहें तो बड़े सकुचाए हुए बताएं। पर उन्होंने आश्वस्त किया कि तुम्हारे नाम प्रकट न करेंगे। तो धीरे-धीरे लोगों ने कहा कि हां, कुछ अनुभव हमें हुए हैं। अब पता नहीं कितने सच हैं, कितने झूठे हैं, लेकिन कुछ अनुभव हुए हैं। कोई पहाड़ पर गया था, और अचानक जैसे कोई द्वार खुल जाए क्षण भर को, और यह लोक तिरोहित हो गया और कोई दूसरा लोक प्रकट हुआ। कोई लेटा था अपने कमरे में सन्नाटे में, अंधेरे में, और अचानक कुछ हुआ और अंधेरा अंधेरा न रहा, रोशन हो गया। हजारों लोगों ने अनुभव दिए हैं।
हैरानी की बात है! कम से कम तैंतीस प्रतिशत लोगों को अनुभव होते हैं। सामान्य, तैंतीस प्रतिशत लोगों को ऐसे अनुभव होते हैं; जिन अनुभवों को अगर कोई सदगुरु मिल जाए, तो वे बीज न रह जाएं, वृक्ष हो जाएं। मगर वे तैंतीस प्रतिशत लोग भी किसी को कहते नहीं। किसी को कहना तो दूर, खुद भी उनको झुठला देते हैं। खुद भी अपने को समझा लेते हैं कि रही होगी कोई कल्पना; रहा होगा कोई सपना; आई-गई बात हो गई। ज्यादा उस पर ध्यान नहीं देते। क्योंकि खुद भी डर लगता है कि ऐसी चीजों पर ध्यान देने में खतरा है। ऐसे द्वार, फिर पता नहीं कहां इनका अंत हो! ऐसी झंझटों में पड़ना ठीक नहीं! अपने काम-धाम में उलझ जाते हैं। तैंतीस प्रतिशत लोग बड़ी सरलता से...
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि यह तैंतीस प्रतिशत का आंकड़ा बहुत रूपों में मूल्यवान है। दुनिया में तैंतीस प्रतिशत लोग ही हैं जो संगीत में गहराई पा सकते हैं। और तैंतीस प्रतिशत लोग ही हैं जो ध्यान में गहराई पा सकते हैं। और तैंतीस प्रतिशत लोग ही हैं जो सम्मोहन में बड़ी सरलता से प्रवेश पा सकते हैं। और तैंतीस प्रतिशत लोग ही हैं जिनके भीतर प्रतिभा है। बाकी शेष को और कठिन हो जाता है। मगर तैंतीस प्रतिशत बड़ी संख्या है। एक तिहाई! हर तीन आदमी में एक आदमी प्रज्वलित रोशनी बन सकता है। बाकी दो भी बन सकते हैं, उन्हें थोड़ी कठिनाई होगी। मगर वह एक भी नहीं बन रहा है जो कि सरलता से बन सकता है।
और भी उस सर्वे से जो बातें पता चली हैं उनमें विचारणीय बातें हैं। एक बात जो पता चली वह यह कि सर्वाधिक ऐसे विशिष्ट अनुभव संगीत के माध्यम से हुए थे--पचास प्रतिशत। जिन लोगों को भी परमात्मा की थोड़ी सी आभा, आभास मिला, उनमें से पचास प्रतिशत लोगों को संगीत से मिला।
इसलिए संगीत को मैं ध्यान की बड़ी निकट अवस्था मानता हूं। संगीत खोज
ही ध्यानियों की है। जिन्होंने पहले अंतर्नाद सुना है, जिन्होंने पहले भीतर का ओंकार सुना है, उन्होंने ही फिर धीरे-धीरे वाद्यों पर उस ओंकार को बजाने की बाहर व्यवस्था की है। संगीत का जन्म ऋषियों और द्रष्टाओं से हुआ है। हमारा तो एक वेद, सामवेद, संगीत का स्रोत है। संगीत का ही मूल शास्त्र है।
पचास प्रतिशत लोगों को जीवन में जो अनूठे अनुभव होते हैं, वे संगीत से होते हैं। तब तो निश्चित ही संगीत का खूब उपयोग किया जाना चाहिए। क्योंकि बाहर का संगीत तुम्हारे भीतर के तारों को कंपित कर सकता है। इसलिए इस आश्रम में तुम्हें संगीत दिखाई पड़ेगा।
नंबर दो पर जिन लोगों के अनुभव हैं, वे नृत्य से हुए हैं। या तो स्वयं नृत्य करते हुए या किसी को नृत्य करते देख कर।
एक लयबद्धता है नृत्य की। अगर स्वयं तुम नृत्य कर रहे हो, तब तो बड़े गहरे अनुभव हो सकते हैं। क्योंकि नृत्य की एक ऐसी घड़ी आती है, ऐसा उतार-चढ़ाव होते-होते-होते एक ऐसी घड़ी आती है, जहां तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारी आत्मा, तीनों एक रेखा में आबद्ध हो जाते हैं। और जिस घड़ी तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा मन, तुम्हारा शरीर एक रेखा में आ जाते हैं, एक संतुलन में, उसी क्षण परमात्मा की झलक मिल जाती है।
लेकिन कभी-कभी दूसरे को भी नृत्य करते देख कर यह हो सकता है।

गुरजिएफ ने इस तरह के बहुत से नृत्य विकसित किए थे, जिनको सिर्फ देखने
से लोग ध्यान को उपलब्ध हो जाते। सिर्फ देखते-देखते! क्योंकि जब तुम किसी को नृत्य करते देखते हो, तो उसकी भाव-भंगिमाएं, उसकी मुद्राएं, उसकी लयबद्धता तुम्हारी आंख को आंदोलित करती है। और तुम्हारी आंख आंदोलित होने लगे तो तुम्हारा अस्सी प्रतिशत प्राण आंदोलित हो उठता है। तुम्हारी आंख तुम्हारी अस्सी प्रतिशत जीवन-ऊर्जा है। और आंख के माध्यम से तुम्हारा हृदय धीरे-धीरे आंदोलित होने लगता है। तुमने देखा नहीं, कोई नाचता हो तो तुम्हारे पैर तड़फड़ाने लगते हैं। कि कहीं कोई मृदंग पर थाप देता है तो तुम्हारे हाथ भी कुर्सी के हत्थे को बजाने लगते हैं, कि तुम ताली देने लगते; तुम्हारे भीतर कुछ होना शुरू हो जाता है।
इसलिए इस आश्रम में नृत्य है, संगीत है। और जैसे-जैसे आश्रम यह विकसित होगा, बढ़ेगा--और नृत्य, और संगीत; और संगीत के नये-नये आयोजन! और आज तो विज्ञान ने बहुत सी सुविधाएं बना दी हैं जो पहले नहीं थीं। उन सबका उपयोग करके तो लोगों को बड़ी सरलता से ध्यान में सरकाया जा सकता है। बड़ी सरलता से! अब तो इस तरह के संगीत की व्यवस्था हो गई है--जो कि नये कम्यून में की जाने वाली है--कि तुम ईयर-फोन लगा कर उसे सुनो तो तुम्हें ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा कि संगीत बाहर से आ रहा है, तुम्हें मालूम पड़ेगा संगीत भीतर से आ रहा है, ठीक तुम्हारे हृदय से आ रहा है। और जब तुम्हें संगीत भीतर से आता हुआ मालूम पड़े, तो निश्चित ही तुम्हारे भीतर के संगीत को झकझोर देगा। परमात्मा पर विश्वास करने की जरूरत नहीं है। हां, परमात्मा को अनुभव करने की जरूर जरूरत है। खुले द्वार रखो मन के, पक्षपातहीन रहो--न आस्तिक, न नास्तिक, खोजी बनो। अभीप्सा का अर्थ होता हैः खोज! आकांक्षा खोजने की! पहले से तय मत करो कि ईश्वर है या ईश्वर नहीं है। कुछ भी तय किया तो बाधा बन जाएगी। इतना ही काफी है कि मैं हूं और मुझे पता नहीं कि यह सब क्या है। इसे मैं जानना चाहता हूं। मैं हूं, और मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। और मैं जानना चाहता हूं कि मैं कौन हूं? यह सारे जगत का राज क्या है? रहस्य क्या है? इसके लिए तो आस्तिक भी होने की जरूरत नहीं है, नास्तिक भी होने की जरूरत नहीं है।
इसलिए जो लोग खोजी हैं, उनसे मेरा नाता गहरा बन जाता है। जो आस्तिक या नास्तिक तय ही कर चुके हैं, उनसे मेरा नाता नहीं बन पाता। क्योंकि उन्होंने तो पहले ही पूर्वधारणा निश्चित कर ली। उनकी पूर्वधारणा उनका कारागृह रहेगी, उनका अंधापन रहेगी।
शोभा! प्रभु के लिए अभीप्सा पर्याप्त है, लेकिन अभीप्सा किसी विश्वास
पर आधारित नहीं होनी चाहिए वरन जीवंत अनुभवों पर--संगीत पर, नृत्य पर, सौंदर्य पर, प्रेम पर। इनके अनुभव से तुम्हारे भीतर धीरे-धीरे बूंदें टपकनी शुरू होंगी अमृत की। और वही अमृत की बूंद तुम्हें इतना प्यासा कर देगी कि पूरे सागर को पीने की आकांक्षा पैदा हो जाएगी। वही आकांक्षा अभीप्सा है। वैसी अभीप्सा पर्याप्त है।

आखिरी प्रश्नः क्या भगवान भक्त के बिना हो सकता है?

किशोरी लाल! न तो भक्त भगवान के बिना हो सकता है, न भगवान भक्त के बिना
हो सकता है। भगवान और भक्त एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भक्त है तो भगवान है। भगवान है तो भक्त है। ये दोनों घटनाएं एक साथ घटती हैं, अलग-अलग नहीं। भगवान अलग बैठा है और भक्त अलग, ऐसा नहीं है। भक्ति के क्षण में ही भगवान का आविर्भाव होता है। फिर मैं तुम्हें याद दिला दूंः भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, भगवान एक अनुभूति है। अच्छा हो कि हम भगवान शब्द को छोड़ कर भगवत्ता शब्द का प्रयोग करें; तो ज्यादा सरल हो जाएगा। भगवत्ता का एक पहलू भक्त और दूसरा पहलू भगवान। अंतिम घड़ी में भक्त भी खो जाता है, भगवान भी खो जाता है, भगवत्ता रह जाती है, भगवत्ता का सागर रह जाता है।

सैकड़ों पाषाण में से एक तू पाषाण होता,
मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान होता।

स्नेह के लघु दीप में मैं
वर्तिका बन कर जली हूं,
तव चरण की कोर छूने
अर्घ्य जल बन कर ढुली हूं।
मैं न यदि निज को मिटाती दूर क्या व्यवधान होता, मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान होता।

एक युग से बन रही थी
कल्पना मेरी चितेरी,
रूप क्या तुझको दिया है
तनिक क्षमता देख मेरी।
मैं न तुझमें रंग भरती तू न यों छविमान होता, मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान होता।

यामिनी होती न, दिनकर
को कहां यह मान मिलता,
दीनता होती न, प्रभुता
को कहां सम्मान मिलता।
मैं न होती साधना यदि तू कहां वरदान होता, मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान होता।

आदि युग से विवशता के
गीत क्यों मानव सुनाता,
एक इस चिर सत्य को वह
क्यों समझ अब तक न पाता।
देवता का भी मनुज के हाथ से निर्माण होता,
मैं न होती भावना फिर तू कहां भगवान होता।

मनुष्य की महिमा अपार है। मनुष्य की महिमा की अंतिम चरम अवस्था उसके भीतर भक्त का भगवान में रूपांतरण है; उसके भीतर भगवत्ता के फूल का खिल जाना है। उस परम अनुभूति में भक्त और भगवान अलग-अलग नहीं होते। ऐसा नहीं होता कि तुम हाथ जोड़े खड़े हो और उधर भगवान सामने खड़े हैं, आशीर्वाद दे रहे हैं। हिंदी फिल्मों में तुम जो देखते हो, भगवान आशीर्वाद देते हुए और भक्त हाथ जोड़े हुए खड़े हैं, ऐसा मत सोच लेना। वहां कहां भक्त, वहां कहां भगवान! भक्त और भगवान, तो भगवत्ता को हमने भाषा में दो टुकड़ों में तोड़ लिया। भाषा हमेशा हर चीज को दो टुकड़ों में तोड़ लेती है। दिन और रात तोड़ लेती है। जीवन और मृत्यु तोड़ लेती है। सुख और दुख तोड़ लेती है। सौंदर्य-कुरूपता तोड़ लेती है। भाषा हर चीज को दो हिस्सों में तोड़ लेती है। और जीवन एक है। ऐसे ही हमने भक्त और भगवान को तोड़ लिया है। लेकिन न कोई भक्त है अलग भगवान से और न कोई भगवान अलग है भक्त से, भगवत्ता है।
भगवत्ता को स्मरण रखो। ताकि भक्त भी मिट जाए, भगवान भी मिट जाए। दोनों
जब एक में लीन हो जाएं, उस अद्वैत के अनुभव की आकांक्षा करो, अभीप्सा करो।
और जहां अभीप्सा है, वहां द्वार है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
दूसरा प्रवचन

परमात्मा यानी हृदय

पहला प्रश्नः परमात्मा शब्द ही मेरी समझ में नहीं आता है। परमात्मा यानी क्या?

स्वरूप! जो समझ में नहीं आता है, उसी का नाम परमात्मा है। जो समझ में आ जाता है, उसका नाम संसार। जो समझ में नहीं आता, वह भी है। समझ पर ही अस्तित्व की परिसमाप्ति नहीं है, समझ के पार भी अस्तित्व फैला हुआ है, इस बात की उदघोषणा ही परमात्मा है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। इसलिए जो परमात्मा को व्यक्ति मान कर खोजने चलेंगे, व्यर्थ ही भटकेंगे, कहीं न पहुंचेंगे। परमात्मा तो अज्ञात का नाम है। अज्ञात का ही नहीं वरन अज्ञेय का। जिसे जानो तो जान न पाओगे। जिसे जितना जानने की चेष्टा करोगे, उतना ही पाओगे कि अनजाना हो गया। लेकिन फिर भी, एक और द्वार से परमात्मा में प्रवेश होता है--उस द्वार
का नाम ही प्रेम है। जानने से नहीं जाना जाता, लेकिन प्रीति से जाना जाता है, प्रेम से जाना जाता है। जानना ही अगर जानने का एकमात्र ढंग होता, तो परमात्मा से संबंधित होने का कोई उपाय न था। लेकिन एक और ढंग भी है। बुद्धि ही नहीं है तुम्हारे भीतर सब कुछ, हृदय का भी स्मरण करो। सोच-विचार ही सब कुछ नहीं है तुम्हारे भीतर, भाव की आर्द्रता को भी थोड़ा अनुभव करो। आंखें सिर्फ कंकड़-पत्थर ही नहीं देखती हैं, उनसे प्रीति के आंसू भी झरते हैं। अगर विचार पर ही ठहरे रहे तो परमात्मा नहीं है। इसलिए नहीं कि परमात्मा नहीं है, बल्कि इसलिए कि विचार की क्षमता नहीं है परमात्मा को जानना।
यह तो ऐसा ही हुआ कि कोई आदमी आंख से संगीत सुनना चाहे। और फिर संगीत सुनाई न पड़े। और वह कहे कि आंख से जब तक सुनाई न पड़ेगा संगीत, मैं मानूंगा नहीं। तो क्या करेंगे हम? आंख से संगीत सुना नहीं जा सकता। उसकी जिद्द है कि आंख से सुनेगा। कान से सुना जा सकता है, उसकी जिद्द है कि कान खोलेगा नहीं।
प्रत्येक उपकरण की सीमा है। बुद्धि पदार्थ को जान सकती है, परमात्मा
को नहीं। हृदय परमात्मा को जान सकता है, पदार्थ को नहीं। कान संगीत सुन सकते हैं, रोशनी नहीं देख सकते। आंखें रोशनी देख सकती हैं, संगीत नहीं सुन सकतीं। हाथ छू सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं, गंध का अनुभव नहीं कर सकते। उसके लिए तो नासापुटों की जरूरत होगी। प्रत्येक अनुभूति का अपना द्वार है। और प्रत्येक अनुभूति केवल अपने ही द्वार से उपलब्ध होती है।
तुम पूछते हो, स्वरूपः "परमात्मा शब्द मेरी समझ में नहीं आता।"
किसकी समझ में कब आया? किसी की समझ में कभी आया है? समझ से नाता ही नहीं है। यह तो नासमझों के लिए संभावना है। यह तो दीवानों का रास्ता है। यह तो मस्तों का मार्ग है। इसीलिए तो इतना कठिन है प्रेम का पंथ। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन!
क्या कठिनाई है?
कठिनाई यही है कि इस जीवन का सब कुछ तो हम विचार से सुलझा लेते हैं। और इसलिए एक भ्रांति पैदा होती है कि जब विचार से सब सुलझ जाता है--गणित सुलझ जाता है, भाषा सुलझ जाती है, तर्क सुलझ जाता है, दर्शन सुलझ जाता है; भूगोल, इतिहास, राजनीति, विज्ञान, सब बुद्धि से सुलझ जाता है--तो एक आशा बंधती है कि इसी बुद्धि से हम परमात्मा को भी सुलझा लें। और इसी आशा में उपद्रव हो जाता है। इसी आशा में हमारी निराशा के बीज हैं। इसी आशा में हमारी विफलता है। और स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक तुम्हें बुद्धि की ही शिक्षा दी जाती है। इस जगत में कहीं भी तो कोई स्थान नहीं है जहां हृदय का प्रशिक्षण होता हो। इसलिए मैं कहता हूं, यह जगत मंदिरों, मस्जिदों, गिरजों से भरा है, फिर भी मंदिर इस जगत से समाप्त हो गए हैं। क्योंकि मंदिर है वह जगह, जहां हृदय का प्रशिक्षण मिलता हो।

तुम्हारे मंदिर भी बुद्धि से भर गए हैं। वे भी पाठशालाएं हैं। वहां धर्मशास्त्र समझाया जा रहा है। तुम्हारे मंदिर भी मस्तिष्क के ही आवास हो गए हैं। अब वहां हृदय नहीं नाचता, अब वहां प्रेम की बांसुरी नहीं बजती, अब तो वहां भी तर्क के जाल फैलाए जा रहे हैं। हिंदू है, वह मुसलमान के खंडन में लगा है; मुसलमान है, वह हिंदू के खंडन में लगा है। आर्यसमाजी सनातनी का खंडन कर रहा है, सनातनी आर्यसमाजी का खंडन कर रहा है। मंदिरों में भी खंडन-मंडन हो रहा है। प्रीति का फूल खिले तो खिले कहां? मस्जिदों में भी प्रेम की शराब नहीं ढाली जा रही है; वहां भी तर्क और तर्क के सहारे ही जितनी दूर तक जाया जा सकता है, उतनी दूर तक जाने की कोशिश की जा रही है।
तर्क तो ऐसा है जैसे अंधे के हाथ में लकड़ी। थोड़ा टटोल लेता है। और अंधे के हाथ में लकड़ी थोड़े काम भी आती है। एकदम व्यर्थ है, ऐसा मैंने कहा भी नहीं, ऐसा मैं कहूंगा भी नहीं। उसकी अपनी सार्थकता है। अंधा आदमी है तो लकड़ी से टटोल कर अपने घर आ जाता है, दरवाजा खोज लेता है, अपने जूते तलाश कर लेता है, टकराता नहीं। मगर अंधे की लकड़ी उसकी आंख नहीं बनती; न आंख बन सकती है। और आंख अगर मिल जाए तो लकड़ी को तत्क्षण छोड़ देना होगा। फिर कौन चिंता करता है लकड़ी की?
इसलिए जिन्होंने हृदय को थोड़ा खुलने का अवसर दिया, हृदय की कली को फूल बनने दिया, उन्होंने फिर तर्क की बकवास छोड़ दी। फिर वे परमात्मा में जीने लगे। वे परमात्मा के लिए प्रमाण नहीं देते फिर, वे स्वयं परमात्मा के प्रमाण हो जाते हैं। उनका उठना, उनका बैठना, उनका बोलना, उनका न बोलना--सब परमात्मा की अभिव्यक्ति हो जाती है। उनका सारा जीवन परमात्मा का एक गीत हो जाता है। उनके जीवन से एक सुवास उठती है।
तुम्हारे जीवन से भी वैसी सुवास उठ सकती है। हकदार तुम भी हो। उतने ही मालिक हो तुम, जितना कोई बुद्ध, जितना कोई कृष्ण, जितना कोई क्राइस्ट। उतने ही मालिक हो तुम, जितने महावीर, जितने मोहम्मद, जितनी मीरा। तुम्हारी मालकियत जरा भी कम नहीं है। मगर अगर तुम दीवाल से निकलने की चेष्टा करोगे और न निकल पाओ, तो अपने भाग्य को कसूर मत देना। दरवाजा है तो दीवाल से निकलने की चेष्टा क्यों कर रहे हो? क्यों दीवाल से सिर मार रहे हो? और सिर से जितने भी काम होते हैं, बस वे दीवाल से सिर मारने जैसे हैं।
तुम्हारे भीतर एक और भी अंतरंग जगत है। तुम्हारे भीतर भाव का भी एक लोक है। बहुत कोमल, बहुत नाजुक। और चूंकि कोमल है, नाजुक है, इसलिए बहुत छिपा कर रखा गया है। जितनी बहुमूल्य चीज होती है, उतना ही तो गहरा हम खोद कर जमीन में उसे गड़ा देते हैं कि चोरी न हो जाए। बुद्धि तो ऊपर-ऊपर है, क्योंकि कचरा है। हृदय बहुत गहरे में है, क्योंकि वही तुम्हारी संपदा है। वहीं तुम्हारी समाधि छिपी है। और वहीं तुम्हारे समाधान हैं। बुद्धि कामचलाऊ है; बाजारू है, सस्ती है। हृदय तुम्हारा जीवन का मूल आधार है। समझा तो कोई भी नहीं परमात्मा को कभी; और न कोई कभी समझ सकेगा। जिस दिन परमात्मा समझ में आ जाएगा, उस दिन धर्म का अंत हो जाएगा। उस दिन धर्म की मृत्यु समझ लेना। उस दिन जल जाएंगी होलियां कुरानों की, गीताओं की, वेदों की। उस दिन कुछ नहीं सार रह जाएगा फिर धर्म में, जिस दिन परमात्मा समझ में आ जाएगा।
कार्ल मार्क्स कहता था कि मैं तब मानूंगा परमात्मा को, जब प्रयोगशाला में वह पकड़ा जाएगा। जब परखनली में प्रयोगशाला की परमात्मा को पकड़ कर और जांच-परख लेंगे। जब उसका विश्लेषण कर लेंगे। जब उसके भीतर झांक कर यंत्रों से देख लेंगे। जब सूक्ष्म यंत्रों की पकड़ और नाप-तौल में आ जाएगा। जिस दिन मापा जा सकेगा, तौला जा सकेगा; जिस दिन उसकी थाह ली जा सकेगी, गणित से, तर्क से, विज्ञान से, उस दिन मैं मानूंगा।
लेकिन अगर किसी दिन परमात्मा को तुमने पकड़ लिया प्रयोगशाला में और जांच-परख कर ली, उस दिन के बाद क्या परमात्मा बचेगा? फिर पूजा किसकी करोगे? परखनलियों में पकड़े गए परमात्मा की पूजा नहीं हो सकती। प्रार्थना किसकी करोगे? प्रयोगशाला में सिद्ध हो गए परमात्मा से प्रार्थना निवेदन नहीं की जा सकती। वह तो तुम्हारा गुलाम हो गया, चाकर हो गया। जैसे बिजली बंधी है आज तुम्हारी गुलाम होकर और बत्ती जलाती है--बटन दबाओ, बत्ती जली; बटन दबाओ,

बत्ती बुझी--ऐसा परमात्मा भी तुम्हारे हाथों में होगा। जब आज्ञा दो, तो कहेगाः जी हुजूर! हुकुम! जहां ले जाओ, जाएगा; जो करवाओ, करेगा। फिर तो परमात्मा से तुम बड़े हो जाओगे, जिस दिन तुम समझ लोगे उसे।
नहीं, परमात्मा विराट है, हमारी समझ बड़ी छोटी है। हमारी समझ है चम्मच जैसी और परमात्मा है सागर जैसा। और चम्मच से सागर को नापने बैठे हैं। छोटी सी बुद्धि है, विराट को समझने की चेष्टा चल रही है। देखते हो मूढ़ता? बुद्धि की मूढ़ता है यह। इतने छोटे से चम्मच से इतना बड़ा सागर तुम न नाप सकोगे। कोई नहीं नाप सका।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सागर नहीं है, क्योंकि तुम नाप नहीं पाते। नापने की जरूरत नहीं है, सागर में डुबकी लो! नहाओ! सागर की लहरों पर तिरो! नौका छोड़ो सागर में! सागर की पुकार है अज्ञात की पुकार। और जितना- जितना तुम समझने लगोगे... और जब मैं समझने शब्द का प्रयोग करता हूं तो मेरा अर्थ हैः जितना-जितना तुम्हारा हृदय भावित होने लगेगा; जैसे-जैसे तुम्हारी भावना गहन होने लगेगी, भक्ति सघन होने लगेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे--और भी समझने को शेष है। जितना समझोगे, उतना ही ज्यादा समझने को शेष है। और जो पराकाष्ठा है ज्ञान की, वह जानते हो क्या है? पराकाष्ठा है ज्ञान की इस बात की उदघोषणा कि मैं अज्ञानी हूं और परमात्मा के समक्ष सदा अज्ञानी रहूंगा। क्योंकि परमात्मा अज्ञेय है।
इसलिए समझ तो तुम न पाओगे। लेकिन जी सकते हो।
मैं तुम्हें परमात्मा को जीने का रास्ता बता रहा हूं--समझने का रास्ता नहीं। मैं कोई पंडित नहीं हूं, कोई उपदेशक नहीं हूं, कोई दार्शनिक नहीं हूं। शास्त्रों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। शास्त्रों का मुझे कुछ ज्यादा पता भी नहीं है। जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वह निज की भावना का निवेदन कर रहा हूं। बुद्धि से मैंने भी परमात्मा को पाना चाहा था, नहीं पा सका। बहुत बुद्धि लगाई! जितनी बुद्धि लगाई उतना मैं नास्तिक होता गया। फिर एक दिन यह व्यर्थता दिखाई पड़ी कि बुद्धि जितनी सघनता से प्रयोग करो, उतनी ही नास्तिकता गहन होती जा रही है। तो जरूर मैं कुछ गलत रास्ते पर चल रहा हूं।
अगर सूरज की तरफ चलेंगे तो आंखों में रोशनी बढ़नी चाहिए। अगर सूरज की तरफ पीठ करके चलेंगे तो अंधेरा बढ़ता जाएगा। अगर बगीचे की तरफ चलेंगे तो हवाएं सुगंधित होने लगेंगी, शीतल होने लगेंगी। अगर पीठ करके चलेंगे तो हवाओं में जो सुगंध थी वह भी खो जाएगी, जो शीतलता थी वह भी खो जाएगी। जल्दी ही यह बात मुझे समझ में आनी शुरू हो गई कि जितना ही मैंने विचारा है, जितना ही सोचा है, उतना ही परमात्मा मुश्किल हो गया--मानना ही मुश्किल हो गया; जानना तो दूर, स्वीकार करना मुश्किल हो गया।
और मैंने परिपूर्णता से चेष्टा की थी!
विश्वविद्यालय से मुझे निकाल दिया गया था, क्योंकि कोई अध्यापक मुझे अपनी कक्षा में लेने को तैयार नहीं था। अध्यापक कहने लगे कि इतना ज्यादा तर्क, इतना ज्यादा विवाद, कि पढ़ना-लिखना तो कुछ हो ही नहीं पाता। हर चीज पर विवाद है। और उनकी भी तकलीफ मैं समझता हूं। और हर चीज पर विवाद किया जा सकता है। और विवाद से ही मैं खोजने चला था सत्य को।
जितना-जितना मैंने विचार और तर्क से सोचना चाहा, उतना ही पाया कि कोई उपाय नहीं है। एक नकारात्मकता गहन होती चली गई। लोग मुझसे बात नहीं करते थे, लोग रास्ता काट जाते थे। क्योंकि मुझसे बात करने का अर्थ था कि उनकी सारी मान्यताएं, उनकी सारी धारणाएं गलत हैं। लेकिन एक बात मुझे जल्दी ही समझ में आने लगी कि ईश्वर हो या न हो, लेकिन ईश्वर को इनकार करके मैं अपने जीवन को पंगु किए ले रहा हूं। मेरा जीवन संकुचित होता जा रहा है।
नकार से कोई जी नहीं सकता। इनकार में कैसे जीओगे? "नहीं" में जगह ही नहीं है जीने लायक। जीवन तो "हां" में होता है, स्वीकार में होता है। हर चीज को "नहीं" करते जाओगे तो सिकुड़ते जाओगे। परमात्मा भी नहीं है, आत्मा भी नहीं है, तो फिर बचेगा क्या? जो सबको इनकार करेगा, उसको अंततः अपने को भी इनकार करना पड़ेगा--तर्क की वह पराकाष्ठा है। जो तर्क की तलवार से खेलेगा, एक न एक दिन उसे अपनी गर्दन भी काट ही लेनी होगी। उसके संदेह बढ़ते

चले जाएंगे। और जितने संदेह होंगे, उतना ही जीवन मुश्किल हो जाएगा। एक-एक कदम उठाना मुश्किल हो जाएगा।
जीने के लिए तो श्रद्धा चाहिए। अश्रद्धा से कोई भी नहीं जी सकता। जिसको तुम नास्तिक कहते हो, वह भी जीता है श्रद्धा से। सिर्फ उसकी श्रद्धा उलटी है, शीर्षासन करती हुई है। वह भी असली नास्तिक नहीं है। उसकी श्रद्धा है कि ईश्वर नहीं है। इसी श्रद्धा से वह जीता है। नास्तिकता उसका धर्म है।
क्रेमलिन उसका काबा है। दास कैपिटल उसकी कुरान, बाइबिल, वेद है। कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्टैलिन, माओ, ये उसके ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। नास्तिकता नास्तिकता नहीं है उसकी।
कम्युनिस्ट अपने कम्युनिज्म के लिए मरने को तैयार है उतना ही जितना मुसलमान इस्लाम के लिए मरने को तैयार है। भेद कहां है? दास कैपिटल के लिए वह अपनी कुर्बानी देने को तैयार है। किताब के लिए! न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है; अकेली किताब के लिए, सिद्धांत के लिए! उसने नास्तिकता में से धर्म निकाल लिया। नास्तिकता उसकी आस्तिकता बन गई है। कहता है, "नहीं", लेकिन भीतर "हां" छिपा है।
मेरा "नहीं" पूरा-पूरा "नहीं" था। उसमें कहीं कोई "हां" नहीं था।
और इसलिए मैं कहता हूं, जो अगर हिम्मत रखते हो परम नास्तिक होने की तो घबड़ाना मत। लेकिन परम नास्तिकता का अर्थ है कि नास्तिकता में भी सहारा मत खोजना। सब सहारे ही गिरा देना। इतने बेसहारे हो जाओगे कि उसी बेसहारे में तुम्हें पहली दफा याद आएगी कि यह मैंने क्या किया? यह तो मैंने अपने ही हाथ से अपने जीवन की नौका में छेद कर डाले! अब यह नौका डूबने लगी। उसी असहाय अवस्था में तुम्हारे भीतर क्रांति की घटना घट सकती है--कि मस्तिष्क से हृदय की याद आए! कि मेरे पास एक और भी उपाय हैः प्रीति का, प्रेम का, भाव का। चलूं उससे भी तलाश लूं! मरता क्या न करता! तिनके का सहारा भी खोज लेता है, ख्याल रखना।
तो जब तुम्हारी बुद्धि बिल्कुल असफल हो जाए और तुम्हें गहन अमावस में डाल जाए और सब तरफ गहन अंधकार हो कि एक रात में तारा भी न चमके। सुबह की तो बात ही नहीं। सूरज तो है ही नहीं तो ऊगेगा कैसे! प्रभात तो होने वाली नहीं है। जब ऐसी गहन अंधेरी रात हो, तारा भी न चमकता हो, सूरज का भी भरोसा न हो, रोशनी होती है यह भी श्रद्धा न रह गई हो, उस गहन अंधेरी रात में तिनके का सहारा शुरू होगा। उस गहन अंधेरी रात में तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा कि एक अंग मेरा अनजीया रहा है। विचार तो मैंने खूब किया, भाव मैंने बिल्कुल नहीं किया। तो थोड़ा भाव भी करके देख लूं! मरता क्या न करता! इस दरवाजे से कभी नहीं निकला, इससे भी निकल कर देख लूं। कौन जाने, शायद यही द्वार हो!
और जिस दिन मैं उस दरवाजे से निकला, मैंने देखा कि परमात्मा ही परमात्मा है। पहले मैं पूछता था, परमात्मा कहां है? फिर पूछने लगा कि परमात्मा कहां नहीं है?
स्वरूप, तुम पूछते होः "परमात्मा यानी क्या?"
परमात्मा यानी हृदय। परमात्मा यानी भाव। परमात्मा यानी प्रीति।

तुमको समझ न पाया!

प्यासा अंतर जग के विस्तृत
मरु में भटक-भटक कर हारा,
तुम्हें समझने के प्रयत्न में
बिता दिया निज जीवन सारा!
पर तुम बने रहे जीवन भर मृगतृष्णा की छाया! तुमको समझ न पाया!

तुम हो मन के मीत, कहा
व्याकुल विह्वल मानस ने मेरे,
तुम्हें प्राप्त करने के हित
पूजे मानव-पत्थर बहुतेरे!

तुमने किस पर्दे के पीछे निज संसार बसाया! तुमको समझ न पाया!

या तो तुम मुझमें अपने में
भेदभाव-आभास मिटा दो,
या मेरे मन का अपने प्रति
तुम समूल विश्वास मिटा दो।
मैं जीवन भर जग की भूल-भुलैया में भरमाया!
तुमको समझ न पाया!

समझ उपाय नहीं। दीवानगी! कहो नासमझी! ज्ञान मार्ग नहीं, कहो अज्ञान, निर्दोष भाव! छोटे बच्चे की भांति आश्चर्य-विमुग्ध होकर देखोगे, तो परमात्मा है। तर्क-विक्षुब्ध होकर देखोगे, परमात्मा नहीं है। तर्क का चश्मा चढ़ाया कि परमात्मा एकदम विदा हो जाता है संसार से। तर्क का चश्मा उतारो, प्रीति की जरा आंख खोलो और तुम पाओगेः चारों तरफ वही-वही! रवींद्रनाथ ने गीतांजलि लिखी। उस अदभुत गीत-संग्रह पर उन्हें नोबल प्राइज मिली। बड़ा सम्मान हुआ। पहले जो लोग गाली देते थे, उन्होंने भी सम्मान किया। रवींद्रनाथ के बड़े विरोधी थे बंगाल में। कुछ आदमी अजीब ही है! रवींद्रनाथ ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं था, मगर बड़े विरोधी थे! ईर्ष्या, जलन, हजार उपद्रव खड़े होते। लेकिन नोबल प्राइज मिलते ही बड़े सम्मान होने लगे। जगह-जगह समारोह, आयोजन, फूलमालाएं।
लेकिन एक आदमी रवींद्रनाथ के पड़ोस में रहता था, एक बूढ़ा आदमी। उसने नहीं किया सम्मान। वह तो एक दिन आया--उससे रवींद्रनाथ थोड़े डरते भी थे; उसकी आंखों में कुछ ऐसा था; वह ऐसे देखता था जैसे कि आंख कटार हो, कि भीतर तक भेद जाए; उस आदमी में कुछ बात थी--उसने आकर फिर रवींद्रनाथ की आंखों में देखा और कहा, कुछ नहीं, सब बकवास है! तुमने ईश्वर देखा है? चले ईश्वर की बात करने! मिल गई नोबल प्राइज! ... क्योंकि गीतांजलि तो ईश्वर के गीत हैं, और बड़े प्यारे गीत हैं! ... तुमने देखा है ईश्वर?
रवींद्रनाथ ऐसे व्यक्ति भी न थे कि झूठ बोलें। इसलिए यह भी नहीं कह सकते थे--देखा है। और उस आदमी की आंखों को धोखा देना था भी मुश्किल। वह यह कह कर चला गया कि पहले देखो, फिर लिखना ये गीत! जब देखोगे, तब मैं स्वीकार करूंगा। गीत-वीत लिखने से कुछ भी नहीं होता। यह तो कोई भी लिख लेता है। हां, तुम अच्छे कवि हो, मगर अभी ऋषि नहीं हो। भूल मत जाना! ये सम्मान, समारोह, ये फूलमालाएं, यह जगह-जगह आदर-सत्कार... भूल मत जाना! याद दिलाने आता रहूंगा।
और वह याद दिलाने आता था। वह याद कोई अच्छी नहीं दिलाता था, रवींद्रनाथ को बुरा लगता था। रास्ते पर मिल जाता तो हाथ पकड़ कर बीच रास्ते पर याद दिला देता था--भूल मत जाना! फूलमालाओं में बहुत भूल गए हैं। देख कर ही रहना! देखो, तब मानूंगा।
उससे रवींद्रनाथ बचने लगे। कहीं जाना होता तो दूसरे रास्ते से जाते, ताकि उसका घर न पड़े। वह आता घर तो इनकार करवा देते कि घर पर नहीं हैं।
फिर एक दिन सुबह एक घटना घटी। रात वर्षा हुई थी। और जगह-जगह रास्ते के किनारे पानी के डबरे भर गए थे। और सुबह-सुबह रवींद्रनाथ सागर की तरफ घूमने गए। सागर में सूरज को ऊगते देखा। बड़ा सुंदर प्रभात था। सुबह का सन्नाटा, सागर की नमकीन हवा, रात भर की नींद की ताजगी, पक्षियों का उड़ना, सूरज का ऊगना--एक क्षण को रवींद्रनाथ स्तब्ध बंधे रह गए। उस घड़ी में विचार सरक गए, बुद्धि सरक गई। उस घड़ी में हृदय से कुछ नाता बना। उस घड़ी में सूरज ने जैसे हृदय को छू लिया। जैसे सूरज की किरणों ने हृदय के साथ छेड़खान कर दी। थोड़ा रंग भीतर छिटक गया। आनंदमग्न लौटते थे, कि वही सूरज रास्ते के किनारे भरे डबरों में भी दिखाई पड़ा; और जब-जब जहां-जहां डबरों में सूरज दिखाई पड़ा, फिर-फिर वही भनक, फिर-फिर वही मस्ती आ गई, बार-बार आती रही।
और तभी अचानक वह आदमी रास्ते पर मिल गया। आज उस आदमी को देख कर मन में कोई विरोध नहीं उठा, तिरस्कार नहीं उठा, बचने का भाव नहीं उठा। खुद पर

भरोसा न आया! भाव उठा उसे आलिंगन में लगा लेने का। और जाकर उस आदमी को गले लगा लिया। और उस बूढ़े ने मुस्कुराया, रवींद्रनाथ की आंखों में देखा और कहा कि अब मुझे स्वीकार है। आज कुछ हुआ। आज तुम्हारे भाव आंदोलित हुए हैं। आज तुम्हारी हृदयतंत्री बजी है। स्वागत! धन्यवाद! मैं इस दिन की प्रतीक्षा में था। वह जो तुमने गीतांजलि लिखी है, सब बुद्धि का ही विलास है। मगर आज कुछ हुआ। आज तुम्हारा रंग और, ढंग और। आज तुम्हारी गंध और। आज तुम्हारी तरंग और।
और रवींद्रनाथ ने कहा है कि नोबल प्राइज पाकर मुझे जो आनंद न मिला था,
उस दिन उस आदमी की इस बात से मुझे आनंद मिला। उसकी आंखों ने मेरे ऊपर अमृत की वर्षा कर दी।
बुद्धि से ही जीओगे, तो प्रश्न उठता रहेगा--परमात्मा यानी क्या? और उत्तर कभी न पाओगे। बुद्धि के पास कोई उत्तर नहीं है। स्मरण रहे, बुद्धि केवल प्रश्न उठाने में कुशल है, उत्तर देने में बिल्कुल नपुंसक है। प्रश्नों में बड़ी निष्णात। और अगर किसी प्रश्न का उत्तर दो, तो उस उत्तर में से भी दस प्रश्न निकाल लेने में कुशल है। बुद्धि की सारी कुशलता प्रश्नों को बढ़ाने की है, उलझाने की है, सुलझाने की उसकी क्षमता नहीं है। हृदय की क्षमता बिल्कुल और है। प्रश्न जानता ही नहीं हृदय, उत्तर ही जानता है।
यह बड़े मजे की बात है! बुद्धि में प्रश्न ही प्रश्न और हृदय में उत्तर
ही उत्तर। अगर उत्तर चाहते हो, हृदय में डुबकी मारो। अगर प्रश्नों में ही मजा है, तो बुद्धि में अटके रहो, उलझे रहो। अगर दर्शनशास्त्र में तुम्हारी रुचि हो, तो पूछते रहो बुद्धि में ही; दर्शनशास्त्र बढ़ता रहेगा। पुच्छल तारे की तरह उसकी पूंछ है। बढ़ती ही जाएगी। लेकिन अगर उत्तर चाहिए, समाधान चाहिए, समाधि चाहिए, तो बुद्धि से थोड़े हटो, थोड़ी छलांग लो, भाव के जगत में प्रवेश करो। नाचो, गाओ, गुनगुनाओ। इतना प्यारा जगत है, इसके साथ थोड़ा तारतम्य बनाओ। इतना अपूर्व सौंदर्य बरस रहा है चारों तरफ, इस सौंदर्य में नहाओ! चांद-तारों से गुफ्तगू करो। शास्त्रों में मत तलाशो। वहां क्या मिलेगा? कागज हैं, स्याही के धब्बे हैं कागजों पर। आकाश ज्योतिर्मय तारों से भरा है, तुम अपनी किताबों में खोजने में लगे हो? परमात्मा जगह-जगह सघन होकर मौजूद है--वृक्ष में वृक्ष होकर, चट्टान में चट्टान होकर, मनुष्य में मनुष्य होकर। ये सब उसके ही रूप हैं। मगर बुद्धि नहीं इनको पहचान पाएगी। चलो, थोड़ा प्रीति में खोजें। चलो, थोड़ा दूसरा द्वार टटोलें।
यही भेद है दर्शनशास्त्र और धर्म का।
दर्शनशास्त्र बुद्धि का ऊहापोह है और धर्म हृदय में डुबकी है। मिलेगा, मन का मीत जरूर मिलेगा। तुम्हारे भीतर छिपा है, मिलेगा क्यों नहीं? चूकते कैसे हो, यही चमत्कार है! चूकते कैसे हो? जिस दिन जानोगे, उस दिन भरोसा भी न आएगा कि कैसे इतने दिन चूका--कैसे?
लेकिन चट्टान की तरह तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारे हृदय में एक दीवाल
उठ गई है। मैं तुमसे कहूंगाः शास्त्र की जगह संगीत; ताकि चट्टान टूटे। गद्य की जगह पद्य; ताकि चट्टान टूटे। तर्क की जगह प्रीति; ताकि चट्टान टूटे।
होशियारी छोड़ो! परमात्मा के सामने होशियार होकर जाना चाहते हो? होशियारी परदा है। नादान बनो। नादान बनने का अपना मजा है। उसके पास ऐसे चलो जैसे छोटा सा बच्चा अपनी मां को पुकार उठता है। ऐसे उसे पुकारो। और अगर तुम्हारी पुकार में तुम्हारी प्यास होगी, और तुम्हारी पुकार में तुम्हारे आंसू होंगे, और तुम्हारी पुकार में तुम्हारी अभीप्सा होगी, तो तत्क्षण पुकार पूरी होती है।

दूसरा प्रश्नः वैसे गत पंद्रह वर्षों से आप निरंतर प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, परंतु यहां आपके ऊर्जा-क्षेत्र में रहते हुए कुछ माह में ही कुछ-कुछ आश्चर्यजनक घटित होने लगा है। मेरी गति तो बहुत ही धीमी है, परंतु कृष्णा को जो नित नये चमत्कार घट रहे हैं, उन पर हर कोई विश्वास नहीं

करेगा। हमें इतने दिनों तक दूर क्यों रहना पड़ा, जब कि पहली ही पहचान में आपकी भगवत्ता स्पष्ट हो गई थी?

अद्वैत बोधिसत्व! वसंत का पहला फूल खिलता है तो यह मत समझ लेना कि वसंत आ गया। वसंत का पहला फूल सिर्फ खबर लाता है कि वसंत आ रहा है, आ रहा है, आ रहा है... । अब आया, अब आया, अब आया... । वसंत का पहला फूल तो केवल उदघोषणा है। फिर आते-आते वसंत आएगा। वर्षा के पहले मेघ घिरे, इससे वर्षा नहीं आ गई। लेकिन अषाढ़ के पहले मेघ खबर ले आए कि अब देर नहीं। अब जल्दी ही आते होंगे वर्षा के मेघ। अब जल्दी ही आकाश मेघों से भर जाएगा और खूब वर्षा होगी और पृथ्वी के उत्तप्त प्राण, प्यासे प्राण तृप्त होंगे। कि फिर वृक्ष हरे होंगे। कि फिर पहाड़ों पर नदियों के जल-स्रोत जीवंत हो उठेंगे। कि फिर झरने बहेंगे।
पंद्रह वर्ष कोई लंबा समय नहीं है। पंद्रह वर्ष पहले तुम मिले थे। और तुम कहते हो कि आपकी भगवत्ता का तभी स्पष्टीकरण हो गया था।
पहला फूल खिला था। आज तुम्हें लगता है कि तभी स्पष्टीकरण हो गया था।
तब स्पष्टीकरण नहीं हुआ था। पहला फूल खिला था। भनक पड़ी थी। कान में पहली आवाज आई थी। और बड़ी दूर की आवाज थी। और ऐसी अपरिचित थी, अनजानी थी कि तब पहचानना संभव भी नहीं था। जिसके जीवन में वसंत आया ही न हो, वह पहले फूल को देख कर भी, वसंत आ रहा है, इसका भरोसा न कर सकेगा। हां, जब वसंत आ जाएगा, तब लौट कर देखेगा तो उसे याद आएगा कि अरे, जब पहला फूल आया था, तभी क्यों न मैं झुक गया! तभी तो वसंत आ चुका था! मैंने इतनी देर क्यों लगाई? तब तड़फेगा। ऐसा ही, बोधिसत्व, तुम्हारे साथ भी हुआ। मुझे तुम्हारी आंखों का पता है, कि पहला फूल तुम्हें दिखाई पड़ा था। तुम पंद्रह वर्षों से निरंतर मुझसे जुड़ते ही गए हो। रोज-रोज जुड़ते गए हो। रोज-रोज और-और फूल खिलते गए हैं। लेकिन ये बातें गहरी हैं, और पंद्रह वर्ष कुछ भी नहीं--पंद्रह जन्म भी कुछ नहीं। जल्दी ही तुम आ गए! तुमसे पहले भी जिन्होंने फूल देखा था, वे भी अभी नहीं आ पाए हैं। कई तो जिन्होंने फूल देख लिया था, फूल देख कर भी और दूर चले गए हैं। तुम सौभाग्यशाली हो! तुम दूर नहीं गए, तुम निरंतर पास ही आते गए हो।
और तुमने साहस किया है। बोधिसत्व राजस्थान में न्यायाधीश के बड़े पद
पर हैं। छोड़-छाड़ दिया सब। छोड़ने में जरा भी झिझक नहीं ली है। तुम्हें तो घूंट लग गया शराब का! और तब चमत्कार होंगे। इतनी तैयारी हो, तो चमत्कार क्यों न होंगे?
तुम कहते हो कि कुछ-कुछ आश्चर्यजनक घटित हो रहा है।
बहुत कुछ होगा। अभी तो शुरुआत है, आगे-आगे देखिए... । भरोसा नहीं आएगा। क्योंकि भरोसा जिस बुद्धि को आता है, यह अब उस बुद्धि के बस के बाहर की बात है जो होना शुरू हो रही है। अब यह हृदय अपनी मालकियत की घोषणा कर रहा है। अब ये तरंगें, यह आनंदभाव, ये चमत्कृत कर देने वाली अनुभूतियां हृदय से उठ रही हैं। बुद्धि तो भौंचक्की रह जाएगी। और अगर तुम किसी से कहोगे, तो स्वभावतः लोग समझेंगे पागल हो गए हो। कहना भी मत!
ये तो पागलों की बातें हैं, बस पागलों से कहना। हां, चार दीवाने मिल जाएं तो जरूर इनकी चर्चा करना। जरूर इनकी चर्चा का लाभ है। लेकिन हर किसी से मत कहना। हर किसी से कहोगे, तो भीड़ तो समझदारों की है, वे समझदार सब कहेंगे--तुम पागल हो गए हो। और तुम्हारी बुद्धि अभी भी मर नहीं गई है, जिंदा है। हृदय उठना शुरू हुआ है, मगर बुद्धि मर नहीं गई है। जन्मों- जन्मों की बुद्धि ऐसी आसानी से मर नहीं जाती। और वे जो सैकड़ों लोग हैं, समझदार, वे तुम्हारी बुद्धि को अभी भी राजी कर सकते हैं, तुममें भी शक पैदा कर सकते हैं कि पता नहीं, कहीं मैं ही तो भूल में नहीं हूं!
इसलिए एक बात ख्याल रहे। संन्यासियों को जब कुछ चमत्कृत करने वाली बातें घटने लगें, कुछ ऐसे अनुभव आने लगें जो बुद्धि की क्षमता के बाहर हैं, तो उनकी बात जहां तक बने करना मत। लेकिन मैं जानता हूं कि बड़ी आकांक्षा उत्पन्न होती है कि किसी से कहें, हलके हो लें। जैसे फूल जब गंध से भर जाता

है तो गंध को लुटाता है। ऐसे ही जब तुम्हारे प्राणों में कुछ भाव उठेंगे तो तुम भी चाहोगे। इसीलिए तो संन्यास को जन्म दिया है।
लोग मुझसे पूछते हैं, संन्यास की क्या जरूरत?
उसकी जरूरत बहुत हैं। बड़ी से बड़ी जरूरत तो यह है कि जब एक के भीतर कुछ भाव घटने लगे, तो उसे कुछ लोग तो मिल जाएं कहीं जो उसके भाव को समझेंगे, समादर करेंगे, श्रद्धा करेंगे। जो उसके भाव को बढ़ाएंगे, सींचेंगे, सहारा देंगे। जो कहेंगे, ठीक हो रहा है। ऐसा ही तो हमें भी हुआ है। ऐसा ही तो हमें भी हो रहा है। जो कहेंगे कि तुम धन्यभागी हो! इसी की तो हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। यही फूल तो हम भी चाहते हैं कि खिलें। यही रोशनी तो हम भी तलाश रहे हैं। तुम आगे निकल गए, हमें भी हाथ का सहारा दो। हमें भी खींच लो। ऐसे लोगों की जमात पैदा करने के लिए ही संन्यास है।
और तुम कहते हो, बोधिसत्व, कि मेरी गति तो बहुत धीमी है, परंतु मेरी पत्नी कृष्णा को नित नये चमत्कार घट रहे हैं।
तुम्हारी गति थोड़ी धीमी होगी--न्यायाधीश रहे हो! एकदम से इतनी बड़ी छलांग तुमने ली है। बड़ा साहस किया है। दुस्साहस किया है। लेकिन एकदम न्यायाधीश चला नहीं जाएगा। वह छिपा कोने में बैठा देख रहा होगा कि क्या ठीक है, क्या गलत है। कौन सा अनुभव मानने योग्य है, कौन सा अनुभव केवल सपना है। कौन सा अनुभव सम्मोहन है, कौन सा अनुभव मन की कल्पना है, कौन सा अनुभव वास्तविक है। वह न्यायाधीश बैठा है अपनी कसौटी लिए। जैसे सुनार अपनी कसौटी लिए बैठा रहता है, सोना कसता रहता है। मगर सोना कसना तो ठीक है, फूल मत कसने लगना सोने की कसौटी पर। जरा अपने भीतर बैठे सुनार से सावधान रहना! कृष्णा इससे लाभ में है। तुम्हारी पत्नी न्यायाधीश नहीं है। और न्यायाधीश की पत्नी है, इसलिए न्यायाधीश होने से तो वह बिल्कुल ऊब ही गई होगी। उतना उसका लाभ है।
फिर कृष्णा स्त्री है, तुम पुरुष हो। पुरुष का सहज झुकाव बुद्धि की ओर होता है। स्त्री का सहज झुकाव भाव की ओर होता है। कृष्णा दीवानी है, आती भी है मीरा के जगत से। सच तो यह है कि कृष्णा ही धीरे-धीरे करके तुम्हें यहां खींच लाई है। हालांकि उसने सीधा-सीधा तुमसे कभी कुछ कहा नहीं है। यहां बहुत से पुरुष हैं, जिनको उनकी पत्नियां धीरे-धीरे करके खींच लाई हैं, फुसला लाई हैं। उसने कभी प्रत्यक्ष रूप से तुम्हें यहां लाने की चेष्टा नहीं की है। लेकिन उसमें जो रूपांतरण होते रहे हैं, उसकी जो मस्ती बढ़ती चली गई है, उसके जो अनुभव गहरे होते चले गए हैं, वे तुम्हारे लिए प्रमाण बनते चले गए हैं। तुम्हें कृष्णा के प्रति आभारी भी होना चाहिए। ऐसी पत्नी पाना धन्यभाग है। वह तुम्हें ठीक मंदिर में ले आई है। शायद अपने से तुम आ भी न सकते। शायद अपने से तुम्हें आने में हजार झंझटें आतीं। लेकिन तुम्हारा प्रेम उसके प्रति इतना है कि तुम उसके प्रेम में बंधे चले आए हो। और उसका प्रेम मेरे प्रति इतना है कि उसे आना ही था।
तुम्हारे प्रेम में भी मेरे प्रति कोई कमी नहीं है। तुम्हारा प्रेम
भी गहन है। लेकिन पुरुष के प्रेम में विचार की छाया पड़ती ही रहती है। वह सोच-विचार करता ही रहता है।
इसलिए चैतन्य भी नाचे--और खूब नाचे--मगर फिर भी कुछ बात है जो मीरा की
है और चैतन्य में नहीं है। चैतन्य नाचते हैं तो कुछ अजीब सा लगता है। मृदंग भी बजाते हैं, थोड़ा अजीब सा लगता है। मीरा के लिए नाचना बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होता है। नाचती न तो और क्या करती! महावीर नाचते तो जरा अड़चन तो मालूम होती। वैसी ही चैतन्य के साथ मालूम होती है। महावीर तो वह जो मौन खड़े हो गए, उसमें ही बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होते हैं।
फिर, बोधिसत्व, जैन परिवार से आते हो तुम। पुरुष, न्यायाधीश, जैन परिवार! न मालूम कितनी चट्टानें थीं, जिनको तोड़ कर तुम मेरे पास तक आ गए हो। क्योंकि जैन-विचार में भाव की कोई ज्यादा जगह नहीं है। प्रार्थना का कोई उपाय नहीं है। भक्ति की कोई संभावना नहीं है। जैन-विचार तो शुष्क, तार्किक, गणित है।
मुझसे अनेक बार लोग कहते हैं कि आप जैन-शास्त्रों पर क्यों नहीं बोलते?

अदभुत शास्त्र हैं! मगर बोलने योग्य नहीं। उनमें रसधार नहीं है। सूखे-साखे हैं। अब मरुस्थलों पर बोलो भी तो क्या बोलो? अपूर्व शास्त्र हैं! जैसे कुंदकुंद का समयसार है। कई बार न मालूम कितने जैन मुझसे आकर कहे हैंः कुंदकुंद पर बोलें। उनकी बात मान कर मैं कभी-कभी कुंदकुंद की किताब उठा कर उलटता-पलटता भी हूं। फिर बंद करके रख देता हूं। क्योंकि गणित ही गणित है, तर्क ही तर्क है, विचार ही विचार है। भाव का कहीं कोई दूर का भी नाता नहीं है। हृदय से बहुत संबंध नहीं है।
इसलिए जैन-विचार इस देश में पनप नहीं सका। सिकुड़ गया। और जो जैन हैं भी, वे भी नाममात्र को ही जैन हैं। क्योंकि गणित से धर्म का कोई संबंध जुड़ नहीं सकता। कभी एकाध का जुड़ जाए--कोई अलबर्ट आइंस्टीन जैसा आदमी गणित के द्वारा भी धार्मिक हो सकता है। और महावीर अलबर्ट आइंस्टीन जैसे आदमी ही रहे होंगे। अलबर्ट आइंस्टीन और महावीर के विचार में तारतम्य भी बहुत है। तुम यह जान कर हैरान होओगे, महावीर पहले प्रस्तोता थे सापेक्षवाद के।
और उसी सापेक्षवाद का अंतिम प्रस्तोता था आइंस्टीन। थियरी ऑफ रिलेटिविटी जिसको आइंस्टीन ने कहा है, सापेक्षवाद का सिद्धांत, उसी को महावीर ने स्यातवाद कहा है, सप्तभंगि न्याय कहा है। वह महावीर के समय की भाषा है। बस भाषा का भेद है। मगर दोनों कुछ एक जैसे हैं। अलबर्ट आइंस्टीन गणित के ही माध्यम से धीरे-धीरे जीवन के रहस्य की तरफ उन्मुख हो रहा था।
लेकिन यह कभी एकाध को हो सकता है कि जिसके लिए गणित ही उसका काव्य हो! गणित से ऐसा प्रेम हो जैसा काव्य से होता है। और गणित में ही जिसे संगीत सुनाई पड़ता हो। ऐसा कभी-कभी हो सकता है। ऐसे ही कुछ जैनाचार्य हुए हैं। कुंदकुंद ऐसे ही अदभुत व्यक्ति रहे होंगे। उमास्वाति ऐसे ही अदभुत व्यक्ति रहे होंगे। मगर उन पर बोलने जैसा कुछ भी नहीं है।
उपनिषदों पर बोलना हो तो बोले चले जाओ। घने जंगल हैं। और न मालूम कितने फूल खिलते हैं। एक-एक फूल का वर्णन करो, अंत नहीं आए। संतों पर बोलना हो, बोलते चले जाओ। एक-एक शब्द में इतने दीये जलते हैं। और एक-एक शब्द में ऐसी रस की बूंदें टपकती हैं। और एक-एक शब्द में ऐसे मोतियों के भंडार पड़े हैं। मगर शुष्क गणित हो तो क्या करो!
बोधिसत्व का यहां आ जाना जरूर मेरे प्रति गहन प्रेम का परिणाम है। नहीं तो आना संभव नहीं था। चमत्कार है आ जाना! सब छोड़-छाड़ कर आ जाना! बड़ा पद, बड़ी नौकरी, प्रतिष्ठा, सब छोड़-छाड़ कर चले आना। लेकिन कृष्णा को जरूर कुछ ज्यादा हो रहा है। सीखो उससे। भाव सीखो। भाव में डूबो। विचार को भी त्याग दो। जैसे न्यायाधीश होने को त्याग दिया, अब विचार को भी त्याग दो। थोड़े और भी ज्यादा स्त्रैण हो जाओ। क्योंकि जितना ही तुम भावपूर्ण होने लगो, जितनी ही तुम्हारे भीतर स्त्रैण कोमलता आने लगे, ग्राहकता आने लगे, उतने ही चमत्कार तुम्हें भी घटित होने शुरू हो जाएंगे। अभी कृष्णा को जो हो रहा है, कल तुम्हें भी होगा। और होना निश्चित है; क्योंकि तुम्हें कृष्णा पर कोई संदेह नहीं है। यद्यपि चकित तुम होते हो।
और किसी से कहोगे तो कोई उन पर विश्वास भी नहीं करेगा। ये बातें अनुभव
से ही जानी जाती हैं। किसी दूसरे पर कोई कभी विश्वास नहीं करता। अंधा आदमी कैसे विश्वास करे कि आकाश में इंद्रधनुष निकला है सात रंगों वाला? अंधा आदमी कैसे विश्वास करे कि आकाश अरबों-खरबों तारों के सौंदर्य से भरा है? अंधा आदमी कैसे विश्वास करे कि जगत में प्रकाश है, रंग है, रूप है, सौंदर्य है? आंख खुले तो ही!
इसलिए कृष्णा और तुम्हारे बीच जो घटे, यहां इतने दीवाने हैं उनसे बात
कर लेना, मगर यहां-वहां किसी से मत कहना। एक बहुत महत्वपूर्ण बात स्मरण रखने जैसी हैः जीवन के जो सूक्ष्म अनुभव हैं, बड़े नाजुक होते हैं। उन्हें बनाने में तो बहुत समय लगता है, लेकिन उन्हें तोड़ने में बहुत आसानी है, कोई भी तोड़ सकता है। कोई भी बुद्धू, जिसे कुछ अनुभव नहीं है, इतना ही कह दे--अरे, यह सब बकवास है! इस कहने में क्या लगता है--कि यह सब अंधविश्वास है। कि तुम सम्मोहित हो गए हो। कि तुम कल्पना के जाल में पड़ गए हो। यह कोई भी कह देगा। और बहुत कहेंगे ही। क्योंकि आखिर उन्हें अपनी आत्मरक्षा भी करनी है न!

तुर्गनेव की बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक गांव में एक महामूर्ख था। वह बड़ा पीड़ित था, क्योंकि कहीं भी कुछ कहे, लोग उस पर हंसें। उसकी मूर्खता इतनी प्रसिद्ध थी कि वह बोले ही नहीं। न बोले तो लोग हंसें कि वह मूर्ख है, बोलेगा क्या? अगर बोले तो कुछ गलती निकाल लें। गांव में एक फकीर आया। उस महामूर्ख ने उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि मुझे बचाओ! मेरी जिंदगी क्या ऐसे ही जाएगी? बोलता हूं तो लोग समझते हैं मूर्ख हूं। जो भी बोलूं वह गलत। सही भी बोलूं तो लोगों को शक होता है कि गलती होनी ही चाहिए, जब महामूर्ख कह रहा है तो गलत होगा ही। वही बात दूसरे कहते हैं तो कोई नहीं हंसता। वही बात मैं कहता हूं तो लोग हंसते हैं। अगर चुप रहूं तो लोग कहते हैं, चुप न रहेगा तो और क्या करेगा? बोला कि फंसा! तो मेरी बड़ी मौत हो गई, मेरी फांसी लगी है। मुझे बचा लो।
उस फकीर ने कहा, तू घबड़ा मत। यह ले तरकीब! सात दिन बाद आकर मुझे बता जाना। तरकीब सीधी-सादी है। कोई कुछ भी कह रहा हो, तू खंडन कर। मंडन किसी बात का करना ही मत। क्योंकि मंडन में खतरा है। वह बड़े बलशालियों की बात है। खंडन में कोई खतरा नहीं है।
उसने पूछा, मतलब?
फकीर ने कहा, मतलब, जैसे कोई कहे कि देखो, कितना सुंदर चांद निकला है!
तू एकदम कहनाः इसमें क्या सौंदर्य है? अरे चांद सदा निकलता रहा है, इसमें कौन सी नई बात है! और मुझे तो कोई सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ता। सिद्ध करो कि सौंदर्य कहां है?
कौन सिद्ध कर पाएगा?
कोई कहे कि देखो, पक्षी पंख मार रहा है आकाश में, कितना प्यारा लग रहा है! फौरन खंडन करनाः इसमें क्या प्यारा है? पक्षी सदियों से पंख मारते रहे--फड़फड़-फड़फड़। इसमें क्या कोई सौंदर्य है? सिद्ध करो! कोई कहे कि देखो, शेक्सपियर की कविताएं कितनी प्यारी! बस पकड़ लेना वहीं कि सिद्ध करो! कौन सा काव्य है इनमें? कौन सा सौंदर्य है इनमें? और कोई सिद्ध न कर पाएगा। कोई कहे, ईश्वर है। कहना, नहीं है। प्रमाण लाओ! और सात दिन बाद आकर मुझे बताना। सात दिन बाद जब वह आदमी आया, उसके साथ दो-तीन सौ आदमी आए। वह फकीर के चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहा, खूब कुंजी दी! गांव भर मानता है कि मुझसे बड़ा प्रतिभाशाली कोई नहीं है। अब ये सब मेरे भक्त हो गए हैं। ये जो आप आदमी देख रहे हैं मेरे पीछे खड़े, ये सब मेरे शिष्य हैं। ये कहते हैं, ऐसी प्रतिभा तो हमारे गांव में कभी पैदा हुई ही नहीं। तुम तो लाखों में एक हो! तुम तो हीरों में हीरे हो! क्योंकि मैंने सबकी जबानें बंद कर दीं। जो बोला, उसी की जबान बंद कर दी। गजब की तरकीब दी आपने!
उस फकीर ने कहा, बस तू खंडन पर ही रहना, मंडन पर मत जाना कभी, तो ही चलेगी यह बात।
क्योंकि खंडन के लिए कोई बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती, न प्रतिभा की आवश्यकता होती है। कोई भी मूढ़ कह सकता हैः सब बकवास है। कोई भी मूढ़ कह सकता हैः न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है। कोई भी मूढ़ कह सकता हैः न कोई सौंदर्य है, न कोई सत्य है। कोई भी मूढ़ कह सकता हैः यह सब सपना है, कल्पना है, भ्रमजाल है। और तुम सिद्ध न कर पाओगे। क्योंकि ये बातें भीतर की हैं; बाहर लाओगे कैसे? तुम्हारे भीतर जो हो रहा है, उसे तश्तरी में रख कर लोगों को दिखा तो न सकोगे।
इसलिए ख्याल रहे, भीतर के अनुभव बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होते हैं। और कोई भी मूढ़ एक जरा सी चोट करके उन्हें तोड़ दे सकता है। इसलिए उनसे ही कहना जो सहारा दें। पुराने समय से यह रिवाज रहा, अपने सदगुरु को जाकर कहना कि वह आशीर्वाद दे; कि वह तुम्हारे ऊपर अमृत की वर्षा कर दे; कि तुम्हारे भीतर जो नई-नई कोंपलें निकल रही हैं, नये-नये अंकुर प्रकट हो रहे हैं, वे मजबूत हो जाएं।
तुमने पूछा है, बोधिसत्वः "हमें इतने दिनों तक दूर क्यों रहना पड़ा, जब
कि पहली ही पहचान में आपकी भगवत्ता स्पष्ट हो गई थी?"
दूरी भी सहयोगी है। जैसे निकटता सहयोगी है। दूरी पकाती है, प्रेम को उमगाती है। दूरी प्यास को जगाती है। दूरी तड़फाती है। तुम आते रहे, तुम

जाते रहे--इन पंद्रह वर्षों में न मालूम कितनी बार तुम आए, न मालूम कितनी बार तुम गए--हर बार तुम नया रस लेकर जाते रहे, हर बार नई प्यास लेकर जाते रहे। प्यास घनी होती रही, घनी होती रही, घनी होती रही। जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है न! गरम होते-होते, होते-होते... अट्ठानबे डिग्री पर भाप नहीं बनता, निन्यानबे डिग्री पर भाप नहीं बनता, ठीक सौ डिग्री पर भाप बनता है। ये पंद्रह वर्ष लगे कि तुम्हारी प्यास सौ डिग्री पर पहुंच जाए। उससे पहले नहीं हो सकता था। उससे पहले होता तो कच्चा होता।
और कभी-कभी कुछ कच्चे लोग आ जाते हैं। मैं उन्हें मना नहीं करता। क्योंकि कच्चे हों भला, आखिर उनकी प्यास तो है ही! मना नहीं करता, लेकिन मैं जानता हूं वे कच्चे लोग हैं, टिक न पाएंगे। पच्चीस कारण खोज लेंगे और वापस लौट जाएंगे। कोई ऐसा क्षुद्र कारण खोज लेंगे और वापस लौट जाएंगे, जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। कोई भी छोटी-मोटी अड़चन उनको पर्याप्त हो जाएगी और वे लौट जाएंगे। कभी-कभी जिद्द से आ जाते हैं। मैं मना भी करता रहता हूं कि अभी आने का समय नहीं है, थोड़ी देर और रुको, मगर नहीं मानते। मैं जितना रोकता हूं, उनकी जिद्द बढ़ती है। वे चले ही आते हैं। लेकिन बस महीने, पंद्रह दिन में टूट जाता है मामला। फिर लौटना पड़ता है। और वह लौटना महंगा हो जाता है। क्योंकि फिर और लंबा अंतराल हो गया मेरे और उनके बीच। इससे अच्छा था, वे न आते। दूर थे, याद तो करते थे। दूर थे, आना तो चाहते थे।
हर चीज का समय है। हर चीज के पकने का नियत समय है।
इसलिए तुमने कई बार, बोधिसत्व, मुझसे आने को कहा। मैंने कहा कि ठीक है,
और थोड़ी देर रुको, और थोड़ी देर रुको। अभी जल्दी क्या है, यह साल गुजार दो, फिर। नया कम्यून बनेगा तब आ जाना, और गुजारो, और गुजारो। मैं टालता ही रहा हूं। तुम आते गए, तुम पूछते गए, मैं टालता गया। अब टालने की कोई जरूरत नहीं है। अब तुम पक गए हो। अब तुम बेशर्त आने को राजी हो। पकने का अर्थ होता हैः बेशर्त।
कुछ लोग शर्तें लेकर आते हैं। जो शर्त लेकर आता है वह चूक जाएगा। उसकी शर्त ही मेरे और उसके बीच बाधा रहेगी। जो बेशर्त आता है वही केवल मुझसे जुड़ पाता है।
और तुम धन्यभागी हो इसलिए कि तुम, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी बेटी--सब मुझसे जुड़े हैं। एक से भाव से जुड़े हैं। जरा भी कोई बाधा नहीं है।

जीत मेरी, तुम न मानो हार अपनी,
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय! जीत अपनी वारती हूं।

कर रही चित्रित तुम्हीं को आज मैं कंपित करों से।
गीत जिसमें गूंज हो तव, प्यार है उसके स्वरों से।
तुम न अपनाओ अकिंचन गीत मेरा,
किंतु मैं हर गीत में तव रूप सहज संवारती हूं। मैं तुम्हारी हार पर प्रिय! जीत अपनी वारती हूं!

कब चकोरी चांद से मधु प्रीति का वरदान पाती!
पर कभी क्या स्वप्न में भी लक्ष्य को अपने भुलाती! तुम अपरिचित लक्ष्य ही बन कर रहो पर,
मैं तुम्हारी राह के ध्रुव चिह्न सतत निहारती हूं! मैं तुम्हारी हार पर प्रिय! जीत अपनी वारती हूं!

चाहने से हो सकी कब कामना पूरी किसी की,
नापने से कम हुई क्या राह की दूरी किसी की! प्रीति मेरी छू न पाए तव चरण पर,
मैं उसी लघु प्रीति पर शत जन्म अपने वारती हूं! मैं तुम्हारी हार पर प्रिय! जीत अपनी वारती हूं!

कौन बाती को संजोए! कौन पूजा दीप बाले!

कौन चरणों में तुम्हारे नीर लेकर अर्घ्य ढाले!
कौन जाने पहुंच पाती या न तुम तक,
किंतु मैं हर श्वास में गाती तुम्हारी आरती हूं!
मैं तुम्हारी हार पर प्रिय! जीत अपनी वारती हूं!

मैं तुम तीनों की आरती सुन रहा हूं। मैं तुम तीनों का गीत समवेत उठ रहा मेरी ओर, उसे अनुभव कर रहा हूं।
यह मुश्किल से होता है कि पूरा परिवार एक साथ मुझसे जुड़ जाए। पत्नी जुड़ जाती है तो पति बाधा डालता है; पति जुड़ जाता है तो पत्नी बाधा डालती है। बच्चे आना चाहते हैं तो मां-बाप नहीं आने देना चाहते; मां-बाप आना चाहते हैं तो बच्चे उपद्रव खड़ा करते हैं। तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हारा पूरा परिवार एक से रस में डूब गया है। इसलिए सुबह ज्यादा दूर नहीं है। डूबो!
और वे जो चमत्कृत करने वाली घटनाएं घट रही हैं, उन पर सोच-विचार न करना, उनका विश्लेषण न करना। उनका अनुभव करो, मगर विश्लेषण नहीं। क्यों, ऐसा प्रश्न ही मत उठाओ। जो हो, उसे स्वीकार कर लो, आनंदभाव से, प्रभु का प्रसाद मान कर। तो और-और, और-और घटता जाएगा। नये-नये शिखर चढ़ने हैं अभी, और नये-नये प्रकाश अनुभव करने हैं अभी। नई-नई समाधि के द्वार खुलने हैं अभी। "क्यों" में मत अटक जाना। और "क्यों" उठता है। कोई भी बात नई भीतर घटती है, तो "क्यों" उठता है। कि ऐसा क्यों हो रहा है? मगर अगर तुम "क्यों" में उलझ गए, तो जो ऊर्जा तुम्हें आगे ले जाती वह "क्यों" के चक्कर में पड़ जाती है। और "क्यों" का चक्कर बड़ा है। उससे गुत्थी सुलझती नहीं, उलझती है। "क्यों" को तो विदा कर दो। जो है, है। जैसा है, है। ऐसे सर्व-स्वीकार में जीने का नाम आस्तिकता है।
और मैं आस्तिकता सिखाता हूं। हिंदू नहीं बनाता तुम्हें, मुसलमान नहीं बनाता तुम्हें, ईसाई नहीं बनाता तुम्हें, तुम्हें सिर्फ आस्तिक बनाता हूं। "हां" कहने की अपूर्व क्षमता का नाम आस्तिक है। और "हां" जब कहना आता है, तो कौन फिक्र करता है "क्यों" की!
तुम फर्क समझो।
गुलाब का फूल खिला। तुम पूछो कि क्यों, यह लाल क्यों है? यह आज ही क्यों खिला? यह इतना ही बड़ा क्यों है? तुम हजार "क्यों" पूछ सकते हो। मगर इस सब "क्यों" की उलझन में तुम भूल ही जाओगे कि गुलाब का फूल खिला है। और उसके सौंदर्य का आनंदमग्न होकर जो रसपान हो सकता था, वह नहीं हो पा रहा है। इस "क्यों" की उलझन में तुम नाच न पाओगे गुलाब के फूल के पास। और तुम क्यों ही क्यों करते रहोगे और गुलाब का फूल कुम्हला भी जाएगा, उसकी पंखुड़ियां भी झर जाएंगी और तुम क्यों ही क्यों करते रहोगे। ज्यादा से ज्यादा तुम यह करोगे कि गुलाब के फूल को तोड़ कर, किताब में दबा कर, सुखा कर, सम्हाल कर रख लोगे नाम लिख कर कि किस जाति का गुलाब का फुल है, कब खिला था, कितना बड़ा था। मगर वे सूखे गुलाब के फूल तुम्हारी किताबों में किसी काम के नहीं हैं। तुम्हारी किताबें सूखे गुलाब के फूलों से ही तो भरी हैं। जब फूल जिंदा है, तब नाच लो, मगन हो लो। जब फूल जिंदा है, तब गीत गा लो। जब फूल जिंदा है, तब तुम भी फूल हो लो।

गोरी-धन धरैं चौमुखी बाती
नेह भरैं सजना
दिपै दूधिया जोति
प्रकासैं घर देहरी अंगना
नवेली बारि धरैं दिअनां
पहलो दिया धर्यो मैया तैं जागी जोति दिवारी
याके चरन-कमल सब पूजैं
राजा रंक भिखारी
दाता लेय धरम की खातिर

लगी सूम के रतना
दूजो दिया गयो मंदिर पै
तीजो देविन खेरा
चौथो जरै नगर पनघट पै
पचओं तुलसिन चौरा
पांच दिया पूजा के बारे
चढ़ो जोति पै जुबना
तनिक देर मैं सब चिनि डारे सूने अटा अटरियां
आंगन तै पुरि गए पौर लौं
जागी द्वार दुअरियां
गांव गुजरियां पहने घूमै बरन-बरन के वसना
लौ पै दीठि दिया आंचर तै
कढ़्यो लाज को घुंघटा
हौले-हौले चलैं कामिनी
आंगनवा तैं कुअटा
पांव तरत खुनकत पायलिया
हाथ उठत कंगना
मैया बांटै दिआ कुचुरुआ
भरि-भरि खील बताशे
भैया मांगे लाल अमिरती
सब दिन रहे उपासे
आवै दौज पेट भरि खइयो
कहै बिरन सौं बहिना
एक जोति सौं जरैं प्रकासैं कोटि दिया लख बाती
जिनके हिया नेह बिनु सूखे
तिनकी सुलगैं छाती
बुद्धि को सुअना मरम न जानै
कथे प्रीति की मैना

एक जोति सौं जरैं प्रकासैं
कोटि दिया लख बाती
ज्योति एक है, लाखों दीयों में जलती है। ध्यान एक है, लाखों अनुभूतियों में प्रकट होता है। समाधि की प्रतीति एक है, लेकिन लाखों चमत्कार बन जाती है।
एक जोति सौं जरैं प्रकासैं
कोटि दिया लख बाती
जिनके हिया नेह बिनु सूखे
तिनकी सुलगैं छाती
और अभागे हैं वे लोग, जिनके हृदय नेह से सूखे हैं। क्योंकि उनके हृदय में सिवाय चिता के और कुछ भी नहीं जल रहा है। वहां जीवन नहीं है। जीवन तो वहीं है जहां प्रेम है।
जिनके हिया नेह बिनु सूखे
तिनकी सुलगैं छाती
बुद्धि को सुअना मरम न जानै
कथे प्रीति की मैना
वह जो बुद्धि का तोता है, उसे प्रेम का कोई राज पता नहीं है। प्रेम का राज पूछना हो तो प्रीति की मैना से पूछना।
इसलिए मैंने कहा, हो जाओ जितने स्त्रैण हो सको, जितने कोमल हो सको। परमात्मा ही एकमात्र पुरुष है। वही एक कृष्ण, बाकी सब गोपी--ऐसा भाव सघन करो। और चमत्कारों पर चमत्कारों की कतारें लग जाएंगी। दीये पर दीये जल

जाएंगे। पूरी दीपावली तुम्हारे भीतर उतर आने को तैयार है। द्वार खोलो! प्रीति के द्वार खोलो!

तीसरा प्रश्नः संत विरहावस्था की चर्चा बहुत करते हैं। यह विरह क्या बला है?

संतोष! बला ही है! बड़ी बला है। तुमने जितनी बलाएं जानी हैं, सब बहुत छोटी हैं। किसी को धन नहीं मिला, तो तड़प रहा है। यह तड़पन कुछ भी नहीं। किसी को पद नहीं मिला, जार-जार रो रहा है। ये आंसू कुछ भी नहीं। इनकी उतनी ही कीमत है जितनी धन की और पद की हो सकती है। धन मिल भी जाता तो क्या मिलता? धन नहीं भी मिला तो क्या खोया? पद पाकर भी कौन से पद मिल गए हैं? पद खोने से भी क्या पद खो जाता है? न मिलने से कुछ होता, न खोने से कुछ होता। इस जगत की और सब बलाएं तो बड़ी छोटी हैं। यहां सफलता ही छोटी है तो असफलता तो छोटी होगी ही। यहां जीत भी हार जैसी है तो हार का तो कहना ही क्या! लेकिन विरह की अवस्था निश्चित ही बड़ी बला है। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन!
विरह का अर्थ हैः बूंद सागर होने की आकांक्षा से भरी। असंभव की आकांक्षा, जो नहीं होता मालूम पड़ता, जो तर्क से लगता है कि हो ही नहीं सकता, सब विचार जिसके विपरीत हैं, सारा जीवन-अनुभव जिसको सहयोग नहीं दे रहा है, ऐसे असीम, असंभव, अरूप को पाने की आकांक्षा विरह है।
भक्त ही रोता है। भक्त ही जानता है कि रोना क्या है। उसके आंसू साधारण आंसू नहीं हैं। उसके आंसुओं की परीक्षा तुम जाकर किसी वैज्ञानिक से मत करवा लेना। क्योंकि वैज्ञानिक उसके आंसुओं में भी वही पाएगा जो तुम्हारे आंसुओं में पाता है। यही तो विज्ञान की सीमा है। एक आदमी का दस रुपये का नोट खो गया है और वह रो रहा है। और एक आदमी परमात्मा के लिए रो रहा है। दोनों के आंसुओं को ले जाओ वैज्ञानिक के पास, वह कोई फर्क न कर पाएगा। वह दोनों की आंखों के आंसुओं का विश्लेषण करके बता देगा कि दोनों में इतना नमक है--बराबर-बराबर। और इतना पानी है, और इतना यह है, इतना यह है। लेकिन वह यह न बता सकेगा कि कौन आदमी दस रुपये के लिए रो रहा है और कौन आदमी परमात्मा के लिए रो रहा है। यह नहीं बता सकेगा। दोनों के आंसुओं में कोई भेद न होगा। यह विज्ञान की सीमा है कि वह क्षुद्र को ही पकड़ पाता है। विराट चूक जाता है।
लेकिन तुम जानते हो। क्योंकि तुम भी बहुत तरह से रोए हो। तुम्हारी मां चल बसी और तुम रोए थे। वह भी एक रोना था। तुम असफल हो गए थे किसी दौड़ में और रोए थे। वह भी एक रोना था। लेकिन दोनों रोनों में बहुत फर्क--बहुत-बहुत फर्क, जमीन-आसमान का फर्क।
भक्त इस जगत में सबसे बड़े रोने को जानता है--सबसे गहरे रोने को जानता है। उसके आंसू आंख से नहीं आते, उसके आंसू आत्मा से आते हैं। उसके आंसू उसके प्राणों का निचोड़ हैं। और चूंकि भक्त के आंसू सबसे बड़े हैं, इसलिए भक्त का आनंद भी सबसे बड़ा है। इन्हीं आंसुओं की सीढ़ियों पर चढ़ कर तो वह उस परम आनंद तक पहुंचता है। ये आंसू कीमत हैं जो वह चुकाता है।
विरह-अवस्था का अर्थ है कि अहसास होने लगा कि परमात्मा है। पास ही है। तड़प पैदा होने लगी। झंकार उठने लगी। तलाश शुरू हो गई--और मिलता नहीं! पास है और मिलता नहीं!
तुमने कभी ख्याल किया? किसी आदमी को रास्ते पर देखा, याद आ गया, चेहरा याद आ गया, सब याद आ गया, पहचाना है, जानते रहे, नाम जबान पर रखा है। तुम कहते होः नाम जबान पर रखा है। मगर आ नहीं रहा। तब तुमने तकलीफ देखी, कैसी बेचैनी होती है! कैसी उमड़-घुमड़ होती है! कैसे भीतर ही भीतर तुम परेशान होते हो! जबान पर रखा है और आ नहीं रहा है। जानते हो कि जानता हूं और फिर भी पकड़ में नहीं आ रहा है।
ऐसी ही दशा हो जाती है भक्त की, इतने पास और इतने दूर! यह रहा, और छूट-छूट जाता है। जैसे कोई पारे पर मुट्ठी बांधे और पारा छितर-छितर जाए। और जितनी मुट्ठी बांधे उतना छितर-छितर जाए। ऐसी भक्त की दशा है--रोए न तो क्या करे!

खूब रोता है। मगर उसका रोना रासायनिक रूपांतरण करता है। जितना रोता है, उतना ही हलका होता है। जितना हलका होता है, उतना परमात्मा के करीब जाने के लिए पंख मिलते हैं। जितना रोता है, उतना निखरता है। जितना निखरता है, उतनी परमात्मा की छवि स्पष्ट बनने लगती है। जितना रोता है, उतनी धूल झड़ जाती है आंखों से।
तुम जाकर आंख के डाक्टर से पूछना कि आंसुओं का असली प्रयोजन क्या है?
तो वह तुम्हें आंसुओं का असली प्रयोजन बताएगा--ताकि आंख पर धूल न जम पाए। आंख पर धूल न जमे, इसीलिए आंसू आते हैं। इसलिए जरा सी कंकड़ी आंख में चली गई कि फौरन आंसू आते हैं। क्यों? ताकि कंकड़ी बह जाए आंसुओं में। और तुम दिन भर पलक झपकते हो, पता है क्यों? सिर्फ इसीलिए कि पलक गीली है भीतर आंसू से, बार-बार झपक कर तुम्हारी आंख को पोंछती रहती है, तुम्हारी आंख को गीला करती रहती है, आर्द्र करती रहती है, ताकि धूल न जम पाए।
यह तो डाक्टर कह देगा तुमसे। यह बाहर की आंख की बात हुई। मगर भीतर की आंख के संबंध में भी यही सच है।
भक्त जैसे ही रोता है, वैसे ही उसकी आत्मा की धूल भी झड़ती है, धूल भी पुंछती है। और जैसे-जैसे उसका रुदन गहरा होता जाता है, उसकी प्रार्थना में प्राण आने लगते हैं। उसकी प्रार्थना सांस लेने लगती है। और जितनी तुम्हारी प्रार्थना श्वासपूर्ण हो जाएगी, उतना ही तुम पाओगेः परमात्मा निकट, और निकट, और निकट। एक ऐसी भी घड़ी आती है, जब भक्त अलग नहीं होता रोने से, रोना ही होता है। विरह की अवस्था नहीं होती, भक्त विरह की अग्नि हो जाता है। बस विरह ही रह जाता है, विरही नहीं बचता। उसी घड़ी मिलन। उसी घड़ी प्राप्ति। उसी घड़ी उपलब्धि।
तुम पूछते होः "संत विरहावस्था की बहुत चर्चा करते हैं। यह विरह क्या बला है?"
तुमने कोई छोटा-मोटा विरह जीवन में जाना या नहीं? किसी से कभी प्रेम किया, संतोष? कि संतोष ही करते रहे?

यह शरद की पूर्णिमा की प्यास मेरे पास,
चांदनी का लिपटता अहसास मेरे पास,
याद की यह गंध मेरे साथ सोएगी,
आज तो बस रात भर यह रात रोएगी,
दूर हो तुम!

लो, उधर ढोलक बजी, उमड़े सुरीले गीत,
बांह में ले बांह नाचे, मस्तियों में मीत, रात भर गाने-नचाने के हुए वादे,
और मेरे गीत सारे रह गए आधे,
दूर हो तुम!

यह जुन्हाई खिड़कियों से झांकती आती,
और बैठा लिख रहा हूं मैं तुम्हें पाती,
क्या तुम्हारे द्वार पूनम ने न दी थपकी?
सच बताना, एक पल भी आंख क्या झपकी?
पास होतीं, पूछ लेता, लग रहा कैसा?
दूर हो तुम!

किसी को प्रेम किया? किसी स्त्री को, किसी पुरुष को, किसी मित्र को, किसी प्रियजन को प्रेम किया? अगर प्रेम किया है, तो थोड़ा सा विरह अनुभव किया होगा--छोटा विरह, संसार का विरह। मगर उसी विरह के आधार से परम विरह को समझा जा सकता है। जिन्होंने परमात्मा को प्रेम किया है, उनके विरह को जानने की तुम्हारे पास और तो कोई सुविधा नहीं है, सिवाय इसके कि तुमने किसी को कभी प्रेम किया हो। तुम्हारा प्रेम बूंद जैसा, उनका प्रेम सागर

जैसा। तुम्हारा प्रेम बहुत क्षुद्र, क्षणभंगुर, उनका शाश्वत, सनातन। पर प्रेम तो प्रेम है।
लो, उधर ढोलक बजी, उमड़े सुरीले गीत,
बांह में ले बांह नाचे, मस्तियों में मीत,
रात भर गाने-नचाने के हुए वादे,
और मेरे गीत सारे रह गए आधे,
दूर हो तुम!
कभी किसी की दूरी अनुभव हुई है? नहीं हुई हो तो प्रेम करो! तो प्रेम से डरो मत! भयभीत न होओ! क्योंकि वही प्रेम तुम्हें और बड़े प्रेम की तरफ इशारे करेगा। प्रेम में जलो! क्योंकि वही जलन तुम्हें परम विरह-अग्नि की ओर ले चलेगी।
रामानुज से किसी ने पूछा कि मैं ईश्वर को पाना चाहता हूं, मैं क्या करूं?
रामानुज ने उस आदमी की तरफ देखा। रामानुज जैसे लोग जब किसी की तरफ देखते हैं तो आर-पार देख लेते हैं। दिख गया होगा वह आदमी कि किस तरह का आदमी है। रामानुज ने पूछा कि मेरे भाई, पहले एक जवाब दे। तूने कभी किसी को प्रेम किया है?
उस आदमी ने कहा, प्रेम-व्रेम की झंझट में मैं पड़ा ही नहीं। मुझे तो ईश्वर चाहिए!
रामानुज ने कहा, मैं फिर पूछता हूं, किसी को तो किया होगा प्रेम? किसी मित्र को, मां को, पिता को, भाई को, बहन को, किसी को तो प्रेम किया होगा? लेकिन वह आदमी भी एक ही; पक्का त्यागी था। उसने कहा, प्रेम? प्रेम बंधन है। प्रेम मोह है, आसक्ति है। मैंने किसी को प्रेम नहीं किया। और बार-बार यही सवाल क्यों पूछते हैं? मैं तो सिर्फ ईश्वर को पाना चाहता हूं। कहते हैं, रामानुज की आंखों से आंसू टपके और उन्होंने कहा, फिर मैं असमर्थ हूं। मैं तेरे किसी काम न आ सकूंगा। मैं तुझे कोई सहायता न पहुंचा सकूंगा। तूने प्रेम ही नहीं जाना, तो परमात्मा से तेरा प्रेम कैसे जुड़वा दूं? तूने घूंट भर भी चखा होता, तो सागर भी समझाया जा सकता था। मगर तू घूंट से भी वंचित है।
और तुम्हारे साधु-संत तुम्हें यही समझाते रहे हैं। प्रेम के दुश्मन हैं वे। हर जगह तुम्हें घबड़ा दिया है--मोह, आसक्ति, यह, वह! तुम्हें ऐसा डरा दिया है कि तुम्हारे प्रेम को जगने की संभावना नहीं छोड़ी है। और इस सब से ऊपर मजाक यह है कि वे तुमसे कहते हैंः परमात्मा को प्रेम करो। अब तुम फंसे मुश्किल में। लगी फांसी! प्रेम करने नहीं देते, क्योंकि सब प्रेम आसक्ति, बंधन, संसार। शुद्ध प्रेम करो परमात्मा का! कीचड़ तो सब छीन ली, कहते हैं, कमल खिलाओ!
मगर बिना कीचड़ के कमल खिलता नहीं। कमल तो कीचड़ में खिलता है। कमल तो कीचड़ का ही शुद्धतम रूप है। कमल तो कीचड़ में छिपा है। अप्रकट पड़ा है। जिसे सांसारिक प्रेम तुम कहते हो, उसमें ही तुम्हारी भक्ति छिपी है, भक्ति का कमल छिपा है। कीचड़ सही संसार, मगर मैं उस कीचड़ को भी सम्मान देता हूं। क्योंकि उसमें से कमल प्रकट होते हैं। इसी संसार में बुद्ध प्रकट होते हैं। इसी संसार में मीरा, इसी संसार में दरिया, इसी संसार में कबीर, नानक। इतने कमल इस संसार में पैदा होते हैं और फिर भी तुम संसार को गाली दिए जाते हो? कुछ तो संकोच करो। कुछ तो बेशर्मी अनुभव करो।
संसार को गाली मत दो! अगर इस संसार ने एक भी बुद्ध पैदा कर दिया है तो
इस संसार ने अपने होने की पर्याप्त प्रामाणिकता दे दी है। अगर इस संसार ने इतने बुद्ध पैदा किए हैं, बुद्धों का सिलसिला पैदा किया है, तो काफी प्रमाण दे दिए हैं कि कीचड़ कीचड़ ही नहीं है, कीचड़ में कमल छिपे हैं। अब यह बात तुम्हारी है कि तुम कीचड़ से कमल खोज पाओगे कि न खोज पाओगे। अपनी अकुशलता को, अपनी बुद्धिहीनता को संसार के लिए गालियां देने में मत लगाओ। संतोष, प्रेम करो! कैसा भी प्रेम हो, शुभ है। क्योंकि कैसा भी प्रेम हो, उसको निखारा जा सकता है। अगर व्यक्तियों से डरते हो, तो चलो, संगीत से प्रेम करो। प्रकृति से प्रेम करो। चांद-तारों से प्रेम करो। कुछ तो करो!

किसी सृजनात्मक आयाम में अपने प्रेम को उंडेल दो। मूर्तियां बनाओ, कि गीत रचो, कि नाचो। मगर किसी दिशा में तुम्हारे प्रेम को प्रवाहित तो होने दो, ताकि थोड़ा प्रेम का अनुभव हो। प्रेम का अनुभव हो, तो उसी के पीछे-पीछे विरह का अनुभव होगा। विरह प्रेम की छाया है।

मलयज रथ के स्वर डोल चले
गुंजार भ्रमर पुट खोल चले
पलकों में क्यों प्लावन मचले
मन में उठती कोई कराह,
रोके न रुके जिसका प्रवाह।
मकरंद मधुर मुख मौन लीन
रह-रह बजती चेतना बीन
स्मृति कादंबिनी अनुराग पीन छाई ले किसकी छिपी छांह;
लय भाग रही खोजती राह।
रे प्रणय पयोनिधि की लहरी! क्यों आज बनी इतनी गहरी;
तू मर्मवती केवल सह री
वेदना बाड़वी कलित दाह;
सिर पीट लगा पाई न थाह।
संसृति रचती निज सृष्टि पिए
फणियों-सी मणि के दीप लिए
मर-मर कर शत-शत बार जिए
प्राणों में जिसकी पली चाह;
निष्ठुर वह इतना हुआ आह।

प्रेम करोगे तो विरह झेलोगे। क्योंकि जिसे चाहोगे, जब चाहोगे तभी न मिल जाएगा। और जितना चाहोगे, उतना निष्ठुर मालूम होगा। क्योंकि जितना मांगोगे, उतना ही पाओगे कि दूरी अभी और शेष है। प्रेम दूरी बर्दाश्त नहीं करता, इंच भर दूरी बर्दाश्त नहीं करता। प्रेम द्वैत बर्दाश्त नहीं करता। और जब तक द्वैत रहता है, तब तक विरह रहता है। प्रेम तो अद्वैत चाहता है। प्रेम तो चाहता है, एक हो जाऊं, बिल्कुल एक हो जाऊं।
इस संसार के प्रेम की अगर कोई भूल है तो बस इतनी ही है कि इस संसार का कोई भी प्रेम अद्वैत का अनुभव नहीं देता। और देता भी है तो क्षणभंगुर को, जरा सी देर को, एक झलक। और झलक आई और गई। और झलक जाने के बाद और भी अंधेरा रह जाता है, और भी गड्ढे में गिर जाते हो, और भी विषाद घना हो जाता है। क्योंकि जान ली झलक एकता की, तो अब दुई और खलती है, और अखरती है।
मैं तो तुमसे कहता हूंः इस जगत के प्रेम को जानो। ताकि दुई खले, अखरे।
द्वैत छाती में चुभ जाए कटार की भांति। तभी तो तुम अद्वैत की तरफ चलोगे।
तभी तो तुम उस परम प्यारे को खोजोगे, जिसके साथ मिलन एक बार हुआ तो हुआ।
हुआ तो हुआ। जिसके साथ मिलन होने के बाद फिर कोई बिछुड़न नहीं होती। जिसमें डूबे तो डूबे, फिर निकलना नहीं होता। जहां से वापस आने का कोई उपाय नहीं।
उस परम अवस्था को ही हम मोक्ष कहते हैं, जहां से वापस लौटने का कोई उपाय नहीं।
लेकिन प्रेम के थोड़े अनुभव करने होंगे। और तुम्हारी सड़ी-सड़ाई धारणाओं को छोड़ो! तुम्हारी सदियों-सदियों तक पीटी गई, पुनरुक्त की गई अंधी धारणाओं को त्यागो! उनके कारण ही तुम प्रेम से वंचित हो और विरह का अनुभव भी नहीं हो रहा है। उनके कारण ही तुम सूखे-सूखे हो गए हो। रसधार बहती ही नहीं। और ऐसा भी मत समझना कि तुम किसी प्रेम में हो, तो अनुभव हो जाएगा। तुम्हारा मन इतना विषाक्त हो गया है प्रेम के विपरीत कि जो लोग प्रेम में भी हैं, वे भी अपराधी की तरह प्रेम में हैं। भीतर अपराध-भाव रहता है, कि मैं भी यह क्या गलती कर रहा हूं!

मेरे पास युवक आ जाते हैं, वे कहते हैं कि क्या करें, मन में बड़े बुरे विचार उठते हैं।
बुरे विचार? मैं पूछता हूं, कौन से बुरे विचार?
वे कहते हैं, एक स्त्री से प्रेम हो गया है। बड़े बुरे विचार उठते हैं।
आप हमें छुड़ाओ।
स्त्री से प्रेम हो गया है, इसको वे बड़े बुरे विचार कह रहे हैं। प्रेम
और बुरा विचार! लेकिन यह समझाया गया है, यह सिखाया जा रहा है। पंडित-पुरोहितों की जमातें इस जहर को फैला रही हैं।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ बुरा नहीं है। इसमें कुछ पाप नहीं है, अपराध नहीं है। हां, यह बात जरूर सच है, इतने पर ही रुक मत जाना। कीचड़ को ही समेट कर बैठ मत जाना। कीचड़ में ही बैठे मत रह जाना। कमल भी जन्माने हैं। कमल की याद रहे, कमल की तलाश रहे। मगर कीचड़ में ही पड़े हैं कमल। करो प्रेम! निर्भय होकर प्रेम करो! प्रेम करो जागरूक होकर। सब अपराध-भाव छोड़ कर प्रेम करो।
तो तुम प्रेम भी जानोगे, विरह भी जानोगे और संसार के प्रेम की क्षणभंगुरता भी जानोगे, और संसार के प्रेम की व्यर्थता भी जानोगे, और संसार के प्रेम का विषाद भी जानोगे। और संसार के प्रेम की आशाएं भी जानोगे, निराशाएं भी जानोगे। और उन सारी आशाओं-निराशाओं का जो परिपक्व निचोड़ मनुष्य के हाथ में लगता है, वही उसे परमात्मा की तरफ आंख उठाने के लिए मजबूर करता है। जब इस जगत के सारे प्रेमी असफल हो जाते हैं, जब यहां का सारा प्रेम असफल हो जाता है, तभी आंखें आकाश की तरफ उठती हैं परम-प्रेमी की तलाश में। फिर तुम्हें पता चलेगा विरह क्या है!
संत यूं ही विरह की बात नहीं करते। उनके हृदय में छुरी लगी है, तीर बिंधा है, वे बड़ी पीड़ा में हैं। यद्यपि वह पीड़ा मधुर है। बड़ी मीठी। क्योंकि परमात्मा के लिए पीड़ित भी होना सौभाग्य है। उसे बला मत कहो। वह धन्यभाग है! बड़भागी हैं वे जिनके जीवन में परमात्मा को पाने की आकांक्षा उठी है, विरह जगा है, विरह की अग्नि भभकी है, क्योंकि वे ही एक दिन उसे पाने के अधिकारी भी होंगे। वे उसे पाने के अधिकारी हो ही गए हैं।

आखिरी प्रश्नः कभी ध्यान में मुझे लगता है कि मंजिल बहुत निकट है, सुबह होने को है। तब मन बहुत आनंदित होता है। कभी भीतर गहन अंधकार अनुभव होता है, तब बहुत पीड़ा होती है। कभी आनंद, कभी पीड़ा; यह आंखमिचौनी प्रभु कब तक चलेगी?

राजपाल! यह तुम पर निर्भर है कि आंखमिचौनी कब तक चलेगी। मुझ पर निर्भर नहीं है, न परमात्मा पर निर्भर है, बस तुम पर निर्भर है। एक छोटी सी कुंजी ख्याल में रखो, आंखमिचौनी आज ही बंद हो सकती है। कुंजी सीधी-सरल है, यद्यपि याद रखना कठिन है।
कुंजी क्या है?
तुम कहते होः कभी लगता है मंजिल बहुत निकट है, सुबह होने को है। तब मन बहुत आनंदित होता है।
उस समय तुम आनंद के साथ तादात्म्य मत करना। ऐसा मत सोचना कि मैं आनंद
हो गया। जागरूक रह कर साक्षी रहना। देखना कि आनंद चारों तरफ घेरे है, मैं पृथक, मैं अलग। मैं देखने वाला, मैं साक्षी, मैं द्रष्टा। आनंद दृश्य है, मैं द्रष्टा। बस यह कुंजी है।
फिर कभी गहन अंधकार का अनुभव होता है, तब बहुत पीड़ा होती है।
तब भी वही कुंजी। कुंजी वही है। जाननाः अंधकार है, गहन पीड़ा है, मैं द्रष्टा हूं, मैं साक्षी हूं, मैं सिर्फ देख रहा हूं। न तो मैं आनंद, न मैं दुख। न तो मैं प्रकाश, न मैं अंधकार। न मैं यह, न मैं वह--नेति-नेति।
तुम इस नेति-नेति की छोटी सी कुंजी को पकड़ लो। तब सुबह होगी। नहीं तो
बस सुबह होती लगेगी हमेशा और रात बनी रहेगी। अब आई, अब आई सुबह, और रात बनी रहेगी। आते-आते चूकती रहेगी। क्योंकि तुम तादात्म्य कर लेते हो चित्त की दशाओं से।

दुख से तो अपने को अलग मानना आसान है, सुख से अलग मानना बहुत कठिन है।
और वही असली बात है। इसलिए मैं कहता हूंः शुरू करो आनंद से। जब तुम्हें लगे आनंदित हो रहे हो, प्रफुल्लित हो रहे हो, तब भी जानते रहना कि ठीक है, मैं द्रष्टा हूं। अभी आनंद ने मुझे घेरा; जैसे कल पीड़ा ने घेरा था, आज आनंद ने घेरा, कल फिर पीड़ा घेरेगी; अभी सुबह थी, अब सांझ हो गई; मगर मैं अलग हूं, मैं तो सिर्फ देखने वाला हूं।
तुम द्रष्टा में ठहरते जाओ, ठहरते जाओ, ठहरते जाओ। इसको दरिया ने कहा हैः जागे में जागना। ऐसे तुम जागे हुए हो, मगर यह कोई असली जागना नहीं है। जागे में जागना! और फिर तुम चकित हो जाओगे। तब न तो आनंद रह जाता है और न दुख। वही दशा असली आनंद की है। तब न तो दिन रह जाता है, न रात। वही दशा असली दिन की है। तब दो नहीं रह जाते। और जब दो नहीं रह जाते, तो आंखमिचौनी समाप्त हो जाती है।
तुम्हारे हाथ में है। मेरे किए कुछ भी न होगा। परमात्मा भी कुछ नहीं
कर सकता। यही तो मनुष्य की गरिमा है, गौरव है, कि उसे पूरी स्वतंत्रता दी है--कि दुख भोगना हो, दुख भोगो; सुख भोगना हो, सुख भोगो; आंखमिचौनी खेलनी हो, आंखमिचौनी खेलो; खेल के बाहर हो जाना हो, खेल के बाहर हो जाओ।
द्रष्टा है खेल के बाहर हो जाने की कला। और वही परम कला है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
तीसरा प्रवचन

चुप-चुप ही चाहा जाता है

पहला प्रश्नः भारतीय संसद में फ्रीडम ऑफ रिलीजन बिल, धर्म-स्वातंष्य विधेयक लाया जा रहा है। ईसाई उसका विरोध कर रहे हैं। मदर टेरेसा ने भी उसका विरोध किया है। आप अपना मंतव्य दें!

कृष्ण प्रेम! भारतीय संसद जो न करे थोड़ा है। बूढ़े बच्चों की जमात है। शरीर से तो बूढ़े हैं, बुद्धि से बहुत बचकाने। जिस विधेयक को धर्म-स्वातंष्य विधेयक नाम दिया जा रहा है, वह वस्तुतः धार्मिक-परतंत्रता लाने का विधेयक है। उसका नाम ही झूठा है; नाम उलटा है।
इस विधेयक के द्वारा इस बात की चेष्टा की जा रही है कि लोग धर्म-परिवर्तन न कर सकें। कोई हिंदू ईसाई न हो सके, कोई ईसाई मुसलमान न हो सके, कोई मुसलमान हिंदू न हो सके। मुसलमान हिंदू होते भी नहीं; ईसाई हिंदू होते भी नहीं। इसलिए विधेयक वस्तुतः ईसाई धर्म के खिलाफ है, क्योंकि हिंदू ईसाई होते हैं।
और किसी व्यक्ति की धर्म को चुनने की स्वतंत्रता को छीनने को स्वतंत्रता विधेयक कहना अत्यंत मूढ़तापूर्ण है। कोई अगर ईसाई होना चाहता है तो हकदार है ईसाई होने का। सच तो यह है, जन्म के साथ धर्म का कोई संबंध नहीं है। नहीं तो आज नहीं कल भारतीय संसद में एकाध विधेयक और ले आना चाहिए--फ्रीडम ऑफ पोलिटिकल आइडियालॉजी बिल; राजनैतिक विचारधारा की स्वतंत्रता का विधेयक। कि जो कम्युनिस्ट घर में पैदा हुआ है उसे कम्युनिस्ट ही रहना पड़ेगा; और जो कांग्रेसी घर में पैदा हुआ है उसे कांग्रेसी ही रहना पड़ेगा।
अगर जन्म के साथ राजनीति तय नहीं होती, तो जन्म के साथ धर्म की विचारधारा कैसे तय हो सकती है? जन्म का क्या संबंध है विचारधारा से? किसी आदमी के खून की जांच से बता सकते हो कि हिंदू है, या मुसलमान है, या ईसाई है? किसी आदमी की हड्डियां बता सकेंगी कि उसकी विचारधारा क्या थी-- नास्तिक था कि आस्तिक था?
धर्म से और जन्म का कोई भी संबंध नहीं है।
लेकिन यह देश हिंदू मतांधों के हाथ में पड़ा जा रहा है। इस देश में जो क्रांति हुई, उसे क्रांति नहीं कहना चाहिए, प्रतिक्रांति हो गई है। यह देश हिंदू मतांध लोगों के हाथ का शिकार हुआ जा रहा है। चेष्टा यह है कि कोई हिंदू किसी दूसरे धर्म में न जा सके। लेकिन कोई नहीं पूछता कि हिंदू किसी दूसरे धर्म में जाना क्यों चाहते हैं? और अगर जाना चाहते हैं, तो उनके जाने के कारण मिटाओ। अगर हिंदू नहीं चाहते कि हिंदू ईसाई हों, तो उनके कारण मिटाओ। एक तरफ हरिजनों को जिंदा जलाते हो, उनकी स्त्रियों पर बलात्कार करते हो, उनके बच्चों को भून डालते हो, गांव के गांव बरबाद कर देते हो, आग लगा देते हो, और दूसरी तरफ वे ईसाई भी नहीं हो सकते। यह तो खूब स्वतंत्रता रही! जिस धर्म में उनका जीवन भी संकट में है, उस धर्म में ही उन्हें जीना होगा। इसको स्वतंत्रता कहते हो?
लेकिन इस विधेयक को लाने वाले लोगों का कहना है कि ईसाई लोगों को भरमा लेते हैं। हम भरमाने के खिलाफ विधेयक बना रहे हैं।
तुम नहीं भरमा पाते, ईसाई भरमा लेते हैं?
इस विधेयक को लाने वालों का कहना है कि ईसाई लोगों को धन, पद, नौकरी, प्रतिष्ठा, शिक्षा, भोजन, अस्पताल, स्कूल--ऐसी चीजें देकर भरमा लेते हैं। तो तुम पांच हजार साल से क्या कर रहे हो? स्कूल नहीं खोल सके? अस्पताल नहीं बना सके? लोगों को रोटी-रोजी-कपड़ा नहीं दे सके? अगर ईसाई लोगों को रोटी-रोजी-कपड़ा देकर भरमा लेते हैं, तो यह तो सिर्फ तुम्हारी लांछना है। यह तो तुम्हारे ऊपर दोषारोपण हुआ। यह तो तुम्हारे चेहरे पर कलंक है, कालिख पुत गई। पांच हजार साल में तुम लोगों को रोटी-रोजी भी नहीं दे पाए! लोग

इतने भूखे हैं, इतने दीन, इतने दुर्बल कि रोटी-रोजी के लिए धर्म बदल लेते हैं! तो निश्चित तुम्हारे धर्म की कीमत रोटी-रोजी से ज्यादा नहीं है।
और तुम्हारे धर्म ने दिया क्या उन्हें? अगर दिया होता तो क्यों बदलते?
अगर चाहते हो कि न बदलें, तो कुछ दो। अस्पताल खोलो, स्कूल खोलो। भेजो अपने संन्यासियों को कि उनकी सेवा करें। तुम्हारे पास संन्यासी कुछ कम नहीं हैं। पचास लाख हिंदू संन्यासी हैं! इनको भेजो, सेवा करें, स्कूल चलाएं, अस्पताल खोलें। मगर हिंदू संन्यासी तो सेवा लेता है--करता नहीं। उसने तो सदियों से सेवा ली है। उसके पैर दबाओ, उसके चरणों पर सिर रखो।
लोग थक गए मूढ़ों के चरणों पर सिर रखते-रखते। और लोग भूखे हैं। और लोग अप्रतिष्ठित हैं, अपमानित हैं। तुम्हारे साथ हैं, यही आश्चर्य है! शूद्रों का कभी का तुमसे संबंध छूट जाना चाहिए था। कैसे शूद्र तुम्हारे साथ रहे आ रहे हैं, यह चमत्कार है! जहर तुमने हजारों साल तक पिलाया है कि उनमें अब स्वतंत्रता का बोध भी नहीं रह गया है। उनमें इतनी भी क्षमता नहीं रह गई है कि कह दें कि नमस्कार! अब बहुत हो गया! तुमने हमें बहुत सता लिया। अब कम से कम इतनी तो हमें आज्ञा दो कि हम इस घेरे के बाहर जाएं।
इस भय से कि शूद्र और आदिवासी ईसाई न होते चले जाएं, यह विधेयक लाया जा रहा है। इस विधेयक के पीछे मंशा कुल केवल इतनी है कि धर्म-परिवर्तन की स्वतंत्रता शेष न रह जाए।
यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है; न लोकतांत्रिक है। और एक ऐसे राष्ट्र के लिए जो अपने को धर्म-निरपेक्ष कहता है, इस तरह का विधेयक तो बिल्कुल अपमानजनक है।
तो पहली तो बात मैं यह कहना चाहता हूंः यह धर्म-परतंत्रता का विधेयक है--स्वतंत्रता का नहीं। मैं ईसाई नहीं हूं, मैं हिंदू भी नहीं हूं। मैं किसी धर्म का अनुयायी नहीं हूं। लेकिन फिर भी मैं यह मानता हूं कि अगर कोई व्यक्ति अपना धर्म बदलना चाहता है तो यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। और अगर वह रोटी-रोजी के लिए भी धर्म बदलना चाहता है, तो भी उसका यह जन्मसिद्ध अधिकार है। वह किस कारण से धर्म बदलना चाहता है, यह बात विचारणीय नहीं है। कारण भी उसको ही तय करना है। और अगर वह रोटी-रोजी के लिए अपना धर्म बदल लेता है, तो उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि जिस धर्म में वह था, वह रोटी-रोजी भी नहीं दे सका--और तो क्या देगा!
थोथी बकवास, थोथे सिद्धांत पेट नहीं भरते। भूखे भजन न होहिं गोपाला!
वह बहुत दिन सुन चुका भूखे भजन करते-करते; न आत्मा तृप्त होती है, न शरीर तृप्त होता है। परलोक की तो बात छोड़ो, यह लोक ही कष्ट में और नरक में बीत रहा है। तो अगर कोई इसे बदल लेना चाहे तो मैं उसे उसका जन्मसिद्ध अधिकार मानता हूं। और कोई भी राष्ट्र इस जन्मसिद्ध अधिकार को छीने, वह राष्ट्र लोकतांत्रिक नहीं रह जाता। यह तो पहली बात।
दूसरी बात, ईसाई उसका विरोध कर रहे हैं। मैं इस बात के बहुत पक्ष में नहीं हूं कि ईसाई उसका विरोध करें। सिर्फ ईसाई ही क्यों विरोध कर रहे हैं? क्या इस देश में और कोई सोच-विचार करने वाले लोग नहीं हैं? हिंदू चुप, जैन चुप, बौद्ध चुप, सिक्ख चुप। सिर्फ ईसाई ही क्यों विरोध कर रहे हैं? क्योंकि चोट सिर्फ ईसाइयों पर पड़ रही है।
और यह मैं जरूर कहना चाहूंगा कि ईसाइयों के लोगों को धर्म-परिवर्तित करने के जो ढंग हैं, वे ढंग धार्मिक नहीं हैं। वे ढंग रिश्वत जैसे हैं। वे ढंग शोभायोग्य नहीं हैं। वे ढंग किसी धर्म को आदृत नहीं करते। वे ढंग चालबाजियों के हैं।
इसलिए मैं भी विरोध कर रहा हूं इस विधेयक का, लेकिन उस कारण से नहीं जिस कारण से ईसाई विरोध कर रहे हैं। ईसाइयों का विरोध और हिंदुओं का पक्ष तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
हिंदू कह रहे हैं कि हम लोगों को चाहते हैं कि उनके धर्म को कोई सस्ते में न खरीद सके, इसलिए विधेयक बना रहे हैं। ईसाई कहते हैं कि हम मानते हैं कि धर्म-परिवर्तन का अधिकार मनुष्य की स्वतंत्रता है, इसलिए हम विधेयक का विरोध कर रहे हैं। दोनों बातें झूठ कह रहे हैं।

ईसाइयों को मतलब नहीं है धर्म की स्वतंत्रता से। क्योंकि अमरीका में ईसाई विरोध करते हैं ईसाइयों का परिवर्तन। जो ईसाई हरे-कृष्ण आंदोलन में सम्मिलित हो जाते हैं, अमरीका में ईसाई उनका विरोध करते हैं कि यह नहीं होना चाहिए; कि हमारे बच्चों को भड़काया जा रहा है; कि हमारे बच्चों को उलटी-सीधी बातें समझाई जा रही हैं; कि हमारे बच्चों की बुद्धि परिपक्व नहीं है; कि हमारे बच्चों को सम्मोहित किया जा रहा है।
अमरीका में बड़े जोर से चर्चों ने गुहार मचा रखी है कि हमारे बच्चे हरे-कृष्ण आंदोलन में सम्मिलित न हो जाएं, क्योंकि वह हिंदू हो जाना है। यह तो दूर, महर्षि महेश योगी की ध्यान की प्रक्रिया भी कोई ईसाई न करे, इसका चर्च गुहार मचा रहे हैं। क्यों? क्योंकि ध्यान की प्रक्रिया तो कोई धर्म का ऐसा अनिवार्य अंग नहीं है। महर्षि महेश योगी की ध्यान की प्रक्रिया तो बड़ी सीधी है, मंत्र-जाप है। और उनका कोई ऐसा विरोध भी नहीं कि तुम ईसा-ईसा मत जपो। तुम्हें जो जपना हो, वह जपा जा सकता है। तुम्हें अगर अवेमारिया-अवेमारिया जपना है, तो अवेमारिया जपो। उससे भी वही फल होगा जो राम-राम जपने से होता है। महर्षि महेश योगी का ध्यान का आंदोलन कोई हिंदू धर्म का प्रचार नहीं है। क्योंकि ध्यान का हिंदू धर्म से क्या लेना-देना! ध्यान तो जैनों का भी है, बौद्धों का भी है। ध्यान तो एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। मैं महर्षि महेश योगी के ध्यान से सहमत नहीं हूं। मैं नहीं मानता कि वह ध्यान कोई बहुत गहरा ध्यान है कि उसे भावातीत-ध्यान कहा जा सके। लेकिन इस संबंध में मैं जरूर उनका समर्थन करता हूं कि जो ईसाई विरोध कर रहे हैं वह विरोध बेईमानी का है।
अब कोशिश की जा रही है कि कोई भावातीत-ध्यान न करे। क्योंकि जो भावातीत-ध्यान करेगा, वह हिंदू हो रहा है--और ईसाई धर्म को खतरा पैदा हो रहा है। अमरीका में विरोध किया जा रहा है कि भावातीत-ध्यान न कोई करे। स्कूलों में पाबंदी लगाई जा रही है, कालेजों में पाबंदी लगाई जा रही है, युनिवर्सिटियों पर दबाव डाला जा रहा है। राज्यों में ऐसे नियम बनाने की कोशिश की जा रही है--बड़े जोर से--कि कोई व्यक्ति ईसाई धर्म छोड़ कर किसी दूसरे धर्म में सम्मिलित न हो जाए।
और इतना ही नहीं, जो बच्चे, जो युवक सोच-विचारपूर्वक... और निश्चित समझना कि युवकों के पास ज्यादा सोच-विचार की क्षमता है, वे ज्यादा सुशिक्षित हैं, उनके पास ज्यादा विस्तीर्ण परिप्रेक्ष्य है। उन्होंने बाइबिल भी पढ़ी है और उन्होंने गीता भी पढ़ी है और उन्होंने उपनिषद भी देखे हैं और ताओ तेह किंग भी देखा है। अब उनके सामने चुनाव है। उन्हें चुनाव करना है। और उन्हें पूरब की बातों में ज्यादा गहराई मालूम पड़ रही है। गहराई है। और अगर वे पूरब की बातें को चुन रहे हैं, तो बड़ी घबड़ाहट फैल रही है। वहां ईसाई विरोध कर रहे हैं कि कोई हिंदू न हो जाए, कि कोई बौद्ध न हो जाए।
मेरे संन्यासियों का विरोध शुरू किया जा रहा है। और मेरे संन्यासी तो
न हिंदू हो रहे हैं, न बौद्ध हो रहे हैं, न जैन हो रहे हैं। मेरे संन्यासी तो सिर्फ सारे कारागृहों से मुक्त हो रहे हैं। वे तो सिर्फ धार्मिक हो रहे हैं। उनका किसी धर्म से कोई नाता नहीं रह जाने वाला। लेकिन उनका भी विरोध किया जा रहा है। मेरे आश्रमों पर भी पुलिस छापे मार रही है। जर्मनी में प्रोटेस्टेंट चर्च ने खूब प्रचार कर रखा है कि कोई भी मेरा संन्यासी न हो जाए। यहां भी जासूस भेजे हैं प्रोटेस्टेंट चर्च ने कि लोगों को भड़काएं, यहां के खिलाफ खबरें फैलाएं, यहां के संबंध में झूठे प्रचार करें।
तो ईसाइयों के मैं समर्थन में नहीं हूं। ईसाई जो इस विधेयक का विरोध
कर रहे हैं, उसमें उनकी नीयत साफ नहीं है। वे चाहते हैं कि उनको सुविधा बनी रहे कि किसी को दवा दे दी, किसी को रोटी दे दी, और रोटी और दवा के बहाने उसका धर्म बदल लिया। यह कोई धर्म-परिवर्तन हुआ? किसी को नौकरी दिला दी और धर्म बदल लिया। यह कोई धर्म-परिवर्तन हुआ? ऐसे कहीं कोई ईसा के करीब आएगा? न वह राम के करीब था, न वह ईसा के करीब रहेगा। और कल अगर राम के मानने वाले ने उसे ज्यादा बड़ी तनख्वाह दिलवा दी, वह राम के साथ फिर हो जाएगा। उसको राम और ईसा से कोई लेना-देना नहीं है, बाजार की बात हो गई।

तो मैं ईसाइयों के विरोध के कारण में सहमत नहीं हूं।
और मदर टेरेसा ने भी विरोध किया है, उससे जाहिर हो जाता है। मदर टेरेसा का भी मस्तिष्क साफ तुम्हारे सामने प्रकट हो जाता है--कि सब सेवा गरीबों की, दीनों की, कोढ़ियों की, अनाथों की, बस ऊपर-ऊपर है। भीतर असली नजर हैः किस तरह लोगों को ईसाई बनाया जाए। सेवा तो प्रलोभन है, नजर तो इस बात पर लगी है कि कैसे ईसाइयों की संख्या बढ़ाई जाए।
मैं विधेयक का विरोधी हूं, लेकिन ईसाई जिन कारणों से विरोध कर रहे हैं, वे मेरे कारण नहीं हैं। मेरा कारण तो सिर्फ सीधा-साफ है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म स्वयं चुनने का अधिकार होना चाहिए। जन्म के साथ किसी पर धर्म का कोई आरोपण नहीं होना चाहिए।
फिर कोई ईसा को चुने। क्योंकि ईसा के बड़े प्यारे वचन हैं। और ईसा के मार्ग से बहुत लोग पहुंचे हैं। कोई चुने तो जरूर उसे हक होना चाहिए। कोई कृष्ण को चुने, कि कोई बुद्ध को चुने। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भीतरी रुझान और अपने अंतर-झुकाव के अनुसार अपना धर्म चुनना चाहिए। धर्म थोपा नहीं जाना चाहिए। इसलिए मैं विधेयक का विरोधी हूं।
मगर मैं पूछना चाहता हूं मदर टेरेसा से कि अमरीका में जो ईसाई विरोध
कर रहे हैं कि कोई हरे-कृष्ण आंदोलन में सम्मिलित न हो, भावातीत-ध्यान न करे, मेरा संन्यासी न हो जाए--उस संबंध में मदर टेरेसा ने एक शब्द भी नहीं कहा! उसका विरोध नहीं किया! उसका भी विरोध करना था।
और यहां तो विधेयक ही लाया जा रहा है, वहां और भी जालसाजियां की जा रही हैं। कोई व्यक्ति अगर हरे-कृष्ण आंदोलन में सम्मिलित हो जाता है, तो मां- बाप उसे चुरवा लेते हैं। उसकी चोरी की जाती है! उस व्यक्ति को जासूसों के द्वारा घेर कर कठघरों में बंद कर दिया जाता है। उसको कठघरों में बंद करके जबरदस्ती ट्रैंक्वेलाइजर्स के इंजेक्शन दिए जाते हैं, इलेक्ट्रिक शॉक दिए जाते हैं। उसको फिर से सम्मोहित किया जाता है कि ईसाई धर्म ही सही है। और उसको सब तरह से सताया जाता है। मां-बाप अपने बच्चों के साथ यह कर रहे हैं! और इसके लिए एजेंसियां बनी हुई हैं। यह अब एक जाना-माना व्यवसाय है अमरीका में, कि अगर तुम्हारा बच्चा ईसाई धर्म छोड़ कर हिंदू हो गया, या बौद्ध हो गया, तो उसे कैसे वापस लाना! तो उसकी एजेंसियां हैं, जासूस हैं, सम्मोहनविद हैं। और वे सब तरह की जालसाजियां कर रहे हैं बच्चों के साथ। मदर टेरेसा ने इनमें से किसी का विरोध नहीं किया! और हिंदुस्तान के ईसाई इसके विरोध में कहीं कोई जुलूस नहीं निकालते!
ये सब एक जैसे बेईमान हैं। वे हिंदू जो संसद में बैठ कर स्वतंत्रता के नाम पर परतंत्रता का बिल ला रहे हैं, वे, और मदर टेरेसा और ईसाई जो सारे हिंदुस्तान में जगह-जगह जुलूस निकाल रहे हैं, सभाएं कर रहे हैं, वे, इनमें जरा भी फर्क नहीं है। ये सब मौसेरे-मौसेरे भाई हैं। ये सब चोर-चोर एक से हैं। इन दोनों की नजर इस बात पर है कि हमारी संख्या कैसे बढ़ती रहे। हिंदू चाहता हैः मेरी संख्या कम न हो जाए। ईसाई चाहता हैः मेरी संख्या बढ़ती रहे। ये राजनीति के दांव-पेंच हुए। इसका धर्म से क्या लेना-देना है!
मैं, अमरीका में जो ईसाई कर रहे हैं, उसका भी विरोध करता हूं; हिंदुस्तान में जो हिंदू करना चाहते हैं संसद के माध्यम से, उसका भी विरोध करता हूं। मेरी तो घोषणा एक सीधी-सादी घोषणा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने का स्वरूपसिद्ध अधिकार है। इस पर किसी का कोई हक नहीं है। और प्रत्येक व्यक्ति को निर्विरोध सुविधा मिलनी चाहिए कि वह अपना धर्म चुने। अगर कोई हिंदू चाहता है कि ईसाई हो जाए, तो जरूर उसे हक है कि वह ईसाई हो जाए।
लेकिन ईसाई होना उसका अंतर-परिवर्तन होना चाहिए। कोई उसकी छाती पर छुरा रख कर ईसाई बना दे, तुम उसको ईसाई होना कहोगे? इसी तरह मुसलमानों ने न मालूम कितने लोगों को मुसलमान बनाया--छाती पर छुरा रख कर। यह कोई मुसलमान बनाना हुआ! यह कोई इसलाम हुआ!
अब हालतें बदल गई हैं, अब छाती पर छुरा नहीं रखा जा सकता। लेकिन छाती
पर सौ-सौ रुपये के नोटों की गड्डी तो रखी जा सकती है! यह भी वही बात हुई। उस आदमी को हम मरने की धमकी दे रहे थे कि मार डालेंगे! इस आदमी को हम जीने का

प्रलोभन दे रहे हैं कि देख नोटों की गड्डी! मगर बात वही की वही है। मारने की धमकी कि जीने का लोभ--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
देश में स्वतंत्रता की हवा होनी चाहिए। मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे--सब खुले होने चाहिए। जिसको जहां प्रीतिकर लगे, जाए। लेकिन खींचातानी नहीं होनी चाहिए। जिसको जहां सुखद लगे, वहां गुनगुनाए, वहां प्रार्थना करे, वहां ध्यान करे। मगर हाथ-पैर में जंजीरें नहीं होनी चाहिए। न तो मंदिरों में ले जाने के लिए कोई जंजीर होनी चाहिए और न मंदिरों में रोक रखने की कोई जंजीर होनी चाहिए। तब यह देश लोकतंत्र होगा। मगर इस देश की संसद तो अत्यंत दरिद्र है।
मेरे संबंध में भी थोड़े दिन पहले घंटे भर संसद में विवाद हुआ। मुझसे कहा गया कि मैं उसका जवाब दूं। लेकिन विवाद इतना बचकाना था कि मुझे जवाब देने योग्य भी मालूम नहीं पड़ा। विवाद में कोई बल ही नहीं; कोई बात ही नहीं। भारतीय संसद तो ऐसा है जैसे प्राइमरी स्कूल। और शर्म भी नहीं आती, परतंत्रता थोपने के लिए बिल को नाम दिया है--फ्रीडम ऑफ रिलीजन, धर्म-स्वातंष्य! इसका निश्चित विरोध होना चाहिए। मगर ईसाइयों की तरफ से ही नहीं। ईसाइयों की तरफ से विरोध के पीछे तो न्यस्त स्वार्थ है। और मदर टेरेसा ने भी वक्तव्य देकर एक लिहाज से अच्छा किया। कम से कम उनकी भी असली तस्वीर सामने आ गई, महात्मापन उघड़ गया। इसका विरोध होना चाहिए सबकी तरफ से--हिंदुओं की तरफ से, जैनों की तरफ से, बौद्धों की तरफ से, सिक्खों की तरफ से। और खासकर मेरे लोगों को इसका विरोध करना चाहिए, क्योंकि हम तो किसी धर्म में नहीं मानते, और सभी धर्मों को अपना मानते हैं।
तुम मेरी बात को ख्याल में लेना।
मेरा संन्यासी किसी धर्म का अनुयायी नहीं है। और साथ ही साथ मेरा संन्यासी सारे धर्मों को आत्मसात करता है। उसकी छाती बड़ी है। उसमें कुरान भी समा सकती है और वेद भी समा सकते हैं और धम्मपद भी। उसमें एक कोने में बुद्ध भी विराजमान हो सकते हैं और एक कोने में क्राइस्ट भी बस सकते हैं। मेरे संन्यासी का हृदय बड़ा है। इतना ही बड़ा संन्यासी इस दुनिया को अब बचा सकता है। इतना ही बड़ा धार्मिक हृदय इस दुनिया को अब बचा सकता है।
और उस सौंदर्य का तो अनुभव करो; उस गरिमा और महिमा, उस समृद्धि का तो अनुभव करो, जब तुम्हारे प्राणों में एक श्वास बुद्ध की भी चलती है और एक श्वास महावीर की भी चलती है और एक श्वास मीरा की भी चलती है। तुम्हारी बगिया में ये सारे फूल खिलें, यह अच्छा है, बजाय इसके कि तुम्हारी बगिया में बस एक ही तरह के फूल हों--कि गेंदे ही गेंदे लगा दिए। गेंदे सुंदर होते हैं; मगर गेंदे ही गेंदे बगिया में लगे हों तो बगिया थोड़ी उदास हो जाएगी, बेरौनक हो जाएगी; ऊब पैदा करने लगेगी।
सातों रंग हमारे हैं। सातों स्वर हमारे हैं। इस पृथ्वी पर जितने भी बुद्धपुरुष हुए, सब हमारे हैं। और सारे मंदिर-मस्जिद हमारे हैं। ऐसा कुछ विधेयक लाओ कि किसी मंदिर-मस्जिद में किसी के लिए कोई रोक-टोक न हो। अगर हिंदू किसी दिन ईसाई के चर्च में जाना चाहे तो रोका न जा सके। क्योंकि हिंदू के ईसा उतने ही हैं जितने कि राम, जितने कि कृष्ण। ऐसा कुछ विधेयक लाओ, वह धर्म-स्वातंष्य का विधेयक होगा, कि जिसमें कोई ईसाई अगर जैन-मंदिर में जाकर ध्यान करना चाहे तो कोई रुकावट न डाली जा सके।
अभी तो हालतें बड़ी अजीब हैं। अभी तो हालतें ऐसी हैं कि जैन-मंदिर में ईसाई का या मुसलमान का जाना तो दूर, दिगंबर जैन-मंदिर में श्वेतांबर को न जाने दें! प्रोटेस्टेंट चर्च में कैथलिक को न जाने दें! हिंदू के मंदिर में, सवर्ण का मंदिर हो, तो शूद्र को न जाने दें!

कुछ ऐसा विधेयक लाओ कि सारे मंदिर, सारी मस्जिदें, सारे गुरुद्वारे सबके हों। जो जहां चाहे, जहां मौज हो। और क्यों न ऐसा हो कि एक दिन मंदिर और एक दिन मस्जिद और एक दिन गुरुद्वारा! सबके स्वाद क्यों न लिए जाएं? गुरुद्वारे का भी अपना मजा है! गुरुग्रंथ का भी अपना रस है! कभी-कभी उसे भी चखा जाए। एक सा ही आध्यात्मिक भोजन क्यों रोज-रोज? और फिर उससे ऊब पैदा होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने भिंडियां बनाईं और मुल्ला ने बहुत तारीफ की और कहा कि भिंडी बड़ी अदभुत है! दूसरे दिन भी बनाईं भिंडियां। मुल्ला ने कोई तारीफ नहीं की, सिर्फ भिंडियां चुपचाप खाता रहा। तीसरे दिन भी भिंडियां बनाईं। मुल्ला ने मुंह बिचकाया, मगर किसी तरह भिंडियां लील गया। चौथे दिन भी जब भिंडियां बनीं तो मुल्ला ने थाली फेंक दी। पत्नी ने कहा, यह बड़ा असंगत व्यवहार है। थाली क्यों फेंकी?
तो मुल्ला ने कहा, भिंडी, भिंडी, भिंडी... क्या मुझे बिल्कुल पागल कर देगी?
तो उसने कहा, तुम्हीं ने तो कहा था पहले दिन कि भिंडी बड़ी प्यारी है!
तो मैं तो तुम्हारी ही बात मान कर चल रही हूं।
तुम्हारे जीवन में इतनी उदासी न रहेगी, इतनी धूल न रहेगी, अगर कभी-कभी कुरान का भी स्वाद लो और गीता का भी स्वाद लो और उपनिषद का भी स्वाद लो और बाइबिल का भी स्वाद लो। तुम्हारी जिंदगी में ज्यादा रंग होगा, ज्यादा रस होगा। तुम्हारी जिंदगी में ज्यादा आयाम होंगे। तुम्हारी जिंदगी में ज्यादा पहलू होंगे। जैसे कोई हीरे को निखारता है तो पहलू धरता है, अनेक पहलू बनाता है हीरे में। जितने ज्यादा पहलू होते हैं, हीरे में उतनी चमक आती है।
एक ऐसी दुनिया चाहिए जहां हर आदमी को मनुष्य की पूरी वसीयत पूरी की पूरी उपलब्ध हो। यह बात बड़ी दरिद्रता की है कि तुम हिंदू हो, इसलिए जीसस के प्यारे वचन तुम्हारे प्राणों में कभी न गूंजेंगे! तुम वंचित रह जाओगे! और जीसस के वचन ऐसे हैं कि जो उनसे वंचित रह गया, वह कुछ कम रह गया। कुछ ज्यादा हो सकता था। एकाध और कली खिल सकती थी। एकाध और सुगंध उठ सकती थी। रोशनी और थोड़ी सघन हो सकती थी। जो आदमी जीसस से अपरिचित है, उस आदमी में कुछ कमी रह गई; उसकी आत्मा के किसी कोने में अंधेरा रह ही जाएगा, निश्चित रह जाएगा! क्योंकि कृष्ण के बहुत प्यारे वचन हैं, मगर जीसस अनूठे हैं, अद्वितीय हैं! कृष्ण कृष्ण हैं, जीसस जीसस हैं, बुद्ध बुद्ध हैं! सब अनूठे हैं! तुम सबका अद्वितीय आनंद लो।
अगर कोई मुझसे पूछे, तो इसको मैं कहूंगा स्वतंत्रता-विधेयक--कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने का हक है और प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक धर्म में रस लेने का हक है। और प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक धर्मगृह में, मंदिर में, पूजागृह में जाने का अधिकार है। कोई कहीं रोका नहीं जा सकता।
और जरूरत क्या है कि लेबल लगाओ कि यह ईसाई और यह हिंदू और यह मुसलमान
और यह जैन? लेबल लगाने की जरूरत क्या है? विशेषण लगाने की जरूरत क्या है? क्या धार्मिक होना काफी नहीं है? क्या धार्मिक होना पर्याप्त नहीं है? क्या तुम सोचते हो, हिंदू होकर तुम धार्मिक से कुछ ज्यादा हो जाओगे? कुछ कम हो जाओगे, ज्यादा नहीं।
धर्म आना चाहिए पृथ्वी पर। और ये सब धाराएं धर्म की धाराएं हैं। और ये सारी धाराएं मिल कर धर्म की गंगा बनती है।
यह जो विधेयक लाया जा रहा है, अलोकतांत्रिक है, जन-विरोधी है, धर्म-विरोधी है।
लेकिन फिर दोहरा दूंः मेरे विरोध का कारण वही नहीं है जो ईसाइयों का है। उनका विरोध का कारण तो वही है जो संसद में विधेयक लाने वालों का है।
विधेयक लाने वालों के पीछे हिंदू मतांध, आर्यसमाजी, इस तरह के लोग हैं। और विधेयक का विरोध करने वाले ईसाई। मैं न तो ईसाई हूं, न हिंदू हूं। मैं तो सिर्फ जैसा मुझे दिखाई पड़ रहा है साफ-साफ, वैसा कह रहा हूं, मेरा कोई पक्षपात नहीं है।

दूसरा प्रश्नः संन्यास का भाव उठ रहा है और फिर मन भाग रहा है। मैं यही निर्णय नहीं ले पा रहा हूं कि संन्यास लूं कि न लूं! क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि अपने ही साथ ढोंग कर रहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि मैं संन्यास लेने के योग्य नहीं हूं।

जमुनासिंह! संन्यासी होने के योग्य कौन है? संन्यास लेने की पात्रता किसकी है? और अगर पात्रता ही हो, तो संन्यास की जरूरत क्या रह जाएगी? पात्र नहीं हैं, पात्रता लाने के लिए ही संन्यास है! बीमार होते हो तो औषधि लेते हो। यह तो नहीं कहते कि मैं बीमार हूं, अभी औषधि कैसे लूं? जब स्वस्थ हो जाऊंगा तब औषधि लूंगा।
संन्यास तो औषधि है, चिकित्सा है, उपचार है। तुम अपात्र हो, इसीलिए तो जरूरत है। अगर तुमने अपात्रता को ही रुकने का कारण बना लिया, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर तो तुम कैसे संन्यासी होओगे? संन्यास पात्रता लाएगा। संन्यास साध्य नहीं है, साधन है--इसे याद रखो। संन्यास साधन है कि तुम्हें पात्र बनाए, निखारे, बुहारे, झाड़े तुम्हारी आत्मा को। धोए, स्नान करवाए। ताकि तुम परमात्मा के योग्य बन सको। संन्यास तुम्हें परमात्मा के योग्य बनने की पात्रता देगा।
अब तुम कहते हो, पहले मैं पात्र होऊं, तब संन्यासी होऊं। तब तो तुम सिद्ध हो जाओगे, फिर संन्यासी नहीं होओगे। फिर तो तुम बुद्ध हो जाओगे, संन्यासी नहीं होओगे। संन्यास का तो स्पष्ट अर्थ है कि मैं अपात्र हूं, हजार मेरी भूल-चूकें हैं, हजार मेरी नासमझियां हैं, उनको ही काटने के लिए यह गर्दन ले आया हूं; यह संन्यास की तलवार उठे और यह गर्दन कटे।
फिर किस बात को तुम अपात्रता कहते हो, वह भी जरा विचारणीय है। क्योंकि लोगों ने अपात्रता की भी अदभुत परिभाषाएं कर रखी हैं। कोई आदमी अपात्र मानता है अपने को, क्योंकि ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठ पाता।
एक सज्जन ने मुझसे आकर कहा कि कैसे संन्यास लूं? मैं नौ बजे के पहले तो सोकर ही नहीं उठता! उन्होंने इस भरोसे से बात कही, कि यह तो गणित साफ है कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए संन्यासी को। मैं तो नौ बजे उठता हूं, तो मैं कैसे संन्यासी हो सकता हूं!
मैंने उनसे पूछा, थोड़ा विचार करो; तुम कब उठते हो, इससे संन्यास का कौन
सा अनिवार्य संबंध होगा? घड़ी में कितने बजे हैं--नौ बजे, कि छह बजे, कि पांच, कि तीन--इससे संन्यास की कौन सी अनिवार्यता है? उठ आते हो, यही बहुत है। नौ बजे उठ तो आते हो! और नौ बजे उठ आते हो, उससे संन्यास का संबंध नहीं है, जब उठ आते हो तब सच में जागे हुए होते हो, कि सोए-सोए चलते रहते हो? जागे में जो जागे! नौ बजे तुम उठ आए, वह तो ठीक है, वह तो आंख खुल गई सिर्फ। सपने वही चल रहे हैं, वासनाएं वही चल रही हैं, कामनाएं वही चल रही हैं। ध्यान नहीं है, जागरण नहीं है, होश नहीं है, तो नौ बजे उठो कि पांच बजे उठो, क्या फर्क पड़ेगा!
ब्रह्ममुहूर्त का कोई संबंध घड़ी से नहीं है। ब्रह्ममुहूर्त का संबंध तुम्हारे भीतर उस अदभुत घटना से है जब जागे में जागना घटता है, तब ब्रह्ममुहूर्त। वह कभी भी घट सकता है। भर दोपहरी में घट सकता है। आधी रात घट सकता है। ब्रह्ममुहूर्त का अर्थ होता हैः जिस क्षण तुम्हें ब्रह्म का अनुभव हो। सीधी तो बात है। तीन बजे उठने से ब्रह्म का अनुभव हो जाएगा? तो कई बुद्धू तीन बजे उठ रहे हैं जिंदगी भर से! दिन भर झोंका खाते हैं, नींद आती है, और कुछ नहीं! तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी जो तीन बजे उठ आते हैं, उनकी आंखें तुम देखो। दिन भर झोंका खा रहे हैं।
कल मैंने अखबार में पढ़ा कि दो बड़े सर्वोदयी और बड़े गांधीवादी अहमदाबाद में मिले, देश की समस्याओं पर विचार करने को। एक हैं आचार्य जे.बी.कृपलानी और दूसरे हैं रविशंकर महाराज। रविशंकर महाराज की उम्र हैं पंचानबे साल, कृपलानी की उम्र है तिरानबे साल। रविशंकर महाराज को तीन आदमी उठा कर लाए। कृपलानी को दो आदमियों ने सम्हाल कर बिठाला। आधा घंटा संग-साथ रहे, बात कुछ ज्यादा हुई नहीं--क्योंकि बीच-बीच में दोनों की झपकी लग जाती। बूढ़े हो गए, पंचानबे साल, बीच-बीच में झपकी खा जाते, बातचीत तो भूल ही जाती। और जो ज्यादा से ज्यादा बातचीत हुई--देश की बड़ी समस्याओं पर विचार करने इकट्ठे हुए थे--जो ज्यादा से ज्यादा बातचीत हुई वह इतनी हुई कि कहिए, आपका स्वास्थ्य कैसा है? उन्होंने उनसे पूछा, उन्होंने उनसे पूछा। और जब विदा हुए तो एक-दूसरे को सलाह देकर विदा हुए कि जरा स्वास्थ्य का ख्याल रखना!

उठ आओ तीन बजे, जिंदगी भर उठते रहो, झपकियां खाते रहोगे। ब्रह्ममुहूर्त नहीं आएगा ऐसे! ब्रह्ममुहूर्त तो ध्यानी को आता है।
मगर वे सज्जन इसको अपात्रता मानते थे। उन्होंने कहा, आपने मुझे बड़ा ढाढ़स दिया; मैं तो दबा जा रहा हूं ऐसे पहाड़ के नीचे। क्योंकि मेरी पत्नी कहती है कि तुम क्या धार्मिक होओगे! वह उठती है पांच बजे, और भजन-कीर्तन भी करती है, उसके सामने तो मैं बिल्कुल ही दीन-हीन हो जाता हूं। क्योंकि मैं नौ बजे तक पड़ा रहता हूं। तो वह मुझे तामसी कहती है। और मैं भी मानता हूं कि तामसी हूं। आपने अच्छा मुझे बोध दिया! तो मैं तामसी नहीं हूं?
नौ बजे उठने से तामस का क्या संबंध! तुम सोते कब हो?
कहा, मैं तो दो बजे के पहले कभी नहीं सोता।
और तुम्हारी पत्नी कब सोती है?
वह आठ ही बजे सो जाती है।
तो मैंने कहा, मामला क्या है? जो आठ बजे सो जाता है वह पांच बजे उठ आएगा। स्वभावतः उठना ही पड़ेगा। तुम दो बजे सोओगे तो नौ बजे उठोगे, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। सात-आठ घंटे तो सोना ही पड़ेगा। लेकिन इसमें अपात्रता कहां है? इसमें तामस कहां है?
कोई सोचता है कि मैं दो बार भोजन करता हूं, इसमें तामस है। संन्यासी
को तो एक ही बार भोजन करना चाहिए।
संन्यास का संबंध इस बात से है--उतना ही भोजन करना चाहिए जितना जरूरी है। दो बार जरूरी हो तो दो बार और तीन बार जरूरी हो तो तीन बार। सच तो यह है, अगर आदमी के स्वभाव को ठीक से समझा जाए, उसके शरीर को ठीक से समझा जाए, तो जितना थोड़ी-थोड़ी मात्रा में और जितनी बार भोजन किया जाए उतना स्वास्थ्यप्रद है।
तुम्हें पता होना चाहिए कि भारत में वायु-विकार से बहुत लोग पीड़ित हैं। इतने लोग वायु-विकार से दुनिया में कहीं पीड़ित नहीं हैं। और उसका कारण? उसका कारण इकट्ठा भोजन कर लेना है। जितना भोजन भारतीय करते हैं उतना दुनिया में कोई नहीं करता। अमरीका में लोग पांच बार करते हैं, मगर थोड़ा- थोड़ा। कभी बोझ नहीं पड़ता पेट पर। तो अमरीका में अगर लोगों के शरीर ज्यादा अनुपात में मालूम पड़ते हैं, तो स्वाभाविक है। स्त्रियों की देहें अगर ज्यादा सुंदर हैं, अनुपातपूर्ण हैं, तो ज्यादा स्वाभाविक है, बिल्कुल ठीक है। यहां तो हम इतना भोजन एक साथ भर लेते हैं, क्योंकि दो बार करना है। और जिनको एक ही बार करना है, उनकी तो फिर तुम मुसीबत समझ ही सकते हो! उनको तो फिर इतना भर लेना है कि चौबीस घंटे काम दे दे। वे तो ऐसे भर लेते हैं जैसे ऊंट रेगिस्तान में जाने के पहले पानी भर लेता है। क्योंकि चौबीस घंटे ईंधन चलाना है।
दिगंबर जैन मुनि एक ही बार भोजन करते हैं। मगर सबकी तोंद निकली होती है। यह बड़ी हैरानी की बात है! एक बार भोजन करने वाले लोग और तोंदें निकली हुई हैं! इनके तो पेट पीठ से लग जाने चाहिए। और बड़ी भद्दी लगती हैं तोंदें। ये तोंदें क्यों निकली हुई हैं? एक ही बार भोजन करना है। तो जितना कर लो! क्योंकि फिर चौबीस घंटे फिर उपाय नहीं है।
जैन मुनि रात में पानी नहीं पोते। तो शाम को ही डट कर पी लेना है। इतना
पी लेना है जिसका हिसाब नहीं!
एक बार सोहन के घर मैं मेहमान था और चार-पांच जैन साध्वियां मुझसे मिलना चाहती थीं, वे भी आकर वहां मेहमान हो गईं। अब शाम को ही डट कर पानी पी लोगे, ज्यादा पी लोगे, तो फिर रात भर पेशाब करनी पड़ेगी। अब जैन साध्वियां हैं, वे आधुनिक बाथरूम का उपयोग नहीं कर सकतीं। क्योंकि जैन शास्त्रों में नियम है कि पानी में मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए। उन दिनों ठीक भी था, क्योंकि लोग तालाब में, नदी में मल-मूत्र त्याग करें--उसी में नहाना है, उसी में पानी पीना है, यह बिल्कुल ठीक नियम था। लेकिन बुद्धूपन की कोई सीमा तो है ही नहीं! दुनिया में एक परमात्मा को छोड़ कर और मूढ़ता को छोड़ कर और कोई चीज अनंत नहीं है। तो नदी में, नाले में नहीं मल-मूत्र त्याग करना है। और अब जो आधुनिक संडास है, उसमें तो पानी है ही, सेप्टिक टैंक का पानी है उसमें। तो अब इस पानी में कैसे मल-मूत्र त्याग करना? और शाम से ही खूब

डट कर पानी पी लो। क्योंकि गर्मी के दिन और रात भर फिर पानी पीना नहीं है, तो जितना पी सको। तो वे साध्वियां रात भर थाली में पेशाब करें और सड़क पर फेंकने जाएं। चपरासी देखता रहा रात। सुबह उसने सोहन से कहा कि ये बाइयां भी खूब हैं! ये रात भर पता नहीं थाली में क्या-क्या भर कर लाती हैं और सड़क पर फेंक जाती हैं।
अब यह तुम पागलपन देखते हो! लेकिन तुमने साधुओं को भी अपने साथ अपने
ही जैसा मूढ़ बना लिया है। कोई सोचता है कि तीन बार भोजन करता हूं, तो अपात्र।
मनुष्य के शरीर की अगर जांच करो तो पता चलेगा कि वह थोड़ा-थोड़ा भोजन करे और अनेक बार करे, तो ज्यादा स्वास्थ्यप्रद है। बोझिल नहीं होगा, भारी नहीं होगा। मनुष्य शाकाहारी है। तुम देखते हो, बंदर शाकाहारी है, बस दिन भर बंदर का काम चलता ही रहता है। इस झाड़, उस झाड़। सिंह मांसाहारी है, वह एक ही बार भोजन करता है चौबीस घंटे में। मांसाहारी जानवरों की जो अंतड़ी होती है, छोटी होती है। शाकाहारी जानवरों की अंतड़ी बहुत लंबी होती है। मनुष्य की अंतड़ी बहुत लंबी है। उसकी अंतड़ियों की लंबाई सबूत है कि वह शाकाहारी है। मांसाहार एक बार कर लिया तो बहुत। क्योंकि मांसाहार पचा-पचाया भोजन है। दूसरा जानवर उसे पहले ही पचा चुका है। तभी तो वह मांस बना। अब तुम साग-सब्जी लोगे, तो तुम्हें दोहरे काम करने पड़ेंगे। तुम्हें खुद ही पचाना पड़ेगा, तो पचाने की लंबी प्रक्रिया है। फिर साग-सब्जी में नब्बे प्रतिशत तो व्यर्थ है, जो बाहर फेंकना पड़ेगा। मांसाहार तो पूरा का पूरा पचाया जा सकता है। उसमें व्यर्थ कुछ भी नहीं है।
तो सिंह एक ही बार भोजन कर लेता है। क्या तुम समझते हो सिंह बड़ा सात्विक है, एक ही बार भोजन करने से? और बंदर तामसिक है? बंदर शाकाहारी है, शुद्ध गांधीवादी है। बंदर बिल्कुल जैन है। सिंह यद्यपि जैन मुनि की तरह एक ही बार भोजन करता है, मगर उसको तुम जैन मुनि नहीं कह सकते। वह मांसाहारी है।
तामस क्या? धारणाएं बना ली हैं। उन पर कभी सोच-विचार भी नहीं किया है।
और उन्हीं धारणाओं में बंधे चले जाते हो।
अब जमुनासिंह, तुम पूछते हो कि संन्यास लेने के योग्य नहीं हूं।
क्या तुम्हारी अयोग्यता है? धूम्रपान करते हो? कोई बड़ी अयोग्यता नहीं है। ऐसे धुएं को बाहर ले जाना, भीतर लाना, बाहर ले जाना, भीतर ले जाना, इसमें क्या अयोग्यता है? उसी में भावातीत-ध्यान को जोड़ दो। राम-हरि, राम-हरि जपते रहना जी! जब धुआं बाहर ले जाओ--राम, और जब धुआं भीतर ले जाओ--हरि। बस राम-हरि, राम-हरि करते रहना। तो धूम्रपान पर ही सवार हो गए, भावातीत-ध्यान हो गया।
किस बात को तुम कह रहे हो अपात्र हो? पत्नी-बच्चे हैं? सो राम के भी थे, जनक के भी थे--और अपात्र नहीं हुए। कि छोटा-मोटा घर-द्वार है? सो जनक का बड़ा महल था--और अपात्र नहीं हुए। और तुम झोपड़े में ही अपात्र हुए जा रहे हो? कुछ गणित भी तो बिठाओ! कुछ हिसाब-किताब भी सीखो! कि कभी-कभी गुस्सा आ जाता है? सो दुर्वासा मुनि की याद करो! ऋषि-मुनि कैसे-कैसे सुंदर उदाहरण दे गए हैं। उनसे कुछ चेतना लो। कि सुंदर स्त्रियां देख कर मन डांवाडोल हो जाता है? तो सभी ऋषि-मुनियों के डांवाडोल होते रहे। उर्वशियां आती रहीं, अप्सराएं उतरती रहीं और ऋषि-मुनि डांवाडोल होते रहे। अगर तुम्हारा भी दिल डांवाडोल होता है, तुम भी ऋषि-मुनि हो। अगर तुम्हारे पास भी अप्सराएं आने लगी हैं, तो मतलब इंद्र का सिंहासन कंप रहा है। जमुनासिंह, एकाध कदम और, कि तुम सिंहासन पर सवार हुए! किस बात को अपात्रता कहते हो? सब मानवीयता है, अपात्रता कुछ भी नहीं है।
मेरी बात पर ख्याल करना, सब मानवीयता है। ये मानवीय सीमाएं हैं। इनको अपात्रता कह कर नाहक निंदा से अपने को मत भरो। क्योंकि निंदा एक बार तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाए, आत्म-निंदा, तो तुम जीवन को फिर कभी भी हिम्मत से जी न सकोगे। और तुम्हारे तथाकथित साधु-संत इसी कला में कुशल हैं। तुम्हें आत्म-निंदा से भर दिया है। तुम्हारा इतना अपमान किया है हर तरह से, हर चीज से, कि तुम धीरे-धीरे अपने को महापापी समझने लगे हो। और उस

महापाप की धारणा के कारण तुम सोचते होः कैसे संन्यास होगा? कैसे प्रार्थना होगी? कैसे पूजा होगी? यह अपने से नहीं हो सकता। यह तो विशिष्ट लोगों की बात है। यह तो कुछ खास शुद्ध आत्माओं की बात है। बस इस बहाने तुम जैसे हो वैसे ही बने रहोगे फिर।
मैं तुमसे कहता हूंः संन्यास तुम्हारे लिए है। मनुष्य की सारी सीमाएं अंगीकार करो। तुम मनुष्य जैसे मनुष्य हो। मनुष्य को क्रोध भी आता है, लोभ भी आता है, मोह भी आता है, कामवासना भी उठती है--ये सब मनुष्य के स्वाभाविक लक्षण हैं। इनमें न कुछ पाप है, न इनमें कुछ आत्मग्लानि से भरने का कारण है। हालांकि मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इन्हीं पर रुके रहो। अगर इन्हीं पर रुके रहो, यह मुझे कहना होता, तो संन्यास की बात ही नहीं कहता।
फिर संन्यास क्या है?
संन्यास है इन्हीं मनुष्य की सीमाओं का उपयोग कर लेना सीढ़ियों की तरह। क्रोध को सीढ़ी बना लेना करुणा की। काम को सीढ़ी बना लेना राम की। संन्यास कीमिया है, कला है, विज्ञान है। लोहे को सोने में बदलने का रसायनशास्त्र है।
तुम कहते हो, संन्यास का भाव उठ रहा है और फिर मन भाग रहा है।
जब भी भाव में और विचार में संघर्ष हो, भाव को चुनना। नहीं तो तुम जैसे
हो वैसे के वैसे रह जाओगे। विचार कायर है। हमेशा कायर है। भाव में साहस होता है। भाव में ही लोग जोखम उठाते हैं। विचार में कहां? विचार करने वाला तो खड़ा सोचता ही रह जाता है। इसलिए तुमने देखा, जहां जोखम उठाने का क्षण होता है, वहां विचार की प्रक्रिया अपने आप बंद हो जाती है।
समझो कि तुम कार चला रहे हो और अचानक तुम्हें दिखाई पड़ा कि सामने के सरदार जी जो ट्रक लिए चले आ रहे हैं, इनसे बचना मुश्किल है, बारह बज गए हैं! और ताड़ी भी डट कर पी गए हैं। आंखें बंद हैं, और ट्रक चला आ रहा है भयंकर गति से, और बचने का कोई उपाय नहीं है। कुछ सेकेंड पहले तुम्हें यह अहसास हो जाएगा--अब बचने का कोई उपाय नहीं है, गए, गए, गए... । उस समय तुम एक चकित होकर बात जानोगे--अगर बच गए तो पीछे याद आएगी--कि उतने क्षणों के लिए विचार बंद हो जाएगा। कृत्य जारी रहेगा, विचार बंद हो जाएगा। अब तुम भाव के जगत से प्रक्रिया करोगे। हो सकता है, तुम अपनी गाड़ी को खेत में डाल दो। सरदार जी से जूझने की बजाय हो सकता है नदी में छलांग लगा जाओ गाड़ी सहित--कि नदी में फिर भी बचने की आशा है! लेकिन यह होगा विचार से नहीं, भाव से। अगर विचार से करने चलोगे तब तो बहुत देर लग जाएगी। क्योंकि विचार समय चाहता है। तत्क्षण नहीं होता। सोच-विचार में समय लगता है। और यहां तो पलों की बात है। पलक झपी और मामला खतम हुआ!
कभी-कभी तुम्हारे जीवन में ऐसे क्षण होते हैं, जब तुम भाव से कृत्य करते हो। वे कृत्य बड़े अदभुत हैं। संन्यास उन्हीं कृत्यों की दीक्षा है। धीरे-धीरे साधारण जीवन में भी--जहां न ट्रक है, न सरदार जी हैं, न बारह बजे हैं--साधारण जीवन में भी भाव से निष्पन्न होने लगे व्यक्तित्व। संन्यास विचार से हट कर भाव की दुनिया में प्रवेश है। मस्तिष्क से उतर कर हृदय में विराजमान होना है। तर्क को छोड़ कर प्रेम से जीने का नाम संन्यास है।
और तुम कहते हो, संन्यास का भाव उठ रहा है, और मन है कि भागने की कह रहा है।
मन तो कहेगा। मन यानी विचार। मन तो कहेगाः किस पागलपन में पड़े जा रहे हो? निकल भागो! जल्दी करो! ज्यादा देर रह गए, कहीं रंग चढ़ न जाए! कहीं ये दीवानों की मौजूदगी और तुम्हें भी हिम्मत न दे दे और कुछ कर गुजरो, पीछे पछताओ! अभी निकल भागो! मन तो समझाएगा। मन तो हमेशा संकोच ही करता रहता है। अगर मन पर ही तुम छोड़ दो, तो जीवन में कभी भी कुछ कृत्य न हो पाएगा। तुम्हारा जीवन खाली का खाली जाएगा। अगर मन पर ही छोड़ दो, तो तुम कुछ भी निर्णय न कर पाओगे। निर्णय मन की क्षमता नहीं है। निष्पत्तियां मन में पैदा ही नहीं होतीं। मन तो सिर्फ ऊहापोह करता है--ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए! ऐसा होगा तो क्या होगा? वैसा होगा तो क्या होगा? और इसका कोई अंत नहीं आता।
भाव से कृत्य होता है।

संन्यास तो भाव से ही होने वाला है। जो सोच-विचार कर संन्यास लेंगे, उन्होंने संन्यास लिया ही नहीं। उन्होंने तो गणित बिठाला। वे तो दीवाने हुए ही नहीं। वे तो प्रेम में पागल हुए ही नहीं। और मन सचेत करेगा। मन हजार दलीलें देगा। मन वकील है। मन कहेगा, पहले सोचो! घर जाओगे, पत्नी क्या कहेगी?
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्रों में बैठा था और हांक रहा था दूर की, कि
एक दफा मैं शिकार को गया। भटक गए जंगल में, बहुत खोजा, मगर सिंह का, सिंहनी का कोई पता नहीं। मगर मुझे एक ऐसी आवाज करनी आती है कि जब सब शिकारी थक गए और उन्होंने हार मान ली और मेरे चरणों में सिर रख दिया और कहा कि मुल्ला, अब तुम्हीं कुछ करो, आना व्यर्थ हुआ जा रहा है। मैंने कहा, व्यर्थ नहीं होगा; मैं एक ऐसी आवाज जानता हूं, आवाज लगाते ही एक क्या, दो-चार सिंह-सिंहनियां मौजूद हो जाएंगी। मैंने आवाज दी। फौरन एक सिंहनी झाड़ी से निकली और चली आई। शिकार भी हो गया, यात्रा भी सफल हुई।
मित्रों ने पूछा कि मुल्ला, वह कैसी आवाज थी? एक दफा लगा कर बताओ न!
तो मुल्ला ने आवाज लगाई। फौरन पत्नी बेलन लिए भीतर से निकल आई। उसने कहा कि फिर तुमने वही हरकत की! हजार दफे कह दिया कि इस तरह की आवाज नहीं निकाला करें।
मुल्ला ने कहा, देखा? अब यहां कोई सिंहनी तो है नहीं, मगर जो भी उपलब्ध है, आपके सामने है।
मन कहेगा, घर जाओगे, एकदम सिंहनी निकल आए! फिर क्या करोगे? फिर भागे गैल न मिलेगी। पास-पड़ोस के लोग हंसेंगे। दफ्तर में जाओगे तो लोग पागल कहेंगे। लोग पूछेंगे--तुम्हें क्या हो गया? भले-चंगे गए थे, यह क्या हालत हो गई? किस चक्कर में आ गए? मन ये सारी बातें उठाएगा। और अगर मन की सुनना है, तो फिर तुम्हारे जीवन में कभी कोई क्रांति नहीं हो पाएगी!
मन क्रांतिकारी है ही नहीं। मन तो बहुत ही प्रतिक्रियावादी है। दकियानूस। लकीर का फकीर। जो करता रहा है, बस वही करता है, वही करना चाहता है। मन तो कोल्हू का बैल है।
भाव से क्रांति घटती है। उठता हो भाव, साहस हो भीतर, तो ये बहाने मत खोजोः पात्र, अपात्र। मैं चिंता नहीं करता। मैंने अपात्रों को पात्र बनाने का निर्णय लिया है। तुम कितने ही अपात्र होओ, मेरी तरफ से इनकार नहीं है। क्योंकि कोई भी मनुष्य इतना अपात्र नहीं हो सकता कि परमात्मा से सदा-सदा के लिए दूर रह जाए। एक धागा, एक धागा तो बंधा ही रहता है। नहीं तो हम मर ही जाएंगे। हमारे जीवन का धागा तो बंधा ही रहता है। नहीं तो हम जी ही न सकेंगे। वही सांस लेता है तो हम सांस लेते हैं। वही धड़कता है तो हम धड़कते हैं। तो परमात्मा से हम जुड़े हैं। जब परमात्मा हमें इतना पात्र मान रहा है कि अभी और जीओ, और जीए जाओ, जब उसका आशीर्वाद बरस रहा है, तो फिर मैं कौन हूं जो तुम्हारे संन्यास में बाधा आऊं?
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं!
मैंने कहा, मैं क्या करूं? परमात्मा हर किसी को जीवन दे देता है। जीवन जैसी चीज देने में संकोच नहीं करता, तो मैं संन्यास देने में क्यों संकोच करूं? संन्यास तो केवल जीवन को निखारने की कला का नाम है। जब जीवन उसने दे दिया, तो निखारने की कला, साफ करने की कला--दर्पण तो उसने दे दिया, मैं तो धूल साफ करने के लिए थोड़ा सा आयोजन देता हूं। जब परमात्मा ने जीवन दे दिया, तो मैं कौन हूं जो कहूं कि संन्यास नहीं दूंगा।
इसलिए मैंने किसी को इनकार नहीं किया संन्यास के लिए। हां, तुम्हीं भाग जाओ अपनी अपात्रता को मान कर, तुम्हारी मर्जी! फिर तुम परमात्मा से यह भी प्रार्थना क्यों नहीं करते कि मुझ अपात्र को जीवन क्यों दिया? मैं कैसे जीऊं, मैं तो अपात्र हूं! ब्रह्ममुहूर्त में उठता नहीं, धूम्रपान करता हूं, चार बार भोजन, रात देर से सोता हूं, ताश खेलने की भी लत है--तुमने मुझे जीवन क्यों दिया? और अब भी वापस क्यों नहीं ले लेते? मैं पात्र नहीं हूं। मेरे हिसाब में जो जीवित होने का पात्र है, वह संन्यास का पात्र भी है। क्योंकि संन्यास तो सिर्फ जीवन को ही रूपांतरित करने की कीमिया है, और

कुछ भी नहीं। जीवन तुम्हारे पास है, जीवन को बदलने की कला मैं तुम्हें दे सकता हूं।
तुम कहते हो, मैं यही निर्णय नहीं ले पा रहा हूं कि संन्यास लूं कि न लूं!
तुम कभी निर्णय न ले पाओगे। ये बातें निर्णय से नहीं होतीं। अगर बैठ
कर ही सोचते रहे कि कितने तर्क पक्ष में और कितने तर्क विपक्ष में, तो जिंदगी बीत जाएगी, तुम कभी निर्णय न ले पाओगे।
इमेनुअल कांट जर्मनी का एक बड़ा विचारक हुआ। एक स्त्री ने उससे निवेदन किया। स्त्री भी खूब रही होगी! क्योंकि इमेनुअल कांट ऐसा आदमी नहीं जिसके प्रेम में कोई पड़ जाए। बिल्कुल रूखा-सूखा आदमी था। गणित। शुद्ध गणित। ऐसा गणित कि उसके नौकर को यह नहीं कहना पड़ता था आकर कि नाश्ता लें। नौकर को कहना पड़ता थाः सात बज गए, मालिक! सात बज गए यानी नाश्ता। कि बारह बज गए, मालिक! बारह बज गए यानी भोजन। कि दस बज गए, मालिक! दस बज गए यानी रात हो गई-- बिस्तर में। ऐसा भी हो जाता कि लोग बैठे होते--मिलने-जुलने वाले कोई आ गए हैं, मेहमान कोई आ गए हैं--और नौकर आकर कह देताः मालिक, दस बज गए। कि फिर वह नमस्कार भी नहीं करता था, क्योंकि उतनी देर भी नहीं खो सकता। नियम! वह उचक कर जल्दी से अपने कंबल के भीतर हो जाता। नौकर दूसरों से कहता, अब आप लोग जाइए, मालिक सो गए। दस बज गए यानी सो गए। घड़ी से चलता था।
कहते हैं कि इमेनुअल कांट जब विश्वविद्यालय पढ़ाने जाता था तो लोग उसको देख कर अपनी घड़ियां सुधार लेते थे। क्योंकि उसमें कभी भूल हुई ही नहीं--चालीस साल तक, सतत, मिनट-मिनट। एक दिन ऐसा हुआ कि रास्ते में पानी गिर गया था, कीचड़ मची थी, एक जूता उसका कीचड़ में फंस गया। तो उसने उसे निकाला नहीं, क्योंकि उसको निकाले तो उतनी देर लग जाएगी पहुंचने में! उस जूते को वहीं छोड़ दिया, एक ही जूता पहने हुए यूनिवर्सिटी पहुंच गया। किसी ने पूछा कि दूसरे जूते का क्या हुआ? उसने कहा, वह कीचड़ में फंसा है। निकालूं तो देर हो जाए।
घड़ी के कांटे की तरह चलने वाला आदमी, इसके भी प्रेम में एक स्त्री पड़ गई। स्त्रियां ही तो हैं। इनका भी कोई भरोसा नहीं। इससे निवेदन कर बैठी। तो इसने कहा कि सोचूंगा, विचार करूंगा। हां-न सीधा कह देता--वह तो कर ही नहीं सकता था वह। वह तो किसी चीज में हां-न नहीं कहता था। सोचूंगा, विचारूंगा।
तीन साल बीत गए, सोचा, विचारा, खूब सोचा, खूब विचारा। सैकड़ों कारण पक्ष में लिखे, सैकड़ों कारण विपक्ष में; कि विवाह करो तो ये लाभ, ये हानियां; विवाह न करो तो ये लाभ, ये हानियां। आखिर में उसने पाया कि विवाह करने में एक लाभ भर ज्यादा है, वह यह कि अनुभव होगा। न करो, तो एक भर हानि है कि अनुभव नहीं होगा। तो पलड़ा भारी है।
तो तीन साल के बाद उसने जाकर द्वार पर दस्तक दी, लड़की के पिता ने दरवाजा खोला। और कांट ने कहा कि अंततः मैंने तय कर लिया, एक कारण ज्यादा पड़ता है, पलड़ा भारी है। मैं विवाह करूंगा।
पिता हंसने लगा और उसने कहा, बहुत देर हो गई। मेरी लड़की का तो विवाह भी
हो चुका; एक बच्चा भी पैदा हो चुका; आप बहुत देर से आए; अब और सोचो। फिर अगर कोई दुबारा तुमसे निवेदन करे तो तुम पहले से ही निर्णय तैयार रखना। इतनी देर अगर सोचने में लगाओगे!
फिर विवाह हुआ नहीं, क्योंकि दुबारा किसी ने प्रार्थना इमेनुअल कांट
से की नहीं।
सोच-सोच कर जीओगे तो क्षुद्र में ही समाप्त हो जाओगे। विराट में तो छलांग लगानी होती है, सोचना नहीं होता। विराट में तो साहस चाहिए जोखिम उठाने का, जुआरीपन चाहिए, धंधा नहीं, दुकानदारी नहीं।
जमुनासिंह, लेना हो ले लो, न लेना हो न लो, सोच-विचार में न पड़ो! सोच-विचार में वैसे ही परेशान हो जाओगे। ऐसे ही जिंदगी में क्या परेशानियां कम हैं! यह नई परेशानी और क्यों लेते हो--कि संन्यास लेना कि नहीं लेना? भूलो-भालो! लेना हो ले लो, न लेना हो न लो, मगर इस सोच-विचार में मत पड़ो। तुम्हारे भीतर वैसे ही तो हजार विचार हैं, और एक नया विचार तुम्हारे भीतर

उपद्रव खड़ा करे, ऊहापोह मचाए--ऐसा मैं न चाहूंगा। तुम इस पूरे विचार को ही नमस्कार कर लो!
लेकिन अगर भाव उठ ही रहा है, तो उठता रहेगा। रह-रह कर उमंग आती रहेगी। रह-रह कर हवा का एक झोंका तुम्हें सहलाता रहेगा। अगर भाव उठ ही रहा है, तो भाव की भंवर में तुम्हें डूबना पड़ेगा। देर-अबेर जितनी चाहो कर लो। लेकिन जितनी देर करोगे, उतना समय व्यर्थ गया। उतने समय में तो कुछ अनुभव होता, कुछ जीवन पकता, कुछ फूल खिलते। निष्पत्तियां विचार की नहीं होतीं, भाव की छलांग।
और रही तुम्हारी यह बात कि मुझे ऐसा लगता है कि संन्यास लूं तो ढोंग
कर रहा हूं।
शुरू में तो लगेगा। लगेगा भी इसीलिए कि तुमने संन्यास की कोई परंपरागत धारणा मान रखी है, कि संन्यासी कैसा होना चाहिए। मैं तो संन्यास की बिल्कुल एक नई अवधारणा दे रहा हूं। मैं तो कह रहा हूं तुमसे कि तुम जैसे हो, वैसे के वैसे संन्यासी हो सकते हो। तुम्हारे ऊपर कोई नया ढांचा नहीं बिठा रहा हूं।
पुराने संन्यास की एक धारणा है। उस धारणा से अगर तौलोगे तो ढोंग मालूम पड़ेगा। जैसे, पुराने संन्यासी को कैसे रहना चाहिए, उसमें अगर तुमने जरा भेद पाया कि इससे मैं भिन्न रह रहा हूं--पुराना संन्यासी ब्रह्ममुहूर्त में उठता है, मैं आठ बजे उठता हूं--तो तुम्हें लगेगा मैं ढोंग कर रहा हूं। वह धारणा के कारण ढोंग की स्थिति बन रही है। धारणा की कोई जरूरत ही नहीं है। धारणा को ही जाने दो, ढोंग भी गया। मैं तो तुम्हें सरल-सहज होने को कह रहा हूं। ढोंग की बात ही क्यों पैदा होती है दुनिया में? इसीलिए क्योंकि तुम्हारे ऊपर आदर्श थोप दिए गए हैं। जहां आदर्श है, वहां ढोंग है। मैं तो कोई आदर्श देता नहीं, सारे आदर्श छीन लेता हूं।
जैसे समझो, अगर तुम्हें आदर्श दे दिया कोई कि बस यही भोजन करना संन्यासी के योग्य है। जैसे मोरारजी देसाई कहीं जाते हैं तो बड़ी लंबी फेहरिस्त जाती है। उस फेहरिस्त में क्या-क्या चीजें वे लेते हैं, कब-कब लेते हैं, उस सबका ब्योरा होता है। इतना दूध लेंगे--गाय का; इतना घी लेंगे, वह भी गाय के दूध का; चमचम और संदेश और मलाई, वह सब भी लेते हैं, मगर वह सबके नीचे लिखा रहता है--गाय के दूध से बना हुआ। लहसुन लेते हैं वे, तो लहसुन भी वैसी जैसी गुजरात में होती है। रूस गए तो भी लहसुन गुजरात वाली! और आम वैसे जैसे लखनऊ के होते हैं। उनकी भी फेहरिस्त, कि लंगड़ा, कि फलाना, कि ढिकाना-- वह सारी फेहरिस्त, लंबी फेहरिस्त!
मगर यह कुछ नहीं है, मैं एक सज्जन को जानता हूं जो गाय का ही दूध नहीं लेते, सिर्फ सफेद गाय का दूध लेते हैं। एक दफे मेरे साथ यात्रा करनी पड़ी, बड़ी मुसीबत। अगर जरा सा काला दाग हो गाय पर, खतम। बिल्कुल सफेद गाय चाहिए। मैंने उनसे पूछा कि यह मामला क्या है? क्या तुम सोचते हो काली गाय का दूध काला होगा? दूध तो सफेद ही होगा। उन्होंने कहा कि वह तो ठीक है, लेकिन काला रंग तमस का रंग है, सफेद रंग सात्विकता का रंग है।
अब अगर ऐसी मूढ़ताओं में पड़ोगे और ऐसे जाल अपने चारों तरफ खड़े करोगे,
तो तुम्हें बहुत तरह के ढोंग करने पड़ेंगे। अब भूख लगी है जोर की, और गाय का दूध नहीं मिल रहा और भैंस का पीना पड़ा, तो चित्त में लगेगा--ढोंग हो रहा है। इसलिए नहीं कि भैंस का दूध पी रहे इसलिए ढोंग हो रहा है, बल्कि इसलिए कि वह जो धारणा बैठी है मन में कि गाय का ही पीना था तो ही सात्विक था।
तुम्हारी जितनी ज्यादा धारणाएं होंगी, उतना तुम्हारे भीतर ढोंग होगा। क्योंकि तुम्हारी सारी धारणाओं को हर हालत में पूरा करना आसान नहीं होगा।
मैं एक सज्जन को जानता हूं, जिनकी यह धारणा थी कि जब वे पानी भरें तो अपना बर्तन साफ करें, उस वक्त कोई स्त्री नहीं गुजरनी चाहिए। स्त्री गुजर गई कि बर्तन गंदा हो गया। फिर से बर्तन मलें। जब मुझे पता चला तो मैंने एक स्त्री को कहा कि पांच रुपये रोज दूंगा तुझे, इन महाराज को ठिकाने ही लगाओ! तेरा काम ही यही कि जब ये बर्तन लेकर जाएं नल पर, बस वहीं-वहीं चक्कर लगाना। मलने दो कितना मलते हैं।

दस दफे, पंद्रह दफे, बीस दफे--मगर वे भी आदमी एक हिम्मत के थे, मलते ही गए! क्रोध भी आए, गाली भी बकें, मगर कुछ कर भी नहीं सकते। आखिर उन्हें शक हुआ कि बात क्या है? यह औरत यहीं-यहीं क्यों चक्कर मार रही है? उससे पूछा कि बाई, तू यहीं-यहीं क्यों चक्कर मारती है? कहीं और जा! तेरे पीछे हमें बर्तन मलना पड़ रहा है बार-बार।
उसने कहा, आज तो नहीं जा सकती। इसका, यहीं चक्कर मारने का मुझे पांच रुपया मिला है। मुझे पता नहीं क्यों।... उसे मैंने कहा नहीं था कि इन सज्जन की वजह से।... मैं तो आज यहीं-यहीं चक्कर मारूंगी। और कल भी अगर पांच रुपये मिले तो कल भी चक्कर मारूंगी। आपको कोई तकलीफ है?
वे कहने लगे--उनकी आंखों में आंसू आ गए--उन्होंने कहा, तकलीफ? अस्सी बार बर्तन धो चुका हूं! अब क्या जिंदगी इसी में गुजरेगी? और मैं समझ गया किसने तुझे पांच रुपये दिए हैं।
वे अपना बर्तन लिए भागे सीधे मेरे पास आए, कि यह भी कोई मजाक है!
मैंने कहा, आज तो तुम्हें अपना पुराना नियम तोड़ना पड़ेगा।
उन्होंने कहा, वह तो ढोंग हो जाएगा। मन में मेरे भी कई बार आया, अस्सी बार हो गया बर्तन धोते-धोते, मन में मैंने भी सोचा--एकाध बार इधर को आंख करके, कि अपन ने देखा ही नहीं। जब देखा ही नहीं तो बात ही क्या? हालांकि देख तो लिया, मगर देखा ही नहीं! पानी भर कर अपने घर जाओ, अब यह दिन भर कब तक करते रहोगे? मगर वह ढोंग हो जाएगा।
अब तुम सोचते हो ढोंग कैसे पैदा होता है? पहले एक मूढ़तापूर्ण नियम तैयार कर लो। फिर उसके तोड़ने से ढोंग पैदा होता है। फिर कभी तोड़ना पड़े तो ग्लानि पैदा होती है, अपराध-भाव पैदा होता है। बनाओ आदर्श। जितने बड़े आदर्श बनाओगे, उतने ही तुम ओछे पड़ जाओगे। जितने ओछे पड़ोगे, उतनी ही तुम्हारी संभावना परमात्मा को पाने की कम हो जाएगी।
मैं तुमसे कहता हूं, सहज जीओ। सरलता से जीओ। आदर्श-मुक्त। बोधपूर्वक जीओ जरूर। बस बोध एकमात्र नियम है जो मैं तुम्हें देता हूं। प्रत्येक पल जो उचित लगे, उस क्षण में वह करो। अतीत की धारणाओं के आधार से मत जीओ वर्तमान में।
अन्यथा वर्तमान बदल रहा है, हर घड़ी बदल रहा है, गंगा बही जा रही है, और तुम पुरानी धारणा लिए बैठे हो! और वह धारणा दिक्कत देगी। वह कठिनाई में डालेगी। वह धारणा, दो ही संभावनाएं हैं उस धारणा के साथ। अगर तुम जिद्दी हुए, हठी हुए, तो पागल हो जाओगे उस धारणा को पूरा करने में। और अगर तुम थोड़े समझदार हुए, चालाक हुए, तो पाखंडी हो जाओगे। और ये ही दो विकल्प समाज ने दिए हैं तुम्हें। कुछ लोग जो होशियार हैं, वे पाखंडी हो गए हैं--बाहर कुछ दिखाते हैं, भीतर कुछ। रहते एक ढंग से हैं, दिखाते और ढंग से हैं। बोलते कुछ हैं, करते कुछ हैं। उनके जीवन में दोहरापन हो गया है। यह ढोंग, यह पाखंड। और कुछ जो जिद्दी हैं और बुद्धू हैं, वे पागल हुए जा रहे हैं। वे अस्सी दफे बर्तन मल रहे हैं। मगर एक बात सीधी सी समझ में नहीं आ रही है कि स्त्री के निकलने से बर्तन गंदा हो ही नहीं रहा है!
मैंने उन सज्जन को कहा कि अस्सी बार बर्तन धोकर भी तुम्हें यह अकल न आई--तुम भागे मेरे पास तो आ गए, तुम्हें यह तो अकल आ गई कि मैंने ही इस स्त्री को पांच रुपये दिए हैं, मगर तुम्हें यह अकल न आई कि स्त्री के गुजरने से यह पात्र गंदा कैसे हो जाएगा? पात्रों को कहीं पता चलता है कि कौन स्त्री, कौन पुरुष? और तुम नल पर बैठे पानी भर रहे हो और यह नल जिस झील से आ रहा है उस झील पर स्त्रियां घूम रही होंगी। और यह नल नालियों में से होकर चला आ रहा है और रास्ते में से होता चला आ रहा है और हजारों तरह की स्त्रियां घूम रही होंगी ऊपर। और हजार गंदगियों में से गुजर रही है यह नल की नली--वह सब ठीक, बस स्त्री दिखनी नहीं चाहिए! तुम्हारी आंख गंदी हो जाती है कि पात्र गंदा हो जाता है? मामला क्या है? आंख धो ली, पात्र के पीछे क्यों पड़े हो? किसने तुम्हें समझाया?
उन्होंने कहा कि मेरे गुरुदेव ने कहा था। वे तो अब रहे भी नहीं। तो अब मैं इस नियम को छोड़ भी नहीं सकता--आपकी बात जंचती है, मगर यह तो दगा होगा। गुरु के साथ दगा हो जाएगा। क्योंकि गुरु ने कहा था।

मैंने कहा, गुरु भी तुम्हारे जैसे ही, तुमसे भी ज्यादा महामूढ़ रहे होंगे! ये भी कोई बातें हैं!
मगर इसी तरह से चल रहा है। स्त्री जिस जगह बैठी हो, वहां संन्यासी को नहीं बैठना चाहिए जाकर। क्योंकि उस जगह में स्त्री की तरंगें रह जाती हैं।
तुम भी खूब बातें कर रहे हो! मां के पेट में नौ महीने रहे और तरंगें ही तरंगें रहीं, उन्हीं तरंगों से बने--और अब एक स्त्री बैठी है, उस जगह नहीं बैठना चाहिए! फिर ढोंग करना पड़ेगा। व्यर्थ के नियम बना लोगे, फिर ढोंग करना पड़ेगा। मैं तुमसे कहता हूं, नियम ही न बनाओ। कोई नियम न बनाओ। कोई आदर्श न थोपो। सरलता से, सहजता से जीवन को देखो, और जो उचित हो जिस क्षण में, वैसा करो। मगर औचित्य क्षण में से आना चाहिए, बोध में से आना चाहिए। औचित्य किसी बंधी-बंधाई तैयार धारणा में से नहीं आना चाहिए।
तुम कहते हो कि संन्यास ले लूं तो लगेगा कि ढोंग कर रहा हूं।
नहीं, जरा भी ढोंग नहीं कर रहे हो। संन्यास लेने का भाव उठ रहा है, क्रांति का आवाहन सुनाई पड़ रहा है, कहीं मैंने तुम्हारे हृदय को छू लिया है, कहीं तुम गीले हो गए हो, अब झुठलाओ मत! इन व्यर्थ की बातों में अपने को बहलाओ मत। रही पात्रता की बात, तुम पात्र हो! इस जगत में सभी कुछ पात्र है, क्योंकि परमात्मा व्याप्त है। जहां परमात्मा व्याप्त है, वहां अपात्रता कैसी? हां, तुम्हें और-और पात्र बनाएंगे।
यह बात तुम्हें थोड़ी बेबूझ लगेगी।
मैं तुमसे कहता हूंः तुम जैसे हो, पूर्ण हो। हां, तुम्हें और-और पूर्ण बनाएंगे। तुम जैसे हो, पात्र हो। हां, तुम्हें और-और पात्र बनाएंगे। सौंदर्य पर और सौंदर्य चढ़ाएंगे। लेकिन तुम गंदे नहीं हो। और तुम पापी नहीं हो। तुम्हारे पुण्य पर और-और नये पुण्य के आभूषण लगाएंगे, तुम्हारे पुण्य पर और हीरे चढ़ाएंगे, तुम्हारे पुण्य को और पुण्य बनाएंगे, लेकिन तुम जैसे हो, शुभ हो, सुंदर हो। क्योंकि परमात्मा को स्वीकार हो। परमात्मा को स्वीकार हो तो मैं तुम्हें कैसे अस्वीकार कर सकता हूं? तुम भी अपने को स्वीकार करो--इतना तो करो कम से कम, कि परमात्मा ने तुम्हें जीवन दिया, तुम इस जीवन का तो सम्मान करो, स्वीकार करो। इसी स्वीकार में से तुम्हारे भीतर वास्तविक धर्म का उदय होगा। इसी स्वीकार में से सत्य का जन्म होता है।

आखिरी प्रश्नः
पिया मेरे मैं कुछ नहीं जानूं,
मैं तो चुप-चुप चाह रही।
मेरे पिया तुम कितने सुहावन,
तुम बरसो ज्यों मेहा सावन।
मैं तो चुप-चुप नहा रही।
पिया मेरे तुम अमर सुहागी,
तुम पाए मैं बहु बड़भागी,
मैं तो पल-पल ब्याह रही।
पिया मैं तो कुछ नहीं जानूं,
मैं तो चुप-चुप चाह रही।

वीणा भारती! भाव की ऐसी दशा का नाम ही प्रार्थना है। मांगना नहीं होता कुछ, चाहना नहीं होता कुछ; मांग चुप ही रहती है और भर जाती है। मांग बोली भी नहीं जाती और झोली भर जाती है। प्रार्थना मुखर नहीं होती, मौन होती है। और परमात्मा कोई सत्य का सिद्धांत नहीं है वरन अस्तित्व को प्रीति करने की एक आयोजना है। इसलिए परमात्मा को प्यारे की तरह ही देखो, प्रीतम की तरह ही देखो!
पिया मेरे मैं कुछ नहीं जानूं,
और प्रेम का जानने से क्या संबंध? प्रेम जानता नहीं, प्रेम निर्दोष है। प्रेम ज्ञान से मुक्त है। ज्ञान का कचरा प्रेम नहीं ढोता। और जो ज्ञान का कचरा ढोते हैं, उनके जीवन में कभी प्रेम के फूल नहीं खिलते। वे तो ज्ञान

की खाद ही इकट्ठी करते रहते हैं। उनके जीवन में तो दुर्गंध ही दुर्गंध फैल जाती है। प्रेम लाता है एक नई किरण, प्रेम के साथ आता है एक नया आयाम। पिया मेरे मैं कुछ नहीं जानूं,
मैं तो चुप-चुप चाह रही।
चुप-चुप ही चाहा जाता है। गुप-चुप चाहा जाता है। कानों-कान किसी को खबर नहीं पड़ती। बात कहने की है ही नहीं, बात पी जाने की है। बात पचा जाने की है। मांस-मज्जा बन जाए बात, ऐसे चुप सन्नाटे में प्रार्थना पकती है। गर्भ में समा जाए बात, वहीं तुम्हारा नया जीवन है।
मेरे पिया तुम कितने सुहावन,
तुम बरसो ज्यों मेहा सावन।
और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर प्रेम जगेगा, वैसे-वैसे सारा अस्तित्व उस प्यारे की भाव-भंगिमाएं प्रकट करने लगेगा। वही होता है सुबह के सूरज में। वही होता है रात के तारों में। वही है कलकल नाद में गंगा के। वही है सागर की उत्ताल तरंगों में। वही बरसेगा सावन का मेघ बन कर। और जब बरसे सावन का मेघ बन कर, तो हो मुक्त, छोड़ सब परिधान, छोड़ सब ज्ञान, नहा लेना, खूब नहा लेना!
मैं कल एक कविता पढ़ता था। वह कविता तो दो साधारण प्रेमियों की है, लेकिन उस कविता को हम पंख दे सकते हैं और प्रार्थना बना सकते हैं।

वसनों की चिंता नहीं करो, सुख है ऐसी नादानी में
हम दोनों साथ खड़े भीगें बरखा के पहले पानी में

छोड़ो भी कार्य गृहस्थी के
जैसी भी हो, आओ छत पर
देखो तो क्या यौवन उमड़ा
मेघों वाली अल्हड़ ऋतु पर
जामुनी घटा घिर आई है
पछुआ ने लट बिखराई है
बूंदें तिर आईं नयनों में इन बूंदों की अगवानी में हम दोनों साथ खड़े भीगें बरखा के पहले पानी में

तुम मुक्त-केशिनी हो जाओ
जूड़ा खुलता, खुल जाने दो
आंचल ढलके, ढल जाने दो
कजरा धुलता, धुल जाने दो
यह है मुहूर्त संयम टूटे
हो प्राण विकल धीरज छूटे
स्वीकृति ही अर्थ निकलता है इस झूठी आनाकानी में हम दोनों साथ खड़े भीगें बरखा के पहले पानी में

मुखड़े पर बौछारें झेलो
पोओ बरौनियों में मोती
देखो मौसम की कृपा-कोर
ऐसी हर बार नहीं होती
सोंधी मिट्टी की महक उठी
नस-नस में पावक दहक उठी
अब रोपें कोई प्रणय-स्वप्न इस मौसम की मेहमानी में
हम दोनों साथ खड़े भीगें बरखा के पहले पानी में
जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को कहता हो--
वसनों की चिंता नहीं करो, सुख है ऐसी नादानी में
हम दोनों साथ खड़े भीगें बरखा के पहले पानी में
बरखा का पहला पानी आया हो, अषाढ़ के मेघ घिरे हों, पहली बूंदाबांदी हुई
हो और प्रेमी बुलाता हो प्रेयसी को कि छोड़ो फिकर घर-गृहस्थी की, वस्त्रों

की, केशों की, काजल की, आ जाओ, भीगें बरखा के पहले पानी में। ऐसे ही तो गुरु भी शिष्य को बुलाता है। यही तो पुकार, वीणा, मैंने भी तुझे दी है। सावन के बादल घिरे हैं। जहां भी कोई सदगुरु है, वहां सावन के बादल घिरे हैं। और शिष्य अगर हिम्मत जुटा ले गुरु के साथ थोड़ा निर्वसन होने की, निश्चिंत होने की, श्रद्धायुक्त होने की, तर्कमुक्त होने की, विचार और शास्त्र को त्याग देने की, छोड़ देने की; सरल निर्दोष बच्चे की भांति प्रीति में बंधा गुरु का हाथ पकड़ आ जाए मेघों के नीचे, तो धुल जाए जन्मों-जन्मों का कलुष, तो धुल जाए जन्मों-जन्मों का क्लेश, तो धुल जाए सारी धूल, तो तुम हो जाओ पवित्र--वैसे जैसे कि तुम हो, जैसे कि तुम्हें होना ही चाहिए, जैसा कि तुम्हारा स्वभाव है।
मेरे पिया तुम कितने सुहावन,
तुम बरसो ज्यों मेहा सावन।
मैं तो चुप-चुप नहा रही।
इस स्नान का नाम ही ध्यान है। खोलो अपने को। और ध्यान रहे, परमात्मा प्रतिपल बरस रहा है। सावन कभी आता और जाता, ऐसा नहीं। यह ऋतु आने-जाने वाली ऋतु नहीं है। परमात्मा तो सदा मौजूद है। बस हम ही हैं कि द्वार-दरवाजे बंद किए बैठे हैं। न उसकी हवाओं को भीतर आने देते, न उसकी रोशनी को भीतर आने देते, न उसकी बूंदाबांदी को भीतर आने देते। हमने सब तरफ से ओट कर ली है, हम सब तरफ से अपने को छिपा कर अंधेरे में बैठ गए हैं।
पिया मेरे तुम अमर सुहागी,
तुम पाए मैं बहु बड़भागी।
मैं तो पल-पल ब्याह रही।
वीणा! तू ठीक कहती है। ऐसा ही अनुभव होता है। प्रार्थना में डूबते व्यक्ति को ऐसा ही लगता है--मैं तो पल-पल ब्याह रही। शहनाई बजती ही चली जाती है विवाह की, मंडप सजता ही चला जाता है विवाह का, फेरी पर फेरी पड़ती ही चली जाती हैं। ये फेरियां सात पर समाप्त नहीं होतीं। ये फेरियां समाप्त ही नहीं होतीं। ये तो अनंत फेरे हैं। और हर बार गांठ और मजबूत होती चली जाती है, और मजबूत होती चली जाती है। और एक ऐसी घड़ी आती है कि दो दो नहीं रह जाते, एक ही हो जाते हैं। उसी घड़ी की प्रतीक्षा है। उसी घड़ी को तलाशो। उसी घड़ी को खोजो। उस घड़ी को जिसने पा लिया, वही बड़भागी है।
और जो मेरे साथ जुड़े हैं, उनके पैर धीरे-धीरे उस घड़ी की तरफ बढ़ने लगे हैं। और एक कदम भी बढ़ता है तुम्हारा उस तरफ, तो महाक्रांति घटती है। क्योंकि जब तुम एक कदम परमात्मा की तरफ उठाते हो, तो परमात्मा हजार कदम तुम्हारी तरफ उठाता है। यही नियम है।
पिया मैं तो कुछ नहीं जानूं,
मैं तो चुप-चुप चाह रही।
जानने की जरूरत ही नहीं। चाह को भी प्रकट करने की जरूरत नहीं। रहने दो वीणा मौन। उस मौन में ही उठेगा संगीत, उस मौन में ही उठेगा नाद। वही नाद उसके चरणों को छू लेता है। तुम्हारे कहे गए शब्द तो बहुत भारी होते हैं, वापस जमीन पर गिर जाते हैं; जैसे पत्थर फेंको आकाश में, वापस लौट आते हैं। मौन ही पहुंच सकता है उस तक, क्योंकि मौन निर्भार है। शून्य ही पहुंच सकता है उस तक, क्योंकि शून्य पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं है।
डर लगेगा लेकिन। भय लगेगा लेकिन। चुप्पी में भय लगता है। इसलिए लोग चुप नहीं होते। बातचीत किए जाते हैं। काम की, बेकाम की। न करनी हो तो भी किए जाते हैं। कोई दूसरा न मिले तो अपने से ही बात करते रहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रेलवे स्टेशन पर बैठा है। ट्रेन हो गई है बहुत लेट। कुछ-कुछ अपने से ही बड़बड़ाता है। कभी-कभी बड़बड़ा कर हंसता है। और कभी- कभी बड़बड़ा कर हाथ से एक झटका देता है कि हट! धत तेरे की! एक आदमी दूर खड़ा देख रहा है। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि बात क्या है? न रहा गया, जिज्ञासा बढ़ गई, वह आदमी पास आया। उसने कहा, क्षमा करें बड़े मियां, पूछना तो नहीं चाहिए, आपकी निजी बात। आप जो भी कर रहे हैं, आपकी मर्जी। और अपरिचित को छेड़ना भी नहीं चाहिए। मगर मैं रोक न सका अपने कुतूहल को, अपनी जिज्ञासा को। यह माजरा क्या है? आप क्या करते हैं? कुछ-कुछ बड़बड़ाते हैं--

ओंठ आपके हिलते मैं देखता हूं, सुनाई तो कुछ पड़ता नहीं, भीतर-भीतर कुछ कहते होंगे; कभी-कभी मुस्कुराते हैं, खिलखिला जाते हैं; और कभी कहते हैंः धत तेरे की! और कुछ फेंकते से मालूम पड़ते हैं।
मुल्ला ने कहा कि नहीं, कोई बुराई की बात नहीं पूछा तो। अच्छा ही किया पूछा तो। असल में मैं चाहता ही था कि कोई कुछ पूछ ले। अकेला-अकेला बैठा घबड़ा गया, इसीलिए तो अपने से ही बात कर रहा था। अपने से ही कुछ पुराने चुटकुले सुना रहा हूं। जब कभी कोई जोरदार चुटकुला आ जाता है तो खिलखिला पड़ता हूं, हंसी आ जाती है।
उसने पूछा, वह भी मैं समझ गया, मगर यह धत तेरे की! और जब झिड़क देते हैं?
तो मुल्ला ने कहा कि जब कोई सुना-सुनाया चुटकुला आ जाता है, तो धत तेरे की! झटक देता हूं।
अकेले में भी बैठे-बैठे लोग... तुम भी जरा गौर करना, चाहे ओंठ न हिलते हों, बैठे-बैठे अपने से ही बात करते रहते हो। वे ही बातें जो अपने से कई बार कर चुके हो। कितनी बार कर चुके हो! टूटे-फूटे ग्रामोफोन रिकार्ड हो गए हो। वहीं सुई अटकी है। वही-वही चलता रहता है, वही-वही चलता रहता है। वही तुम दूसरों से कहते हो, वही अपने से कहते रहते हो। दूसरे भी क्या कहेंगे, तुम्हें पता है। कई बार कह चुके। तुम भी उनसे क्या कहोगे, तुम्हें पता है। चुप्पी कठिन है।
क्यों कठिन है?
क्योंकि जैसे ही तुम चुप होने लगते हो, अहंकार तिरोहित होने लगता है। जैसे ही सारे शब्द खोने लगते हैं, वैसे ही शब्दों के बीच में छिपा हुआ जो अहंकार है, वह मरने लगता है। वह शब्दों पर ही जीता है। शब्दों के सहारे ही खड़ा है। शब्द उसके बैसाखी हैं। इसलिए मौन निर-अहंकारिता में ले जाता है। और अकेले होने में डर लगता है। जैसे ही बातचीत बंद हुई कि तुम बिल्कुल अकेले हो जाते हो। इसलिए अपने से भी लोग बात करते हैं। लोग अकेले ही ताश भी खेलते हैं; दोनों तरफ से बाजी चलते हैं। कभी अंधेरी गली में अकेले गए हो? डर लगने लगता है तो जोर-जोर से गाना गाने लगते हो। अपना ही गाना सुन कर थोड़ा ढाढ़स बंधता है, हिम्मत आती है, ऐसा लगने लगता है कि अकेला नहीं हूं, कोई गाने वाला भी है। कोई नहीं है वहां।
जो लोग पर्वत-शृंखलाओं पर चढ़ते हैं, पर्वतारोही, उनका यह अनुभव है, अनेक-अनेक पर्वतारोहियों का अनुभव है, कि जब कभी पर्वतों पर वे भटक जाते हैं, बिल्कुल भटक जाते हैं, और लगने लगता है कि अब जीवन के बचने का कोई उपाय नहीं है, अधर में लटके रह जाते हैं--ऊपर ऐसी विराट चट्टान है कि पार न कर सकेंगे, नीचे खड्ड है कि गिरेंगे तो मौत है; संगी-साथियों से नाता छूट गया है, लटके हैं रस्सी से, या लटके हैं जड़ से--तो पर्वतारोहियों का यह अनुभव है कि जब ऐसी कभी घड़ी आती है पर्वत के सन्नाटे एकांत में, तो ऐसा लगता हैः कोई साथ है। कोई साथ है, अकेले नहीं हैं। वह कौन साथ है? कोई साथ नहीं है। मगर मन आखिरी धोखे देता है। जब कोई साथ नहीं है, तब भी तुम्हें भरोसा दिलाता है--कोई साथ है।
और यह मार्ग है अकेले का।

उड़ चल अकेला,
तोड़ प्रीति-बंध विहग उड़ चल अकेला।
भूले सब स्नेह-गान,
छोड़ा तरु-तीर मोह,
उड़ा विकल खग अजान श्वेत पंख फैला। आशा विश्वास धीर,
भर कर मन में अकूल,
बिसरा पथ-प्यार-पीर,
उड़ता जाता अधीर कहीं इस अबेला। उड़ चल अकेला,
तोड़ प्रीति-बंध विहग उड़ चल अकेला।

सब संबंधों के पार जाना है। अपने को दो हिस्सों में भी बांट कर बात की,
तो संबंध बना रहता है। तो हम दो बने रहते हैं, दुई बनी रहती है। अकेले ही चलना होगा।

एकाकी ही चलना होगा!
दुनिया में राही सब मानव
अलग-अलग पर राह सभी की,
जग-कोलाहल में लय होता
गान किसी का, आह किसी की,
पथ के कांटों को तलुवों से एकाकी ही दलना होगा! एकाकी ही चलना होगा!
पृथ्वी पर दीपक जलते हैं
नभ में ज्योतित अनगिन तारे,
चंद्र सूर्य भी आलोकित
करते हैं रजनी दिवस हमारे,
अपनी राह खोजनी है तो एकाकी ही जलना होगा!
एकाकी ही चलना होगा!

वीणा! मौन को साध! चुप्पी को साध! प्रार्थना को भी पी जा और पचा ले! मांगना ही मत परमात्मा से कुछ। तो ही परमात्मा मिलता है। कुछ मांगा कि चूके। कुछ मांगा कि भटके। मांग आई कि प्रार्थना मरी।
न कुछ मांगना है, न कुछ निवेदन करना है, सिर्फ स्वयं को शून्य-भाव से उसके हाथों में छोड़ देना है। जहां ले चले। जैसी उसकी मर्जी! तब खूब होगा स्नान उसके सावन के मेहों में। खूब बजेगी वीणा। अनंत का संगीत जगेगा।
अमृत की उपलब्धि होगी। और वह सब हमारा अधिकार है। चूकते हैं तो अपने कारण।
जरा सम्हल जाएं, जरा होश सम्हाल लें, तो चूकने की कोई भी जरूरत नहीं है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
चौथा प्रवचन

अब जुनूं राहनुमा जिंदगी राही होगी

पहला प्रश्नः एक कौतुक मैंने देखाः मेरी खोपड़ी में खंजड़ी बजे रे लोल! क्या भक्त को अहंकार होता है? जहां ढूंढ़ा, तो श्री हरि आपको ही पाया।

तरु! कौतुक इसमें कुछ भी नहीं। सचाई यही है। खोपड़ी खंजड़ी से ज्यादा नहीं। खोपड़ी में चल रहा शोरगुल बस बजाई गई खंजड़ी से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। खोपड़ी तुम्हारी आत्मा नहीं है, तुम्हारी आत्मा पर जम गया कूड़ा-करकट है। विचार तुम पर जम गई धूल है। तुम हो दर्पण। धूल झड़े, दर्पण निखरे, तो जो है उसकी प्रतिछबि बने, सत्य का अनुभव हो, साक्षात्कार हो।
खोपड़ी ही बाधा है। और तो कोई बाधा नहीं है तुम्हारे और परमात्मा के बीच। वह जो खोपड़ी की खंजड़ी बजती रहती है--और बजती ही रहती है; दिन बजती, रात बजती; जागते बजती, सोते बजती; एक तरफ से बंद करो, दूसरी तरफ से बजती; उसे बजने के बहुत ढंग आते हैं। आस्तिक की तरह बजती, नास्तिक की तरह बजती; हिंदू की तरह बजती, मुसलमान की तरह बजती। खोपड़ी के रास्ते बड़े जटिल हैं, बड़े प्रवंचनापूर्ण हैं। तुम जैसा चाहो वैसा बजती है। मगर एक बात भर चाहती है कि बजती रहे, शोरगुल होता रहे। इसी शोरगुल के कारण भीतर जो छिपे हुए प्राणों का अपना नाद है, वह सुनाई नहीं पड़ता। तुम्हारे प्राणों के प्राण में वेद का उच्चार हो रहा है, वेदों का जन्म हो रहा है--इस क्षण, अभी, यहीं। लेकिन खोपड़ी सुनने दे तब न!
और खोपड़ी बड़ी होशियार है। अपने को बचाने के बहुत उपाय करती है। अपने
को बचाने के बहुत तर्क खोजती है; सुरक्षाएं, सुविधाएं। और कहीं खोपड़ी से तुम्हारा साथ न छूट जाए, इसके इतने आयोजन करती है, इतनी खूंटियां गाड़ती है और इतनी व्यवस्था से गाड़ती है कि धीरे-धीरे तुम्हें लगने लगता हैः यही मैं हूं। तुम्हारा तादात्म्य हो जाता है। और जिसका अपनी खोपड़ी से तादात्म्य हो गया, वह सदियों-सदियों के लिए भटक जाता है। खोपड़ी से संबंध तोड़ना है, ताकि हम उसे जान सकें जो हम हैं।
तो तरु, तू पूछती हैः "एक कौतुक मैंने देखाः मेरी खोपड़ी में खंजड़ी बजे
रे लोल!"
कौतुक नहीं है। लेकिन कौतुक जैसा ही मालूम होगा। क्योंकि जिससे हमारा सदा-सदा तादात्म्य रहा है, अचानक हमें पता चले कि अलग ही कोई चीज बज रही है, मुझसे भिन्न कोई चीज बज रही है, यह मैं नहीं हूं, तो आश्चर्यविमुग्ध हो जाना पड़ेगा। एक क्षण को सब ठिठक जाएगा; एक सन्नाटा छा जाएगा। और एक क्षण को ऐसा लगेगा कि कहीं मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं। क्योंकि खोपड़ी ने दावा कर रखा है कि बुद्धिमानी उसकी ठेकेदारी है। खोपड़ी ने तुम्हें समझाया है कि मैं हूं, तो तुम बुद्धिमान। मैं नहीं, तो तुम मूढ़। मैं हूं, तो तुम समझदार। मैं नहीं, तो तुम विक्षिप्त। खोपड़ी प्रेम की निंदा करती है। क्योंकि प्रेम तुम्हें वहां ले जाएगा जहां खोपड़ी की गति नहीं है। खोपड़ी परमात्मा की निंदा करती है। क्योंकि परमात्मा तक जाने का मार्ग पागलपन से होकर गुजरता है, दीवानगी से होकर गुजरता है। तो पहले-पहले तो लगेगा कि यह कैसा चमत्कार हो रहा है! यह क्या अनहोना घट रहा है! लेकिन कुछ अनहोना नहीं है।
जुनूं खुदनुमा खुदनिगर भी नहीं,
खिरद की तरह कमनजर भी नहीं।
एक ऐसा पागलपन भी है जो बुद्धि से बहुत बड़ा है और बुद्धि से कहीं ज्यादा बुद्धिमान है। बुद्धि तो बड़ी संकीर्ण है। एक ऐसा पागलपन भी है, जो आकाश की तरह विस्तीर्ण है।
जुनूं खुदनुमा खुदनिगर भी नहीं,
खिरद की तरह कमनजर भी नहीं।
खिरद यानी बुद्धि। बुद्धि की तरह छोटी दृष्टि भी नहीं है, एक ऐसा जुनून भी है। उसी जुनून का नाम प्रेम है। और उसी जुनून की परम अभिव्यक्ति

भक्ति है। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन! पागल होने की क्षमता हो तो ही कोई प्रेमी हो सकता है। और उस उन्माद, उस परम उन्माद की खूबियां हैं।
उस परम उन्माद की दो खूबी हैं। एक--
जुनूं खुदनुमा खुदनिगर भी नहीं,
एक तो जुनून अहंकारी नहीं होता। वहां कहां अहंकार? वहां पता कहां अपना? विराट में सब खो जाता है। लहरें सागर के साथ एक हो जाती हैं।
जुनूं खुदनुमा खुदनिगर भी नहीं,
और विक्षिप्तता, वह परम विक्षिप्तता, जिसको भक्ति कहें, भाव कहें, वह अपने पर आश्रित भी नहीं है। वह तो परमात्म-आश्रित है। उसका स्रोत तो परमात्मा में है। हौज अपने पर आश्रित होती है। उसका पानी बस उसमें ही भरा है। कुआं अपने पर आश्रित नहीं होता। उसके झरने सागर से जुड़े हैं।
जुनूं खुदनुमा खुदनिगर भी नहीं,
खिरद की तरह कमनजर भी नहीं।
कोई राहजन का खतर भी नहीं,
कि दामन में गर्दे-सफर भी नहीं।
और जो चल पड़े इस उन्माद के मार्ग पर, वे लूटे नहीं जा सकते। उन्हें डाकुओं का खतरा भी नहीं है। प्रेम ही एक ऐसी संपदा है जिसे कोई चुरा न सकेगा। प्रेम ही एक ऐसी संपदा है जिसे कोई छीन न सकेगा। गर्दन काटी जा सकती है, प्राण लिए जा सकते हैं, मगर तुम्हारा प्रेम नहीं छीना जा सकता। कोई राहजन का खतर भी नहीं,
कि दामन में गर्दे-सफर भी नहीं।
अदभुत है यह उन्माद का मार्ग कि कोई इसे लूट नहीं सकता, कोई लुटेरा रास्ते में हमला नहीं कर सकता। और, इतनी लंबी यात्रा है प्रेम की--पदार्थ से परमात्मा तक, इतनी बड़ी यात्रा है--फिर भी दामन पर धूल इकट्ठी नहीं होती। ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी रे कबीरा। जिन्होंने प्रेम का रास्ता जाना है, वे तो रोज नहाए ही नहाए हैं, प्रतिपल नहाए ही नहाए हैं। उनके ऊपर तो परमात्मा की वर्षा होती ही रहती है, अमृत झरता ही रहता है, धूल जमने नहीं पाती।
यहां होशो-ईमां सभी लुट गए,
मजा ये है उनको खबर भी नहीं।
और जो इस प्रेम के उन्मादपूर्ण पथ पर चले हैं, वहां होश भी लुट जाता है, तथाकथित धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप की धारणाएं भी लुट जाती हैं।
यहां होशो-ईमां सभी लुट गए,
मजा ये है उनको खबर भी नहीं।
पता ही नहीं चलता। बुद्धि को पता नहीं चलता कि कब बुद्धि विदा हो गई। होश, समझदारियां कब विलीन हो गईं, कानों-कान खबर नहीं होती। यह सब चुपचाप हो जाता है, यह मौन में हो जाता है।
कूचा-ए-शौक रहे-फिक्रो-नजर से गुजरे,
जिन्होंने प्रेम की यह गली पकड़ ली, वे प्यारे की गली में आ गए!
कूचा-ए-शौक रहे-फिक्रो-नजर से गुजरे,
फिर उनकी आंखों में बस एक प्यारे की गली ही दिखाई पड़ती है। फिर उनके चिंतन-मनन-निदिध्यासन में बस एक प्यारे की गली ही दिखाई पड़ती है। कूचा-ए-शौक रहे-फिक्रो-नजर से गुजरे,
नक्शे-पा छोड़ गए हम तो जिधर से गुजरे।
और प्रेमी जहां से गुजर जाते हैं, वहां मंदिर खड़े हो जाते हैं। उनके पैरों के चिह्न जहां पड़ जाते हैं, वहां काबा और कैलाश बन जाते हैं, वहां तीर्थों के निर्माण हो जाते हैं।
कूचा-ए-शौक रहे-फिक्रो-नजर से गुजरे,
नक्शे-पा छोड़ गए हम तो जिधर से गुजरे।
आज ऐ वहशते-दिल जाने किधर से गुजरे।
और फिर ऐसी भी घड़ी आती है--उस उन्माद की परम घड़ी--जब कुछ भी पता नहीं चलता कि कहां से गुजर रहे हैं। क्योंकि प्रेमी और प्यारे में भी भेद नहीं रह जाता। कौन मैं, कौन तू--कुछ अंतर नहीं रह जाता।

आज ऐ वहशते-दिल जाने किधर से गुजरे।
कितने दिलचस्प थे मंजर जो नजर से गुजरे।
और तभी जीवन के परम रहस्य अपने द्वार खोलते हैं।
कितने दिलचस्प थे मंजर जो नजर से गुजरे।
फिर जो आंखों में दिखाई पड़ता है, वही परमात्मा है। फिर जिसकी प्रतीति होती है, वही सत्य है। फिर हृदय में जिसका स्वाद उतरता है, उसकी ही तलाश थी, जन्मों-जन्मों उसी की खोज थी।
आज ऐ वहशते-दिल जाने किधर से गुजरे।
कितने दिलचस्प थे मंजर जो नजर से गुजरे।
हम भी मस्जिद के इरादे से चले थे लेकिन,
मैकदे राह में हायल थे जिधर से गुजरे।
सोचा तो था कि मस्जिद से गुजरेंगे। विचारा तो था कि मस्जिद से गुजरेंगे। चले तो थे शास्त्रों, सिद्धांतों, प्रश्नों के अंबार लेकर। सोचा तो था कि मंदिर रास्ते में पड़ेगा, मस्जिद रास्ते में पड़ेगी। सोचा तो था कि वेद और कुरान और बाइबिल रास्ते में मिलेंगे। मगर कुछ और हुआ, कुछ और ही हुआ! और जब पहली दफा होता है, तरु, तो कौतुक मालूम होता है।
हम भी मस्जिद के इरादे से चले थे लेकिन,
मैकदे राह में हायल थे जिधर से गुजरे।
लेकिन हुआ कुछ और। चले थे मस्जिद के इरादे से और पहुंच गए मधुशाला। प्रेमी मधुशाला पहुंच ही जाते हैं। प्रेम मधुशाला पहुंचा ही देता है। प्रेम कहीं और नहीं ले जा सकता। और मधुशाला का अर्थ होता हैः कोई जीवित सत्संग। मधुशाला का अर्थ होता हैः जहां गर्दनें काटी जा रही हैं और जहां हृदय सींचे जा रहे हैं। मधुशाला का अर्थ होता हैः जहां विचार छोड़े जा रहे हैं और प्रेम के फूल खिलाए जा रहे हैं। मधुशाला का अर्थ होता हैः जहां शास्त्र जलाए जा रहे हैं और सत्यों की अनुभूतियां उपलब्ध कराई जा रही हैं। मधुशाला का अर्थ होता हैः जहां होश-हवास खोया जा रहा है और एक नया होश, एक नया जागरण, एक नई चेतना का सूत्रपात हो रहा है।
एक तो होश है खोपड़ी का, वह खंजड़ी की आवाज से ज्यादा नहीं। और एक होश है हृदय का, जहां ओंकार का नाद बजता है। कौतुक मालूम होगा। शुरू-शुरू कौतुक मालूम होना निश्चित है।
ये वो मंजिल है कि इलियास भी गुम खिज्र भी गुम, हाय आवारगी-ए-शौक किधर
से गुजरे?
प्रेम का गंतव्य ऐसा है कि वहां बड़े-बड़े पैगंबर--इलियास और खिज्र भी गुम हो जाते हैं। वहां बड़े-बड़े मार्गदर्शक भी किसी काम नहीं आते।
ये वो मंजिल है कि इलियास भी गुम खिज्र भी गुम, हाय आवारगी-ए-शौक किधर
से गुजरे?
लेकिन प्रेम के दीवाने वहां भी पहुंच जाते हैं। जहां बड़े पैगंबर थक
कर गिर जाते हैं और गल जाते हैं, प्रेम के दीवाने वहां भी गति कर जाते हैं। कितनी अमवाजे-बला पांओं की जंजीर बनीं,
कितने तूफाने-हवादिस थे कि सर से गुजरे।
और कितनी मुसीबतों ने पैरों में जंजीरें डालीं, और कितने तूफान आए, और कितनी आंधियां उठीं, और कितने उपद्रव सिर से गुजरे।
जाहिदो-शैख में क्या-क्या न हुई सरगोशी,
और पंडित-पुरोहितों में, त्यागी-वैरागियों में कैसी-कैसी अफवाहें न उड़ीं--प्रेमियों के प्रति सदा ही अफवाहें उड़ती हैं।
जाहिदो-शैख में क्या-क्या न हुई सरगोशी,
मैकदे जाते हुए हम जो उधर से गुजरे।
मधुशाला जाते वक्त, जब किसी प्रेम के सत्संग में जाते वक्त, किसी बुद्ध, किसी महावीर, किसी कृष्ण के पास जाते समय मंदिर-मस्जिद के पुजारी भी देखेंगे--कहां जा रहे हो। और उनके मन में निंदाएं भी उठेंगी। और विरोध भी उठेंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि वे तो खोपड़ी को ही सब कुछ समझे बैठे हैं। खोपड़ी की अभी उनकी खंजड़ी नहीं बनी। अभी तो खोपड़ी में ही विराजमान हैं। वही उनका सिंहासन है।

फैजे-मैखाना अभी आम नहीं है वरना,
कौन है जिसने मये-नाब न चाही होगी?
मगर एक बात है, मधुशाला अभी तक भी पूरी पृथ्वी पर नहीं फैल पाई, क्योंकि लोगों को मधुशाला का मजा ही पता नहीं है। उन्हें खबर ही नहीं है। फैजे-मैखाना अभी आम नहीं है वरना,
मधुशाला की उदारता का भी उन्हें पता नहीं है, कि वहां किस तरह ढाली जा रही है; किस तरह, पात्र हो कि अपात्र, सभी को ढाली जा रही है; कि न कोई छोटा है, न कोई बड़ा; न कोई अच्छा है, न कोई बुरा; न कोई साधु, न कोई असाधु; बेशर्त बांटी जा रही है।
फैजे-मैखाना अभी आम नहीं है वरना,
कौन है जिसने मये-नाब न चाही होगी?
ऐसा कौन है जो मस्त नहीं हो जाना चाहता? ऐसा कौन है जो प्रेम को पीकर नाच नहीं उठना चाहता? लेकिन मधुशाला की उदारता लोगों को पता नहीं है--कि मधुशाला तैयार है, भरो अंजुलि, पीओ जितना पीना हो।
मगर पंडित हैं, पुजारी हैं, त्यागी हैं, व्रती हैं, रास्तों पर खड़े हैं, वे अटका रहे हैं। वे मंदिरों-मस्जिदों में भेज रहे हैं। वे वहां भेज रहे हैं जहां शब्दों के जाल हैं केवल। वे वहां भेज रहे हैं जहां सिद्धांतों का बड़ा ऊहापोह, बड़ा शोरगुल है। जहां एक ही खोपड़ी की खंजड़ी नहीं बज रही है, बहुत खोपड़ियों की खंजड़ियां साथ-साथ बज रही हैं। जहां बाजार भरा है।
जिसपे औहामो-जहालत के पड़े हों पर्दे,
मोतबर खाक वो महदूद निगाही होगी।
और जहां सिद्धांतों और शब्दों की संकीर्णताएं चित्त पर बैठी हों, वह आंख कैसे विस्तीर्ण हो सकती है? कैसे विस्तार को अनुभव कर सकती है? सिद्धांत संकीर्ण करता है। हिंदू हुए, संकीर्ण हुए; जैन हुए, संकीर्ण हुए; मुसलमान हुए, संकीर्ण हुए। सिद्धांत संकीर्ण करता है। सिद्धांत-मुक्त होते ही विस्तीर्ण होते हो तुम। और जहां विस्तार सिखाया जाता हो, वहीं आकाश से संबंध भी जुड़ सकता है।
जिसपे औहामो-जहालत के पड़े हों पर्दे,
मोतबर खाक वो महदूद निगाही होगी।
इंकलाबात की मंजिल है खिजर से कह दो,
अब जुनूं राहनुमा जिंदगी राही होगी।
अब कह दो तुम्हारे पथ-प्रदर्शकों से एक बात, उनको साफ हो जाने दो एक बात--
इंकलाबात की मंजिल है खिजर से कह दो,
कि अब राह दिखाने वाला हमें मिल गया।
अब जुनूं राहनुमा जिंदगी राही होगी।
अब तो हमारा पागलपन ही हमारा पथ-प्रदर्शक होगा और जिंदगी ही हमारा मार्ग होगी, अब तो हम जिंदगी के मार्ग से चलेंगे और दीवानों की तरह डोलते हुए चलेंगे।
जो दीवानों की तरह डोलता हुआ चलता है, वह पहुंच जाता है। धन्यभागी हैं वे, जो लड़खड़ा कर चलना सीख जाते हैं। उनकी मंजिल दूर नहीं है। उनके लड़खड़ाने में मंजिल आ जाती है। उनका लड़खड़ाना मंजिल है।
इंकलाबात की मंजिल है खिजर से कह दो,
अब जुनूं राहनुमा जिंदगी राही होगी।
हमने हर हाल में उस दुश्मने-जां से "ताबां"
यूं निबाही कि किसी ने न निबाही होगी।
कठिन होता है निबाहना यह पागलपन। लेकिन निबाहना एक बार आ जाए, तो इसके मजे इतने हैं, इसके आनंद इतने हैं--इतने अकूत, इतने असीम, इतने अतौल!
ठीक हुआ, तरु, जो तुझे लगा कि मेरी खोपड़ी में खंजड़ी बजे रे लोल! खंजड़ी
ही है। किसी काम की नहीं है। पुरानी आदत है बजने की तो बजती रहती है।

धीरे-धीरे इससे संबंध छोड़ लो। धीरे-धीरे खंजड़ी को बजने दो और अपने बीच
और खंजड़ी के बीच दूरी बढ़ा लो। जितनी दूरी बढ़ जाए, उतना अच्छा। मस्तिष्क से जितनी मुक्ति हो जाए, उतना शुभ; उतना सुंदर, उतना सत्य, उतना शिव।
पूछा है तूनेः "क्या भक्त को अहंकार होता है?"
असंभव। क्योंकि अहंकार हो तो भक्त भक्त ही नहीं हो सकता। त्यागी को अहंकार हो सकता है, ज्ञानी को अहंकार हो सकता है, भक्त को अहंकार नहीं हो सकता। क्योंकि भक्त होने की तो पहली शर्त वही है कि अहंकार न हो। त्यागी होने की वह पहली शर्त नहीं है। त्यागी होने के लिए--धन छोड़ो, पद छोड़ो, संसार छोड़ो--ये शर्तें हैं। मगर तब छोड़ने का अहंकार घना होगा कि मैंने इतना धन छोड़ा, मैंने इतनी प्रतिष्ठा छोड़ी, प्यारी पत्नी छोड़ी, सुंदर बच्चे छोड़े, भरा-पूरा घर छोड़ा, सुख-सुविधा छोड़ी। त्यागी कहता है, चीजें छोड़ो! चीजें छोड़ने से अहंकार मजबूत होगा। त्याग का अहंकार जन्मेगा। लेकिन भक्त तो चीजें छोड़ने को कहता नहीं। भक्त तो कहता है, अहंकार छोड़ो। वह तो उसकी पहली शर्त है।
तो या तो वह भक्त ही नहीं है, अगर अहंकार हो। और अगर भक्त है, तो अहंकार
की कोई संभावना नहीं है। भक्त तो पहली ही चोट में मामले को साफ कर लेता है। ज्ञानी और त्यागी बड़ी देर लगा देते हैं। और-और चीजों को छुड़ाते रहते हैं, धीरे-धीरे अभ्यास करवाते रहते हैं--पहले यह छोड़ो, फिर वह छोड़ो, फिर वह छोड़ो। अंततः अहंकार छोड़ना होगा, लेकिन अंततः। त्यागी के रास्ते पर अहंकार की मृत्यु अंतिम घटना है, भक्त के रास्ते पर पहली घटना है। जो त्यागी का अंतिम चरण है, वह भक्त का पहला चरण है। इसलिए त्यागी जहां अंत में पहुंचता है, भक्त वहां पहले ही पहुंच जाता है।
और इसीलिए तो कहते हैं कि प्रेम का पंथ कठिन है। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन! क्योंकि त्यागी तो धीरे-धीरे, अभ्यास करते-करते-करते-करते, एक दिन, आखिर में, जब कुछ और न बचेगा सिर्फ अहंकार बचेगा, तो छोड़ेगा। भक्त तो एक ही तलवार की चोट में रफा-दफा कर लेता है। निर्णय कर लेता है। इस पार या उस पार।
पूछा तूनेः "क्या भक्त को अहंकार होता है?"
असंभव। भक्त को अहंकार नहीं हो सकता। अहंकार छोड़ कर ही तो भक्त भक्त होता है।
और तू कहती है कि जहां ढूंढ़ा तो श्री हरि आपको ही पाया।
और पाने को कुछ है ही नहीं। परमात्मा ही है। अहंकार भर चला जाए, तो उसके सिवाय पाने को और कुछ भी नहीं है। यह तो अहंकार की ही आंख पर चढ़ी हुई पट्टी है, जो न मालूम क्या-क्या दिखलाती है। ये तो अहंकार के ही पर्दे हैं, जिनसे न मालूम कितने-कितने जाल, झूठ, भ्रम, माया, सपने पैदा होते हैं। अहंकार आंख से हटा, अहंकार की जाली हटी, कि जो है वह प्रकट हो जाता है। और श्री हरि के अतिरिक्त और कौन है!

दूसरा प्रश्नः ध्यान की गहराई जैसे-जैसे बढ़ रही है, वैसे-वैसे प्राणों में जैसे अनेक गीत फूट पड़ने को मचल उठे हों! क्या करूं?

चेतना! गाओ। गुनगुनाओ। नाचो। इसमें प्रश्न कहां है? इसमें पूछने को क्या है?
ध्यान की गहराई बढ़ेगी तो झरने फूटेंगे। ध्यान की गहराई बढ़ाते ही किसलिए हैं? इसीलिए कि झरने फूटें। ध्यान की गहराई की आकांक्षा ही क्यों है? ताकि भीतर छिपा हुआ गीत प्रकट हो। ताकि पैरों में अगर कोई नृत्य छिपा हो तो अभिव्यक्त हो जाए। ताकि प्राणों में अगर कोई सुवास सोई पड़ी हो तो जाग जाए। ताकि तुम जो होने को हो, हो जाओ। ताकि तुम ऐसे ही बीज की तरह बंद न रह जाओ, कमल की तरह खिल जाओ।
शुभ हो रहा है। अब यह मत पूछो कि क्या करूं? अब तो भीतर से ही आवाज आ रही है, तो गाओ, नाचो। जो भी रूप तुम्हारी सृजनात्मकता लेना चाहे, उसे लेने दो।

मेरे हिसाब में सृजनात्मकता ही सेवा है। कुछ करो, कुछ ऐसा, जिसमें तुम्हारे प्राण तृप्त हों। और जरूर तब औरों के भी प्राण तृप्त होंगे। अगर तुम्हारी परम संतुष्टि से कुछ निकलेगा, बहेगा, तो दूसरे के जीवन में भी संतोष की झलक आएगी, हवा आएगी, झोंका आएगा। तुम्हारे भीतर दीया फूट पड़ने को तैयार है, रोशनी फैलने को उत्सुक है, फैलने दो, कृपणता न करना, कंजूसी न करना!
चेतना, जरूर तेरे मन में कहीं कोई कंजूसी होगी!
हम जिंदगी भर कंजूसी सीखते हैं। कृपणता हमारे जीवन का अर्थशास्त्र है। कुछ भी हो, छिपा लो। जल्दी से जमीन में गाड़ दो कि किसी को पता न चल जाए, कि कोई चुरा न ले, कि कोई छीन न ले, कि कोई मांगने ही न आ जाए, कि संकोचवशात किसी को देना ही न पड़े। हमारी आदतें चोरी की हैं, और हम चोरों के बीच रहते हैं। हमारी आदतें मांगने की हैं, और हम मंगनों के बीच रहते हैं। और हमारी आदतें छिपाने की हैं, क्योंकि चारों तरफ संकट ही संकट है। ये आदतें, जब भीतर के जगत का द्वार खुलता है, तब भी एकदम से छूट नहीं जातीं, कई दिन तक पीछा करती हैं। भीतर के आनंद का अर्थशास्त्र अलग है--बांटो तो बढ़ता है, रोको तो घटता है। लेकिन पुरानी आदतें ये हैं कि रोको! बचाओ! सम्हाल कर रखो! कुछ बिखर न जाए, कुछ खो न जाए!
इसलिए प्रश्न उठा है कि क्या करूं? नहीं तो प्रश्न की बात ही कहां? नाचने की मौज आ गई, नाचो! वृक्ष तो नहीं पूछते। जब हवाएं आती हैं, वृक्ष नाचते हैं। और फूल तो नहीं पूछते। जब खिलते हैं, तो सुवास उड़ती है। और तारे तो नहीं पूछते। रात होती है और रोशनी बरसती है।
ध्यान की गहराई बढ़ेगी तो अभिव्यंजना की शक्ति भी बढ़ेगी। ध्यान की गहराई का सबूत ही एक है कि तुम्हारे भीतर सृजनात्मकता पैदा हो। तुम्हारे भीतर कुछ करने, कुछ प्रकट होने का एक प्रगाढ़ संकल्प उठे--ऐसा कि जिसे तुम रोक भी न पाओ।

आज बरसों बाद पीतम मिल गए जीवन डगर में।
मृत मनोरथ के सुमन ये खिल गए जीवन डगर में।

वे धुएं के तूल से छाए हुए थे सजन बादल,
झर रहा था गगन के हिय से मगन यौवन-लगन-जल;
उन दुखद रिमझिम-क्षणों में
शून्य पंकिल पथ-कणों में
हार से, मनुहार से पिय मिल गए जीवन डगर में।

भर गया आकंठ हिय-तल, ललक उमड़ा नयन का जल
कर उठा नर्तन हृदय का कमल विकसित मुदित पल-पल
उस सिहरते नीम नीचे
झुक दृगों ने चरण सींचे
नेह-रस-वश अधर उनके हिल गए जीवन डगर में।
आज बरसों बाद पीतम मिल गए जीवन डगर में।

ध्यान गहरा होगा तो प्रीतम मिलेगा। ध्यान गहरा होगा तो प्यारा करीब आएगा। नाचोगे नहीं! गीत न गाओगे! वंदनवार न सजाओगे! दीपमालिका न बनाओगे! पूछना क्या है? ध्यान की गहराई प्यारे को करीब लाने लगी, उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी, अब नाचे बिना न बनेगा! नाचना ही होगा! और नाचना कुछ सीखना नहीं है। यह कोई नाच नर्तकी का नाच नहीं है कि सीखने जाना पड़े। ये गीत जरूरी नहीं है कि मात्राओं और छंदों में आबद्ध हों। मैं तुम्हें कोई कवि बनने को नहीं कह रहा हूं, मैं तुम्हें ऋषि बनने को कह रहा हूं। फूटने दो गीतों को। जैसे फूटना चाहें--सहज, नैसर्गिक। जरूरी नहीं है कि तुम मात्रा, छंद और व्याकरण बिठाओ, कि उसमें समय गंवाओ। उन व्यर्थ कामों में मत उलझ जाना। जब गीत भीतर पैदा होता है, तो अपना रास्ता खुद बना लेता है। तुम सिर्फ मार्ग दो, सहयोग दो, वह गा लेगा, वह अपने को गा लेगा। जब पानी खूब भर

जाता है सरोवर में, तो बहेगा, ऊपर से बह लेगा और अपना रास्ता खोज लेगा सागर तक। किसी को रास्ता बनाना नहीं पड़ेगा।
तो तुम कुछ इस चिंता में मत पड़ना कि अब कैसे गीत गाया जाए? कैसे नाचा जाए? न मुझे संगीत आता, न कविता आती, न कभी छंद सीखे। फिकर छोड़ो! कोई पैरों में घूंघर बांधने की भी जरूरत नहीं है, जब आत्मा में घूंघर बंधे हों तो बिना पैरों में घूंघर बांधे नाच हो जाता है। और जब आत्मा गीतों से भरी हो, तो मात्रा और छंद की कौन फिकर करता है?
लेकिन तुम्हारे प्राणों में कुछ भर रहा है, तो बहेगा।

आज मेरे प्राण में स्वर
भर गया कोई मनोहर!

क्षितिज के उस पार से वह मुस्कुराता पास आया
मधुर मोहक रूप में उस मूर्ति ने मुझको लुभाया
कौन सा संदेश लेकर सजनि, वह आया अवनि पर?
आज मेरे प्राण में स्वर
भर गया कोई मनोहर!

घुल गई थी प्राण में अपमान की भीषण व्यथा
ले गया वह साथ अपने दुख भरी बीती कथा
आंख में आया सजनि, वह आज मेरे अश्रु बन कर! आज मेरे प्राण में स्वर
भर गया कोई मनोहर!

कर गया अनुरोध मुझसे गीत गाऊं मैं मधुर सा
भूल जाऊं जन्म का दुख, मृत्यु को समझूं अमरता यह अमर उपदेश उसका सजनि, कण-कण में गया भर!
आज मेरे प्राण में स्वर
भर गया कोई मनोहर!
स्वप्न से ही भर गया अलि, आज मेरा जीर्ण अंचल
वेदना की वह्नि में तप हो उठे हैं प्राण उज्ज्वल
दे गया वह सजनि मुझको जन्म का वरदान सुंदर!
आज मेरे प्राण में स्वर भर गया कोई मनोहर!

तुम तो बांस की पोंगरी हो जाओ, चेतना! गाना है उसे तो गाएगा। नाचना है उसे तो नाचेगा। छोड़ दो उसकी मर्जी पर सब। मुझसे मत पूछो कि क्या करूं? यह प्रश्न करने का नहीं है। तुम्हारे किए से तो सब गड़बड़ हो जाएगा। तुमने कुछ किया, तो वह जो सहज स्वस्फूर्त है, कृत्रिम हो जाएगा। तुमने उसे मार्ग दिया, तुमने उसे राह सुझाई, तुमने काट-पीट की, तुमने हिसाब-किताब बिठाया-- सब सौंदर्य नष्ट हो जाएगा।
एक ईसाई पादरी अपना प्रवचन तैयार कर रहा था। कल आने वाला रविवार है और
कल रविवार को उसे प्रवचन देना है, बड़ा कोई धार्मिक उत्सव है, वह अपना प्रवचन तैयार करने में लगा था। उसका छोटा बेटा पास ही बैठा था। वह देख रहा था।
छोटे बच्चों के पास एक बुद्धिमत्ता होती है जो बूढ़ों के पास भी खो जाती है। जिंदगी भर की धूल इतनी जम जाती है कि बुद्धिमत्ता खो जाती है। छोटे बच्चों के पास एक निखार होता है, एक दृष्टि होती है, एक भोलापन होता है, एक सरलता होती है, एक निष्कपटता होती है।
उस छोटे बच्चे ने कहा, पिताजी, एक बात उठती है मेरे मन में। आप हमेशा कहते हैं--पिछले रविवार को भी आपने कहा था चर्च में--कि मैं जो शब्द बोल रहा हूं ये मेरे नहीं हैं, ये परमात्मा के हैं।
तो पिता ने कहा, निश्चित। मैं उसके ही शब्द दोहराता हूं।

तो उस बेटे ने कहा, फिर एक सवाल उठता है कि आप जो प्रवचन लिख रहे हैं, इसमें इतनी काट-पीट क्यों कर रहे हैं? अगर ये शब्द उसके हैं, तो आप कौन हैं काट-पीट करने वाले? और अगर आप काट-पीट कर रहे हैं, तो ये शब्द उसके कैसे रहे?
यह बात मुझे प्रीतिकर लगी, उस छोटे से बच्चे ने बड़ा महत्वपूर्ण सवाल उठायाः आप काट-पीट करने वाले कौन हैं? उतरने दो उसे--जैसा उतरता हो, जिस भाव में, जिस भंगिमा में, जिस मुद्रा में; जैसी उसकी मर्जी।
चेतना, तू पूछती हैः "मैं क्या करूं?"
तुझे कुछ नहीं करना है। तुझे बीच से हट जाना है। बस इतना ही करना है। बिल्कुल हट जाना है। ध्यान की गहराई बढ़ रही है, और गहराई बढ़ेगी, तू बिल्कुल बीच से हट जा! और जो होता हो, होने दो।
मगर नहीं, खोपड़ी लौट-लौट कर कहती हैः कुछ करो! ऐसे छोड़ मत देना, उन्माद
हो जाएगा, पागलपन हो जाएगा। बीच रास्ते पर समझो कि गीत उठ आया, कि बीच रास्ते पर नाच शुरू हो गया... वैसा हुआ है! तो बुद्धि कुछ एकदम गलत कहती है, ऐसा भी नहीं। मीरा ऐसे ही तो नाच उठी बीच रास्तों पर। सब लोकलाज खोई रे। मीरा भी सोच सकती थी कि कहां नाचना, कहां नहीं नाचना! बीच बाजारों में नहीं नाचना। मगर नहीं, छोड़ दिया उसकी मर्जी पर! फिर जहां उसने नचाया। फिर हम उसके हाथ की कठपुतली हो गए। अब वह बीच बाजार में नचाए, तो मीरा कैसे कहे नहीं? अब लोकलाज जाती हो तो जाए। लोकलाज बच-बच कर भी क्या बचता है हाथ में? एक दिन मौत आती है, मुंह में राख भरी रह जाती है, सब मिट्टी में मिल जाता है। लोकलाज में रखा भी क्या है?
यह भी मत सोचना कि मेरे गीत पसंद किए जाएंगे कि नहीं किए जाएंगे? यह भी
मत सोचनाः प्रशंसा मिलेगी या नहीं मिलेगी?
ये सब बातें व्यर्थ हैं। ये संन्यासी के पूछने की बातें नहीं हैं। प्रशंसा मिले कि अपमान, और सिंहासन मिले कि सूली, संन्यासी का तो सीधा, साफ-सुथरा व्यवहार है। वह यह कि जो वह करवाएगा, वही करेंगे। जहां ले जाएगा, वहीं जाएंगे। दुनिया पागल समझे तो पागल समझे। दुनिया बुद्धिमान समझे तो बुद्धिमान समझे। न तो दुनिया के बुद्धिमान समझने से तुम बुद्धिमान होते हो, न दुनिया के पागल समझने से तुम पागल होते हो। तुम जो हो उसका निर्णय, परमात्मा क्या समझता है, इस पर आधारित है। तुम्हारा अंतिम निर्णय उसके और तुम्हारे बीच होना है। वही होने दो निर्णय। उसी को निर्णायक होने दो। वही एक मालिक निर्णय लेगा कि तुम्हारे गीत गाने योग्य थे या नहीं। और अगर तुमने उसे ही गाने दिया, तो स्वभावतः वे गाने योग्य हैं ही।
ध्यान बढ़ता है तो सृजनात्मकता स्वभावतः बढ़ती है। मैं तो इसे कसौटी मानता हूं। अगर ध्यान बढ़ने से कोई बिल्कुल सुस्त, काहिल, निष्क्रिय, अकर्मण्य बैठ जाए, तो समझना ध्यान नहीं बढ़ा। ध्यान के नाम से सिर्फ आलस्य को आरोपित कर लिया है। तो समझना यह ध्यान नहीं है, सिर्फ काहिली है, सुस्ती है, तामस है।
ध्यान होगा तो ऊर्जा प्रकट होगी। किस रंग में, किस ढंग में, इसका कोई निर्णय बाहर से नहीं हो सकता। मीरा नाचेगी, बुद्ध बोलेंगे, महावीर चुप खड़े रहेंगे। क्या होगा, क्या रूप होगा--कोई भी नहीं जानता। उस रूप की कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है। पर एक बात सुनिश्चित है कि ध्यान गहरा होगा तो कुछ होगा--कुछ अपूर्व, कुछ अद्वितीय।

तीसरा प्रश्नः क्या संकोच अहंकार को पुष्ट करता है? कुछ करने को जी चाहता है, कुछ देखने को जी चाहता है। किसी के चरणों में गिर जाने की चाह होते हुए भी संकोचवश चरण-स्पर्श नहीं करता। संकोच में सोचता हूं कि लोग क्या कहेंगे?

रामछबि प्रसाद! संकोच अहंकार को पुष्ट ही नहीं करता, संकोच अहंकार का
ही छिपा हुआ रूप है। घूंघट में छिपा हुआ चेहरा है। संकोच अहंकार की ही छबि है--सिर्फ घूंघट में। दिखाई नहीं पड़ता ऊपर से कि भीतर अहंकार है। संकोच अहंकार है--शिष्ट आवरणों में, सुसंस्कृत परिधानों में आच्छादित। मगर जरा

तलाशोगे, जरा कुरेदोगे, और भीतर अहंकार पाओगे। निर-अहंकारी व्यक्ति निःसंकोची होता है। निर-अहंकारी व्यक्ति जैसा होता है वैसा ही होता है। किसी के पैर छूना है, तो पैर छूता है। और नहीं छूना है तो नहीं छूता। निर-अहंकारी व्यक्ति सहजता से जीता है। उसके जीवन में ऊपर से आरोपित कुछ भी नहीं होता।
अहंकारी व्यक्ति प्रतिपल इसी हिसाब में लगा रहता है कि किस तरह से मेरे अहंकार को ज्यादा सहारा मिलेगा? अकड़ कर खड़ा रहूं, इससे मिलेगा? किसी के सामने न झुकूं, इससे मिलेगा? चेहरे को बिल्कुल पत्थर की मूर्ति बना लूं, इससे मिलेगा? कि लोग कहेंगेः यह देखो, लौहपुरुष! और अहंकारी ऐसा भी सोच सकता है कि यहां पैर छूने से लाभ होगा, लोग कहेंगेः देखो कैसा विनम्र, कैसा निर-अहंकारी, तो छू लूं पैर। वह पैर भी छुएगा तो अहंकार के लिए, पैर नहीं भी छुएगा तो भी अहंकार के लिए। उसकी सारी प्रक्रियाओं, क्रियाओं, व्यवहारों का केंद्र अहंकार होगा।
तुम कहते होः कुछ करने को जी चाहता है। नहीं करते, कि लोग पता नहीं क्या कहेंगे? कुछ देखने को जी चाहता है। तुम नहीं देखते, कि पता नहीं लोग क्या कहेंगे? किसी के चरणों में गिर जाने की इच्छा होती है। फिर भी नहीं गिरते; पता नहीं लोग क्या कहेंगे?
तुम लोगों की ही सुनते रहोगे? तुम्हारी जिंदगी, बस लोग क्या कहेंगे,
इस हिसाब में ही बीत जानी है? फिर तुम्हारी उपलब्धि क्या होगी? मरते वक्त जब यही लोग तुम्हारी अरथी ले चलेंगे, ये कहेंगे कि यह बेचारा ऐसे ही गया! यह यही सोचते-सोचते गया कि लोग क्या कहेंगे! तुम कुछ कर नहीं पाओगे। तुम जी ही नहीं पाओगे।
तुमने प्रसिद्ध कहानी सुनी न पुरानी, कि एक बाप और उसका बेटा अपने गधे
को बेचने बाजार चले। रास्ते में कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा, ये देखो बुद्धू! दोनों पैदल चल रहे हैं और गधा साथ में है! जरा भी अकल हो तो गधे की सवारी करनी चाहिए। जब गधा पास है, तो तुम पैदल क्यों चल रहे हो? बात तो जंची, कि यह बात बुद्धूपन की मालूम पड़ती है कि हम दोनों पैदल चल रहे हैं और गधा पास है। तो दोनों गधे पर सवार हो गए। फिर आगे थोड़े लोग मिले और उन्होंने कहा, यह देखो! बेचारा गरीब गधा, दो-दो चढ़े बैठे हैं! कुछ तो दया- भाव होना चाहिए। तो बाप ने कहा, यह बात ठीक है। तो बाप उतर गया, बेटे को बिठा रखा। थोड़ी देर बाद फिर लोग मिले और उन्होंने कहा, यह देखो! यह सुपुत्र देखो! बाप तो पैदल चल रहा है, सुपुत्र गधे पर बैठे हुए हैं! यह कलियुग आया! तो बेटा उतर गया, बाप को बिठा दिया। थोड़ी देर बाद फिर लोग मिले, उन्होंने कहा, यह देखो! बूढ़े हो गए मगर अकल न आई! बेटा तो पैदल घसिट रहा है, खुद गधे पर चढ़े बैठे हैं! अब तो बड़ी मुश्किल हो गई। बाप-बेटा दोनों एक झाड़ के नीचे बैठ कर सोचेः अब करना क्या? अब तो जो-जो किया जा सकता था, सब कर चुके, सिर्फ एक ही बात बची है। तो एक लकड़ी में गधे को बांध कर, उलटा लटका कर दोनों कंधे पर लेकर चले। अब और तो कुछ बचा नहीं करने को! गुजरते थे पुल पर से, लोगों की भीड़ लग गई, लोग खिलखिला कर हंसने लगे कि बहुत सवारियां देखीं, आदमियों को गधों पर देखा, लेकिन गधों को आदमियों पर नहीं देखा! लोगों का हंसना और मजाक करना और गधा वैसे ही मुसीबत में था, उसने जोर से पैर फड़फड़ाए--गिर पड़ा नदी में! गिरे तो बाप-बेटे भी, वह तो तैरना आता था सो किसी तरह किनारे लग गए, गधा हाथ से गंवाया; गधा तो हाथ से गया, मगर लौट कर घर आ गए किसी तरह--जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए।
तुम लोगों की ही सोचते रहोगे, रामछबि, कि लोग क्या कहते हैं! तो एक दिन तुम इसी हालत में पाओगे कि बांधे गधे को चले जा रहे। और कौन लोग हैं ये? अक्सर तो गधे ही हैं।
कल ही मैं पढ़ रहा था। जब चीन ने भारत पर हमला किया, तो खच्चरों की कमी
पड़ गई। और वहां तो हिमालय पर, पहाड़ में खच्चरों की बड़ी जरूरत है। तो खच्चर भारत के बाहर से मंगाने पड़े। तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने, खच्चर बाहर से बुलाने चाहिए, इसका संसद में प्रस्ताव रखा। हजारों की संख्या में खच्चर खरीदने पड़ेंगे। खच्चर के लिए अंग्रेजी में शब्द हैः म्यूल। एक संसद-सदस्य म्यूल का मतलब नहीं समझा। तो उसने अपने पड़ोसी से पूछा कि म्यूल यानी क्या?

तो पड़ोसी ने कहा, म्यूल यानी गधा। तो वह संसद-सदस्य एकदम रोष में आ गया और खड़ा हो गया और उसने कहा, यह हद हो गई! कोई अपने देश में गधों की कमी है जो बाहर से गधे बुलाए जा रहे हैं? तो पंडित नेहरू ने कहा, आप जैसे लोग जब तक हैं तब तक गधों की कोई कमी नहीं है! मगर गधे बुलाए नहीं जा रहे, खच्चर बुलाने पड़ रहे हैं।
यहां तो हालत इतनी बिगड़ गई है, खच्चर खोजना मुश्किल है, गधे ही गधे हैं। खच्चर तक भी नहीं हैं, घोड़ों की तो बात दूर!
तुम किनकी बातें मान रहे हो? किनके इशारों पर चल रहे हो? और कभी तुमने
यह सोचा कि वे तुमसे इतने ही डरे हुए हैं जितने तुम उनसे डरे हुए हो? तुम सोच रहे हो कि ये क्या सोचेंगे? वे सोच रहे हैं कि तुम क्या सोचोगे? एक-दूसरे के सोच में मरे जा रहे हो! थोड़ा अपने भीतर से जीना शुरू करो। असली जीवन भीतर से जीया जाता है, बाहर के अनुकरण से नहीं। और अगर बाहर का अनुकरण करोगे, तो तुम गंवा दोगे, सब कुछ गंवा दोगे। और बाहर इतने लोग हैं, किस-किस का अनुकरण करोगे? कोई कहता ऐसा, कोई कहता वैसा, कोई कहता वैसा।
मैं एक घर में मेहमान था। एक छोटे बच्चे से मैंने पूछा कि तू बड़ा होकर क्या बनने का इरादा रखता है?
उसने कहा कि जहां तक तो मैं पागल हो जाऊंगा।
तू पागल हो जाएगा? मैंने बहुत बच्चों से यह पूछा, मगर तेरे जैसा बुद्धिमान बच्चा नहीं मिला। तू बड़े मजे की बात कह रहा है, मगर बड़े मतलब की भी, पते की भी। तू पागल हो जाएगा? पागल होना चाहता है?
उसने कहा, होना नहीं चाहता, मगर हो जाऊंगा। क्योंकि मेरी मां चाहती है
कि मैं डाक्टर बनूं; मेरे बाप चाहते हैं कि मैं इंजीनियर बनूं; मेरे काका चाहते हैं कि मैं संगीतज्ञ बनूं, क्योंकि उनको हारमोनियम बजाना आता है; मेरा बड़ा भाई है, वह कहता है कि तू तो क्रिकेट का खिलाड़ी बन, क्योंकि उसको क्रिकेट का नशा है। और अगर सबकी आपसे कहूं, तो जितने लोग हैं घर में, सब चाहते हैं--यह बन, वह बन, वह बन। मुझसे तो कोई पूछता ही नहीं कि तुझे क्या बनना है? तो मुझे तो यही लगता है कि मैं पागल हो जाऊंगा। अगर ये सब लोग चेष्टा में लगे रहे--कोई इंजीनियर बनाएगा, कोई डाक्टर बनाएगा, कोई क्रिकेट का खिलाड़ी, कोई हारमोनियम सिखाएगा, कोई तबला बजवाएगा--अगर इन्हीं लोगों के हाथ में रहा तो बस एक बात निश्चित है कि मैं पागल हो जाऊंगा।
और इसी तरह स्थिति है। यह तो दूर की बात हो गई, मैंने ऐसे तक लोग देखे हैं, ऐसे घरों में मैं मेहमान हुआ हूं कि बच्चा अभी पैदा नहीं हुआ और पति- पत्नी में मैंने झगड़ा देखा है कि बच्चा जब पैदा होगा तो उसको क्या बनाना है? डाक्टर बनाना, कि इंजीनियर बनाना, कि संगीतज्ञ बनाना, कि क्या बनाना? अभी बच्चा पैदा ही नहीं हुआ है!
एक अदालत में मुकदमा था दो आदमियों पर। हाथापाई हो गई, लट्ठ चल गए, खून
बह गया। मजिस्ट्रेट ने पूछा, लेकिन कारण तो बताओ! तो दोनों एक-दूसरे की तरफ देखें, कि तू बता दे। क्योंकि कारण ऐसा था कि जो बताए वही बुद्धू मालूम पड़े! कारण कारण जैसा था ही नहीं। मजिस्ट्रेट ने कहा, बताते हो कि नहीं? एक-दूसरे की तरफ क्या देखना? बोलो, क्या हुआ मामला?
तो उन्होंने कहा, अब आपसे क्या कहें, कहते संकोच लगता है। हम दोनों मित्र हैं असल में। नदी पर बैठे थे। रेत में बैठे गपशप कर रहे थे। यह बोला कि भैंस खरीद रहा हूं। मैंने कहा, भई, भैंस मत खरीद तू! क्योंकि मैं खेत खरीद रहा हूं। और तेरी भैंस खेत में घुस जाए, अपनी जिंदगी भर की दोस्ती एक मिनट में खराब हो जाएगी। मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूंगा। मेरे खेत में तेरी भैंस, मैं बर्दाश्त बिल्कुल कर ही नहीं सकूंगा। तू मुझे जानता ही है कि मैं क्रोधी आदमी हूं। तेरी भैंस को भी ठिकाने लगा दूंगा, तुझे भी ठिकाने लगा दूंगा। माना दोस्ती अपनी पुरानी है, छोटी सी बात पर क्यों खराब करना! काहे को भैंस खरीदना! कुछ और खरीद ले, जिसमें कोई झंझट न हो। मगर वह भी जिद्द पकड़ गया, उसने कहा, मैं भैंस खरीदूंगा, तू कौन है रोकने वाला? तुझे अगर बहुत डर है, तो खेत मत खरीद! और भैंस है तो भैंस तो भैंस है। भैंस का क्या, कभी घुस भी जाए! अब कोई चौबीस घंटे हम भैंस के पीछे थोड़े ही फिरते रहेंगे। और घुस गई तो क्या बिगड़ गया? और मेरी भैंस पर हाथ मत उठाना!

क्योंकि तू मुझे भी जानता है कि अगर मुझे क्रोध आ जाए तो कुछ से कुछ हो जाएगा! भैंस तो एक तरफ रह जाएगी, आग लगा दूंगा खेत में! हड्डी-पसली तोड़ दूंगा तेरी! पुरानी दोस्ती है, क्यों नाहक झंझट लेना! मैं तो भैंस खरीदना तय कर ही चुका हूं, तू खेत मत खरीद!
बात बढ़ती चली गई। बात यहां तक बढ़ गई कि एक ने कहा कि मैंने वहीं रेत में हाथ से लकीर खींच कर कहा कि यह रहा मेरा खेत, कोई घुसाए भैंस! और इस नासमझ ने अपनी अंगुली से इशारा करके एक दूसरी लकीर खींच दी और कहा, यह घुस गई मेरी भैंस! कर ले कोई कुछ मेरा! और फिर अब आगे, बाकी हाल तो आपको पता ही है! यह सिर पर जो पट्टी बंधी है, अस्पताल में भरती होना पड़ा।
मगर अभी खेत खरीदा नहीं गया और भैंस अभी खरीदी नहीं गई है। यह तो प्रतीकात्मक झगड़ा था। मगर असली सिर खुल गए।
तुम किन की सुन रहे हो? किन की आंखों की तरफ देख रहे हो? किन को तुमने अपने जीवन का सारा का सारा अधिकार दे दिया है निर्णय करने का? निर्णय भीतर से आने दो।
रामछबि, जो तुम करना चाहते हो, वह करो! चाहे उसके लिए कोई भी कीमत चुकानी पड़े! चाहे प्राण ही क्यों न जाएं! तो भी जाते वक्त प्राणों में कम से कम एक तो संतोष होगा कि मैं जो करना चाहता था वह किया; मैंने अपने को बेचा नहीं, अपनी आत्मा को बाजार में रखा नहीं; मैंने समझौते नहीं किए। मैं मर रहा हूं, लेकिन वही करते मर रहा हूं जो मैं करना चाहता था। तुम्हारे प्राणों में वैसा ही संतोष होगा जैसा सुकरात को रहा होगा जहर पीते वक्त, जैसा मंसूर को रहा होगा गर्दन कटते वक्त। जैसा जीसस को रहा होगा सूली पर चढ़ते वक्त। संतोष, परम संतोष कि मैं जो करना चाहता था, मैंने वही किया। मैंने किसी कीमत पर समझौते नहीं किए।
इस जगत में परम तृप्ति उनकी है, जो समझौते नहीं करते। जो भीतर से बाहर
की तरफ जीते हैं। और उनका जीवन तो नरक है, जो बाहर से भीतर की तरफ जीते हैं।
जो हर एक का इशारा पूरा करने में लगे हैं। जो सबको राजी करने में लगे हैं।
जो चाहते हैं कि सब हमसे प्रसन्न रहें। उनसे कोई प्रसन्न भी नहीं रहता, यह भी ख्याल रखना। और अपना जीवन वे गंवा बैठते हैं। कूड़ा-करकट में गंवा बैठते हैं।
नहीं रामछबि, ऐसी भूल न करना। जो करना चाहते हो वही करो। और मैं तुमसे
यह भी नहीं कहता कि वह सही है या गलत। उसका निर्णय भी तुम्हारी अंतरात्मा को ही करना है। उसका निर्णय भी बाहर से नहीं लेना है। कौन निर्णय करेगा-- क्या सही है, क्या गलत है?
बुद्ध ने घर छोड़ा। पिता समझते थे गलत है; पत्नी समझती थी गलत है; परिवार समझता था गलत है, सब समझते थे गलत है। लेकिन आज पच्चीस सौ साल बाद क्या तुम यह कहोगे कि बुद्ध ने घर छोड़ा तो बुरा किया? नहीं छोड़ते तो मनुष्य-जाति वंचित रह जाती, सदा-सदा के लिए वंचित रह जाती। एक अमृत की धार बही। मगर जब छोड़ा था तो कोई भी पक्ष में नहीं था--कोई भी! बुद्ध अपना राज्य छोड़ कर चले गए थे, इसीलिए कि राज्य में जहां भी जाते वहीं लोग समझाने आते। तो सीमा ही छोड़ दी। सीमा छोड़ दी, तो पास-पड़ोस के राजा-महाराजा आने लगे। क्योंकि वे भी उनके पिता के मित्र थे। कोई बचपन में साथ पढ़ा था; किसी की दोस्ती थी; किसी का कोई नाता-रिश्ता था; वे समझाने आने लगे। जो आता वही बुद्ध को कहता कि तुम क्या नासमझी कर रहे हो?
एक सम्राट ने तो यह भी कहा कि मेरा कोई बेटा नहीं है, अगर तू अपने बाप
से नाराज है, फिकर छोड़, मेरा राज्य तेरा। चल, मेरी बेटी है, उससे तेरा विवाह किए देता हूं, तू इसको सम्हाल ले। हो सकता है बाप-बेटे की न बनती हो, कोई फिकर नहीं। अक्सर बाप-बेटों की नहीं बनती। तो यह तेरा घर है। और चिंता मत कर, तेरे पिता के राज्य से मेरा राज्य बड़ा है। तो तू कोई नुकसान में नहीं रहेगा। और तू अपने बाप का इकलौता बेटा है, आज नहीं कल बूढ़ा मर जाएगा, वह भी तेरा है। यह भी तेरा है। फायदा ही फायदा है। तू उठ!
जो आता, वही समझाता। आखिर बुद्ध को इतनी दूर निकल जाना पड़ा, जहां कि कोई बाप को जानता ही न हो, पहचानता ही न हो। अपने बाल काट डाले--सुंदर उनके बाल थे--ताकि कोई पहचान न सके, घुटमुंडे हो गए। वस्त्र पहन लिए दीन-हीन।

भिखमंगे मालूम होने लगे। गांवों में न जाते, जंगलों में विचरने लगे, ताकि ये समझाने वालों से पीछा छूटे। क्योंकि अंतरात्मा से एक आवाज उठी थी कि सत्य को खोजे बिना नहीं मरना है। और अगर इन्हीं बातों में उलझे रहे, तो सत्य को खोजने का समय कहां? अवकाश कहां? सुविधा कहां?
आज तुम यह न कहोगे कि बुद्ध ने गलत किया। बुद्ध ने बड़ा उपकार किया, पूरी मनुष्य-जाति पर उपकार किया। ऐसा कल्याण किसी और दूसरे मनुष्य ने नहीं किया है। हालांकि तुम भी अगर उस समय होते तो तुम भी बुद्ध को समझाते-- कि भई, यह तुम क्या कर रहे हो? पिता की सुनो, पिता बूढ़े हैं, उनको दुख मत दो। पत्नी जवान है, उसको पीड़ा मत दो। बेटा अभी-अभी पैदा हुआ है, उसको छोड़ कर भागे जा रहे हो! यह पलायनवाद है। सब कहा होता; और सब कहा था। लेकिन बुद्ध भीतर से जीए। भीतर से जीए, इसलिए महिमा प्रकट हुई, गरिमा प्रकट हुई। सुकरात को समझदार लोगों ने समझाया था कि तू एथेंस छोड़ दे। क्योंकि यहां तू रहेगा तो फांसी लगनी निश्चित है। तू कहीं और चला जा।
लेकिन सुकरात ने एथेंस नहीं छोड़ा। उसने कहा, जो मुझे कहना है, वह एथेंस जैसे ही सुसंस्कृत समाज में कहा जा सकता है। और अगर यह सुसंस्कृत समाज मुझे मारने को तैयार है, तो फिर मैं किसी और दूसरे समाज में जाकर तो और भी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। वह तो और जंगली है। वह तो और भी अशिष्ट और असभ्य है। फिर मुझे जो कहना है, उसको समझने वाले थोड़े से लोग कम से कम यहां हैं; मौत तो आनी है सो आएगी, मगर मैं अपनी बात कह कर जाऊंगा। कोई सुन लेगा, समझ लेगा, मैं तृप्त हो जाऊंगा।
जीसस ने सूली पर चढ़ने में अड़चन अनुभव नहीं की।
जब भी कोई व्यक्ति अपने ढंग से जीता है, अपनी शैली से जीता है, अपनी मौज से जीता है, तो मौत दो कौड़ी की होती है। वह जानता है कि उसने जीया है, इस ढंग से जीया है, इतनी परिपूर्णता से जीया है कि इस परिपूर्ण जीवन का कोई अंत नहीं हो सकता। मौत आएगी और चली जाएगी, मैं रहूंगा।
लेकिन रामछबि, ऐसा तुम्हें न हो सकेगा। तुम तो अपने से जी ही नहीं रहे। तुम्हें तो आत्मा का पता ही कैसे चलेगा? आत्मा के पता करने का ढंग ही यही है--अपने ढंग से जीओ। जो देखना है, देखो; जो करना है, करो; जैसा जीना है, वैसा जीओ। किसी के चरणों में गिरना है, तो गिर जाओ। और किसी के चरणों में नहीं गिरना है, तो चाहे गर्दन कट जाए, मत गिरना। मगर अपनी आत्मा को गौरव दो।
"लोग क्या कहेंगे?"
लोग हैं कौन? लोग यानी कौन? इनका मूल्य क्या है? इनकी खुद की आत्मवत्ता क्या है? हजार मूढ़ ताली पीट कर तुम्हारा स्वागत करें, तुम इसके लिए राजी होओगे? कि एक बुद्धपुरुष तुम्हारे सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दे, तुम इसे चुनोगे? क्या करोगे? संख्या गिनोगे हजार मूढ़ों की?
अगर संख्या से जीओगे, तो चूकोगे, बुरी तरह चूकोगे। जानने वाले एक आदमी
की आंख का इशारा भी बहुत है। न जानने वाले लोगों के फूलों के हार भी किसी काम के नहीं। और जरा सम्हल कर चलना। क्योंकि जो फूलों के हार पहना रहे हैं, उन्हें कुछ पता नहीं है। एक धुन है, आज फूलों के हार पहना रहे हैं, कल वे ही जूतों के हार लेकर आ जाएंगे। वही के वही लोग। उनके बदलने में देर नहीं लगती। वे हैं ही नहीं। उनकी कोई आत्मा है? उनकी कोई थिरता है? आज सम्मान देते हैं, कल गाली देने लगते हैं, फिर सम्मान देने लगते हैं। उनकी बातों का कोई भी मूल्य नहीं है।
अगर देखना ही हो किसी की गवाही, तो किसी जागे पुरुष की गवाही मांगना, किसी सदगुरु की गवाही मांगना। उससे पूछना कि क्या कहते आप? उससे लेना, अगर स्वीकृति लेनी हो। लेकिन भीड़-भाड़ से, बाजार में लोगों से पूछते फिर रहे हो और उनकी आंखों में देख कर चल रहे हो! उनको खुद अपना पता नहीं है। वे खुद तुम्हारे जैसे ही भटके हुए हैं। शायद तुमसे भी ज्यादा गहरे गर्त में पड़े हों। बीमारों से तुम अपनी चिकित्सा करवाने चले हो? पागलों के साथ तुम सोच रहे हो कि तुम प्रज्ञा को उपलब्ध हो जाओगे?
छोड़ो ऐसी भूल भरी बातें! ऐसी ही भूल भरी बातों से दुनिया डूबी जाती है। अनेक लोग आते और चले जाते--बिना जीए, बिना जाने, बिना भोगे।

और ध्यान रखना, इस सबके पीछे है अहंकार। लोग क्या कहेंगे? लोगों की प्रशंसा, लोग ध्यान दें, लोग सम्मान करें। और लोग मुफ्त सम्मान नहीं करते। मुफ्त करें भी क्यों? आखिर सम्मान करते हैं तो बदले में कुछ चाहते हैं। तो एक समझौता है समाज का। समाज कहता है, तुम हमारी मान कर चलो, हम तुम्हें सम्मान देंगे। ज्यादा सम्मान चाहिए, ज्यादा हमारी मान कर चलो। अगर चाहते हो कि हम तुम्हें महात्मा कहें, तो बिल्कुल रत्ती-रत्ती हमारी मान कर चलो। तुम्हारे महात्मा तुम्हारे कारागृह में बंद कैदियों से बड़े कैदी हैं। कारागृह में बंद कैदी तो कभी-कभी भाग भी खड़े होते हैं, कभी-कभी दीवाल भी छलांग लगा जाते हैं; कभी दरवाजा खुला मिल जाता है तो निकल भागते हैं; या सींकचे काट लेते हैं; या कुछ उपाय करते हैं--रिश्वत खिलाते हैं; या नहीं कुछ हो पाता तो कम से कम आत्महत्या कर लेते हैं; कम से कम आत्मा को ही छुट्टी हो जाती है, शरीर को नहीं होती तो। मगर तुम्हारे महात्मा तो भाग ही नहीं सकते। उनके पास तो सोने की दीवालें हैं। उनके आस-पास तो हीरे-जवाहरात जड़े हुए सींकचे हैं। उनके हाथ में जंजीरें नहीं हैं, आभूषण हैं। सम्मान है, सत्कार है--हजारों लोगों का सत्कार! वे उसी पर नजर लगाए रखते हैं। वह सत्कार इतना अहंकार को तृप्ति देता है, उसको छोड़ नहीं सकते। इसलिए तुम जो चाहो, करेंगे। तुम कहो एक बार भोजन करो, तो एक बार भोजन करेंगे। भूखे मरेंगे। तुम कहो सिर के बल खड़े होओ, तो सिर के बल खड़े होंगे, शीर्षासन करेंगे। तुम जो कहो, करेंगे, मगर सम्मान दो।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संत, तुम्हारे महात्मा और क्या हैं? तुमसे समझौता किया है उन्होंने। और समझौता सीधा-साफ है। तुम इतना करो, हम इतना सम्मान देंगे। तुम और ज्यादा करते जाओ हमारी मानी हुई बातें, हम उतना सम्मान देते चले जाएंगे।
और तुम जानते हो, दुनिया में अलग-अलग ढंगों के समाज हैं और अलग-अलग बातों को सम्मान मिलता है!
अफ्रीका में एक कौम है, जिसमें महात्मा अपने आधे बाल काटता है--सिर्फ सामने के आधे बाल काट लेता है--तो त्यागी। अभी तुम्हारे यहां कोई काटेगा तो तुम समझोगे कि क्या सर्कस आया है? या क्या बात है? लेकिन वहां वह समझा जाता है त्यागी। अफ्रीका में एक और दूसरा समाज है जिसमें स्त्रियां सुंदर समझी जाती हैं, अगर उनके ओंठ बहुत चौड़े और बहुत बड़े हों। तो ओंठों को बड़ा करने के लिए पत्थर लटकाते हैं ओंठों से बांध कर। भद्दे हो जाते ओंठ, बेहूदे हो जाते ओंठ--मगर सौंदर्य! तो स्त्रियां राजी हैं वही करने को। इसमें ही सम्मान मिलता है, अहंकार की तृप्ति मिलती है।
लोग चेहरे गूद लेते हैं गुदने से। बेहूदे हो जाते हैं। लेकिन अगर समाज में सम्मान मिलता है, तो लोग गुदवाने को राजी हैं। पूरा शरीर गूद डालते हैं।
समाज जिस चीज को सम्मान देता है, वही लोग करने को राजी हैं।
चीन में हजारों साल तक स्त्रियां अपंग हालत में रहीं। छोटी सी बच्चियों के पैरों में लोहे के जूते पहना दिए जाते थे, ताकि पैर बड़े न हों। पैर का छोटा होना कुलीनता का लक्षण था, सौंदर्य का लक्षण था। इतना छोटा कि जो सच में कुलीन स्त्रियां होती थीं, उनको तो दो स्त्रियों का सहारा लेकर चलना पड़ता था। क्योंकि पैर इतने सिकुड़े रह जाते, बड़े ही नहीं होते, तो इतने बड़े शरीर को कैसे सम्हालेंगे? पूरा शरीर तो बड़ा हो जाता और पैर रह जाते बहुत छोटे-छोटे। लेकिन स्त्रियां इसको सहने को राजी थीं, क्योंकि उनके पैरों की छोटाई प्रशंसा लाती थी।
यूरोप में स्त्रियां बड़े ऊंची एड़ी के जूते पहनती हैं। उतने ऊंचे एड़ी
के जूते पहन कर चलना सुविधापूर्ण नहीं है। जरा चल कर देखो तो पता चले! जरा कोशिश करना। चारों खाने चित्त गिरोगे। मगर उसका अभ्यास कर लेती हैं। जितनी ऊंची एड़ी, उतना सौंदर्य समझा जाता है। तो उसको भी करने को तैयार हैं।
जैसे स्त्रियां सौंदर्य के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं! ओंठों पर रंग पोते हुए हैं--भद्दे रंग, बेहूदे रंग। और जब दूसरों से लोग सीखते हैं तो और भी भद्दापन, और भी बेहूदापन हो जाता है। क्योंकि उनमें उतना

सुसंस्कार भी नहीं होता। आंखों पर रंग चढ़ाए हुए हैं। आंखों की पलकों को रंगे हुए हैं। झूठे आंखों पर बाल लगाए हुए हैं। जिस चीज को सुंदर समझा जाता है, स्त्रियां वही करने को राजी हैं। उससे अहंकार की तृप्ति मिलती है। और तुम्हारे महात्माओं में और तुम्हारी स्त्रियों में कुछ ज्यादा फर्क नहीं है। मनोवैज्ञानिक तो जरा भी फर्क नहीं है।
कल मैं पढ़ रहा था कहीं, एक आदमी ने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि अगर तुम अपनी पत्नी को सताना चाहो तो सबसे बड़ी तरकीब क्या होगी?
उसने कहा, सबसे बड़ी तरकीब यह होगी कि पांच सौ नई साड़ी खरीद लाऊं, कमरे में रख दूं और दर्पण हटा लूं। बस पगला जाएगी एकदम! दर्पण तो चाहिए ही चाहिए। और जितनी ज्यादा साड़ियां हों, उतना दर्पण साफ चाहिए। क्योंकि दर्पण में देख-देख कर तय करना हैः कौन सी लोगों को रुचेगी, कौन सी लोगों को जंचेगी।
घंटों स्त्रियां साड़ी पहनने में लगाती हैं। घंटों! किसी तरह शरीर को सुंदर बना कर चारों तरफ घुमाना है। और तुम्हारे महात्मा, अगर तुम उनको देखो, तुम भी बहुत हैरान हो जाओगे। घंटों लगते हैं किसी को शरीर पर भभूत रमाने में। घंटों लगते हैं तिलक इत्यादि लगाने में। उसके लिए भी आईने की जरूरत पड़ती ही है। तिलक लगा रहे हैं। हाथ-पैर पर तिलक लगाए जा रहे हैं। भभूत रमाई जा रही है। साज-शृंगार हो रहा है। क्योंकि इसको सम्मान मिलता है। आदमी को सम्मान दो और कुछ भी करवा लो। जो चाहो वह करवा लो। अप्राकृतिक चीजें लोगों से करवाई जा रही हैं। तुम्हारे महात्मा अप्राकृतिक ढंग जी रहे हैं। मगर जो चाहो करवा लो, सम्मान भर देते रहो।
रामछबि, स्मरण रखो, ये सब अहंकार की तृप्तियां हैं। मैं तुमसे यह नहीं
कह रहा कि पैर छुओ किसी के। तुम्हारे प्राणों में भाव उठे, तो जरूर! और तुम्हारे प्राणों में भाव न उठे, सारी दुनिया कहती हो कि इनसे बड़ा कोई महात्मा नहीं है, तो भी पैर मत छूना। थोड़ी निजता की घोषणा दो। थोड़ी अपनी शैली अपनाओ। थोड़ी अपनी जीवनचर्या बनाओ। थोड़ा अपने जीवन का ढंग सुनिश्चित करो। और निर्णायक तुम्हारी अंतर्वाणी होनी चाहिए, कोई और नहीं। क्योंकि तुम्हारी अंतर्वाणी से ही परमात्मा तुम्हें सूचनाएं देता है। तुम्हारा असली सदगुरु तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है।
बाहर हम उसी को सदगुरु कहते हैं, जो तुम्हारे भीतर के सदगुरु को जगा दे। बाहर उसी को सदगुरु कहते हैं, जो तुम्हारे भीतर के सदगुरु का प्रतिबिंब बन जाए, बस। और बाहर के सदगुरु की तभी तक जरूरत है, जब तक कि भीतर का सदगुरु सक्रिय न हो जाए। जैसे ही भीतर का सदगुरु सक्रिय हो गया, बाहर का सदगुरु तुम्हें खुद ही कह देगाः अब जाओ, रामछबि, अब अपने काम में लगो। अब तुम्हारे भीतर की ज्योति जग गई, अब इस ज्योति के अनुसार जीओ, चलो। अब तुम्हारे पास अपनी रोशनी है। अब तुम स्वयं के दीये बन गए हो।
लेकिन बड़ी कठिनाई है अहंकार छोड़ने में। और बड़ी कठिनाई है प्रतिष्ठा, सम्मान छोड़ने में। सब सपने हैं झूठे, लेकिन बड़ी कठिनाई है।

तुम मुझसे मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे!

पलकों पर अगणित बोझिल,
सपनों का भार उठाए!
बढ़ता है राही तम में,
आशा का दीप जगाए!
उसके पथ का यह अंतिम,
शृंगार न छीन सकोगे!
तुम मुझसे मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे!

अस्तित्व दीप का क्या है,
ज्वाला की स्वर्णिम रेखा!
इस घोर व्यथा में भी पर,
उसको मुसकाते देखा!

यह जल-जल कर जीने का,
अधिकार न छीन सकोगे!
तुम मुझसे मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे!

एकत्रित कर गाती हूं
बिखरे वीणा तारों को!
प्रतिबिंबित करती जाती,
जीवन की मनुहारों को!
तुम मेरी वीणा की यह,
झंकार न छीन सकोगे!
तुम मुझसे मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे!

हंस-हंस के सह लेती हूं,
सुख-दुख की मैं मनमानी!
जीवन-आधार बनी है,
अनुभूति एक अनजानी!
तुम मेरे जीवन का यह,
आधार न छीन सकोगे!
तुम मुझसे मेरा स्वप्निल-संसार न छीन सकोगे!

सपने भी छोड़ने में बड़ी कठिनाई होती है। और मैं जानता हूं, क्यों होती
है कठिनाई। क्योंकि सपनों के अतिरिक्त तुम्हारे पास कुछ और नहीं। सपने ही सपने हैं। छोड़ने में डर लगता है, कि छोड़ा, सपने भी छूट गए, तो फिर बिल्कुल रिक्त हो जाऊंगा। ना-कुछ से तो कुछ भला, ऐसी हमारी तर्कसरणी है। सपना ही भला, कम से कम भरे तो रहते हैं, कम से कम व्यस्त तो रहते हैं।
लेकिन मैं तुम्हें यह बात याद दिला दूं बार-बार कि जो शून्य नहीं होगा सपनों से, वह परमात्मा से पूर्ण नहीं हो सकेगा। वह शर्त अपरिहार्य रूप से भरनी पड़ती है, पूरी करनी पड़ती है। तुम्हें सपने छोड़ने ही पड़ेंगे। लोग क्या कहते हैं, भूल ही जाना पड़ेगा। न उनका सम्मान, न उनका अपमान। न उनकी प्रतिष्ठा, न उनकी अप्रतिष्ठा। वे जैसे हैं ही नहीं। तुम ऐसे जीओ, जैसे तुम अकेले हो पृथ्वी पर। और पहले मनुष्य हो। और तुमसे पहले कोई हुआ नहीं, तुम्हें कोई राह बताने वाला नहीं, तुम्हें अपने भीतर से ही अपना मार्ग खोजना है। तो धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर की धीमी-धीमी आवाज सुनाई पड़नी शुरू हो जाएगी। और उस आवाज को मान कर जो चल पड़ता है, पहुंच जाता है।
सपने छोड़ो, ताकि सत्य पा सको। सपने छोड़ने में कुछ भी नहीं छूट रहा है। सपने कुछ हैं ही नहीं। ना-कुछ छूटेगा, सब कुछ मिलेगा।
मगर, अभी तो सब कुछ का कुछ पता नहीं है, अभी तो सपनों को ही सब कुछ मान रखा है हमने। कोई तुमसे कह देता हैः अहा, आप कितने सज्जन! और चित्त बाग-बाग हो जाता है। एकदम फूल खिल जाते हैं। और कोई कह देता है कि जरा अपनी शक्ल तो आईने में देखो! क्या गंदगी ढोए फिर रहे हो! कैसा रूप बना रखा है! कि बस, जैसे फुग्गे में किसी ने सुई चुभा दी, निकल गई हवा, एकदम पंक्चर हो गए। तुम दूसरों के हाथों में इतने ज्यादा! कि कोई चाहे तो हवा भर दे और कोई चाहे तो हवा निकाल दे। तुम अपने मालिक कब बनोगे?
संन्यास का अर्थ होता हैः अपनी मालकियत की घोषणा।
परमात्मा ने प्रत्येक को अपना मालिक बनाया है। और जो लोग भी अपनी मालकियत की घोषणा नहीं करते और दूसरों की गुलामी किए जाते हैं, वे परमात्मा का अपमान कर रहे हैं। उसकी सौगात को स्वीकार नहीं कर रहे। उसकी भेंट को अस्वीकार कर रहे हैं। वे परमात्मा के प्रेमी नहीं हैं। परमात्मा का प्रेमी अपने और परमात्मा के बीच निर्णय होने देता है।
और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि समाज को नाहक कष्ट दो, कि लोगों को परेशान करो, कि जान-बूझ कर लोगों के विपरीत जाओ--यह मैं नहीं कह रहा हूं। मेरी बातों को गलत मत समझ लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि समाज कहे कि बाएं चलो रास्ते पर, तो तुम दाएं चलना। ये तो औपचारिक बातें हैं। इनका कोई

मूल्य नहीं है। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि समाज कहे कपड़े पहनो, तो तुम नंगे चलना। लेकिन मैं तुमसे यह भी नहीं कह सकता कि अगर तुम्हारे मन में किसी दिन महावीर जैसे नग्न होने की बात आ जाए, तो तुम नग्न मत हो जाना। वह भी नहीं कह सकता। किसी दिन महावीर जैसी अंतर्भावना उठे और वस्त्र गिर जाएं, तो गिर जाने देना! फिर जो हो परिणाम! पत्थर लोग मारेंगे; उन्होंने महावीर को मारे थे तो तुम को भी मारेंगे; कुत्ते छोड़े थे महावीर के पीछे जंगली, तो तुम्हारे पीछे भी छोड़ेंगे; गांव-गांव से तुम्हें भगाया जाएगा। वह स्वीकार करना। उसमें फिर रोना मत। उसमें फिर यह मत कहना कि यह मेरे साथ क्या हो रहा है? यह स्वाभाविक है।
लेकिन तुमसे मैं यह कह नहीं रहा हूं कि तुम नग्न हो जाओ। जहां तक बन सके, समाज की व्यर्थ बातों में झंझट में पड़ना ही मत। औपचारिक बातें निभा देना। ऊपर-ऊपर की बातें हैं, इनसे कुछ हर्जा नहीं है। कपड़े पहन कर बाजार हो आना, लोगों से जयरामजी कर लेना, बाएं रास्ते पर चल लेना, सामान्य जीवन का जो उपक्रम है, उसको पूरा करते रहना। लेकिन अपनी आत्मा को मत बेचना। और जहां सवाल उठता हो कि यहां आत्मा को बेचने की बात है, वहां सब दांव पर लगा देना और अपनी आत्मा को बचा लेना। जिसने अपने को बचा लिया, उसने सब बचा लिया। और जिसने अपने को खो दिया, वह सब खो देता है।

चौथा प्रश्नः क्या आत्मोपलब्धि के लिए सांसारिक जीवन जीना आवश्यक है?

राकेश! और तुम हो कहां? संसार में ही हो। कहीं भी रहो, संसार है। घर में भी उतना ही संसार है जितना आश्रम में। संसार तो सारे अस्तित्व का नाम है। कोई गृहस्थ होकर संसार जीता है, कोई संन्यासी होकर संसार जीता है। मगर संसार जीने से कहां जाओगे? जीना ही संसार है।
लेकिन मैं तुम्हारे प्रश्न का अर्थ समझा। तुम्हारे भीतर कोई पुरानी परंपरा की लीक पड़ी हुई है, जो तुम्हें सता रही है। जो तुमसे कह रही है कि सांसारिक जीवन में मत उतरो। भाग जाओ, संन्यासी हो जाओ!
अगर तुम्हारे प्राणों में यह इतने जोर से उठ रही हो आवाज, अहर्निश सुनाई पड़ रही हो, और इसमें तुम्हें कोई संदेह न हो कि यही तुम्हारा मार्ग है, तो जाओ! फिर मुझसे पूछते क्यों हो? बुद्ध ने किसी से पूछा नहीं--कि संसार में रह कर ही आत्मोपलब्धि करनी चाहिए कि छोड़ कर?
एक युवक मेरे पास आया और पूछने लगा कि मैं विवाह करूं या न करूं? मेरे माता-पिता मेरे पीछे पड़े हैं।
मैंने कहा, तू कर ही ले।
उसने कहा, आप ऐसी कैसी सलाह देते हैं? आपने क्यों नहीं किया?
मैंने कहा, मैं किसी से पूछने भी नहीं गया! पूछने जाने का भी सवाल मेरे
मन में उठता तो मैंने विवाह किया होता। पूछने जाने की बात ही नहीं आती। तू पूछने आया है, साफ है बात कि तू संदिग्ध है। और जहां भी संदेह हो, वहां बेहतर है अनुभव कर लेना। नहीं तो संदेह जीवन भर पीछे रहेगा। अगर मैं तुझसे कह दूं कि विवाह मत कर, और तू न करे, तो जिंदगी भर तुझे एक ख्याल बार-बार आएगा कि पता नहीं करने वालों को क्या मिलता है? करके मुझे पता नहीं क्या मिलता? तू जान कैसे सकेगा? तू तो वंचित रह जाएगा। और तू मुझ पर नाराज भी रहेगा जिंदगी भर। तू मुझे उत्तरदायी ठहराएगा। मैं किसी का उत्तरदायित्व नहीं लेता; क्योंकि मैं किसी का मालिक नहीं होना चाहता। तू पूछने आया है, इसमें ही तेरी बेईमानी जाहिर है।
मेरे साथ तो हालत उलटी थी। मैं तो किसी से पूछने गया नहीं। एक सज्जन मुझे समझाने आते थे--वकील थे--कि विवाह करना चाहिए। तो मैंने उनसे कहा, ऐसा करो कि एक मजिस्ट्रेट को और ले आओ। उन्होंने कहा, क्यों? तो मैंने कहा, कोई निर्णय करेगा न। हम दोनों ठीक से विवाद कर लें। मैं विवाह के विपक्ष में हूं, आप पक्ष में हैं, हम दोनों विवाद कर लें। अगर आप जीत जाएं विवाद में, मजिस्ट्रेट कह दे कि वकील जीत गया, तो मैं विवाह कर लूंगा। और अगर मैं जीत

गया, तो आपको तलाक देना पड़ेगा। क्योंकि आपको भी तो कुछ दांव पर लगाना चाहिए। सिर्फ अकेला मैं ही दांव पर लगाऊं, यह तो न्याययुक्त नहीं है।
फिर वे वकील आए ही नहीं। फिर मैं दो-चार दफे उनके घर भी गया, तो उनकी पत्नी कहे कि वे घर पर ही नहीं हैं। मैंने उनकी पत्नी से पूछा, जब भी मैं आता हूं, तभी घर पर नहीं हैं, बात क्या है? उनकी पत्नी ने कहा कि आपके आने की जरूरत ही नहीं है। आप क्यों मेरे पीछे पड़े हो? मैंने कहा, मैं तेरे पीछे नहीं पड़ा हूं, वे मेरे पीछे पड़े हैं। उसने कहा कि उन्होंने मुझे सब कहा है। और वे आपसे थोड़े भयभीत हो गए हैं, कि कौन यह झंझट मोल ले! इतनी झंझट मोल लेने की उनकी इच्छा नहीं है। और सच तो यह है कि विवाह के अनुभव के बाद कौन दलील दे सकेगा विवाह के पक्ष में?
विवाह के पक्ष में गैर-विवाहित दलील दे सकते हैं, क्योंकि उनको आशाएं होती हैं। विवाहित और विवाह के पक्ष में दलील दें! बहुत मुश्किल है। बहुत असंभव है। उनका अनुभव ही उनकी दलीलों को झुठला देगा।
तुम मुझसे पूछते हो, राकेश, कि क्या आत्मोपलब्धि के लिए सांसारिक जीवन जीना आवश्यक है?
परमात्मा की प्रक्रिया तो यही है। इसीलिए तुम्हें संसार दिया है, जीवन दिया है। जीवन पाठशाला है। इसे जीओ। भरपूर जीओ। जी भरके जीओ। ताकि इसी जीने में से तुम्हें निष्कर्ष मिलें, निष्पत्तियां मिलें। ताकि इसी जीने को जीकर तुम्हें अनुभव में आएं जीवन के दुख, जीवन के सुख, जीवन की क्षणभंगुरताएं, जीवन की व्यर्थताएं, दौड़धूप, आपाधापी, महत्वाकांक्षाएं-- और अंत में हाथ कुछ भी न लगना! इतनी आशाएं और अंततः हाथ में सिर्फ राख ही राख!
ये सब बड़े महत्वपूर्ण अनुभव हैं। इनको जो चूक जाता है, उसकी आत्मा कच्ची रह जाएगी, पक नहीं पाएगी। वह कच्चा घड़ा है, वह आग से गुजरा नहीं। तुम्हारा प्रश्न ऐसे है जैसे कुम्हार पूछे कि क्या घड़े को पकाने के लिए आग से गुजारना जरूरी है?
और किस तरह से घड़ा पकेगा? कच्चा घड़ा घड़े जैसा मालूम होता है, मगर घड़ा
है नहीं। वर्षा का पहला झोंका आएगा और मिट्टी बह जाएगी। आग से गुजरना होगा। आग ही पकाएगी, परिपक्व करेगी।
संसार अग्नि है--जलता हुआ, विराट। तुम्हारे चारों तरफ लपटें ही लपटें हैं। इन सारी लपटों से गुजरना जरूरी है। क्योंकि हर लपट कुछ शिक्षण लिए हुए है। हर लपट की कुछ सीख है, सिखावन है। और हर लपट तुम्हें मजबूत कर जाएगी। जान-जान कर, गिर-गिर कर, उठ-उठ कर ही तो तुम पहचानोगे एक दिन कि यहां सब असार है। जिस दिन तुम जानोगे, सब असार है, उस दिन तुम्हारे जीवन में परम संन्यास का फूल खिलेगा।
मैं तो कह दूं कि सब असार है। मगर मेरे कहने से तुम्हें असार हो जाएगा? बिना भोगे नहीं होगा असार! मैं तो कहूं कि नीम कड़वी है। मगर तुमने न चखी हो तो क्या तुम्हें नीम कड़वी हो जाएगी? भरोसा भी कर लो मुझ पर, तो भी मन में कहीं संदेह तो सरकता ही रहेगाः कौन जाने आदमी झूठ बोलता हो? कौन जाने खुद धोखा खा गया हो? कौन जाने इसकी जबान ही खराब हो कि इसको कड़वी लगी हो? अपने अनुभव के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है।

पी चुका हूं मये-इशरत के छलकते सागर
मैंने समझा था बहारों से बनी है दुनिया
फूल ही फूल हैं हस्ती के गुलिस्तानों में,
दिन बसर होते थे तफरीह में अहबाब के साथ
रातें कटती थीं हसीनों के शबिस्तानों में, ऐशो-इशरत के लिए वक्फ था हर इक लम्हा रक्सगाहों में, तमाशों में, खुमिस्तानों में।

और तलखाबे-अजीयत भी पिया है मैंने
मैंने फूलों को ही समझा था चमन का हासिल
हाय कांटों ने बहारों का फुसूं तोड़ दिया,

मेरे भबके हुए माहौले-गमी ने ऐ दोस्त लेके हाथों से मेरा साजे-जुनूं तोड़ दिया, और सोए हुए अहसास की बेदारी ने रामशो-रंग का पिंदारे-जबूं तोड़ दिया।

ये दो रुख हैं। पहला रुख--
पी चुका हूं मये-इशरत के छलकते सागर
सुख-विलास की खूब शराब मैंने पी।
पी चुका हूं मये-इशरत के छलकते सागर
मैंने समझा था बहारों से बनी है दुनिया
सभी ऐसा मान कर चलते हैं; यही बचपन है सबका, कि दुनिया में बहारें ही बहारें हैं, बसंत ही बसंत हैं, फूल ही फूल हैं, कि रास्ते फूलों से पटे हैं, कि जिंदगी फूलों की एक सेज है, कि यहां खुशियां ही खुशियां तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रही हैं।
पी चुका हूं मये-इशरत के छलकते सागर
मैंने समझा था बहारों से बनी है दुनिया
फूल ही फूल हैं हस्ती के गुलिस्तानों में,
दिन बसर होते थे तफरीह में अहबाब के साथ
मित्रों के साथ मनोरंजन में समय बीतता था। संगीत में, सुरा में, वासनाओं में।
दिन बसर होते थे तफरीह में अहबाब के साथ
रातें कटती थीं हसीनों के शबिस्तानों में,
सुंदरियों के शयनगृहों में रातें कटती थीं, दिन मित्रों के साथ मनोरंजन में बीतते थे। पीना था, पिलाना था; जिंदगी बस एक मनोरंजन थी। ऐशो-इशरत के लिए वक्फ था हर इक लम्हा
और एक-एक क्षण बस भोग-विलास के लिए अर्पित किया हुआ था।
रक्सगाहों में...
नाचघरों में।
... तमाशों में, खुमिस्तानों में।
या तो मधुशालाओं में बैठता था, या नाचघरों में बैठता था, या तमाशे देखता था। जिंदगी बस एक मीठा सपना थी।
यह एक रुख। यह आधी जिंदगी। और जिसने नहीं जीयी, उसे बस यही एक रुख याद आता है। वह बचकाना रह जाता है। वह ऐसे ही सोचता रहता है कि जिंदगी में बस फूल ही फूल हैं।
जिंदगी का एक दूसरा पहलू भी है। और उस दूसरे पहलू से ही परिपक्वता आती है।
और तलखाबे-अजीयत भी पिया है मैंने
और मैंने यंत्रणा का, दुख का, पीड़ाओं का, वेदनाओं का कड़वा जहर भी पीया है।
और तलखाबे-अजीयत भी पिया है मैंने
मैंने फूलों को ही समझा था चमन का हासिल
मैं तो सोचता था, बस फूल ही निष्पत्तियां हैं इस जीवन की।
हाय कांटों ने बहारों का फुसूं तोड़ दिया,
लेकिन कांटे आए, खूब आए। और उन्होंने, वसंत ने जो जादू फैला रखा था, सब तोड़ दिया, सब उखाड़ दिया।
और तलखाबे-अजीयत भी पिया है मैंने
मैंने फूलों को ही समझा था चमन का हासिल
हाय कांटों ने बहारों का फुसूं तोड़ दिया,
मेरे भबके हुए माहौले-गमी ने ऐ दोस्त
और दुख भरे वातावरण ने...
लेके हाथों से मेरा साजे-जुनूं तोड़ दिया,

मैंने वह जो भोग-विलास का एक विक्षिप्त वाद्य बना रखा था; वह जो मैं वीणा बजा रहा था शौक की, संगीत की, मस्ती की; वह जीवन के दुखों ने, जीवन के दुख भरे वातावरण ने अपने हाथ में लेकर वह वीणा तोड़ दी, तार-तार तोड़ दिए। मेरे भबके हुए माहौले-गमी ने ऐ दोस्त
लेके हाथों से मेरा साजे-जुनूं तोड़ दिया,
और सोए हुए अहसास की बेदारी ने
और अब एक जागरण आना शुरू हुआ है, एक होश आना शुरू हुआ है।
रामशो-रंग का पिंदारे-जबूं तोड़ दिया।
संगीत, रंग, राग, वह सब जादू टूट चुका है। वह सब झूठा सिद्ध हो चुका है।
ये दो पहलू हैं जिंदगी के। जिसने जिंदगी पूरी जी है, उसके ही जीवन में वैराग्य का उदय होता है। राग की पीड़ा को जिसने झेला है, वही वैराग्य को जानता है। और जिसने गृहस्थी को खूब घनेपन से जीया है, उसके ही जीवन में संन्यास का फूल खिलता है।
नहीं, मैं तुम्हें सलाह न दूंगा कि संसार से भाग जाओ। मैं तो तुम्हें सलाह दूंगा, जम कर खड़े हो जाओ, संसार को पूरा जी लो! ताकि संसार के दोनों पहलू तुम्हारे सामने आ जाएं, पूरा सिक्का तुम पहचान लो। उस पहचान में ही सिक्का हाथ से छूट जाता है। जादू के टूटने में देर नहीं लगती।
लेकिन अनुभव के बिना जादू टूटता नहीं। और एक बार जादू टूट जाए, तो तुम मुक्त हो।
हाय कांटों ने बहारों का फुसूं तोड़ दिया,
मैंने फूलों को ही समझा था चमन का हासिल
एक बार तुम्हारा जादू टूट जाए वासना का, कामना का! कैसे टूटेगा?
मेरे संबंध में इस सारे देश में, इस देश के बाहर भी बड़ी भ्रांति है। लोग सोचते हैं, मैं लोगों को वासना सिखा रहा हूं। इससे उलटी कोई बात नहीं हो सकती। मैं लोगों को वैराग्य सिखा रहा हूं।
लेकिन वैराग्य फलता ही तब है जब लोग वासना से परिचित हो जाते हैं। नहीं तो वैराग्य फलता ही नहीं। जो वासना से अपरिचित विरागी हो जाते हैं, उनके भीतर राग सुलगता ही रहता है। छिपे-छिपे धुआं उठता ही रहता है। उनकी छाती में राग का धुआं गूंजता ही रहेगा। और कहीं न कहीं वासना पंख फड़फड़ाती रहेगी। और कहीं न कहीं आकांक्षाएं नये रास्ते खोजती रहेंगी। वे नये-नये जन्म लेंगे, उन्हें फिर-फिर लौटना होगा। उन्हें बार-बार आना होगा। जो भाग गए हैं संसार को बिना जीए, उन्हें संसार में वापस लौट ही आना होगा। संसार को जीए बिना कोई भी भाग नहीं सकता। यह कसौटी, यह परीक्षा देनी ही होगी। जिसको मैं संन्यासी कह रहा हूं, अगर मेरी बात ठीक से समझ कर चल सके, तो उसे इस दुनिया में दुबारा आने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। क्योंकि उसका वैराग्य राग की निष्पत्ति होगी। और उसका संन्यास संसार की निष्पत्ति होगी। उसकी मुक्ति ऊपर से आरोपित नहीं होगी, उसके अपने अनुभव से सृजित होगी। उसका अनुभव ही उसे इतना परिपक्व करेगा; उसकी पीड़ाएं जीवन की ही उसे जगाएंगी; उसके हाथ से अपने आप ही ये ऐशो-इशरत के प्याले गिर जाएंगे और टूट जाएंगे; उसके हाथ से अपने आप ही ये जीवन के भोग के वाद्य टूट जाएंगे, इनके तार उखड़ जाएंगे। और यह इतने चुपचाप हो जाएगा--शोरगुल न मचाना होगा, शोभायात्रा न निकालनी होगी, वैराग्य का कोई प्रदर्शन न करना होगा--यह ऐसे चुप-चुप हो जाएगा, गुप-चुप हो जाएगा, भीतर-भीतर हो जाएगा। पर दुबारा आने की फिर कोई जरूरत न रह जाएगी।
मैं तुम्हें एक संन्यास दे रहा हूं जो संसार के बाहर होने के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली उपाय है। मगर बहुत थोड़े से समझदार लोग समझ सकेंगे। अधिक लोग तो गलत ही समझेंगे। वह भी स्वाभाविक है। अधिक लोगों से ज्यादा समझदारी की आशा भी नहीं है।
पूछा है तुमनेः "क्या आत्मोपलब्धि के लिए सांसारिक जीवन जीना आवश्यक है?"
नितांत आवश्यक है, राकेश! उसके बिना कोई संसार से न कभी मुक्त हुआ है,
न हो सकता है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
पांचवां प्रवचन

वह तुम्हें सदा से याद कर रहा है

पहला प्रश्नः आपसे समाधि कैसे चुराएं?

राजपाल! काश यह हो सकता, तो शुभ होता, सुंदर होता। यह हो सकता, तो मेरा पूरा सहयोग होता। लेकिन समाधि चुराई नहीं जा सकती। समाधि तो जगानी होती है। समाधि बाहर से नहीं आती। नहीं तो कोई उपाय खोज लेते चुराने का, खरीदने का। कोई रास्ता बन जाता फिर। कोई विधि-विधान निर्मित हो जाता। लेकिन समाधि बाहर से आती ही नहीं, समाधि बाहर की घटना नहीं है। समाधि कोई वस्तु नहीं है। किन्हीं तिजोड़ियों में बंद नहीं है, अन्यथा तिजोड़ियां टूट जातीं। किन्हीं कठघरों में होती, सेंध लगा लेते। जमीनों में गड़ा खजाना होता, पता लगा लेते। समाधि तो तुम्हारी अंतर्दशा है, तुम हो, तुम्हारा होने का ही नाम है। एक है तुम्हारा होना सोया-सोया और एक है तुम्हारा होना जागा-जागा। उस जागे-जागे होने का नाम समाधि है।
समझो कि कोई आदमी सोया है। क्या यह सोया आदमी किसी आदमी की जागृति चुरा सकता है? क्या यह किसी जागे हुए आदमी से जागृति भीख में पा सकता है? कि मूल्य चुका सकता है? यह सोया है, इसे जागना होगा। और जागरण इसके भीतर से आएगा। जागरण की घटना आंतरिक घटना है। अंतस में दीया जलेगा तो समाधि होगी। लेकिन तुम्हारा प्रश्न प्यारा है! तुम्हारे मन में यह भाव उठा, यह भी शुभ है, सुंदर है। तुम्हारे भाव से मुझे एतराज नहीं है।
फिर चुराने की तो जरूरत तब उठती है जब समाधि छिपाई जा रही हो। समाधि
तो छिपाए छिपती ही नहीं! यह तो सुबह का ऊगा सूरज जैसा है। इसे कैसे छिपाओगे?
जब भी किसी व्यक्ति के जीवन में समाधि घटती है, तो उसकी किरणें विस्तीर्ण होनी शुरू हो जाती हैं। भीतर दीया जला, बाहर रोशनी हुई, यह एक साथ, युगपत हो जाती है बात। और भी मजा है कि जिसे समाधि फलित होती है, वह बांटना चाहता है--बांट नहीं पाता, यह उसकी मजबूरी है। वह देना चाहता है-- लेने वाले नहीं मिलते, यह उसकी मजबूरी है। लेने वाले भी मिल जाएं तो ले नहीं सकते, क्योंकि समाधि हस्तांतरणीय नहीं है।
बुद्धों की पीड़ा क्या है?
यही कि जिसे तुम चाह रहे हो, वह उनके पास है--और अकूत, अपार, अथाह। ऐसा नहीं कि देने से चुक जाएगा, बल्कि ऐसा कि देने से और बढ़ जाएगा। बांटना चाहते हैं, दोनों हाथ उलीचना चाहते हैं। मगर फिर भी यह नहीं हो सकता। बुद्ध लाख-लाख चिल्लाते हैं, लाख-लाख उपाय करते हैं, फिर भी किसी को समाधि दी नहीं जा सकती। हां, समाधि कोई लेना चाहे तो ले सकता है। और लेने की घटना बाहर से नहीं घटती। लेने की घटना तुम्हारे भीतर ही घटती है।
फिर बाहर के बुद्ध का प्रयोजन क्या होता है?
बाहर के बुद्ध के प्रयोजन से समाधि नहीं मिलती, प्यास मिलती है, समाधि
की अभीप्सा मिलती है, आकांक्षा मिलती है। समाधि को पाने का एक दीवानापन मिलता है। एक ऐसी विक्षिप्त दौड़ पकड़ लेती है कि जब तक समाधि न मिल जाए तब तक रुक न सकोगे। समाधिस्थ पुरुष के पास बैठ कर समाधि नहीं मिलती, नहीं मिल सकती; लेकिन समाधि घट सकती है, इसका आश्वासन मिलता है, इसकी आस्था मिलती है, इसकी श्रद्धा उमगती है। और वही सबसे बड़ी क्रांति है।
सदगुरु के पास श्रद्धा का जन्म हो जाए--और किसी तरह श्रद्धा का जन्म होता भी नहीं। कोई बीज अंकुरित हो गया है। पास में पड़े हुए बीज को भरोसा आ जाता है कि कल तक यह बीज भी मेरे जैसा बीज था, आज अंकुरित हो गया, आज इसमें पल्लव निकल आए, आज इसमें से हरियाली का जन्म हो रहा है। वह जो बीज पास में पड़ा है, उसके भीतर भी कोई कसमसाने लगेगा। कोई जागने को आतुर हो जाएगा। कोई लहर उसके प्राणों में दौड़ जाएगी। उसके मुर्दा से पड़े प्राणों में पहली दफा सांसें चलेंगी, हृदय धड़केगा। यह हो सकता है! एक बीज को हो सकता है तो

मुझे क्यों नहीं? और फिर जब वह देखेगा कि पास के बीज में न केवल हरियाली आई है बल्कि फूल भी खिल गए, सुगंध भी उड़ने लगी, तो कैसे अपने को रोक पाएगा? अपने को न रोक पाने का नाम श्रद्धा है। विवश हो जाएगा। बंधा किन्हीं अदृश्य चुंबकीय तारों में, खिंचा चल पड़ेगा किसी अनजान अगम पथ पर, जिस पर कभी चला नहीं। किन्हीं ऐसे प्रदेशों में प्रवेश करने लगेगा, जिनका न कोई नक्शा है, न कोई मार्गदर्शिका है। लेकिन वह जो पास में पड़ा बीज फूलों तक पहुंच गया, वह जो पास में पड़ा बीज चांद-तारों से बातें करने लगा, वह जो पास में पड़ा बीज बादलों के साथ छेड़खान करने लगा, अब बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। अब तुम्हारे भीतर भी एक श्रद्धा उमगेगी कि जो किसी एक को हुआ है, वह मेरे भीतर भी हो सकता है।
पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने एक नया शब्द गढ़ा। वह शब्द महत्वपूर्ण है। सदगुरु और सत्संग को समझने के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है।
विज्ञान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत हैः कार्य-कारण का सिद्धांत, कॉ.जेलिटी का सिद्धांत। सौ डिग्री तक पानी को गरम करो, फिर पानी भाप बनेगा ही बनेगा। इससे अन्यथा नहीं हो सकता। फिर चाहे पानी तिब्बत में गरम करो, चाहे रूस में गरम करो, चाहे भारत में, कुछ भेद न पड़ेगा। नियम सार्वलौकिक है, सार्वभौम है। चाहे पांच हजार साल पहले कोई पानी गरम करे, चाहे कोई आज, चाहे कोई पांच हजार साल बाद, पानी सौ डिग्री पर भाप बन जाएगा। पानी यह नहीं कह सकता कि आज मेरा मन भाप बनने का नहीं है। पानी के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं है। पानी यह नहीं कह सकता कि आज मैं बीमार, कि आज दिल जरा नाराज, कि आज देखें कौन मुझे भाप बनाता है, कि आज तुम्हारे सारे उपाय तोड़ कर रख दूंगा--जलाते रहो ईंधन, मगर मैं मौज में नहीं हूं! या कभी पानी खुश है, और कहे कि क्या फिक्र सौ डिग्री तक जाने की, नब्बे डिग्री पर बन जाऊंगा, अस्सी पर बन जाऊंगा। आज दिल तुम पर निछावर है, आज गीत गुनगुना रहा है मेरा प्राण, आज पचास डिग्री पर ही बन जाऊंगा। नहीं, ऐसी कोई स्वतंत्रता नहीं है। पानी परतंत्र है।
विज्ञान परतंत्रता की ही खोज में लगा है। कहां-कहां परतंत्रता है, वहीं-वहीं विज्ञान सफल होता है। और जहां स्वतंत्रता है, वहीं असफल हो जाता है। क्योंकि स्वतंत्रता का फिर नियम कैसे बने? कभी पानी भाप बने सौ डिग्री पर, कभी एक सौ दस डिग्री पर, एक सौ पचास डिग्री पर, कभी बने ही न, कभी दस डिग्री पर बन जाए, कभी ठंडा ही उड़ने लगे आकाश में, गरमी की जरूरत ही न पड़े-- फिर नियम कैसे बनेगा? और नियम नहीं तो विज्ञान नहीं। नियम बनता है परतंत्रता का। और सबसे बड़ी परतंत्रता के नियम का नाम हैः कार्य-कारण का सिद्धांत।
इसलिए विज्ञान उन-उन चीजों से वंचित रह जाता है, जिनका स्वभाव ही स्वतंत्रता है। इसलिए विज्ञान परमात्मा को नहीं मान सकता। क्योंकि परमात्मा यानी परम स्वातंष्य। इसलिए तो हमने उसे मोक्ष कहा है। विज्ञान आत्मा को नहीं मान सकता। क्योंकि आत्मा का अर्थ हैः निर्णय की क्षमता तुम्हारे भीतर है। आज चाहो तो प्रेम करो और कल चाहो तो न करो। अभी-अभी क्रोध से भरे थे, अभी करुणा से भर जाओ। वही घटना एक को दुखी कर देती है, दूसरे को सुखी कर देती है। नियम कैसे बने? वही घटना आज तुम्हें सुखी करती है, कल दुखी कर देती है। नियम कैसे बने? सब वैसा का वैसा है, लेकिन तुम भिन्न-भिन्न ढंग से व्यवहार करते हो।
आकाश में चांद निकला है, पूर्णिमा की रात है, चांदी बरसती है। आकाश के चांद को देख कर एक आदमी उदास हो जाता है, क्योंकि उसकी प्रेयसी दूर है; और एक आदमी नाच उठता है, अपना इकतारा उठा लेता है, कि अपनी बांसुरी बजाने लगता है, उसकी प्रेयसी पास है। चांद वही, चांदनी वही, सब कुछ वही; एक गीत गाता है, एक की आंखें आंसुओं से भर जाती हैं।
और फिर उलझन पर उलझनें हैं। कभी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं दुख में
और कभी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं सुख में। करो भी तो क्या करो!
इसलिए आत्मा को विज्ञान स्वीकार नहीं कर सकता। प्रेम को विज्ञान स्वीकार नहीं कर सकता। अनायास किसी क्षण तुम्हारे भीतर किसी के प्रति

प्रेम पैदा होता है। और जैसे अनायास पैदा होता है, वैसे ही एक दिन अनायास विदा हो जाता है। न तो आते समय प्रमाणपत्र देता कि क्यों, न जाते समय प्रमाणपत्र देता कि क्यों। न आते समय खबर देता कि कारण, न जाते समय खबर देता कि कारण। कब आ जाए, कब चला जाए! आकस्मिक है। भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। हमारी मुट्ठी में नहीं है। किसी अज्ञात से आता है और किसी अज्ञात में लीन हो जाता है। हवा का झोंका आया और गया। तो प्रेम विज्ञान स्वीकार नहीं कर सकता।
लेकिन प्रेम, प्रार्थना, परमात्मा, आत्मा, यही तो जीवन की सुगंधें हैं। और यही इनकार हो गईं, तो फिर बचा क्या? कंकड़-पत्थर बचे। गंदगी बची। दुर्गंधें बचीं। क्षुद्रता बची। कीचड़ बची, कमल तो खो गए।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने कॉ.जेलिटी, कार्य-कारण के सिद्धांत के समक्ष
एक नया सिद्धांत खोजा, उसे नाम दियाः सिनक्रॉनिसिटी। समस्वरता का सिद्धांत। इस सिद्धांत को समझो, क्योंकि यह सत्संग का सार है। इसे समझे तो समाधि चुराने की बात नहीं सोचनी पड़ेगी।
समस्वरता का सिद्धांत।
तुमने देखा कि मृदंग बजी, लोगों के पैर नृत्य करने लगे और तुम्हारे पैरों में भी कोई थिरकन होने लगी। मृदंग के बजने से तुम्हारे पैरों में थिरकन होनी ही चाहिए, ऐसा कोई कार्य-कारण का सिद्धांत नहीं है। हो भी सकती है, न भी हो। ऐसे भी लोग हैं जिनके पैरों में थिरकन नहीं होगी। ऐसे भी लोग हैं जो मृदंग पर थाप पड़ते देख कर सोचेंगेः कहां का शोरगुल!
दो आदमी एक रास्ते से गुजरते थे। सांझ का वक्त, भरा बाजार, बस बंद होने-होने को; लोग अपना पसारा समेटते हैं, बड़ा शोरगुल मचा है! और पास के ही चर्च की घंटियां बजने लगीं। पुरानी घंटियां, प्रीतिकर, मधुर उनकी आवाज। उन दो आदमियों में से एक ने कहा, सुनते हो, कितना मधुर रव है! कैसी प्रीतिकर ध्वनि है! इस चर्च की घंटियों का मुकाबला नहीं।
पहले आदमी ने कहा, क्या कहते हो, मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता।
दूसरे आदमी ने फिर जोर से कहा।
लेकिन उसने कहा कि देखते हो बाजार में शोरगुल है, घोड़े हिनहिना रहे हैं, गाड़ियां बांधी जा रही हैं, बैल पीटे जा रहे हैं, सामान लादा जा रहा है, शोरगुल मचा है, जल्दी-जल्दी है, सांझ हुई जाती है, सूरज ढला जाता है, लोगों को जाना है, पसारा इकट्ठा किया जा रहा है--इस शोरगुल में तुम कौन सी बात की प्रशंसा कर रहे हो, मेरी कुछ समझ में नहीं आती। और सबसे ऊपर, यह दुष्ट, चर्च का पादरी घंटियां बजा रहा है! सो और भी सुनाई नहीं पड़ता कि तुम क्या कह रहे हो।
अब तो कहने की कोई जरूरत भी न थी। वह मधुर रव, एक को मधुर रव था, उसके प्राणों में कोई सोए गीतों को सुगबुगा गया; उसके प्राणों में कोई सोई स्मृतियों को सहला गया; उसके भीतर आया एक मलहम की तरह, उसके घावों को भर गया; प्रीतिकर था। जैसे प्यार से किसी ने हाथ तुम्हारे सिर पर रखा हो, कि किसी ने बड़े स्वागत से तुम्हें गले से लगा लिया हो, ऐसा वह स्वर था। उसके भीतर भनक पड़ी, प्रतिध्वनि हुई, समस्वर हुआ। और दूसरे आदमी को--यह दुष्ट पादरी नाहक घंटियां बजा रहा है! वैसे ही शोरगुल है, वैसे ही कुछ सुनाई नहीं पड़ता और इस मूढ़ को अभी घंटियां बजाने की सूझी! दूसरे के भीतर कुछ भी न हुआ। और तभी किसी आदमी का एक रुपया खनखना कर गिरा रास्ते पर। भीड़ इकट्ठी हो गई। वह आदमी भी जिसको चर्च की घंटियों में कोई मधुर स्वर नहीं सुनाई पड़ा था, वह भी भागा। उसके साथी ने कहा, कहां जाते हो?
उसने कहा, सुनते नहीं? किसी का रुपया गिरा--खनाखन, अभी गिरा!
उसने कहा, और इतना शोरगुल मचा है, घोड़े हिनहिना रहे हैं, और गाड़ियां, बैल बांधे जा रहे हैं, और लोग चिल्ला रहे हैं, और सामान बांधा जा रहा है, और लोग जाने की जल्दी में हैं--और वह दुष्ट पादरी चर्च की घंटियां बजा रहा है--और तुम्हें एक रुपये के गिरने की आवाज सुनाई पड़ गई!
लोग भिन्न-भिन्न हैं। जिसकी रुपये पर नजर है, उसे हजार शोरगुल में भी रुपया गिरे तो सुनाई पड़ जाएगा। जिसकी रुपये पर पकड़ है, उसे सिर्फ रुपये में ही संगीत सुनाई पड़ता है, और कहीं संगीत सुनाई नहीं पड़ता। अपनी दृष्टि।

फ्रेड्रिक नीत्शे ने लिखा है कि मेरे जीवन में जो सर्वाधिक सुंदर दृश्य मैंने देखा है, वह फूलों का नहीं है, न चांद-तारों का है, न आकाश में उड़ते हुए पक्षियों का है, मैंने जो सबसे सुंदर चित्र अपने जीवन में देखा है वह हैः रास्ते से गुजरते हुए सैनिकों की एक टुकड़ी का। उनकी संगीनें सूरज में चमक रही थीं। उन संगीनों की चमक मुझे भूलती नहीं। उनके बूटों की समस्वर आवाज मेरे चित्त में सदा के लिए स्थायी बस गई है।
लोग भिन्न-भिन्न हैं। फ्रेड्रिक नीत्शे को झीलों में सौंदर्य नहीं दिखा, कमलों में सौंदर्य नहीं दिखा, तारों में सौंदर्य नहीं दिखा; दिखा सिपाहियों की नंगी संगीनों में, उन पर चमकती हुई सूरज की किरणों में, उनके बूटों की समस्वर आवाज में। लोग भिन्न-भिन्न हैं।
लेकिन एक बात तय है कि तुम्हारे भीतर जिस बात के लिए द्वार होता है, उससे समस्वरता पैदा हो जाती है। कोई बांसुरी को सुन कर एकदम भीतर गीत से भर जाता है। बाहर की बांसुरी भीतर के गीत को पैदा करने का कारण नहीं है। अगर कारण होती तो सभी के भीतर पैदा होता।
इसलिए सिनक्रॉनिसिटी का सिद्धांत महत्वपूर्ण है। मनुष्य स्वतंत्र है, कार्य-कारण में आबद्ध नहीं है, लेकिन फिर भी उस पर एक नियम काम करता है--जो उसकी स्वतंत्रता को बाधा नहीं डालता--वह हैः समस्वरता का नियम। गीत को सुन कर तुम्हारे भीतर गीत जन्म सकता है। और किसी सदगुरु को देख
कर तुम्हारे भीतर सोया सदगुरु जग सकता है। समाधिस्थ किसी व्यक्ति के पास बैठ कर तुम्हारे भीतर समाधि में अंकुर निकल सकते हैं। चुराने की जरूरत ही नहीं है।
चुराने की जरूरत तो तब हो, जब तुम्हारे पास समाधि हो न। समाधि तुम्हारी निजी संपदा है; तुम्हारा स्वभाव है। तुम उसे लेकर आए हो। भूल गए हो, पर खजाना तुम्हारे भीतर पड़ा है। हां, बाहर किसी को देख लोगे कि इसने अपना खजाना खोज लिया, तो तुम भी अपने भीतर टटोलने लगोगे। समाधि को चुराने बाहर नहीं जाना है, अपने भीतर खोदना है। समाधि को उघाड़ना है।
पर भाव अच्छा है। चुराने की बात उठी, तो तुम्हारे पैरों में थिरकन आने लगी। चुराने की बात उठी, तो तुम्हारे भीतर समस्वरता की पहली चोट पड़ी, पहला आघात हुआ।

फिर हवाएं हंसी सी बहने लगी हैं,
बात कुछ कहने लगी हैं।

गुनगुनाती सुबह के गुनगुने साए,
अनगिनत खग मुक्त पंखों पर बिछाए,
उड़ रहे हैं, जमी पेड़ों, बीच काली दूरियां दीवार सी ढहने लगी हैं।

स्पंदनों से भर उठी है भूमि नहाई, छू दिया किसने नदी फिर थरथराई, खोखली आवाज से बजती दिशाएं,
गंध से भर मौन अब रहने लगी हैं।

चलो जी लें धूप की तन्मय घड़ी हो,
कौन जाने रात फिर कितनी बड़ी हो,
यही मौसम है सफर के लिए, राहें,
नये सर्जन की व्यथा सहने लगी हैं।

तुम्हारे भीतर कुछ होने लगा, कुछ अंकुर टूटने-टूटने को है।
स्पंदनों से भर उठी है भूमि नहाई,
छू दिया किसने नदी फिर थरथराई,
हां, तुम्हारे भीतर कुछ थरथराया है। तुम छू दिए गए हो, तुम स्पर्शित हुए हो, तुम्हारे भीतर कुछ गतिमान हो गया है।

खोखली आवाज से बजती दिशाएं,
गंध से भर मौन अब रहने लगी हैं।
मौन की आकांक्षा उठी है। तभी तो समाधि को चुराने का भाव उठा। भाव तो सुंदर है। मगर यह हो नहीं सकता। भाव सुंदर है, चुराने की जरूरत भी नहीं है, जगाने की जरूरत है।
चलो जी लें धूप की तन्मय घड़ी हो,
कौन जाने रात फिर कितनी बड़ी हो,
चूकना मत इस घड़ी को। क्योंकि बहुत बार अवसर पास आते-आते दूर निकल जाता है। कई बार सत्संग बैठते-बैठते-बैठते छिटक जाता है। कई बार तार पर हाथ पड़ा, पड़ा; कि संगीत उठा, उठा--और चूक जाता है।
चलो जी लें धूप की तन्मय घड़ी हो,
कौन जाने रात फिर कितनी बड़ी हो,
यही मौसम है सफर के लिए, राहें,
नये सर्जन की व्यथा सहने लगी हैं।
द्वार खुला है, रास्ता सामने है, तुम्हारे भीतर आकांक्षा भी जगी है। चलो! पर खोजना है भीतर। खोदना है भीतर।
और अच्छा ही है कि बाहर से समाधि नहीं मिलती। अगर बाहर से मिलती तो बाहर से छीनी भी जा सकती थी। कोई दे देता और कोई छीन लेता।
रामकृष्ण और विवेकानंद के जीवन में एक उल्लेख है। रामकृष्ण के आश्रम में कालू नाम का एक बहुत भोला-भाला आदमी था। सीधा-सरल भक्त। विवेकानंद उसकी बहुत मजाक उड़ाया करते थे। विवेकानंद ठीक उलटे आदमी थे कालू से। तर्क, विचार, इस सब पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। नास्तिक से आस्तिक हुए थे। और जब भी कोई नास्तिक से आस्तिक होता है, तो उसकी आस्तिकता में भी नास्तिकता की धार कायम रहती है। जाती नहीं।
इस जिंदगी में कुछ भी तुम जो रहे हो, खोता नहीं। किसी न किसी तरह तुम्हारी नई स्थिति में रूपांतरित हो जाता है, आत्मसात हो जाता है। जिंदगी में कुछ भी गंवाया नहीं जाता। सब काम आ जाता है। अतीत खाद बन जाता है भविष्य के लिए। फूल में खाद मिलेगा भी नहीं, मगर है।
विवेकानंद की नास्तिकता खाद बन गई थी आस्तिकता के फूल के लिए। रामकृष्ण के पास समस्वर हो उठे थे, लेकिन पुरानी आदतें थीं, सोच-विचार के पुराने ढंग थे, ढांचे थे, वे एकदम नहीं चले गए थे। कालू की वे बहुत मजाक उड़ाया करते थे। और बात मजाक उड़ाने जैसी थी भी। क्योंकि कालू ने अपनी कोठरी में इतने देवी-देवता इकट्ठे कर रखे थे कि उसका दिन भर पूजा में निकल जाता था, शाम होते-होते भोजन कर पाता था। जो मिल जाए। कहीं गणेश जी मिल गए, उनको ले आया; कहीं हनुमान जी मिल गए, उनको ले आया; कहीं काली माई मिल गईं, उनको ले आया; शंकरजीयों की तो कोई कमी ही नहीं थी उसके कमरे में। खुद रहने की भी जगह नहीं बची थी उसको। उन्हीं देवी-देवताओं के बीच किसी तरह कोठरी में सिकुड़ कर सो रहता था। और सबकी पूजा करनी, और निष्ठा से पूजा करनी! ऐसी भी नहीं कि जल्दी, कि गए और घंटी बजा दी सबके ऊपर और पांच मिनट में निपटा कर बाहर आ गए। वह कोई नौकर नहीं था। वह कोई पुरोहित नहीं था जिसको तुम नौकरी पर रख लेते हो, जो पांच मिनट में सब निपटा कर गया। और भी उसको पूजाएं करनी हैं। और भी घरों में और भी मंदिर हैं। वह तो लगता सुबह तीन बजे से उठ कर, स्नान करके, तो एक-एक मूर्ति को स्नान करवाना, सजाना, भोजन लगाना, भोग लगाना--सांझ हो जाती।
विवेकानंद ने कई दफे कहा कि तूने यह क्या मचा रखा है! अरे, एक की पूजा
कर ले, काफी है। अद्वैतवादी थे। एक पर्याप्त। मगर वह कहे कि किसको छोडूं? ये सब प्यारे हैं। ये गणेश जी देखो, अब इनको छोडूंगा तो दिल में दुख होगा। और ये बेचारे, फिर इनकी कोई पूजा करे न करे! ये भी उदास रहेंगे। यहां देखो कैसे प्रसन्न रहते हैं! अब ये शंकर जी बैठे हैं। अब इनको मैं छोडूं भी तो कहां छोडूं? दूं तो किसको दूं? पक्का क्या है कि इनकी चिंता की जाएगी? जैसे मां अपने बेटे की चिंता करे, ऐसी वह चिंता करता था। बीमार भी होता तो भी वह अपनी पूजा जारी रखता।

पहली दफा विवेकानंद को जब ध्यान का थोड़ा सा अनुभव हुआ, निर्विचार की थोड़ी सी झलक मिली, तो उनको जो पहली बात याद आई वह यह याद आई कि इस निर्विचार की अवस्था में अगर मैं तीव्रता से यह विचार भेजूं कालू की तरफ कि कालू, बांध पोटली में अपने सब देवी-देवताओं को और डाल दे गंगा में, तो जरूर यह विचार संक्रमित हो जाएगा। रुकने का एक दफा मन भी हुआ, कि ऐसा करना ठीक नहीं है। पर दूसरी तरफ से यह भी बात थी कि ठीक ही तो है, क्योंकि है तो एक ही, इतनी पूजा-पत्री करनी क्यों? इस बेचारे का समय खराब होता है, भोला-भाला आदमी, छुटकारा हो जाएगा। दया-भाव से उन्होंने यह विचार संप्रेषित किया। एकाग्रचित्त होकर कहाः कालू, बांध पोटली में सबको और डाल गंगा में!
कालू सीधा-सादा आदमी था। सीधे-सादे आदमी जल्दी संप्रेषित हो जाते हैं। उसने बांधी पोटली, सब देवी-देवता इकट्ठे कर लिए, बांध कर जा ही रहा था कि रामकृष्ण अपने कमरे से बाहर आए और उन्होंने कहा, रुक! कहां जा रहा है? उसने कहा कि एक विचार उठा, बड़ी तीव्रता से विचार उठा कि मैं भी क्या पड़ा हुआ हूं इस पूजा-पत्री में! कब तक पड़ा रहूंगा? एक ही है! तो अब एक की ही पूजा करूंगा। मैं भी अद्वैतवादी हो गया! तो इन सबको ले जाकर गंगा में डुबा देता हूं। अब तो किसी को देने से भी क्या फायदा? अपनी मुसीबत और दूसरे को देना! फिर वह मुसीबत में पड़ेगा। गंगा जी सम्हालें!
रामकृष्ण ने कहा, तू रुक! यह विचार तेरा नहीं है। तेरे चेहरे पर इस विचार की कोई छाप नहीं। तेरी आंख में इस विचार का कोई सहज भाव नहीं। यह विचार जबरदस्ती तेरे ऊपर थोपा गया है। तू रुक, मैं अभी कहानी पूरी खोलता हूं।
वे गए, विवेकानंद का दरवाजा खटखटाया, विवेकानंद बाहर आए--थोड़े डरे थे, थोड़े घबड़ाए भी--और विवेकानंद से कहा, यह उचित नहीं है। तूने दुरुपयोग किया। एक सुंदर क्षण मिला था तुझे निर्विचार का, उसका तूने ऐसा उपयोग किया! तो अब मैं तेरी कुंजी अपने पास रखे लेता हूं। अब तुझे निर्विचार तभी उपलब्ध होगा जब तू उसका दुरुपयोग न कर सकेगा। तब तक के लिए कुंजी मेरे हाथ रही।
और जान कर तुम चकित होओगे कि विवेकानंद जीवन भर कोशिश करके भी फिर उस अवस्था को नहीं पा सके। मरने के तीन दिन पहले ही उनको वह अवस्था वापस मिली।
अब सवाल यह है कि यह जो अवस्था थी विवेकानंद की, यह समाधि थी? अगर समाधि थी, तो विवेकानंद यह नहीं कर सकते थे जो उन्होंने किया--पहली बात। कालू के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं कर सकते थे। समाधिस्थ व्यक्ति विराट हो जाता है। सभी उसके भीतर समाविष्ट हो जाते हैं--ज्ञान भी, और कर्म भी, और भक्ति भी। सब धर्म, सब पंथ उसके अपने हो जाते हैं। मंदिर भी, मस्जिद भी, गुरुद्वारा भी। उसे कुछ भेदभाव नहीं रह जाते। उसे अद्वैत और द्वैत के बीच भी कोई भेदभाव नहीं रह जाता। उसके भीतर ऐसा अद्वैत फलित होता है कि द्वैत और अद्वैत भी एक हो जाता है।
तो विवेकानंद को जो घटा, वह समाधि नहीं थी। एकाग्रता थी, कनसनट्रेशन था। ध्यान भी नहीं था। ध्यान में निर्विचारता होती है। एकाग्रता में सारे विचार एक जगह, एक बिंदु पर केंद्रित हो जाते हैं। वह एकाग्रता थी। एकाग्रता में इस तरह की संभावना है कि तुम दूसरे पर अपना विचार प्रक्षेपित कर दो। और एकाग्रता कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। एकाग्रता बाहर से दी जा सकती है। समाधि बाहर से नहीं दी जा सकती। और इसीलिए रामकृष्ण समर्थ हो सके कि एकाग्रता की कुंजी रख ली उन्होंने अपने हाथ में। बाहर से जो दिया जा सकता है, वह बाहर से रोका भी जा सकता है। यह सिद्धांत शाश्वत हैः जो बाहर से दिया जाए, बाहर से छीना जा सकता है।
अगर विवेकानंद को वस्तुतः समाधि घटी होती तो उन्होंने जो कालू के साथ दुर्व्यवहार किया, वह संभव ही नहीं था। दूसरी बात, रामकृष्ण चाहते भी तो भी उसकी कुंजी रख नहीं सकते थे। जो भीतर घट गया था, उसकी कुंजी रामकृष्ण के पास नहीं हो सकती थी।
एकाग्रता मन की बात है। मन बाहर से निर्मित है। समाधि आत्मा का अनुभव है। आत्मा बाहर से निर्मित नहीं है। मन तो बाहर से आता है। तुम्हारे पास

जो मन है, वह बाहर से आया है। इसलिए हिंदू के पास एक तरह का मन है, मुसलमान के पास दूसरे तरह का मन है। क्योंकि मुसलमान को एक दूसरे तरह का संस्कार मिला है और हिंदू को और तरह का संस्कार मिला है। जैन के पास तीसरे तरह का मन है। कम्युनिस्ट के पास चौथे तरह का मन है। इस दुनिया में जितने लोग हैं, उतने मन हैं। क्योंकि अलग-अलग संस्कार, अलग-अलग परंपराएं, रीति-रिवाज, सभ्यताएं, संस्कृतियां--ये तुम्हें अलग-अलग मन देती हैं। ये एक जैसे मन नहीं हैं।
स्टैलिन लाखों लोगों को काट सका। क्यों? क्योंकि कम्युनिज्म ने उसे
एक मन दिया जो कहता है कि आदमी के भीतर कोई आत्मा ही नहीं है; आदमी यंत्र है। चेतना यंत्र का ही एक प्रतिफलन है। इसलिए मारने में कोई हर्जा नहीं है। यह एक तरह का मन है। कहते हैं, करीब-करीब एक करोड़ आदमियों की हत्या स्टैलिन के द्वारा हुई रूस में। इतना विराट हत्या का आयोजन--और इस आदमी को जरा भी बेचैनी न हुई। सिद्धांत जो उसके मन में बैठा था, वह यह था कि आदमी में आत्मा तो है ही नहीं, इसलिए मारने में हर्ज क्या है?
तुमसे अगर कोई कहे, इस घड़ी को पटक कर तोड़ दो, तो क्या तुम यह कहोगे कि इसमें हत्या होगी, हिंसा होगी; घड़ी मर जाएगी, फिर मुझे पाप लगेगा? तुम कहोगे कि ठीक है, अगर गिरा कर तोड़ना है तो तोड़े देता हूं। घड़ी में कोई आत्मा तो है नहीं। आदमी घड़ी जैसा है कम्युनिज्म की दृष्टि में। इसलिए स्टैलिन एक करोड़ लोगों की हत्या कर सका।
महावीर पैर फूंक-फूंक कर रखते हैं कि कहीं कोई चींटी न दब जाए। रात एक
ही करवट सोते हैं कि कहीं करवट बदलने में, कोई चींटी इत्यादि आ गई हो करवट के पीछे, दब न जाए। अंधेरे में चलते नहीं कि कोई कीड़ा-मकोड़ा दब न जाए। क्यों? एक दूसरा भाव है, कि आत्मा है शरीर के भीतर, चाहे शरीर चींटी का ही क्यों न हो। फिर शरीर हाथी का हो कि चींटी का, कोई फर्क नहीं पड़ता, दोनों के भीतर एक जीवनधारा है। उस जीवनधारा को हानि नहीं पहुंचनी चाहिए। जीवन का एक सम्मान है। यह एक और तरह का मन है।
दुनिया में मन तो बाहर से पैदा होते हैं। तुम्हें सिखाया जाता है, वही तुम्हारा मन बन जाता है। मन सिखावन है, शिक्षण है, संस्कार है। एकाग्रता मन की घटना है। स्कूलों में एकाग्रता सिखाई जाती है। प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक एकाग्रता पर जोर है। चित्त को एकाग्र करो।
चित्त को एकाग्र करने से शक्ति आती है। ऐसे ही जैसे कि तुम सूरज की किरणों को एकाग्र कर लो तो आग पैदा हो जाए। और शक्ति के लोग उपासक हैं। सभी शक्ति चाहते हैं। क्योंकि सभी शक्तिशाली होना चाहते हैं।
ध्यान बड़ी और बात है। ध्यान एकाग्रता नहीं है। ध्यान तो एकाग्रता से बिल्कुल उलटी अवस्था है। एकाग्रता चंचलता के विपरीत है। चंचल चित्त में एक विचार आया, दूसरा आया, तीसरा आया, चौथा आया--भागदौड़ मची रहती है, आपाधापी चलती रहती है। एकाग्रता चंचलता के विपरीत है। एक ही विचार पर टिक कर रह गए। और ध्यान? ध्यान निर्विचार है। न वहां अनेक विचार हैं और न एक विचार है। वहां विचार है ही नहीं। न वहां चंचलता है, न एकाग्रता। और ध्यान समाधि का द्वार है।
अगर समाधि फली होती विवेकानंद को, तो चाबी रामकृष्ण रखना भी चाहते तो नहीं रख सकते थे। रखने की जरूरत भी न होती। क्योंकि समाधि ने कभी किसी की हानि तो की ही नहीं। समाधि से हानि हो ही नहीं सकती। हां, एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति हानि कर सकता है। ज्यादा हानि कर सकता है चंचलचित्त वाले व्यक्ति की बजाय। क्योंकि चंचलचित्त वाले व्यक्ति के पास शक्ति नहीं होती हानि करने की। एकाग्रचित्त वाले व्यक्ति के पास बड़ी शक्ति होती है हानि करने की। वह दूसरों के विचारों को प्रभावित कर सकता है।
एडोल्फ हिटलर ने इसी तरह इस मनुष्य-जाति की इतनी हानि की। बहुत एकाग्रचित्त व्यक्ति था। जब बोलने खड़ा होता था, तो उसकी एकाग्रचित्तता ऐसी थी कि लोग सम्मोहित हो जाते थे। झूठी से झूठी बातें, जो किसी बुद्धू को भी समझ में आ जाएं कि बिल्कुल झूठी हैं, वे भी लोगों को सच मालूम होती थीं। उसकी एकाग्रता का बल था। एकजुट, सारे प्राण एक बिंदु पर केंद्रित थे। वह

जो भी कहता था, उसमें बल हो जाता था। उसने बड़े से बड़े झूठ बोले--दुनिया में कभी किसी आदमी ने इतने बड़े झूठ नहीं बोले। ऐसे झूठ जिनमें कोई संगति नहीं। अब जैसे कि कोई तुमसे कहे कि भारत दरिद्र क्यों है? और उत्तर दे, चूंकि भारत में कई लोग साइकिलों पर चलते हैं। तुम हंसोगे न! तुम कहोगे, पागल हो गए हो? साइकिल पर चलने से भारत के दरिद्र होने का क्या नाता है? कोई हिसाब नहीं, कोई गणित नहीं, कोई संगति नहीं। मगर ऐसे ही उत्तर एडोल्फ हिटलर ने दिए। जर्मनी का पतन क्यों हुआ? क्योंकि यहूदी!
अब यहूदियों से जर्मनी के पतन का कोई लेना-देना नहीं है। सच तो यह है, यहूदियों ने जर्मनी को बहुत समृद्ध किया। जर्मनी ने इस सदी को तीन महापुरुष दिए हैं, तीनों यहूदी थे। कार्ल मार्क्स, सिगमंड फ्रायड, अलबर्ट आइंस्टीन। इस सदी को जिन तीन लोगों ने समृद्ध किया है, वे तीनों लोग जर्मन थे और तीनों यहूदी थे। यहूदी तो जर्मनी का गौरव थे।
लेकिन एडोल्फ हिटलर ने लोगों को समझाया। पहले तो लोग हंसते थे, उसके अपने मित्र ही हंसते थे, यह क्या पागलपन की बात है? इसमें कोई संबंध ही नहीं है। लेकिन एडोल्फ हिटलर का एक सिद्धांत था कि झूठ को अगर बार-बार दोहराया जाए तो वह सच हो जाता है। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि झूठ और सच में इतना ही भेद है। ऐसे झूठ जो बहुत बार दोहराए गए हैं, सच हो जाते हैं। बस दोहराए चले जाओ। वह दोहराए चला गया। चार-पांच साल के भीतर उसने लोगों को मनवा लिया कि यहूदी ही सब उपद्रव के कारण हैं।
और तब उसने दूसरी बात शुरू की कि अगर हम यहूदियों का सफाया कर दें, बिल्कुल सफाया कर दें, तो जर्मन मुक्त हो जाएंगे इस पाप से, इस कोढ़ से; और जर्मन सारी दुनिया के सम्राट हो जाएंगे और एक हजार साल तक जर्मन प्रभुत्व को कोई आंच भी नहीं आएगी। इसके लिए भी लोग राजी हो गए। और जर्मनी, तुम समझना कि मूढ़ों का देश नहीं है। सब सर्वाधिक सुसंस्कृत लोगों का देश है। प्रोफेसरों का देश है। शोधकर्ताओं का देश है। इतना शोधकर्ताओं का, चिंतकों का, विचारकों का, बुद्धिजीवियों का देश एडोल्फ हिटलर के चक्कर में कैसे आ गया? और इस आदमी के पास ऐसी कोई बुद्धिमत्ता नहीं थी। न ही इसके पास कोई ऐसे महान विचार थे। मगर एक बात थी इस आदमी के पास। एकाग्रता थी। जो कहता था, प्राणपण से, पूरे प्राण को समाहित करके कहता था। उसका परिणाम होता है। जब भी कोई आदमी संपूर्ण एकाग्रचित्त होकर कुछ कहेगा, तो जरूर तुम प्रभावित होओगे। अगर न भी कहे और एकाग्रता गहरी हो, तो बिना कहे भी तुम को प्रभावित कर सकता है।
तुम जरा कभी प्रयोग करके देखना। रास्ते पर चलते हुए तुम्हारे सामने कोई चला जा रहा है। अपने मन को बिल्कुल एकाग्र कर लेना उसकी चेंथी पर। और जब चित्त बिल्कुल एकाग्र होने लगे तो उससे कहना कि लौट, पीछे देख! और तुम चकित हो जाओगे, वह आदमी एकदम लौट कर पीछे देखेगा। तुमने जोर से कहा नहीं, यह सिर्फ तुमने मन में सोचा। यह बहुत छोटा प्रयोग है, इसे कोई भी कर सकता है। यह सम्मोहन का बहुत जाहिर प्रयोग है। उसे लौट कर देखना ही पड़ेगा। वह भी चौंकेगा, तुम भी चौंकोगे। देखने का कोई कारण नहीं था--तुमने आवाज नहीं की, तुमने कहा नहीं जोर से। लेकिन तुमने चित्त एकाग्र किया। उसकी चेंथी पर चित्त एकाग्र करना। क्योंकि चेंथी पर एक केंद्र है, जहां से एकाग्रता प्रवेश करती है। जहां से कुंजियां चलाई जा सकती हैं।
रामकृष्ण ने जो कुंजी रख ली, वह एकाग्रता की थी। रामकृष्ण को मानने वाले लोगों ने लिखा है जगह-जगह कि वह समाधि की थी। वह बात गलत है। उन्हें समाधि का कोई पता नहीं है। समाधि की कोई कुंजी न रख सकता है और न कोई दे सकता है। समाधि तो सिनक्रॉनिसिटी है। समाधि तो समस्वरता है। रामकृष्ण समाधि में बैठे हैं, जो भी राजी हो, पास बैठे, उठे, आंदोलित हो, उस हवा को पीए, उस गंध में नहाए, उस आयाम में थोड़ा-थोड़ा सरके, रामकृष्ण के सहारे सरके, उनसे श्रद्धा ले, उनसे थोड़ा सा रस ले, उनको देख कर अपनी संभावना को पहचाने, उनको देख कर अपने भविष्य की थोड़ी झलक पाए--और क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। समाधि चुरानी नहीं पड़ती।
और जिस दिन तुम यह समझ लोगे कि समाधि तुम्हारे भीतर है, सत्संग में फलित होती है। सत्संग कारण नहीं है समाधि का; सत्संग केवल किसी नर्तक के

पास पहुंच जाना है, ताकि तुम्हारे पैरों में सोया हुआ नर्तन झकझोरे लेने लगे। और एक बार तुम किसी सत्संग में झूमने लगो, मस्त होने लगो, डोलने लगो, तो तुम चकित हो जाओगे, हैरान हो जाओगे, विस्मय-विमुग्ध हो जाओगे, भरोसा न कर सकोगे--इतना तुम्हारे भीतर पड़ा था? और जिस दिन तुम्हारे भीतर समाधि उठती है, उस दिन परमात्मा तुम पर बरसना शुरू हो जाता है। अमृत बरसता है। समाधि तुम्हारे भीतर द्वार खोल देती है, हजार-हजार सूरज निकल आते हैं--अमी झरत, बिगसत कंवल! और इधर अमृत झरा और तुम्हारे भीतर सहस्र दलों वाला कमल खिला।

ओ निठुर तुमने दिया यह नेह का वरदान?
हुलसे आज आकुल प्राण!

उन मृदुल प्रियतम चरण पर
अश्रु-भीने युग नयन धर
हो गया कृतकृत्य जीवन
थाम कर हिय आह क्षण भर,
एक त्रुटि वह युग बनी, युग बन गया क्षणमान! पीतम आज हुलसे प्राण!

सुघड़ सांचे में ढले हो,
प्राण! तुम कितने भले हो,
चिर निराश्रित विकल हिय को,
यों सहारा दे चले हो!
सिहर उट्ठा यह पड़ा था, जो निरा म्रियमाण! पीतम आज हुलसे प्राण!

विकट मेरी दूर मंजिल,
राह बंधुर, निपट पंकिल,
है सहारा अगम मग में
तव चरण नख ज्योति झिल-मिल,
मिल गई यौवन निशा में ज्योतिमय मुसकान, पीतम आज हुलसे प्राण!

आ गए तुम यों झिझकते
विरत जीवन में हिचकते,
अब बने रहना सदा यों,
हैं दिवस बीते सिसकते,
दीन की कुटिया करेगी कौन सा सम्मान? पीतम आज हुलसे प्राण!

शाक्त मैं तुम शक्ति मेरी,
भक्त मैं तुम भक्ति मेरी,
नेहयोगी मैं, सजन तुम,
प्रेममय अनुरक्ति मेरी,
गीत कर्ता मैं बने तुम मन प्रफुल्लित गान!
पीतम आज हुलसे प्राण!

तुम्हारे भीतर द्वार खुले समाधि का, कि प्यारा उतरे! प्यारा द्वार पर
ही खड़ा है। मगर द्वार है कि बंद। बंद, सदियों से बंद, जन्मों से बंद। इतने दिनों से, इतने लंबे युगों से बंद कि तुम भूल ही गए हो कि तुम्हारे भीतर द्वार है।

मेरे पास बैठ कर तुम्हें द्वार की याद आ जाए, बस। समाधि, राजपाल, चुरानी न होगी। समाधि के तो तुम मालिक हो ही। समाधि तो तुम्हारा स्वभाव है।

दूसरा प्रश्नः मैं तो परमात्मा की याद बहुत करता हूं, लेकिन मन में प्रश्न उठता है कि परमात्मा भी कभी मेरी याद करता है या नहीं?

नवनीत! प्रश्न स्वाभाविक है, मानवीय है। पर न उठे तो अच्छा। मानवीय से थोड़े ऊपर उठो तो अच्छा। परमात्मा की याद करो, यह तो शुभ है; लेकिन परमात्मा भी तुम्हारी याद करे, यह तो मांग हो गई। यह तो प्रतिदान की इच्छा हो गई। यह तो मांग तुम्हारी प्रार्थना को बोझिल कर देगी। उसके पंख काट देगी। तुम्हारी प्रार्थना के गले में पत्थरों की चट्टान बांध देगी। यह मांग तो शर्त हो गई।
सामान्य मानवीय प्रेम में यह स्वाभाविक है, तुम जिसे प्रेम करते हो,
मन में उठता है सवाल कि वह भी तुम्हें प्रेम करता है या नहीं?
लेकिन मानवीय प्रेम और भक्ति में इतना ही भेद है।
भक्त तो कहता हैः मेरा प्रेम स्वीकार हो जाए, उतना बहुत। उसकी तरफ से मुझे प्रेम मिले, ऐसी मेरी पात्रता कहां? मिले, तो मैं चकित होऊंगा। मिले, तो सिर-आंखों लेऊंगा। न मिले, तो मेरे मन में कहीं भी शिकायत न होगी। न मिले तो जानूंगा कि मैं योग्य कहां था! मेरा प्रेम स्वीकार हुआ, यह भी क्या कम है! तो भी मैं बड़भागी हूं। मेरी प्रार्थना उन चरणों तक पहुंच सकी, इतना बहुत है।
लेकिन, तुम्हारी मानवीय आकांक्षा भी समझ में आती है। हम मनुष्य हैं, मनुष्य होकर ही हमें धीरे-धीरे मनुष्य का अतिक्रमण भी करना है। तो उठ आती हैं इस तरह की इच्छाएं। और अच्छा है कि ऐसी इच्छाओं को तुम पूछ लो। क्योंकि पूछो तो समझ में आए। समझ में आए तो शायद धीरे-धीरे छूटे भी।

चांदनी छतों चढ़ी पछताय
कांस बन की
मुसकाय जी।

देह कंचन की माटी पोत
भरे-घर
रोटी सेंकी-गंध
नदी में दीपक ननद सिराय
भाग अपने
खाली अनुबंध,
चांदनी गहरे जल उतराय
फांस मन की
मुसकाय जी।

हथेली-भर गोबर का रंग
आंख-भर
इंद्रधनुष की डोर
डहकती रही सगुनिया प्यास
रात भर
हंसता रहा अंजोर,
चांदनी जरे-जोग डस जाए
सांस फन की
मुसकाय जी।

साधारण प्रेम के जगत में तो जरूर शर्तें उठती हैं, ईर्ष्याएं उठती हैं। किसी दूसरे का प्रीतम आ गया और तुम्हारा न आया, तो जलन उठती है। किसी

दूसरे के प्रीतम की पाती आ गई और तुम्हारे प्यारे की पाती न आई, तो डाह उठती है।
देह कंचन की माटी पोत
भरे-घर
रोटी सेंकी-गंध
नदी में दीपक ननद सिराय
भाग अपने
खाली अनुबंध,
... मेरे भाग्य खाली हैं, खाली ही रहेंगे क्या? ... चांदनी गहरे जल उतराय
फांस मन की
मुसकाय जी।
और चांद आ गया और चांदनी आ गई और हृदय में फांस लगी है। हथेली-भर गोबर का रंग
आंख-भर
इंद्रधनुष की डोर
डहकती रही सगुनिया प्यास
रात भर
हंसता रहा अंजोर,
चांदनी जरे-जोग डस जाए
सांस फन की
मुसकाय जी।
बहुत जलन, बहुत ईर्ष्या, स्वाभाविक है मनुष्य के जीवन में। लेकिन भक्ति के जगत में प्रेम को थोड़ा निखारना होगा। प्रेम की धूल थोड़ी झाड़नी होगी। प्रेम को थोड़ा स्नान कराओ। मत यह पूछो।
तुम पूछते होः "मैं तो परमात्मा की याद बहुत करता हूं, लेकिन मन में प्रश्न उठता है कि परमात्मा भी कभी मेरी याद करता है या नहीं?"
तुम्हें परमात्मा की याद करनी पड़ती है, क्योंकि तुम उसे भूल गए हो; उसे नहीं करनी पड़ती, क्योंकि वह कभी भूला नहीं है! परमात्मा तुम्हें भूल जाए तो तुम जी सकोगे एक क्षण? वह भूला कि सांस की डोर कटी। वह भूला कि हृदय की धड़कन बंद हुई। वह भूला कि तुम हो ही नहीं सकते। तुम हो तभी तक, जब तक वह तुम्हें याद किए जा रहा है। उसकी याद में ही तुम्हारा जीवन है। और तुम अनंत काल से हो। और तुम अनंत काल तक रहोगे। तुम शाश्वत हो।
देहें आती और जाती हैं, मन बनते और बिगड़ते हैं। तुम न तो आते, न जाते। तुम सदा हो। तुम सदा-सदैव हो। तुम उसकी स्मृति में ही हो। तुम्हें भूलने का कोई उपाय ही नहीं है।
हां, तुम उसे भूल सकते हो।
बच्चा गया खेलने, खिलौनों में उलझ जाए, नदी के किनारे बैठ कर रेत के घर-घूले बनाने लगे, मां को भूल जाए, मां नहीं भूलती। मां तो रात जब सो जाती, आकाश में बादल गरजते हों, बिजली कौंधती हो, उसे सुनाई नहीं पड़ती, लेकिन उसका छोटा सा बच्चा अगर जरा कुनमुनाए, तो उसे सुनाई पड़ जाता है! मां नहीं भूलती।
परमात्मा से अर्थ क्या है? परमात्मा से अर्थ हैः इस अस्तित्व का जो हृदय है। इस अस्तित्व की जो धड़कन है। इस सारे अस्तित्व का जो प्राण है, केंद्र है, आत्मा है। हम उसकी किरणें हैं। सूरज हमें भूल कैसे जाए? भूल जाए तो हम समाप्त हो गए। उसके भूलने में हमारा अंत है। हम भूल सकते हैं, हम पीठ कर ले सकते हैं परमात्मा की तरफ। बच्चे खेल में उलझ जाते हैं तो भूल जाते हैं। मां पुकारती है तो क्रोध आता है; क्योंकि खेल को खराब किए दे रही है।
परमात्मा तुम्हें नहीं भूला है, तुम्हीं उसे भूले हो। तुम उसे याद कर
लो और तत्क्षण तुम्हें समझ में आ जाएगा कि उसने तो तुम्हें सदा ही याद रखा था। भूल एकतरफा है।

मगर, मन में इस तरह के सवाल उठ आने स्वाभाविक हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारे मन में यह सवाल उठा तो तुमने कोई अपराध किया, कि तुमने कोई पाप किया। नवनीत, स्वाभाविक है!

याद तुम्हारी प्रतिपल नूतन, मेरी याद तुम्हें आ जाए!
रेख-खचित है राह तुम्हारी, कौन पार जा व्यथा सुनाए!

बंधे सभी हैं जटिल नियम में,
मन के साथी-सहचर सारे;
सतत भ्रमण कर दूर-दूर तक,
थके कल्पना के हरकारे;
सीमा लांघ न कोई पाया, जो संदेश तुम्हें दे आए!
याद तुम्हारी प्रतिपल नूतन, मेरी याद तुम्हें आ जाए!

व्यस्त खोज में विविध रूप से,
किंतु विफल सब हैं बंधन में;
चपल चित्त चिंतन आतुर हो,
उड़-उड़ कर फंसता उलझन में;
चतुर कपोत न बन पाया, जो थान ढूंढ़ पाती पहुंचाए! याद तुम्हारी प्रतिपल नूतन, मेरी याद तुम्हें आ जाए! भाव-पुजापा अमित संजोए
मन तल्लीन हुआ अर्चन में;
सांस-सांस हो रही समर्पण,
हृदय-स्पंदन-रत वंदन में;
प्राण-पहरुआ तन में तन्मय, बाहर जाने से घबराए!
याद तुम्हारी प्रतिपल नूतन, मेरी याद तुम्हें आ जाए!

स्वर, लय, ताल लुटाती रसना,
स्वत्व गंवाती प्रीति रीति में;
व्यथा-कहानी कह जाती है,
अस्फुट अनगढ़ सरल गीत में;
संभव है संगीत मौन हो, तेरी वीणा से टकराए!
याद तुम्हारी प्रतिपल नूतन, मेरी याद तुम्हें आ जाए!

मन है मनुष्य का, भाव उठता है कि मैं तो तुम्हें पुकारता, कभी तुम भी मुझे पुकारते हो? मैं तो तुम्हें याद करता, कभी तुम भी मुझे याद करते हो? क्या ऐसी भी मेरी धन्यता होगी कभी कि तुम मुझे याद करो?
परमात्मा याद कर ही रहा है। और तुम्हारी धन्यता भी एक दिन होगी, जिस दिन तुम सुन पाओगे कि वह तुम्हें पुकारता है। इतना पुकारता है जितना तुमने उसे कभी पुकारा ही नहीं। तुम्हारी सब पूजा-अर्चना फीकी पड़ जाएगी, जिस दिन तुम जानोगे उसने जो सम्मान तुम्हें दिया, उसने जो सत्कार तुम्हें दिया। उस दिन तुमने जो पुकारा था और सोचते थे कि बड़ी साधना की और तपश्चर्या की और भक्ति की और पूजा की, आंखें झुक जाएंगी शर्म से। क्योंकि तुम्हारा पुकारना कोई पुकारना न था। उसने तुम्हें हजार-हजार कंठों से पुकारा है। पक्षियों के कंठों से पुकारा है, वृक्षों के फूलों से पुकारा है, चांद-तारों की रोशनी से पुकारा है, नदी के कलकल नाद से पुकारा है, सागर की तरंगों से पुकारा है, बादलों की गड़गड़ाहट से पुकारा है--उसने तुम्हें इतने कंठों से पुकारा है, इतने रूपों में पुकारा है, पुकारा ही पुकारा है-- कि तुम जिस दिन समझ पाओगे, उस दिन आंखें न उठा सकोगे ऊपर।
तुमने किया ही क्या था? कभी पत्थर की एक मूर्ति के सामने बैठ कर एक दीया जला दिया था। कभी पत्थर की मूर्ति पर दो फूल चढ़ा दिए थे। न फूल तुम्हारे थे, वे तो चढ़े ही थे वृक्षों पर, उसी के चरणों में चढ़े थे। तुमने तोड़ कर और उनकी हत्या कर दी थी और सोचा था कि अर्चना की है। और तुमने दीया

जला दिया था। दीये तो सभी उसी के हैं। रोशनी सब उसकी है। तुम्हारा उसमें क्या था? जिस दिन जानोगे, उस दिन समझोगे कि तेरी ही चीजें तुझे ही चढ़ाते रहे--कैसे नासमझ थे! अगर तुम अपने को भी चढ़ा दो तो भी तुम कुछ नहीं कर रहे हो, क्योंकि तुम भी उसके हो।
लेकिन इस आकांक्षा से धीरे-धीरे ऊपर उठो। हम पुकार लें, इतना ही बहुत।
हम पुकारने योग्य हो जाएं, इतना ही बहुत। हमारे प्राणों में थोड़ा-थोड़ा स्पंदन होने लगे, थोड़ी वीणा झंकृत होने लगे, इतना ही बहुत। और मैं तुमसे थोथी पूजा करने को नहीं कह रहा हूं। न तो तुमसे कह रहा हूं कि क्रियाकांड में पड़ो। हार्दिक भावना चाहिए। कहीं भी झुक गए प्रीति से, तो मंदिर है। किसी वृक्ष के पास झुक गए, तो तीर्थ है। किसी भी पत्थर पर सिर टेक दिया पूजा के भाव से, तो मूर्ति बन गई।
मूर्तियां मूर्तिकार नहीं बनाते। और जो मूर्तिकार बनाते हैं, वे मूर्तियां मंदिरों में स्थापित नहीं करनी चाहिए, उन्हें रखना चाहिए म्यूजियम घरों में। वे चित्रकला के नमूने हैं। मूर्तिकला के नमूने हैं। मनुष्य की कुशलता के नमूने हैं।
लेकिन भक्त जरूर मूर्ति का निर्माण करता है। भक्त भगवान का निर्माण करता है। भक्त जहां भाव से झुक जाता है, वहां मूर्ति निर्मित हो जाती है। मैं एक घर में मेहमान था। वे मुसलमान हैं, बड़े मूर्तिकार हैं। जैन उनसे मूर्तियां बनवाते हैं महावीर की, और बौद्ध उनसे मूर्तियां बनवाते हैं बुद्ध की, और हिंदू उनसे मूर्तियां बनवाते हैं कृष्ण की और राम की--और वे मुसलमान हैं। मैंने उनसे पूछा कि मुसलमान होकर तुम मूर्तियां बनाते हो, तुम्हारा भाव तो हो ही नहीं सकता! तुम्हारे पास भक्त का तो भाव हो नहीं सकता। तुम तो मूर्तिभंजक।
उन्होंने कहा, बात तो ठीक है। यह तो धंधा है! इससे भाव का कोई लेना- देना नहीं।
अब जरा सोचो! जिस आदमी ने धंधे के लिए मूर्ति बनाई, भला तकनीकी रूप से
वह कितना ही कुशल हो, जिसने धंधे के लिए मूर्ति बना दी कृष्ण की, जिसमें भाव जरा भी नहीं है कृष्ण के प्रति--तुम जो चाहो बनवा लो; चाहे कृष्ण की मूर्ति बनवा लो तो वह वैसे ही बना देगा, चाहे हिटलर की बनवा लो तो वैसे ही बना देगा, चाहे चंगीज खान की बनवा लो तो वैसे ही बना देगा; उसे कोई अंतर नहीं; तकनीक है उसके पास, कला है। वह मूर्तिकार है। लेकिन उसके पास भक्त का भाव नहीं है। क्या इसकी मूर्ति में कोई अर्थ हो सकता है?
फिर ये मूर्तियां बड़े-बड़े मंदिरों में प्रतिष्ठित हो गईं। फिर इन मूर्तियों की पूजा चल रही है।
यह तो सिर्फ थोथा आयोजन हुआ। भले हैं गांव के लोग कि किसी भी पत्थर को, जिससे प्रेम हो गया, उसी पत्थर को पोत दिया सिंदूर से, चढ़ा दिए फूल, झुका लिया सिर। न कोई तकनीक है, न कोई मूर्ति है, न कोई मूर्तिकार है--लेकिन भक्त है तो भगवान है।
मैं तुमसे किसी क्रियाकांड में पड़ने को नहीं कहता। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम बंधी-बंधाई प्रार्थनाएं करो। क्योंकि उनका कोई मूल्य नहीं है। सीखी-सिखाई प्रार्थनाएं करो, बस वे तो तोतों जैसी हैं। उनका कोई भी मूल्य नहीं है। तोते को तुम गाली देना सिखा दो तो वह गाली देता है। तोते को तुम राम-राम कहना सिखा दो तो वह राम-राम कहता है। तोता बिल्कुल निष्पक्ष है। उसकी निष्पक्षता का ख्याल रखना। न राम-राम कहने में उसे कुछ पक्षपात है, न गाली देने में कोई पक्षपात है।
एक स्त्री तोते को खरीदने गई। कई तोते देखे दुकान पर, लेकिन एक तोता बहुत पसंद आया। लेकिन दुकानदार ने कहा, इसको आप न खरीदें। स्त्री बड़ी धार्मिक थी। चर्च जाती, चर्च के पादरी को निमंत्रित करती। अविवाहित रही थी। धर्म के लिए उसने सब कुछ अपना लगा दिया था। दुकानदार को पता था। उसने कहा कि यह आप न खरीदो। यह तोता जरा गलत संग में रहा है। यह एक वेश्या के घर रहा है। इसे एक वेश्या के घर से खरीदा गया है। तो यह जरा गालियां बकता है। और भद्दी गालियां बकता है। आपको यह न जंचेगा।

मगर तोता बड़ा प्यारा था। और स्त्री के मन भा गया। उसने कहा, हम सिखा लेंगे। ले आई घर तोते को। दुकानदार ठीक ही कहता था। हर बात ही वह गाली से शुरू करता था। तो पहले ही रविवार को जब पादरी आया तो वह स्त्री थोड़ी घबड़ाई। उसने जल्दी से उस पर एक कंबल ढांक दिया तोते पर, कि कहीं पादरी को देख कर कुछ न कुछ कह न दे! यह नियमित हो गया व्यवहार कि जब भी पादरी आता रविवार को, वह जल्दी उस पर कंबल ढांक देती।
एक दिन ऐसा हुआ कि रविवार को पादरी आया और फिर सोमवार को कोई काम आ गया
तो फिर आया। आता हर रविवार को था हमेशा, उस दिन सोमवार को पहली दफे आया। स्त्री ने जल्दी से घबड़ाहट में तोते पर कंबल डाला। तोते ने कहा, ऐसी की तैसी इस पादरी की! इस बार एक ही दिन में सप्ताह पूरा हो गया?
इतना बिना कहे तोता नहीं रह सका। पादरी ने सुना तो पादरी ने कहा, यह तो, यह तोता किस तरह का है? ऐसी की तैसी पादरी की! मेरे पास भी तोता है, वह बड़ा भक्त तोता है। इस तोते को दे दो, दोनों को साथ रखेंगे कुछ दिन तो यह भी भक्त हो जाएगा।
ले गया पादरी। दोनों को एक ही पिंजरे में रख दिया। और जब पांच-सात दिन बाद महिला पता लगाने पहुंची कि हालत क्या है, तो पादरी बड़ा बेचैन था। पादरी बोला कि मैं बड़ा बेचैन हूं। तेरे तोते ने तो गालियां देनी बंद कर दीं, मगर मेरा तोता जो कि प्रार्थना करता था, उसने प्रार्थना भी बंद कर दी। दोनों चुप हो गए हैं। यह कुछ समझ में नहीं आती बात! तो दोनों तोते मुस्कुराए। तो पूछा उन्होंने कि भई, क्या बात क्या है? तो राज खुला! कि पादरी का तोता तो नर था और वह जो तोता महिला का था, वह मादा था। तो उस पादरी के तोते ने कहा कि हम प्रार्थना इसीलिए करते थे कि कोई मादा मिल जाए। अब किसलिए प्रार्थना करें? और मादा तोते ने कहा, मैं गालियां इसीलिए देती थी कि जिंदगी यूं ही जा रही है, कोई नर मिल जाए। अब नर मिल गया तो मैं गाली क्यों दूं? अब हम दोनों मजे में हैं। तुम दोनों भाड़ में जाओ!
तोते को चाहे तुम राम-राम सिखा दो और चाहे गालियां सिखा दो, कंठ से गहरी बात नहीं जाएगी। तोता तोता है। और अक्सर तुम्हारी प्रार्थनाएं तोतों जैसी हैं। सीख ली हैं। सिखा दी गई हैं। मैं सिखाई गई प्रार्थनाओं के लिए नहीं कह रहा हूं। कम से कम इतना तो परमात्मा के साथ प्रेम प्रकट करो कि अपनी प्रार्थना अपनी हो, निज हो! कम से कम उधार शब्द तो उसके सामने मत दोहराओ! चले गायत्री दोहराने लगे! अपना ही गीत गाओ न! गायत्री किसी का अपना गीत रहा होगा, तब सुंदर था। जिसके हृदय से उठा होगा, तब उसमें परम भगवत्ता थी। जिसने पहली बार गुनगुनाया होगा, जो पहला उदगाता था, गायत्री जिसके भीतर जन्मी होगी, उस गरिमा का निर्वचन नहीं हो सकता। मगर गायत्री तुम्हारी नहीं है। तुम बैठे गायत्री जप रहे हो! यह सब तोतारटंत है। तुम्हारी गायत्री प्रतीक्षा कर रही है तुम्हारे भीतर। तुम अपना गीत गाओ! चाहे कितनी ही तुतलाहट क्यों न हो तुम्हारे गीत में, चाहे मात्राएं ठीक न बैठें और चाहे छंद न बंधे और चाहे सुंदर काव्य न हो, फिकर मत करना। परमात्मा को न छंद की फिक्र है, न व्याकरण की, न भाषा की। परमात्मा को अगर कोई फिक्र है तो सिर्फ एक बात की--तुम्हारे प्रेम की। प्रेमपूर्ण आह्वान की। जैसे तुम्हारे हृदय में उठे।
फिर रोज-रोज की आदत मत बनाओ--कि कल जो प्रार्थना की थी वही आज करेंगे, वही कल भी करेंगे। यह भी क्या बात हुई! क्या तुम रोज परमात्मा से उस क्षण में सहजता से दो बातें नहीं कर सकते हो? जो उस क्षण में भाव हो। न हो कोई भाव तो चुप रह सकते हो। चुप्पी भी प्रार्थना हो जाएगी! कुछ कहने को न हो तो यही निवेदन कर देना कि कुछ कहने को नहीं है, तुझे कुछ कहना हो तो तू कह। हम सिर झुका कर बैठ कर सुनेंगे।
और ध्यान रखना, प्रार्थना का पहला कदम हैः तुम्हारा परमात्मा से बोलना; और दूसरा कदम हैः तुम्हारा सुनना और परमात्मा का बोलना। जब तक तुम्हीं बोलते जाओगे, तब तक असली प्रार्थना आई नहीं अभी। अधूरी-अधूरी है। सुनोगे कब? वास्तविक प्रार्थना कहना कम, सुनना ज्यादा है। वह जबान की बात कम और कान की क्षमता ज्यादा है। ग्राहकता ज्यादा है।

तो कभी चुप रह जाना। और कभी गीत गाना। और कभी दो बात कर लेना। और बातें सरल हों, सीधी-सादी हों, शास्त्रीय न हों, सैद्धांतिक न हों, भोली-भाली हों। जितनी भोली-भाली हों, उतनी ही दूर तक जाएंगी। और जितनी हृदय से उमगेंगी, उतनी ही उसके चरणों में स्वीकार हो जाएंगी।

रही उसकी याद करने की बात, वह तुम्हें सदा से याद कर रहा है।

तीसरा प्रश्नः मैंने संसार के सब सुख-दुख को अनुभव कर देखा है। शादी
के भी मीठे और कड़वे अनुभव किए हैं। संसार की सब चालबाजियों से गुजरा हूं। अभी आपके कहे "ग्रुप" करके मेरा हृदय बिल्कुल आपके प्रति खुल गया है। दिल होता है आपमें पूरा डूब जाऊं और आपके साथ आकाश में उडूं और बहारों में फूल और आनंद बरसाऊं। मुझे अपना लो! आपकी अनुकंपा अपार है! बहुत धन्यवाद!

योगानंद! मैं तुम्हें अपनाऊं, यह सवाल ही नहीं है। मैंने तो तुम्हें जिस दिन संन्यास दिया, अपना ही लिया। संन्यास और क्या है? मेरी तरफ से स्वीकार--कि तुम जैसे हो, प्रीतिकर हो; कि तुम जैसे हो, सुंदर हो; कि तुम जैसे हो, अंगीकार हो। मैं तो अपना लेता हूं तुम्हें पहले ही क्षण, तुम्हें ही देर लग जाती है, वर्षों लग जाते हैं मुझे अपनाने में।
मुझे अपनाने में तो अड़चन क्या? मेरा तो सीधा उसूल है कि परमात्मा जब तुम्हें अपना रहा है, तो मैं कोई और ज्यादा योग्यता तुमसे नहीं मांग सकता। जब परमात्मा ने तुम्हें जीवन दिया है, और उसने तुम्हें पात्र माना है, तो मैं कोई और परीक्षाएं तुम्हारे लिए तय नहीं कर सकता, जो तुम पार करो तब मैं तुम्हें अपनाऊंगा। परमात्मा तुम्हें जिलाए है, यह काफी है। यह तुम्हारी योग्यता हो गई, पात्रता हो गई।
फिर मैं कौन हूं जो तुम्हें इनकार करूं? मैं तो स्वीकार ही करूंगा। क्योंकि उसी स्वीकार में से एक संभावना का द्वार खुलता है कि किसी दिन तुम मुझे स्वीकार कर सको। अड़चन तो वहां है। जब मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं, तो मुझे तो कुछ भी खोना नहीं पड़ता। लेकिन तुम जब मुझे स्वीकार करोगे, तुम्हें कुछ खोना पड़ेगा। अहंकार खोना पड़ेगा। वहीं अड़चन आ जाती है। वहीं गांठ है।
शुभ भाव उठा है आज तुम्हें। ऐसे भी काफी देर हो गई, योगानंद, तुम्हें संन्यासी हुए काफी दिन हो गए! मगर मैं भी प्रतीक्षा करता हूं। ठीक घड़ी जब आए, सम्यक घड़ी जब आए। मैं भी देख रहा हूं कि तुम सब तरह के सुख-दुख के अनुभव से गुजर रहे हो। मेरे ही सामने तुम्हारी शादी हुई और मेरे सामने ही तुम्हारी शादी टूट भी गई। तुम तरह-तरह की चालबाजियों में कुशल हो--होशियार आदमी हो। और इस दुनिया में होशियार आदमी को सिवाय चालबाज होने के और कुछ सूझता ही नहीं! यहां जितना होशियार आदमी होता है, उतना ही चालबाज हो जाता है। यहां होशियार रहना और सीधा-सादा रहना बड़ी अपूर्व घटना है। पढ़ा-लिखा आदमी बेईमान हो ही जाता है। गैर पढ़े-लिखे बेईमान नहीं होते, इसमें कोई गुणवत्ता नहीं है। गुणवत्ता तो तब है जब पढ़ा-लिखा आदमी और बेईमान न हो। सुशिक्षित आदमी और सीधा-सादा हो, तो कोई गुणवत्ता है। अशिक्षित तो सीधा- सादा होता है। अशिक्षित होने के कारण सीधा-सादा होता है, और कोई खूबी नहीं है।
मैं कोई गांव के लोगों की प्रशंसा नहीं कर रहा हूं। मैं कोई ग्रामीण जीवन का पक्षपाती भी नहीं हूं। जैसा कि तुम्हारे देश में बहुत साधु-संत हैं, वे प्रशंसा करते हैं कि अहा, गांव के लोग कितने भोले-भाले! भोले-भाले नहीं हैं, सिर्फ उनको चालबाजी का अवसर नहीं मिला। अवसर का न मिलना कोई गुणवत्ता नहीं है।
एक आदमी ने इश्तहार निकाला अखबारों में कि मैं एक बड़ा पुरस्कार देना चाहता हूं--दस हजार डालर--उस आदमी को जो अपने चरित्र का ठीक-ठीक प्रमाण दे दे। बहुत पत्र आए, चरित्रों के प्रमाण सहित पत्र आए, लेकिन एक पत्र उसने चुना जो कि सर्वाधिक चरित्रवान आदमी मालूम होता था। उस पत्र के लेखक ने लिखा था--पत्र को पढ़ते ही उसका हृदय गदगद हो गया--उसने लिखा था कि न मैं

सिगरेट पीता, न शराब, न चाय, न काफी, न कोको; पर-स्त्रियों की तो बात दूर, अपनी स्त्री से भी दूर रहता हूं; न मेरा किसी से मोह है, न आसक्ति है; एकांत मेरा जीवन है; एक छोटी सी कोठरी में चौबीस घंटे निवास करता हूं; समय पर भोजन लेता हूं, रूखा-सूखा; जो मिल जाए उससे राजी हूं, संतुष्ट हूं; कोई शिकायत नहीं है; सुबह पांच बजे ब्रह्ममुहूर्त में उठता हूं; सांझ सूरज के ढलते ही सो जाता हूं, ऐसा प्राकृतिक मेरा जीवन है। उसकी चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते तो उसे लगा कि यह आदमी दस हजार डालर ले जाएगा। वह तो आखिरी, पुनश्च करके उसने लिखा था कि मगर और तीन महीने की बात है--जरा जेल से मुझे छूटने दो!
अब जेल में रह कर अगर तुम पर-स्त्रियों से दूर और अपनी स्त्री से भी दूर; और जेल में रह कर जो मिल जाए उसी में संतुष्ट, तो इसका कोई अर्थ नहीं है, कोई मूल्य नहीं है।
और कुछ लोग इसी तरह अपने चरित्र को निर्मित किए हुए हैं। उनका चरित्र
भी एक सूक्ष्म अदृश्य कारागृह के भीतर है। चाहे उनकी जंजीरें तुम्हें दिखाई न पड़ती हों, मगर उनके हाथों में जंजीरें हैं--प्रतिष्ठा की, सम्मान की, समादर की। चाहे उनके आस-पास की कालकोठरी तुम्हें दिखाई न पड़ती हो, लेकिन वह आस-पास उनके कालकोठरी है--चरित्र की, समाज की, समाज के भय की। नरक का भय, स्वर्ग का लोभ, इन सबने उन्हें कारागृह में डाल दिया है। उनके चरित्र का कोई मूल्य नहीं है, मेरी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। मैं तो उसी व्यक्ति को चरित्रवान कहता हूं, जिसे अवसर है, समग्र अवसर है, सुविधा है, और फिर भी जो उस सुविधा का उपयोग नहीं करता। किसी बाह्य कारण से नहीं, बल्कि एक आंतरिक बोध से।
मैं चाहता था कि तुम सुख-दुख देखो। मैं चाहता था कि तुम चालबाजियों से
भी गुजरो। पढ़े-लिखे योग्य व्यक्ति हो, विचारशील व्यक्ति हो। मैं गांव के ग्रामीण भोले-भाले आदमी को कोई मूल्य नहीं देता। उसका भोला-भालापन सिर्फ अवसर की कमी है। और गांव का भोला-भाला आदमी जैसे ही शहर आता है, तुम चकित हो जाओगे, वह शहर वालों के भी कान काटने लगता है।
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था तो गांव से, दूर गांव से, एक आदमी दूध बेचने आया करता था विश्वविद्यालय के छात्रावास में। वह इतना सीधा-सादा अच्छा आदमी था कि लोग उसको संत जी कहते थे। नाम किसी को उसका पता भी नहीं था, लेकिन संत जी करके वह प्रसिद्ध हो गया था। फिर धीरे-धीरे उसकी ख्याति बढ़ी। फिर वह विश्वविद्यालय के पास ही आ गया, वहीं उसने अपनी गौशाला खोल ली, भैंसें ले आया; धीरे-धीरे उसका दूध पानी ज्यादा और दूध कम। लोग उससे पूछते, संत जी, क्या आपने भी वही काम शुरू कर दिया? क्या आप भी दूध में पानी मिलाने लगे? वह कहता, कसम परमात्मा की! कसम मेरे बेटे की! उसका बेटा दूध लेकर उसके साथ ही आता था, उसके सिर पर हाथ रख कर कहताः कसम मेरे बेटे की, अगर कभी भी मैंने दूध में पानी मिलाया हो! और दूध बिल्कुल पानी! मैंने एक दिन उससे पूछा एकांत में कि संत जी, किसी को कहूंगा नहीं, तुम भी गजब कर रहे हो! यह कसम तुम खाते कैसे हो?
उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना--उससे धीरे-धीरे दोस्ती हो गई थी--आपसे क्या छिपाना! किसी को कहना मत। कसम खा लेता हूं, क्योंकि मैं दूध में कभी पानी नहीं मिलाता, मैं हमेशा पानी में दूध मिलता हूं।
अब? गांव का आदमी, मौका मिल जाए तो शहर के लोगों के कान काटने लगता है। गांव के भोले-भालेपन का कोई मूल्य नहीं है। भोला-भालापन तो तब मूल्यवान है जब तुम्हें सारी सुविधा है चालबाजियां करने की और तुम न करो। तब मजा और है।
दुनिया में जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ती है, वैसे ही चालबाजी बढ़ती जाती है।
तो जरूर शिक्षा में कहीं कोई भूल है, कोई बुनियादी भूल है। यहां बुद्धू तो भोले-भाले हैं, और जिनको बुद्धिमान होना चाहिए, वे सब चालबाज हैं। यह दुनिया दोहरे दुख उठा रही है। भोले-भाले हैं, वे बुद्धू हैं। उनके बुद्धूपन की वजह से पीड़ा हो रही है। क्योंकि बुद्धू करेंगे क्या? वे जो भी करेंगे उससे बुद्धूपन होने वाला है। जो बुद्धिमान हैं, वे चालबाज हैं। वे जेबकतरे हो गए हैं। वे हरेक की गर्दन काटने पर तैयार हैं। वे येन-केन-प्रकारेण कुछ भी करके पद, प्रतिष्ठा, सफलता, धन, महत्वाकांक्षा पूरी करना

चाहते हैं। तो एक तरफ बुद्धू भोले-भाले और एक तरफ बुद्धिमान चालबाज, इन दोनों पाटों के बीच दुनिया पिस रही है।
ऐसे लोग चाहिए जो बुद्धिमान हों और भोले-भाले हों। मगर इसके लिए तो पकना पड़ता।
तो योगानंद, मैं प्रतीक्षा करता था। तुम्हारी चालबाजियां चुक जाएंगी। क्योंकि तुम निश्चित ही विचारशील व्यक्ति हो। विचारशील व्यक्ति शुरू-शुरू में कितनी ही चालबाजियां करे, जल्दी ही उसे समझ में आ जाता है कि चालबाजियों से कुछ मिलने वाला नहीं है। और जो जितना ज्यादा बुद्धिमान है, उतनी जल्दी उसे समझ में आ जाता है, उतनी त्वरा से समझ में आ जाता है कि चालबाजियों से कुछ मिलने वाला नहीं है। और जो मिलेगा वह कूड़ा-करकट है। इकट्ठा कर लोगे कचरा और मर जाओगे। जिंदगी गंवा दोगे और जो इकट्ठा किया वह यहीं पड़ा रह जाएगा। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा।
तो मैं देखता था साक्षीभाव से कि तुम क्या कर रहे हो। तुम जो भी कर रहे हो, सब मुझे पता। तुम्हारी चालबाजियां पता, तुम्हारी बेईमानियां पता, तुम्हारी धोखेधड़ियां पता। लेकिन यह भरोसा मेरा कभी नहीं टूटता कि अगर तुम जरा भी समझदार हो--और कौन है जिसके भीतर कम से कम इतनी समझदारी न हो कि एक न एक दिन देख लेगा सचाई को? सभी के भीतर इतनी ज्योति तो परमात्मा रख ही देता है! इतनी बिना ज्योति के तो परमात्मा किसी को जगत में भेजता ही नहीं। ध्यान करने से वही ज्योति निखर आती है। यहां तुमने थैरेपी ग्रुप्स में प्रवेश किया, उसमें भी वही ज्योति निखर आती है। ज्योति तो तुम्हारी है, कचरा-कूड़ा हटाना है। दर्पण तुम्हारा है, धूल जम गई है, उसे पोंछ देना है। तो अच्छा हुआ कि अब तुम कहते होः "आपके प्रति हृदय खुल गया है। दिल होता है आपमें पूरा डूब जाऊं और आपके साथ आकाश में उडूं और बहारों में फूल और आनंद बरसाऊं।"
यह सब हो सकता है। यह हम सबकी आंतरिक क्षमता है। यह होना ही चाहिए। आकाश में न उड़े और मर गए, तो व्यर्थ जीए। फूल न बने और मर गए, तो व्यर्थ जीए। दीये न बने और मर गए, तो जीए ही नहीं। लाश थी, चलती रही, ढोते रहे बोझ; जन्म से लेकर मृत्यु तक एक लंबे मरण का ही सिलसिला रहा, जीवन का कोई सिलसिला न रहा।
यह भाव सुंदर है। मगर सम्हालना। क्योंकि ऐसे भाव आते हैं और छिटक जाते हैं। पुरानी आदतें मजबूत होती हैं। पहाड़ों जैसी। उनका लंबा इतिहास होता है। अच्छे भाव तो सबके भीतर उठते हैं। ऐसा तो आदमी खोजना मुश्किल है जिसके भीतर अच्छे भाव न उठते हों। कभी-कभी तो हर आदमी संत हो जाता है। मगर वह संतत्व ज्यादा देर टिकता नहीं। क्योंकि पुरानी आदतें फिर खींच लेती हैं। पुराने न्यस्त स्वार्थ फिर वापस खींच लेते हैं।
जब संतत्व का कोई भाव उठे तो थोड़ी दृढ़ता चाहिए। आंधियां आएंगी, तूफान आएंगे, दीये को सम्हालना।

बुझ न जाए दीपक यह तेरा
देख हवा का झोंका आया!
कितने दिन तू बीहड़ पथ पर
अंधकार में फिरा भटकता,
कभी उलझता वल्लरियों में पाषाणों में कभी अटकता!
कितने दिन विह्वल विनती में बिता दिए थे तूने अपलक,
कितने तप के फलस्वरूप
पाया राही यह अनुपम दीपक! दे प्रकाश तुझको औरों को इसीलिए गुण-युक्त इसे कर, मानस का ले स्नेह, प्राण की चिर ज्वाला से इसे जलाया! बुझ न जाए दीपक यह तेरा

देख हवा का झोंका आया!

हवा के झोंके आएंगे। और सच तो यह है, जब दीये जलते हैं तो हवा के झोंके
और भी आते हैं। आते तो पहले भी थे, लेकिन पहले पता नहीं चलता था। जब दीया जलेगा तो पता चलता है--दीये की लौ कंपती है। दीया ही न जलता हो तो हवा क्या अंधड़ आते रहें, कोई फिकर नहीं! तुम्हारे पास बुझने को ही कुछ नहीं है।
इस जगत में जिस व्यक्ति के पास ध्यान नहीं है, उसको एक लाभ है, उसके पास खोने को कुछ नहीं है। और जिस व्यक्ति के पास ध्यान है, उसके लिए एक खतरा है, उसके पास खोने को कुछ है। और जितनी ध्यान की संपदा बढ़ेगी, उतना ही खतरा बढ़ता जाता है। और मन अपनी पूरी ताकत लगाता है, क्योंकि ध्यान का बढ़ना मन की मृत्यु है। कौन मरना चाहता है? मन अपनी सुरक्षा के सब आयोजन करेगा। हजार तरह से समझाएगा--कि किस झंझट में पड़ गए हो? शांत बैठोगे तो मन कहेगा, ऐसे बैठने से क्या होगा? क्या बुद्धू बने बैठे हो! अरे, कुछ करो! उठो! इतनी देर में तो कुछ कमा लेते! कुछ मजा कर लेते! कुछ नहीं था, सिनेमा हो आते, क्लब-घर पहुंच जाते। दुनिया राग-रंग में मजा कर रही है, तुम यहां बैठे आंख बंद किए। बुद्धू बने हो?
बुद्ध शब्द से ही बुद्धू बना है, ख्याल रखना। क्योंकि बुद्ध ने आंखें बंद कर लीं, राज-पाट छोड़ दिया। तो लोग कहने लगे, हो गया बुद्धू। तब से वह शब्द निर्मित हुआ है। शब्द बड़ा कीमती है। बुद्ध से आया है। अब भी लोग कहते हैं, अगर तुम ध्यान करने बैठोगे, घर के ही लोग कहने लगेंगे, क्या बुद्धूपन में पड़े हो? समय कहां है? कुछ काम करो, कुछ धाम करो।
इन्हीं लोगों ने इस तरह की कहावतें गढ़ रखी हैं--कि खाली मन शैतान का घर; कि शैतान का कारखाना। बात बिल्कुल उलटी है। जब खाली मन होता है, तब तुम परमात्मा के मंदिर होते हो, शैतान का कारखाना नहीं। चलता मन शैतान का कारखाना। कारखाना तो चलता ही होना चाहिए, तभी हो सकता है! खटर-पटर होती रहे, शोरगुल मचता रहे, तो ही कारखाना हो सकता है। कारखाना और सूने मन में कैसे होगा? शून्य का कहीं कोई कारखाना हुआ है? शून्य में तो मंदिर होता है। जब तुम शून्य बैठोगे, मन कहेगा, कुछ करो! हजार-हजार बातें उठाएगा, हजार वासनाएं उठाएगा, पुरानी यादें दिलाएगा, पुराने मीठे सपनों को खूब बड़ा-बड़ा करके बताएगा। मन बड़ा चालबाज है। अतिशयोक्तियां करेगा। कि देखो, उस स्त्री के साथ थे तो कितना आनंद पाया था। हालांकि पाया कुछ भी नहीं था जब साथ थे। मगर अब मन ऐसी झूठी-झूठी स्मृतियां खड़ी करेगा।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आज तक दुनिया में एक भी सच्ची आत्मकथा नहीं लिखी गई है।
मैंने भी बहुत सोचा और मैं पाता हूं कि शायद सच्ची आत्मकथा लिखी ही नहीं जा सकती। उसका कारण है। क्योंकि कब तुम आत्मकथा लिखोगे? बाद में लिखोगे न! बाद में चीजें रोज तुम्हारी दृष्टि में बदलती जाती हैं। उनके अर्थ बदलते जाते हैं। क्योंकि नये-नये अनुभव तुम्हारे अर्थ निकालने की क्षमता को बदलते जाते हैं। तुम अगर आज पचास साल के हो और तुम लिखते हो कि जब मैं पांच साल का था तो यह घटना घटी। लेकिन यह पैंतालीस साल के अनुभव के बाद तुम लिख रहे हो। पैंतालीस साल के अनुभव ने तुम्हें दृष्टि दी देखने की, सोचने की, विचारने की; एक रंग दिया, एक ढंग दिया, एक शैली दी; उस सबका प्रभाव उस घटना पर पड़ेगा! अब वह घटना वही नहीं है जो तुम सोचते हो। उस घटना में तुमने बहुत रूपांतर कर लिए--बहुत जोड़ दिया होगा, बहुत घटा लिया होगा। अच्छा-अच्छा गप, कडुवा-कडुवा थू। उसमें जो-जो कड़वा होगा, वह थूक दिया होगा। तुम्हें पता भी नहीं चला होगा कब थूक चुके। अब तुम उसको बड़े सुंदर रूप दोगे।
इसीलिए अक्सर बूढ़े लोग याद करते हैं कि बचपन बड़ा सुंदर था। बच्चों से पूछो! बच्चे जल्दी से बड़े होना चाहते हैं। किसी भी बच्चे से पूछ लो कि तू सदा बच्चा रहना चाहता है? वह एकदम नाराज हो जाएगा। वह कहेगा, ऐसे ही मुसीबत झेल रहे हैं, किसी तरह समय काट रहे हैं।
बच्चे को कोई सुख नहीं है, बच्चे को दुख ही दुख है। उसके दुखों की तुम्हें याद भी नहीं है अब। कड़वा-कड़वा थू! सुख क्या थे? अब तुम सुख कल्पना

कर रहे हो कि तितलियों के पीछे दौड़ना, सूरज की रोशनी, बगीचे में खेलना, नदियों में तैरना, वे प्यारे दिन, स्वतंत्रता, न कोई उत्तरदायित्व, न कोई रोटी-रोजी कमाने की फिक्र, न कोई पत्नी-बच्चों की चिंता, न कोई भविष्य का भय, कुछ भी न था, कैसा आनंद था! लेकिन बच्चे से पूछो! बच्चे की जान निकली जा रही है--होमवर्क करना है। होमवर्क उसके लिए इतना पीड़ादायी है जितना कि कोई काम तुम्हें कभी भी नहीं होगा। बच्चे की जान निकली जा रही है कि कल फिर स्कूल जाना है। वही स्कूल। वे ही लंबे चेहरों वाले शिक्षक। वे ही जेलखाने जैसी दीवालें। वही ब्लैक-बोर्ड। वही पांच-छह घंटे सख्त बेंचों पर बैठे रहना। ऊलजलूल की बातें सुननी, सीखनी, याद करनी--जिनमें बच्चे को कुछ भी सार नहीं दिखाई पड़ता, कि दो और दो चार होते हैं। तो होते होंगे, बच्चे को मतलब क्या है दो और दो के चार होने से! करना क्या है! और बाहर कोयल की आवाज आ रही है, और जा नहीं सकता। और बाहर मोर नाच रहा है, लेकिन खिड़की से देख भी नहीं सकता। और बगल का लड़का ताश की गड्डी लिए खीसे में बैठा है, और अभी छिड़ जाए, मगर नहीं! सामने ही लड़की बैठी है, इसकी चोटी लटक रही है, इसको एक झटका मार दे, मगर नहीं! उसके कष्ट तो देखो!
और यह शिक्षक लिए डंडा खड़ा है। और हर क्षण मारने को उतारू। हर बात में मारने को उतारू। और ऊलजलूल बातें सिखाई जा रही हैं--टिम्बकटू कहां है? क्या मतलब बच्चे को! कि हेनरी पंचम ने कब राज्य किया? इन सब बातों में उसे कोई तुक नहीं मालूम होता, कोई संगति नहीं मालूम होती। लेकिन मजबूरी है, क्योंकि वह छोटा है, कमजोर है। मां-बाप धक्का दे देते हैं--स्कूल जाओ! उनका छुटकारा हुआ। उनके लिए स्कूल एक छुटकारा है। झंझट टली। उधर शिक्षक के लिए धंधा है। उसको नौकरी लेनी है। उसको कोई प्रयोजन नहीं है इनसे। उसका कुल काम इतना है कि डंडे के बल इनको चुपचाप पांच-सात घंटे बिठाए रखे। उसको कुछ मतलब नहीं है, जो सिखाया है ऊपर से वह इनको सिखला दे। न उसे उसमें बहुत अर्थ है। मगर उसे लेना-देना क्या है?
सौ बातों में से निन्यानबे प्रतिशत बातें व्यर्थ सिखाई जा रही हैं,
जो न सिखाई जाएं तो चलेगा। स्कूल-कालेज से निकलते ही तुम सब भूल जाते हो जो सिखाया गया। निकलने की बात दूर, सच तो यह है कि जैसे ही परीक्षा के भवन से बच्चा बाहर हुआ कि वह सब भूल-भाल जाता है कि परीक्षा में क्या हुआ। उठाई उसने अपनी गिल्ली और डंडा और चला! और तुम सोचते होः सुख।
यहां छोटे-छोटे बच्चे हैं स्कूल में, उनके अनुभव मेरे पास आते हैं। जरा बड़ा बच्चा हुआ, छोटे बच्चे की गर्दन दबाता है। उसका फाउंटेन पेन छीन लेता है। उसकी साइकिल ले लेता है। उसको धमकाता है कि कल पैसे भी लाना वह मुझको देना। गिरोह हैं बच्चों के। सब गुंडागर्दी जो बाहर हो रही है, छोटे पैमाने पर स्कूल में भी होगी। क्योंकि वे बच्चे सब तुम्हारे ही तो बच्चे हैं। और वृक्ष तो फलों से पहचाने जाते हैं। जो हरकतें तुम कर रहे हो जरा बड़े पैमाने पर, जो तुम दिल्ली में कर रहे हो, वे अपने स्कूल में कर रहे हैं। वहां भी गुंडे हैं, दादा हैं; वहां भी उनके गिरोह हैं; छोटे बच्चों की जान निकली जाती है।
एक महिला ने मुझे आकर कहा कि क्या करूं, मेरा बच्चा सबसे छोटा है स्कूल में! उसकी पिटाई भी होती है, उसका सामान भी छीन लिया जाता है। उसको पैसे भी देती हूं खर्च के लिए, वह तो दूसरे ले लेते हैं। वह तो पगार बंधी हुई है। वह जाकर बांट देता है। अगर न बांटे, तो बस उसकी मुसीबत! और अभी कुछ दिन से वह कल्पना की बातें करने लगा है बच्चों से--कि मेरे पिताजी आएंगे, घबड़ाओ मत, वे साइकिल लाएंगे, हवाई जहाज लाएंगे, मोटर लाएंगे; मैं तुमको मोटर दूंगा, हवाई जहाज दूंगा। तो उस महिला ने मुझे आकर कहा कि करना क्या है? वह तो पगला जाएगा। न उसके पिता आने वाले हैं; और आएं भी तो कोई मोटर, हवाई जहाज लाने वाले नहीं हैं। मगर वह बच्चों को समझा रहा है कि भैया, मुझे मारो भर मत! उनको आश्वासन दे रहा है।
तुम जरा बच्चों की तकलीफें बच्चों से पूछो। तब तुम कभी ऐसा न कह सकोगे
कि बचपन बड़ा स्वर्ग था। लेकिन बुढ़ापे में यह सब भूल जाएगा। बस तुम कुछ एक काल्पनिक बचपन खड़ा कर लोगे। उस काल्पनिक बचपन की तुम खूब प्रशंसा करोगे, खूब गीत गाओगे।

अतीत का हम निरंतर ही रूपांतरण करते रहते हैं। इसलिए कोई आत्मकथा सच नहीं होती। कोई आत्मकथा लिख ही नहीं सकता। क्योंकि जब तक लिखेगा, तब तक काफी समय गुजर जाएगा और हर चीज बदल जाएगी।
मन याद दिलाएगा, योगानंद, कि कैसा सुख, जब उस आदमी को धोखा दिया था तो कैसा मजा आया था! लोगों को धोखा देने में मजा आता है। क्योंकि अपना अहंकार सिद्ध होता है--कि देखो, एक आदमी को और बुद्धू बनाया। तो हम इससे श्रेष्ठ हैं। कि जब उस स्त्री से संबंध हुआ था, तो कैसी स्वर्गीय कल्पनाएं और सपने खिले थे! अनुभव कुछ और ही रहा हो, अनुभव कुछ और ही है, आदमी अदभुत है अपने को धोखा देने में। फिर-फिर वही भूलें करने का मन होने लगता है।
कितनी बार तुमने कसम खा ली है कि क्रोध न करेंगे। लेकिन फिर क्रोध! और
जब एक स्त्री से तुम ऊब जाते हो तो कितनी कसम खाते हो कि बस, अब समाप्त हो गया मामला, अब किसी स्त्री से कोई नाता नहीं बनाना है; चुक गई बात, खतम हो गई! बड़ा वैराग्य उदय होता है! स्त्री से संबंध हो और वैराग्य उदय न हो, ऐसा होता ही नहीं। स्त्रियों को भी बड़ा वैराग्य उदय होता है। लेकिन दो-चार दिन में ही बात भूल जाती है।
पत्नी को जरा मायके भेज दो और दो-चार दिन बाद ही याद आने लगेगी। हजार तरह से याद आने लगेगी। वे सब कष्ट भूल जाएंगे जो उसने दिए हैं और वे सब सुख--जो उसने कभी नहीं दिए--कल्पना में पंख मारने लगेंगे। छोटी-छोटी बातें याद आने लगेंगी। अकेलापन अखरेगा। रात अकेले सोना--चाहे कितनी ही उम्र क्यों न हो गई हो, डर तो लगता ही है!
बड़ा मजेदार है यह दुनिया का हिसाब! पत्नी अकेली नहीं सो सकती, क्योंकि डरती है। पति अकेला नहीं सो सकता, क्योंकि वह भी डरता है। दो डरपोक साथ-साथ सोते हैं और निश्चिंत सोते हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने एक रात मुल्ला को जगाया और कहा, मुल्ला, सुनते हो? मुझे मालूम होता है कि नीचे चोर घुसे हैं। मुल्ला, जागे हो? मुल्ला ने कहा कि नहीं; न तो मैं जागा हूं और न मुझे कुछ सुनाई पड़ता है।
लोग अकेले नहीं रह सकते। अकेलापन काटने लगता है, दूसरे की याद आने लगती है। फिर छोटी-छोटी सुविधाएं, कि बाथरूम में जाते थे तो टॉवल टंगा मिलता था, अब खुद ही टांगना पड़ता है। ऐसे जब पत्नी थी तो बाथरूम में जाकर कुछ पत्नी के होने से सुख नहीं मिलता था--इधर साड़ी पड़ी है, उधर टुथपेस्ट पड़ा है, उधर कुछ पड़ा है, उधर बच्चों के गंदे कपड़े इकट्ठे हैं--और जी ऐसा होता थाः कब यहां से निकल भागें! लेकिन अब पत्नी घर में नहीं है, तो वे सब बातें याद नहीं आतीं।
मन की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। सुख को सम्हाल कर रखता है, बढ़ा-चढ़ा
कर रखता है, दुख को घटाता है, छोटा करता है, भुलाता है। इसी तरह तो आदमी जी रहा है, नहीं तो जीना असंभव हो जाए। इस तरकीब के कारण ही तो तुम दुख झेलते जाते हो और सुख की आशा करते चले जाते हो।
तो मन, योगानंद, बहुत सी बातें याद दिलाएगा। हवा के झोंके आएंगे, दीये
को बुझाना चाहेंगे--सजग रहना! शुभ भाव उठा है। मैंने तो तुम्हें अपनाया है, अब तुम्हारे भीतर भी एक प्राणों में पुकार उठी है कि तुम अपना लिए जाओ। अब असली संन्यास घटने के करीब है।
संन्यास दो होते हैं। एक संन्यास तो औपचारिक है, जो तुम लेते हो। वह औपचारिक है। वह केवल एक मुद्रा है, शुरुआत है--क ख ग। फिर दूसरा संन्यास तब घटता है जब तुम्हारा हृदय मेरे प्रति खुलता है। पहला संन्यास तो अक्सर तुम्हारी बुद्धि मुझसे राजी हो जाती है, इसलिए। मेरी बात तुम्हें तर्कपूर्ण मालूम पड़ती है, मेरी बात तुम्हें अर्थपूर्ण मालूम पड़ती है, तुम संन्यास ले लेते हो। फिर दूसरा संन्यास तब घटता है, जब मेरी बात से कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता, जब मैं तुम्हें अर्थपूर्ण मालूम पड़ता हूं! जब मेरी मौजूदगी तुम्हें रसपूर्ण मालूम पड़ती है! जब मेरी समाधि तुम्हें छूने लगती है!
वैसी घड़ी आ गई।

दूसरा संन्यास ही वस्तुतः प्रवेश है। दूसरी दीक्षा ही वस्तुतः प्रवेश है। पहली दीक्षा औपचारिक है, बाह्य है। दूसरी दीक्षा आंतरिक है, भीतरी है; उसके लिए कोई बाहरी आयोजन नहीं करना होता।
भूल मत जाना! जो ज्योति जगी है, उसे किसी अंधड़ की चपेट में मत आ जाने देना! करीब हो बहुत जीवन-स्रोत के!

अरे जीवन के विह्वल स्रोत
तुझे क्या पथ का भी कुछ ज्ञान?
कुसुम-कंटकमय तेरा मार्ग
तुझे कुछ सुख-दुख का भी ध्यान?
बिछाता कोमल कुंतल-राशि
बुझाता सब पथिकों की प्यास, बढ़ा चल, दूर नहीं सुख-द्वार अटल उर में ले यह विश्वास! बढ़ा चल पथ पर तू अविराम
बढ़ा चल प्रतिपल गाता गीत, एक दिन मिल जाएगा सिंधु
विकल उर का युग-युग का मीत! आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
छठवां प्रवचन

प्रेम अव्याख्य है

पहला प्रश्नः आपने वर्तमान प्रवचनमाला को नाम दियाः "प्रेम-पंथ ऐसो कठिन"! आप तो कहते रहे हैं कि प्रेम होता है, किया नहीं जाता, क्योंकि प्रेम निसर्ग से, स्वभाव से जुड़ा है। फिर प्रेम का मार्ग कैसे बन सकता है? प्रेम साधा कैसे जा सकता है? और वह कठिन कैसे हो गया?

आनंद मैत्रेय! इसीलिए कठिन हो गया। किया जा सकता तो सरल होता। आदमी के हाथ में होता, अपने वश की बात होती। किया नहीं जा सकता, होता है--यही कठिनाई है। होने पर वश क्या! हो तो हो, न हो तो न हो।
करने की जो बात है, बड़ी सरल है। आदमी गौरीशंकर पर चढ़ जाए, कि चांद पर पहुंच गया, करने की बात कितनी ही कठिन हो तो सरल की जा सकती है। मनुष्य की बुद्धि, मनुष्य का उपक्रम, मनुष्य का श्रम, सब काम आ जाएगा। लेकिन जो बात करने की न हो, वह कठिन हो जाती है। हम एकदम असहाय हो जाते हैं। हमारा कोई वश नहीं चलता। परवश हो जाते हैं। जैसे श्वास आई तो आई, नहीं आई तो नहीं आई। फिर क्या करोगे? अपने वश में होता तो लिए जाते श्वास। अपने वश में होता तो कोई मरता ही नहीं, जीए ही जाते। लेकिन मौत आती है, अपने हाथ में नहीं, किसी अज्ञात स्रोत से आती है। ऐसे ही प्रेम भी किसी अज्ञात स्रोत से आता है। मनुष्य के नियंत्रण में नहीं है।
इसलिए रहीम ने ठीक ही कहाः "प्रेम-पंथ ऐसो कठिन!"
बात उलटी लगेगी। क्योंकि हम सोचते हैं कि कठिनाई उस बात में होती है जिसे करने में बहुत मुश्किल पड़े।
कितनी ही मुश्किल पड़े, जो की जा सकती है बात, वह सच में कठिन नहीं है।
हम कोई विधि खोज लेंगे, विधान खोज लेंगे, तकनीक खोज लेंगे, विज्ञान खोज लेंगे--उसे करने का सरल ढंग खोज लेंगे। बुद्ध के जमाने में लोग बैलगाड़ी पर चलते थे। अब हवाई जहाज पर उड़ते हैं। बात बहुत सरल हो गई। लेकिन बुद्ध के जमाने में प्रेम जितना कठिन था, उतना ही कठिन आज है। रत्ती भर फर्क नहीं पड़ा। प्रार्थना जितनी असंभव थी, उतनी ही असंभव आज है, रत्ती भर फर्क नहीं पड़ा। कभी फर्क नहीं पड़ेगा। ये शाश्वत से जुड़ी हुई बातें हैं। समय में पड़ने वाले भेदों से कोई अंतर नहीं पड़ता। इसलिए ऊपर से उलटी लगेगी बात, लेकिन उलटी है नहीं, सीधी-साफ है।
सबसे बड़ी कठिनाई वहीं है जहां हम कुछ कर नहीं सकते। जहां हमें प्रतीक्षा करनी होती है वहां कठिनाई है। जैसे किसी से कहो कि चुपचाप बैठ जाओ, कुछ न करो--कुछ करो ही मत, बस चुपचाप बैठ जाओ! यह सबसे कठिन बात हो गई। वह कहेगा, कुछ करने को दे दें।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, सिर्फ चुपचाप बैठ जाएं, कुछ न करें, ध्यान हो जाएगा! मगर यह तो हमसे नहीं होता। आप कम से कम मंत्र दे दें। कोई आलंबन, कोई सहारा। बैठ कर राम-राम जपते रहेंगे, यह हमसे हो जाएगा। मंत्र कितना ही कठिन हो, सीख लेंगे। मगर बस बैठे रहें, कुछ न करें, घंटे भर बैठे रहें, कुछ न करें--यह हमसे नहीं होता!
न करना ज्यादा कठिन है। मन तो करने में रस लेता है। मन तो कृत्य को भोजन बना लेता है। मन तो जीता ही करने के सहारे है। अहंकार भी रस लेता है करने में। क्योंकि कर्ता होने का मजा! मैंने किया। मुझसे हुआ। मेरा कृत्य, मेरे हस्ताक्षर।
अहंकार भी प्रसन्न है करने में। सच तो यह है, जितनी कठिन बात हो, उसे करने में अहंकार उतना ही प्रसन्न है। क्योंकि उतना ही अद्वितीय हो जाता है। और मन भी राजी है। क्योंकि मन चाहता है, सोच-विचार के लिए कोई सुविधा मिले। जब कुछ करना है, तो सोचना होगा, विचारना होगा; योजना बनानी होगी; हजार बातों का चिंतन-मनन, शोध करनी होगी। मन भी राजी, अहंकार भी राजी। लेकिन जहां कृत्य को छोड़ते हो, वहीं मन भी छूटा, अहंकार भी छूटा। जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो, तो मन कैसे बचेगा? बिना क्रिया के मन नहीं

बचेगा। क्योंकि विचार एक क्रिया है। और बिना कर्ता के अहंकार नहीं बचेगा। क्योंकि जब कुछ कर ही नहीं रहे हो, तो "मैं" का भाव पैदा नहीं होगा। मैंने मकान बनाया, मैंने मंदिर बनाया, मैंने यह किया, मैंने वह किया--जितना तुम्हारे करने का विस्तार होता है, उतना ही "मैं" भी फैलता चला जाता है। उसमें और-और आभूषण जुड़ते जाते हैं। और नया-नया साम्राज्य। लेकिन जब तुम कुछ करोगे ही नहीं, उस क्षण में अहंकार कहां होगा? खोजने भी जाओगे भीतर अहंकार को तो पाओगे नहीं। सन्नाटा होगा, शून्य होगा।
उस निष्क्रिय दशा में--जहां शून्य होता है, सन्नाटा होता है; अहंकार नहीं होता, मन की आपाधापी नहीं होती--प्रेम का अवतरण होता है। इसलिए रहीम ठीक कहते हैं। कठिनाई करने वाली कठिनाई नहीं है। नहीं तो हल हो जाता। कठिनाई बड़ी और ही ढंग की है, गुणात्मक रूप से भिन्न है। कठिनाई यही है कि हम खाली नहीं बैठ सकते, हम चुप नहीं हो सकते, मौन नहीं हो सकते, निर्विचार नहीं हो सकते। कठिनाई बड़ी और ही ढंग की है। हिमालय चढ़ने जैसी कठिनाई नहीं है, चांद पर जाने जैसी कठिनाई नहीं है। कठिनाई है कि हम स्वाभाविक नहीं हो सकते। हम इतने ज्यादा अस्वाभाविक हो गए हैं। हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा हमें कृत्रिम बना गई है। हमारे भीतर जो भी सहज स्फूर्त है, उसके जगने के उपाय ही नहीं छोड़े गए हैं। हमारे ऊपर इतना कचरा-कूड़ा तथाकथित ज्ञान का थोप दिया गया है कि उस कूड़े-कचरे में हमारा हृदय कहां दब गया है, पता भी नहीं चलता। हम इतने ज्ञानी हो गए हैं कि हम प्रेमी नहीं हो पा रहे हैं। हमारी कठिनाई यही है कि हम बहुत जानते हैं। जानते कुछ भी नहीं और जानते हैं कि बहुत जानते हैं। अज्ञान सघन है; अपना भी पता नहीं है, कुछ और तो पता क्या होगा! मैं कौन हूं, इसका भी ठीक से उत्तर नहीं दिया जा सकता, लेकिन चांद-तारों की बातें हम जानते हैं। जानकारी, जानकारी, जानकारी की पर्तों पर पर्तें हैं। और इन सबके भीतर भाव का जगत दब गया है। हीरा तो पास है, मगर कूड़े में दब गया है। और इस कूड़े को हटाना कठिन है। क्योंकि उस कूड़े को हम कूड़ा मानते नहीं, हम तो इस कूड़े को संपदा मानते हैं।
लोग धन छोड़ देते हैं, पद छोड़ देते हैं, ज्ञान नहीं छोड़ पाते। किसी से कहो कि छोड़ दो घन, पद, परिवार--छोड़ देगा। लेकिन उससे कहो, छोड़ दो ज्ञान--और बस रुक जाएगा। ज्ञान? ज्ञान तो भीतरी संपदा है, जिसको चोर चुरा नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते। ज्ञान को कैसे छोड़ दें? और जहां राजाओं को भी सम्मान नहीं मिलता, वहां भी पंडित पूजे जाते हैं। ज्ञान तो अहंकार को इतना भरता है, जितना कोई चीज नहीं भरती। ज्ञान को कैसे छोड़ दें? तो लोग जंगल चले जाते हैं, समाज छोड़ देते हैं, मगर अपनी भगवद्गीता, अपना वेद, अपना कुरान, अपनी बाइबिल साथ लिए जाते हैं। ऊपर से न भी ले जाएं तो भीतर मन में उनके गूंज बनी रहती है। जंगल में भी बैठा हुआ फकीर मुसलमान होता है। मस्जिद नहीं है, कुरान नहीं है, मुसलमानों की भीड़-भाड़ नहीं है, मगर जंगल में बैठा फकीर मुसलमान है। जंगल में बैठा मुनि जैन है। क्यों? कौन सी चीज जैन बनाती है तुम्हें? हड्डी-मांस-मज्जा किसी को जैन नहीं बनाती। ज्ञान! वह जो तुमने शास्त्रों और शब्दों से इकट्ठा कर लिया है, उसे साथ ही ले गए। ज्ञान का जितना जोर हमारे ऊपर होगा, उतना ही प्रेम कठिन हो जाएगा।
रहीम की बात कई अर्थों में सच है। मनुष्य कृत्रिम हो गया है, झूठा हो गया है, पाखंडी हो गया है, इसलिए प्रेम असंभव हो गया है। फिर जिस समाज में हम जीते हैं, यह समाज घृणा पर आधारित है। चोट लगेगी तुम्हें यह बात जान कर, मगर मजबूरी है, सच जैसा है वैसा ही कहना होगा। जिस समाज में आज तक मनुष्य जीता रहा है, वह समाज ईर्ष्या पर, वैमनस्य पर, प्रतिस्पर्धा पर, घृणा पर, शत्रुता पर खड़ा हुआ है। यह समाज प्रेम को स्वीकार नहीं करता। यह समाज प्रेम के सारे रास्ते अवरुद्ध कर देता है। यह प्रेमी नहीं चाहता, यह सैनिक चाहता है। यह प्रेमी नहीं चाहता, प्रतियोगी चाहता है। प्रेमी होंगे तो संगीनें लेकर कौन छातियों में भोंकेगा? प्रेमी होंगे तो बांसुरी बजेगी, संगीनें खो जाएंगी। प्रेमी होंगे तो मृदंग पर थाप पड़ेगी, लेकिन युद्ध के नगाड़े बंद हो जाएंगे। प्रेमी होंगे तो जीवन में आनंद होगा, उत्सव होगा, स्पर्धा नहीं होगी। प्रेमी होंगे तो प्रभु को पाने की अभीप्सा होगी, लेकिन धन और पद पाने की दौड़ नहीं होगी।

यह समाज महत्वाकांक्षा सिखाता है। छोटे-छोटे बच्चों में हम महत्वाकांक्षा का जहर भरते हैं। फिर कैसे प्रेम पैदा हो? प्रेम को हम कठिन कर देते हैं। जो सरल होना था, वह कठिन हो जाता है। जो सहज होना था, उससे ही हमारे संबंध टूट जाते हैं।
पूछा कि आप तो कहते हैं कि प्रेम होता है, किया नहीं जाता।
लेकिन हमें तो सब वे ही बातें सिखाई जाती हैं जो की जा सकती हैं। तर्क किया जा सकता है, सिखाया जाता है स्कूल में, कालेज में, विश्वविद्यालय में। गणित किया जा सकता है, सिखाया जाता है। प्रेम? प्रेम की तो बात ही नहीं उठती। प्रेम तो कहीं सिखाया नहीं जाता।
सिखाया तो जा भी नहीं सकता। लेकिन प्रेम के लिए कोई संदर्भ दिए जा सकते हैं; प्रेम के लिए कोई वातावरण दिया जा सकता है; प्रेम के लिए कोई बगिया दी जा सकती है जहां फूल खिल सकें; प्रेम के लिए कोई बुद्धक्षेत्र निर्मित किया जा सकता है। वह तो नहीं किया जाता। और अगर कभी वैसा किया जाता है, तो समाज उसका विरोध करता है। भयंकर विरोध करता है। क्योंकि जहां भी प्रेम की धारा बहेगी, वहीं समाज को चिंता पैदा होनी शुरू हो जाएगी। यह खतरनाक बात है। क्योंकि प्रेमी गुलाम नहीं रह जाता। किसी का गुलाम नहीं रह जाता। प्रेमी को दबाना मुश्किल है। प्रेमी को आत्मा बेचने के लिए मजबूर करना मुश्किल है। प्रेमी मर जाएगा, मगर अपने को बेचेगा नहीं। जिसने प्रेम जान लिया, उसने अपने भीतर छिपे परमात्मा को जान लिया। उसे अब मरने की फिकर भी नहीं है, क्योंकि वह जानता है--न हन्यते हन्यमाने शरीरे; शरीर के मरने से मेरी कोई मृत्यु नहीं। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि; मुझे शस्त्र छेद नहीं सकते। जिसने प्रेम को जान लिया, उसने ही जाना है कि मुझे शस्त्र छेद नहीं सकते। नैनं दहति पावकः; और न मुझे अग्नि जला सकती है। जिसने प्रेम को जान लिया, उसने कुछ ऐसी बात जान ली, कुछ ऐसा अमृत जान लिया, अब उसे तुम डरा नहीं सकते। उसे तुम भयभीत नहीं कर सकते।
और यह समाज चाहता है कि तुम डरे रहो, भयभीत रहो। क्योंकि जो भयभीत है, उसकी ही मालकियत की जा सकती है। जो डरा है, वह पुरोहित के शिकंजे में रहेगा। जो डरा है, वह राजनेता के शिकंजे में रहेगा। जो डरा है, वह किसी के भी शिकंजे में रहेगा। डरे हुए बच्चे मां-बाप के शिकंजे में रहेंगे। डरे हुए मां-बाप बच्चों के शिकंजे में रहेंगे। डरी हुई पत्नियां पतियों के शिकंजे में रहेंगी। डरे हुए पति पत्नियों के शिकंजे में रहेंगे। यहां हर एक गुलाम है।
यह बड़ी आश्चर्यजनक दुनिया है! यहां हर एक कैदी है और हर एक एक-दूसरे को कैदी भी बना रहा है। हम एक-दूसरे के कैदी हैं। हम पारस्परिक रूप से कैदी हो गए हैं। यह एक बड़ा कारागृह है, जो हमने निर्मित कर लिया है। इस कारागृह में से छूटना कठिन है। और इस कारागृह से जो न छूटे, वह प्रेम को न पा सकेगा। पूछा हैः "आप तो कहते हैं कि प्रेम होता है, किया नहीं जाता, क्योंकि प्रेम निसर्ग से, स्वभाव से जुड़ा है।"
निश्चय ही। प्रेम तुम्हारा स्वभाव है। तुम प्रेम के रूप में पैदा हुए थे। फिर स्वभाव विकृत किया गया है। फिर तुम पर काट-छांट की गई है। फिर तुम्हें वैसा ही नहीं छोड़ा गया है जैसे तुम पैदा हुए थे। प्रेम तो निसर्ग है, लेकिन तुम अब निसर्ग नहीं हो। तुम अब प्लास्टिक हो। तुम असली फूल नहीं हो अब। असली फूल तो कहीं दब गया, ऊपर नकली फूल छा गए हैं। और नकली फूलों को हटाना होगा, तो असली फूल प्रकट हो सकें। और नकली फूलों को हटाना कठिन मालूम होता है, क्योंकि उनमें हमने बड़े न्यस्त स्वार्थ जोड़ दिए हैं।
आज इस झूठी दुनिया में--और ऐसी ही दुनिया सदा रही है--इस झूठी दुनिया में सच्चे होने से ज्यादा बड़ी कठिनाई तुम समझते हो कोई और हो सकती है? जरा चौबीस घंटे तय कर लो कि सत्य बोलेंगे। सिर्फ चौबीस घंटे! चौबीस घंटे झूठ नहीं बोलेंगे। और चौबीस घंटे में तुम इतनी मुसीबतों में पड़ जाओगे कि फिर जिंदगी में दुबारा सच बोलने की हिम्मत न करोगे। सिर्फ चौबीस घंटे का प्रयोग करके देख लो--कि आज सुबह छह बजे से लेकर कल सुबह छह बजे तक सच ही बोलेंगे। सिर्फ सच बोलेंगे। और तुम पाओगेः दोस्त दुश्मन हो गए; पत्नी

मायके चली गई; बच्चे स्कूल से लौटे ही नहीं; मित्रों ने नमस्कार कर लिया कि बस हो गया बहुत!
सच बोलोगे, किसी को प्रीतिकर नहीं लगेगा। हमें झूठ की शिक्षा दी गई है, वही बोलो जो प्रीतिकर लगे। चाहे भीतर क्रोध उठ रहा हो, ओंठों पर मुस्कुराहट रहे। और चाहे भीतर गाली उठ रही हो, ओंठों पर गीत रहे। और भीतर तो उठ रहा है मन कि कैसे इस दुष्ट से छुटकारा हो जाए! लेकिन ऊपर से छाती से लगाना, आलिंगन करना और कहना कि आओ, पलक पांवड़े बिछाते हैं, मेहमान बनो, रुको! झूठ हमारा शिष्टाचार हो गया है। और झूठ सुविधापूर्ण है। क्योंकि और सारी भीड़ भी झूठ बोलने वालों की है। तुम भी जानते हो, वे भी जानते हैं कि सब हंसियां झूठ हैं। लेकिन फिर भी काम चलता है।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा हैः अगर झूठ छीन लिया जाए, दुनिया अभी गिर जाए। यह झूठ के आधार पर चल रही है। झूठ तो ऐसे ही है जैसे इंजन के कलपुर्जों को चलाने के लिए तेल डाल देते हैं; ताकि कलपुर्जे एक-दूसरे से टकराएं न, घर्षण न हो। झूठ हमारे एक-दूसरे के बीच घर्षण नहीं होने देता। कलपुर्जे तेलयुक्त बने रहते हैं। एक-दूसरे से टकराते नहीं।
रास्ते पर किसी से मिले हैं, हाथ जोड़ कर नमस्कार कर लिया। नमस्कार करने का न कोई मन था, न कोई इच्छा थी। दिल तो यह था कि मौका मिल जाए तो निकाल कर जूता इसको लगा दें। जिसको जूता मारना था, उससे जयरामजी कर ली। इससे तेल बना रहता है दोनों के बीच में। तुमने जयरामजी की तो उसने भी जयरामजी की, दोनों के बीच घर्षण बच गया।
झूठ ने तुम्हें बहुत सुविधाएं दी हैं। झूठ तुम्हारा छाता है--धूप भी बचा लेता है, वर्षा भी बचा लेता है, आड़ भी कर देता है। झूठ तुम्हारा आरक्षण है, झूठ तुम्हारी सुरक्षा है। और इतने झूठ तुम बोले हो और इतने झूठ तुम जीए हो, कि अब तो तुम्हें शायद पहचान में भी न आएगा कि कौन झूठ है, कौन सच है।
क्या झूठ, क्या सच, तय करना अब मुश्किल हो जाएगा। अब तो बहुत देर हो गई है। छोटे बच्चे सच बोल देते हैं। इसलिए छोटे बच्चे बहुत अखरते हैं।
एक घर में एक धनपति आने वाला था। बड़ा आदमी। एक ही खराबी थी, जो बड़ी मुश्किल थी, और गृहिणी को बड़ी दिक्कत में डाले थी--उसकी बहुत बड़ी नाक थी। बहुत भद्दी नाक थी। चेहरे पर नाक ही नाक थी। वह अपने छोटे बेटे से घबड़ाई हुई थी। दिन भर से समझा रही थी कि देख, एक बात ख्याल रखना, मेहमान आ रहे हैं, उनकी नाक की तरफ मत देखना! और टकटकी लगा कर नाक ही मत देखना! क्योंकि वह जानती थी कि नाक इतनी बड़ी है कि बेटा टकटकी लगा कर देखेगा। ऐसी नाक उसने देखी नहीं। और चाहे कुछ भी हो जाए, कितना ही भीतर भाव उठे, नाक के संबंध में बात मत उठाना। दिन भर समझाया तो बेटा बेचारा इतना उत्सुक था भी नहीं जितना हो गया उत्सुक कि मामला क्या है? इतने लोग आए, गए, कभी किसी की नाक के संबंध में इतनी चर्चा नहीं।
मगर जब मां कह रही है तो ठीक ही कहती होगी; तो उसने आंखें झुका कर रखीं। ऐसे बचा-बचा कर नजरें देखे। कोनों से देखे। और जब तुम किसी को आंख के कोनों से देखो, तो और अखरता है। उसका मतलब कि देखना भी चाहते हो और दिखा भी रहे हो कि नहीं देखना चाहते। बेटा डर के मारे नजरें नीचे झुकाए है। लेकिन नजरें नीचे झुकाओ तुम किसी के सामने तो भी तो--और उस आदमी को पता ही है कि उसकी नाक दिक्कत देती है उसको। किसी तरह भोजन चला, गृहिणी किसी तरह काम चलाई, लेकिन ख्याल रखा कि बेटा कुछ बोले नहीं। चुपचाप बैठा रहा, बेटा भी नीचे नजर किए चुपचाप बैठा रहा। बड़ी प्रसन्न थी कि किसी तरह काम निपटा जा रहा है! भोजन भी पूरा हुआ जा रहा है! भोजन भी पूरा हो गया, कॉफी का दौर चला-- बड़ी प्रसन्न है गृहिणी--और उसने मेहमान से कहा कि आपकी नाक में कितनी चम्मच शक्कर डालूं?
पूरे समय नाक ही नाक सोच रही है। जब तुम कोई चीज बहुत सोचते रहोगे, तो कहीं न कहीं से प्रकट हो जाएगी। बेटे से नहीं हुई तो मां से ही प्रकट हो गई। उसे कुछ और सूझ ही नहीं रहा था, बस नाक ही सूझ रही थी और डर लगा हुआ था कि बेटा कहीं कुछ कह न दे।

छोटे बच्चे वैसा ही कह देते हैं जैसा है। बाप कह देता है कि जाओ, बाहर कोई आकर दरवाजे पर खड़ा है, कहना कि पिताजी घर पर नहीं हैं। वह जाकर कह देता है कि पिताजी कहते हैं कि पिताजी घर पर नहीं हैं।
बच्चों की प्रतिभा, उनका निसर्ग, उनका स्वभाव, उनका सच, उनकी निर्दोषता, हम सब नष्ट कर देते हैं। बच्चे बहुत जल्दी जान जाते हैं कि झूठ सुविधापूर्ण है। सच महंगा पड़ता है। सच दंड लाता है। झूठ पुरस्कार लाता है। और एक बार बच्चों को झूठ में पुरस्कार दिखाई पड़ने लगा कि उनके जीवन में राजनीति का जन्म हो गया। तुमने उन्हें राजनीतिज्ञ बना दिया।
सभी राजनीतिज्ञ हो गए हैं। जो राजनीति में हैं वे ही नहीं, जो नहीं हैं राजनीति में वे भी राजनीति में हैं। क्योंकि जहां झूठ है, वहां राजनीति है; जहां धोखा है, वहां राजनीति है; जहां पाखंड है, वहां राजनीति है। और तब प्रेम का पंथ बड़ा कठिन हो जाता है।
जैसे किसी बच्चे को बचपन से ही चलने न दिया गया हो; बचपन से ही उसके पैरों में जंजीरें डाल दी गई हों, हाथों में हथकड़ियां डाल दी गई हों; बचपन से ही उसे उठा-उठा कर ढोया गया हो; जब वह जवान हो जाएगा, तो क्या तुम समझते हो अचानक चल सकेगा? दौड़ सकेगा? असंभव। दौड़ना तो दूर, चलना असंभव। चलना तो दूर, शायद खड़ा भी न हो सके। ऐसी हमारी दशा है।
हमारे प्रेम पर इतनी जंजीरें हैं, इतनी बेड़ियां हैं, इतनी बैसाखियां हैं! हमारे प्रेम को न तो खड़े होने दिया गया है, न चलने दिया गया है। और जब अचानक कोई संत तुमसे कहे कि प्रेम के बिना परमात्मा को न पा सकोगे--तो उड़ना पड़ेगा! खड़े नहीं हो सकते, चल नहीं सकते, दौड़ नहीं सकते और संत कह रहे हैं कि प्रेम को पंख दो, उड़ाओ, आकाश की तरफ ले चलो! तुम उनकी बात तो सुन लोगे, बात जंचेगी भी, लेकिन काम नहीं आएगी।
इसीलिए संत बोलते रहते हैं, तुम सुनते रहते हो; उनका बोलना बेकार, तुम्हारा सुनना बेकार; तुम्हारे-उनके बीच कोई संबंध नहीं हो पाता। तुम सोचते रहते होः यह कैसे होगा? यह नहीं हो सकता! कम से कम मुझसे तो नहीं हो सकता! यह मेरी क्षमता नहीं। संतों की बातें सुन कर तुम्हें अपनी क्षमता की याद नहीं आती, विपरीत तुम्हें अपने पाप, अपने अपराधों का ख्याल आता है, अक्षमताओं का ख्याल आता है। तुम और दीन हो जाते हो।
जिस देश में जितनी धर्म की चर्चा चलती है, लोग उतनी हीनता की ग्रंथि
से भर जाते हैं। होना तो उलटा चाहिए कि सत्संग में तुम्हारे भीतर सोया हुआ झरना फूटे। मगर होता यह है कि सत्संग सुनते-सुनते तुम्हें ऐसा लगता है कि इतनी ऊंची-ऊंची बातें ऊंचे-ऊंचे लोगों को होती हैं! हमको कैसे होंगी? हम तो कीड़े-मकोड़े हैं; हम तो जमीन पर सरकेंगे। हम आकाश में कैसे उड़ सकते हैं? तुम निराश होते हो, हताश होते हो। तुम अगले जन्मों की प्रतीक्षा करते हो, कि अगले जन्मों में कभी शायद संभव हो! अभी तो संभव नहीं है।
प्रेम का पंथ कठिन नहीं है। अगर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी सहजता और निजता में जीने दिया जाए, तो प्रेम ऐसे ही झरेगा जैसे फूलों से सुवास झरती है और दीयों से रोशनी गिरती है। ऐसे ही सरलता से प्रेम घट जाएगा। मगर प्रेम कठिन हो गया है।
रहीम जब कह रहे हैंः "प्रेम-पंथ ऐसो कठिन!" तो वे इसलिए कह रहे हैं कि हमने उसे कठिन बना दिया है। बहुत कठिन बना दिया है। इस जगत में सर्वाधिक कठिन चीज प्रेम हो गई है।
पूछते होः "फिर प्रेम का मार्ग कैसे बन सकता है?"
प्रेम का मार्ग बनाने का एक ही अर्थ होता है कि प्रेम के नैसर्गिक प्रवाह में जो पत्थर डाल दिए गए हैं, वे हटा दो। प्रेम का मार्ग नहीं बनाना होता, सिर्फ बाधाएं हटानी होती हैं। जैसे कि दर्पण है, धूल जमी है। दर्पण नहीं बनाना है, सिर्फ धूल हटा देनी है। दर्पण तो है ही। जैसे पानी का झरना फूटने को तैयार है, मगर एक चट्टान पड़ी है। और झरना नहीं फूट पाता और चट्टान को नहीं तोड़ पाता। चट्टान हटा दो। झरना कहीं से लाना नहीं है, चट्टान के हटते ही झरना बह पड़ेगा।
तो मार्ग बनाने का अर्थ विधायक नहीं है, नकारात्मक है। सिर्फ मार्ग
की बाधाएं हटा दो। बाधाओं के हटते ही प्रेम सध जाता है।

तुमने पूछा है कि प्रेम साधा कैसे जा सकता है?
साधा नहीं जाता, सिर्फ बाधा हटा दो, फिर प्रेम सध जाता है। सिर्फ बीच-बीच में जो चीजें अटकाव डाल रही हैं, उनको दूर कर दो।
जैसे सुबह तुम उठे हो, द्वार-दरवाजे बंद हैं, परदे पड़े हैं, सूरज ऊगा है; लेकिन न तो तुम्हें सूरज का ऊगना दिखाई पड़ रहा है--तुम्हारे कमरे में अंधकार है--न पक्षियों के गीत सुनाई पड़ रहे हैं। जरा परदे खोलो, जरा खिड़कियां खोलो, जरा द्वार खोलो--और आ जाएंगी सूरज की किरणें नाचती हुई भीतर, और पक्षियों के गीत फुदकते हुए तुम्हारे भीतर आ जाएंगे। मार्ग नहीं बनाना पड़ा, मार्ग तो था ही और द्वार पर मेहमान आकर खड़ा था, सिर्फ मार्ग की बाधा हटा देनी पड़ी। बाधा हट जाए कि बस प्रेम सध गया।
कठिन हमने बना लिया है, कठिन है नहीं। सुगम है, सरल है, स्वाभाविक है। मगर अगर ऐसा कहा जाए कि सरल है, सुगम है, स्वाभाविक है, तो डर है कि तुम शायद कुछ करो ही नहीं। तुम सोचो, फिर क्या करना है! इसलिए मैं रहीम की बात ही दोहराता हूं कि "प्रेम-पंथ ऐसो कठिन!"
तुम्हें देख कर कहना पड़ रहा है। मुझे कठिन नहीं है, रहीम को कठिन नहीं है, तुम्हें देख कर कहना पड़ रहा है। और तुम्हें ही देख कर कही जाएगी बात। बुद्ध को कठिन नहीं है, कृष्ण को कठिन नहीं है, मीरा को कठिन नहीं है, जीसस को कठिन नहीं है, तुम्हें कठिन है। और उपचार तो तुम्हारे लिए लिखा जा रहा है! दवा तो तुम्हारे लिए सुझाई जा रही है! और तुम धीरे-धीरे हटाओगे पत्थरों को, तो ही हटा पाओगे। और पत्थर भी ऐसे हैं कि जन्मों-जन्मों से जमे हैं। और पत्थर भी ऐसे हैं कि सबने जमाने में सहयोग दिया है। और पत्थर ऐसे हैं कि तुमने जीवन भर जमाने में मेहनत की है। और जब एक दिन अचानक कोई कहेगा, हटाओ इसको, इसी के कारण तुम्हारा जीवन दुख है, नरक बना है, तो तुम राजी न हो सकोगे। तुम नाराज होओगे। राजी होना दूर, तुम उस आदमी पर नाराज होओगे जो इस तरह की बात कहे। क्योंकि तुम्हारे सारे जीवन के श्रम को व्यर्थ किए दे रहा है। तुम्हारे पूरे जीवन का श्रम क्या है? फलश्रुति क्या है? निष्पत्ति क्या है? यही कि तुम एक कारागृह में कैद होकर रह गए हो। अपने ही हाथों से ढाले हुए सींकचे हैं तुम्हारे। और अपने ही हाथों से बनाई गई जंजीरें हैं तुम्हारी।
एक प्राचीन कहानी मुझे सदा प्रीतिकर रही है।
यूनान में ऐसा हुआ, हमला हुआ और एथेंस के सारे प्रतिष्ठित लोग पकड़ लिए गए। सौ प्रतिष्ठित लोगों को जंजीरों में बांध कर, बेड़ियां पहना कर जंगलों में फेंक दिया गया कि जंगली जानवर खा जाएं। उन सौ प्रतिष्ठित लोगों में गांव का सबसे प्रतिष्ठित लुहार भी था। वह इतना प्रतिष्ठित लुहार था कि दूर-दूर देशों तक उसका नाम था। उसकी चीजें लाजवाब थीं। वह जो बनाता था वह लाजवाब था। उसकी बनाई चीज टूटती नहीं थी। उसकी बनाई गई जंजीरें कोई तोड़ नहीं सकता था। और सारे लोग तो दुखी थे, बाकी निन्यानबे लोग तो दुखी थे जब उन्हें ले जाने लगे दुश्मन जंगल की तरफ, लेकिन वह लुहार गीत गुनगुना रहा था। उनमें से किसी ने पूछा कि तू हंस रहा है, गीत गा रहा है, पागल हो गया है? मरने की तरफ हम जा रहे हैं! तू होश में है?
उसने कहा, मैं लुहार हूं। जीवन भर मैंने जंजीरें बनाई हैं, बेड़ियां बनाई हैं। जो बना सकता है, वह मिटा भी सकता है। घबड़ाओ मत! मैं अपनी जंजीरें ही नहीं तोड़ लूंगा, तुम्हारी भी तोड़ दूंगा। तुम चिंता न करो। एक दफा इनको हमें फेंक कर चले जाने दो, बस। मैं इसकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूं कि कब हमें ये फेंक दें जंगल में और जाएं। देर न लगेगी!
सब में हिम्मत आ गई। सब में साहस आ गया।
दुश्मन उन्हें जंगल में छोड़ कर भाग गए। बचने की उनकी कोई उम्मीद न थी, रात होने के करीब थी और जंगली जानवर उन्हें खा जाएंगे। सारे लोग घसिट कर इकट्ठे हो गए लुहार के पास। और लुहार रोने लगा, उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे। उन्होंने कहा, हुआ क्या? अभी तुम गीत गाते थे, अब तुम रोते क्यों हो? उसने कहा कि नहीं, ये जंजीरें टूटेंगी नहीं। ये तो मेरी ही बनाई हुई जंजीरें हैं। इन्हें तो कोई तोड़ ही नहीं सकता। मैं भी नहीं तोड़ सकता। इन पर तो मेरे हस्ताक्षर हैं। उसकी आदत थी कि अपनी हर बनाई चीज पर हस्ताक्षर

कर देता था। उसने अपनी जंजीरें बताईं, उसने कहा कि इनका तोड़ना असंभव है।
मैं तो बनाता ही नहीं ऐसी चीज जो टूट सके।
तुम सोचते हो, उस दिन उस लुहार की कैसी मनोदशा हुई होगी? अपनी ही जंजीरों में बंध कर मरना पड़ा।
और यही दशा सबकी है। अपनी ही जंजीरों में बंध कर तुम सड़ रहे हो, मर रहे हो, मरोगे। लेकिन इतना मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी जंजीरें इतनी मजबूत नहीं, क्योंकि तुम लुहार भी इतने कुशल नहीं। जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं। तुम्हारी जंजीरें भी बस ऐसी ही हैं! कामचलाऊ हैं। तुम्हारा सभी कुछ कामचलाऊ है। टीम-टाम है। तुम्हारी जंजीरें टूट सकती हैं। और तुमने ही उन्हें बनाया है, इसलिए जिस दिन तुम बनाना बंद कर दोगे, उनका टूटना शुरू हो जाएगा। और तुम्हारे ऊपर से अस्वाभाविकता की जंजीरें गिर जाएं, तो प्रेम का झरना फूट पड़े।
प्रेम का पंथ कठिन है, क्योंकि तुम उलटे खड़े हो।
अब जैसे कोई आदमी शीर्षासन कर रहा हो, तो उससे कहना ही पड़ेगा कि चलना बहुत कठिन है। और क्या करोगे? जो आदमी शीर्षासन कर रहा है, उससे तुम यह कहो कि चलना बहुत सरल है। वह कहेगा, अगर सरल है, तो मैं क्यों नहीं चल सकता? सरल है तो मैं इंच भर नहीं सरक पा रहा हूं!
सिर के बल जो खड़ा है, उसे चलना कठिन है। पैर के बल जो खड़ा है, उसे चलना सरल है। तुम सब सिर के बल खड़े हो। समाज की व्यवस्था ने, पंडित-पुरोहित-राजनीतिज्ञों की व्यवस्था ने तुम्हें सिर के बल खड़ा कर दिया है, अब चलना तुम्हें कठिन है। हां, तुम पैर के बल खड़े हो जाओ तो चलना सरल हो जाए। मगर पैर के बल खड़ा होना अभी कठिन है। क्योंकि सिर के बल खड़ा होना ही तुम जानते हो एकमात्र खड़ा होना है।
आदमी को जो सिखाया जाता है, वह उसी से भर जाता है। आदमी को जो दीक्षा
दी जाती है, संस्कार दिए जाते हैं, वह उन्हीं में जकड़ जाता है। और तुम्हारे संस्कार ऐसे प्रतीत होते हैं कि तुम्हारी आत्मा हैं। आत्मा नहीं हैं वे। रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक पावलफ ने कुछ प्रयोग किए, जिनसे एक सिद्धांत का जन्म हुआ। वह सिद्धांत समझने जैसा है, क्योंकि वह तुम पर लागू है। वह सारी मनुष्य-जाति का इतिहास है उस सिद्धांत में। पावलफ ने सारे प्रयोग कुत्तों पर किए। एक प्रयोग उसने किया कि कुत्ते को रोटी दे, जैसे ही रोटी कुत्ते के सामने आए, सुस्वादु रोटी, कि कुत्ते की लार टपकनी शुरू हो जाए। जब लार टपके और रोटी दे, तभी वह घंटी बजाए। पंद्रह दिन के बाद रोटी तो लाया नहीं, सिर्फ घंटी बजाई--और लार टपकने लगी।
अब घंटी से लार टपकने का कोई संबंध नहीं है। अगर तुम किसी कुत्ते के सामने घंटी बजाओ, तो शायद भौंके, मगर लार नहीं टपकाएगा। नाराज हो जाए कि क्यों शोरगुल मचा रखा है? मगर लार किसलिए टपकाए? घंटी कोई भोजन तो नहीं है!
लेकिन पहले रोटी दी, लार टपकी, फिर साथ ही घंटी बजाई, तो धीरे-धीरे पंद्रह दिन में रोटी और घंटी की आवाज संयुक्त हो गईं; उनमें एसोसिएशन हो गया; उनमें साहचर्य हो गया; उनमें गठबंधन हो गया; उनकी भांवर पड़ गई। पंद्रह दिन के बाद जब सिर्फ घंटी बजाई तो घंटी के बजने से ही रोटी की याद आई। अब रोटी नहीं है, मगर रोटी की याद काफी है।
तुमने भी देखा न, अगर नींबू की याद करो तो मुंह में पानी दौड़ जाता है।
वह पावलफ का सिद्धांत है। तुम अभी करके देख लो। नींबू की याद, और बस पानी दौड़ा। अब यह नींबू शब्द से लार के दौड़ने का क्या संबंध? लेकिन नींबू शब्द से नींबू के अनुभव जुड़े हैं, संयुक्त हो गए हैं। लार तत्क्षण दौड़ पड़ती है।
शब्द ही काफी है।
किसी सिनेमागृह में जाकर रात के अंधेरे में जोर से चिल्ला दोः आग! आग!
और बस भगदड़ मच जाएगी। कोई पूछेगा नहीं कि कहां आग? फुरसत किसको? आग का खतरा ऐसा है कि भगदड़ मच जाएगी। जितना लोग भागेंगे, उतनी ही जोर से भगदड़ मचेगी। जितना भागने की कोशिश करेंगे, दरवाजों पर भीड़ हो जाएगी--उतना धूम-धाम, उतनी मुश्किल मच जाएगी। फिर कोई लाख समझाए कि भई, आग नहीं लगी है; मगर कोई

सुनेगा नहीं, पहले लोग बाहर होना चाहेंगे। क्या पता लगी ही हो? आग शब्द, संयोजन हो गया।
पावलफ ने सिद्धांत निकाला कंडीशंड रिफ्लेक्स का--कि हम धीरे-धीरे आदतों से संबंधित हो जाते हैं। हम इतने संबंधित हो जाते हैं कि आदतें हमारी आत्मा बन जाती हैं।
और यही हो गया है। बचपन से तुम्हें बहुत सी बातें सिखाई गई हैं। उनमें प्रेम नहीं है। उन बातों में प्रेम जरा भी नहीं है। बल्कि उलटी बातें सिखाई गई हैं। उदाहरण के लिएः घर में मेहमान आए हैं, छोटे बच्चे को पकड़ कर लाया जाता है और कहा कि चाची जी हैं, इनको चुंबन दो। अब छोटे बच्चे को न चुंबन देने की इच्छा है, न चाची जी में कोई रस है, न वह चाहता था कि ये आएं। मगर मां-बाप खड़े हैं, तेज-तर्रार उनकी आंखें हैं, चाची जी को चुंबन देना ही पड़ेगा! अब तुम एक झूठा चुंबन सिखा रहे हो। और अगर यह रोज-रोज होता रहा, कि ये दादा जी आए हैं, इनके पैर पड़ो! उसे न पैर पड़ना है, न कोई सम्मान है इन दादा जी के प्रति। और इन दादा जी को वह भलीभांति जानता है कि मौका पड़ जाए तो उसकी जेब के पैसे भी निकाल लेते हैं। इनके पैर पड़ो? मगर पड़ना पड़ेगा। क्योंकि पिताजी खड़े हैं, वे कह रहे हैं इनके पैर पड़ो।
तुम झूठ सिखा रहे हो। तुम श्रद्धा खराब कर रहे हो, तुम प्रेम खराब कर रहे हो, तुम सब विकृत किए दे रहे हो। बड़ा होते-होते यह भूल ही जाएगा कि क्या सच है, क्या झूठ है। चाची जी आएंगी और यह नमस्कार करेगा, और दादा जी आएंगे और यह सिर झुकाएगा। फिर कहीं अगर सच में ही मौका आ जाएगा सिर झुकाने का, तो भी इसका सिर झूठा ही झुकेगा--यह मुश्किल हो गई! और कभी अगर आलिंगन करने की सच्ची स्थिति भी आ जाएगी, तो इसका आलिंगन केवल अभिनय होगा, कृत्रिम होगा। यह अपनी पत्नी का भी आलिंगन करेगा तो बस, वह जो चाची जी को चूमा था, वही संबंध बना रहेगा। और जो तुमने इसे सिखा दिया है, यही यह अपने बच्चों को सिखा जाएगा। ऐसे हर पीढ़ी अपनी बीमारियां नई पीढ़ी को दे देती है।
पीढ़ियों से और कुछ मिलता ही नहीं। पीढ़ियां अपनी बीमारियां देती हैं।
और बड़े सम्मान से देती हैं कि बच्चों को शिक्षा दी जा रही है, संस्कार दिए जा रहे हैं, शिष्टाचार दिया जा रहा है। सिवाय झूठ, बेईमानी, पाखंड के और कुछ भी नहीं दिया जा रहा है। अगर मां-बाप सच में बच्चे को प्रेम करते हैं, तो वे कहेंगे कि अगर प्रेम हो तो चुंबन; अगर प्रेम न हो तो बात जाने दो। श्रद्धा हो तो झुकना, श्रद्धा न हो तो मत झुकना। ताकि किसी दिन जब श्रद्धा का द्वार आ जाए, तो तुम्हारे झुकने में तुम्हारा प्राण हो, तुम्हारी आत्मा हो, तुम्हारी प्रामाणिकता हो। और जब कभी तुम्हारे द्वार पर प्रेम का फूल खिले तो तुम्हारा आलिंगन जीवंत हो। नहीं तो सब झूठ हुआ जा रहा है। सब झूठ है। औपचारिक है।
इस उपचार के कारण तुम सिर के बल खड़े हो गए हो, और रहीम को कहना पड़ रहा हैः "प्रेम-पंथ ऐसो कठिन!" यह प्रेम के कारण नहीं कहना पड़ रहा है, तुम्हारे कारण कहना पड़ रहा है। यह अड़चन तुम्हारी है। तुम बदल जाओ तो प्रेम बड़ा सरल है, बड़ा सुगम है।
मगर बदलना कठिन है। अपने को बदलना इस जगत में सबसे बड़ी क्रांति है। क्योंकि बदलाहट छोटी-मोटी नहीं है यह, अपने सारे अतीत को पोंछना है, अपने सारे अतीत से अपने को असंलग्न कर लेना है, तोड़ लेना है,शृंखला तोड़ देनी है, फिर से अ ब स से शुरू करना है। थोड़े से ही हिम्मतवर लोग, थोड़े से साहसी लोग यह कर पाते हैं।
उस साहस को ही मैंने संन्यास कहा है। मेरे संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ना नहीं है। मेरे संन्यास का अर्थ हैः अपने अतीत से अपनी जीवन-चेतना को मुक्त कर लेना। समाज को नहीं छोड़ना है, अतीत को छोड़ना है। परिवार को नहीं छोड़ना है, संस्कार को छोड़ना है। धन, घर, दुकान नहीं छोड़ना है, मगर भीतर जो कूड़ा-करकट समाज छोड़ गया है, मां-बाप दे गए हैं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी से तुम्हें मिलता रहा है, तुम्हारी बपौती समझ कर तुम उसे छाती से लगाए बैठे हो, उसमें आग लगा देनी है। संन्यास का अर्थ हैः उस आत्मक्रांति से गुजरना है जिसमें तुम फिर से जन्मो, तुम्हारा नया जन्म हो, तुम फिर से अ ब स से शुरू करो जीवन-

107

यात्रा; ताजे--जैसे सुबह की ओस ताजी होती है; नये--जैसे सुबह की किरण नई होती है; अभी-अभी पैदा हुए--जैसे वृक्ष पर नई-नई कोंपल ऊगती है।
संन्यास का अर्थ हैः नितनूतन होने की कला। प्रतिदिन अतीत के प्रति मर जाना है। जो बीता सो बीता। उसे विस्मृत कर देना है। और जो है, उसमें जीना है। जो है, उसमें जीने की कला आ जाए, तो प्रेम सुगम है, सरल है। तुम्हारे भीतर से प्रेम की धाराएं बह उठेंगी। और धन्यभागी है वह, जिसके जीवन में प्रेम की धारा बह उठती है। क्योंकि वही धारा एक दिन परमात्मा के सागर से मिलाती है। प्रेम के अतिरिक्त परमात्मा तक ले जाने वाला और कोई मार्ग नहीं है।
पर हिम्मत करनी होगी! एक नये ढंग के सत्संग में प्रवेश करना होगा। जिनको तुमने अब तक साधु-संत समझा था, उनसे नाता तोड़ना होगा। और तुम्हें कुछ नये परिप्रेक्ष्य, नई आंखें, नई दृष्टियां पैदा करके नये सत्संग खोजने होंगे, नये साधु खोजने होंगे। आमूल रूपांतरण इससे कम में नहीं होगा कुछ।
दयारे-जुहद छोड़ा और मैख्वारों में आ पहुंचा,
गुनाहे-जीस्त की खातिर गुनहगारों में आ पहुंचा।
संयम रूपी देश छोड़ दिया।
दयारे-जुहद छोड़ा और मैख्वारों में आ पहुंचा,
और आ गया पियक्कड़ों में, मतवालों में, दीवानों में। प्रेम सीखना है तो
यह करना होगा। मंदिर काम नहीं आएंगे। कोई जीवंत मधुशाला; जहां अभी परमात्मा की शराब ताजी-ताजी ढाली जाती हो।
दयारे-जुहद छोड़ा और मैख्वारों में आ पहुंचा,
गुनाहे-जीस्त की खातिर गुनहगारों में आ पहुंचा।
मेरे देरीना-हमदम खूब थे पर ये हकीकत है,
सवाबित से गुजर कर आज सय्यारों में आ पहुंचा।
पुराने दोस्त सब ठीक थे, यह सच है, मगर जड़ थे, मुर्दा थे। जड़ नक्षत्रों
को छोड़ दिया और गतिमान तारों से दोस्ती की है। जिंदगी को गुनाह कहते थे वे लोग जिनके साथ तुम अब तक रहे हो। और अगर तुम्हें सच में जिंदगी को समझना है, तो उनके साथ रहना होगा जो जिंदगी को प्रेम करते हैं, जो जिंदगी को परमात्मा कहते हैं।
मेरे देरीना-हमदम खूब थे पर ये हकीकत है,
सवाबित से गुजर कर आज सय्यारों में आ पहुंचा।
गुलिस्तानों में रहता था, खिजां के जौर सहता था,
बयाबानों में आ पहुंचा, जुनूं जारों में आ पहुंचा।
छोड़ दीं पुरानी सुविधाएं, सुरक्षाएं। अब आ गया रेगिस्तानों में, आ गया दीवानों में।
शबिस्तानों के ख्वाब-आवर मनाजिर कल की बातें थीं,
सहर के जांफिजा बेदार नज्जारों में आ पहुंचा।
पुराने शयनागार सुविधापूर्ण थे, उनके दृश्य भी बड़े रसपूर्ण थे।
शबिस्तानों के ख्वाब-आवर मनाजिर कल की बातें थीं,
सहर के जांफिजा बेदार नज्जारों में आ पहुंचा।
लेकिन छोड़ दीं रातें, सुबह को चुन लिया और सुबह के प्राणोत्पादक वातावरण को चुन लिया।
जो तालिब हैं सुकूने-जिंदगी उनको मुबारक हो,
जिन्हें जीवन की शांति और सुरक्षा ही चाहिए, वह उनको मुबारक हो।
जो तालिब हैं सुकूने-जिंदगी उनको मुबारक हो,
हलाके-जुस्तजू था मैं कि आवारों में आ पहुंचा।
लेकिन मुझे तो जिंदगी की ऐसी जिज्ञासा थी, ऐसी अभीप्सा थी, कि मैंने आवारों से दोस्ती कर ली। घरवालों को छोड़ दिया, बसे-बसायों को छोड़ दिया, खानाबदोशों को पकड़ लिया, अज्ञात की तलाश पर निकले हुए यात्रियों का साथ कर लिया; उन काफिलों में सम्मिलित हो गया जो न मालूम किस अज्ञात आकांक्षा से भरे किस सत्य की तलाश पर निकले हैं--जिसकी कुछ न तो खबर है, न जिसका कोई नक्शा है; जिन्होंने अपनी नावें ऐसे सागरों में छोड़ दी हैं जिनका दूसरा

किनारा हो या न हो, और हो सकता है बीच मझधार में ही डूबना पड़े। मगर ख्याल रखना, सुरक्षाओं में बैठे हुए लोग, किनारों पर बैठे हुए लोग मुर्दा हैं।
और जो बीच मझधारों में डूब जाएं, वे जीवित हैं। और जीवन का ही परम जीवन से संबंध हो सकता है।
जो तालिब हैं सुकूने-जिंदगी उनको मुबारक हो,
हलाके-जुस्तजू था मैं कि आवारों में आ पहुंचा।
नजर को खीरा कर सकती थी सीमो-जर की ताबानी,
नजर पलती है जिनमें ऐसे नज्जारों में आ पहुंचा।
माना कि सोने-चांदी की चमक आंखों को भरमाए रखती थी। मगर अब ऐसे दृश्यों में आ पहुंचा हूं जहां आंखें तो नहीं भरमाई जातीं, मगर आंखें पैदा हो रही हैं, जहां दृष्टि पैदा हो रही है।
नजर को खीरा कर सकती थी सीमो-जर की ताबानी,
नजर पलती है जिनमें ऐसे नज्जारों में आ पहुंचा।
मैं बेगाना था यजदां के परस्तारों की महफिल में,
गनीमत है कि इन्सां के परस्तारों में आ पहुंचा।
वह ईश्वर की चर्चा करने वाले लोगों में मैं बेगाना था। वहां मुझे लगा
ही नहीं कि अपना घर है, कि अपने लोग हैं। बातें तो ईश्वर की थीं, मगर सब थोथी थीं।
मैं बेगाना था यजदां के परस्तारों की महफिल में,
गनीमत है कि इन्सां के परस्तारों में आ पहुंचा।
अब तो मैंने उनको चुन लिया जिन्हें आदमी से प्रेम है, ईश्वर की जो बात नहीं करते। मगर जिसको आदमी से प्रेम है, वह ईश्वर को उपलब्ध हो जाएगा, हो ही जाएगा। क्योंकि आदमी में ईश्वर प्रकट हुआ है। अपनी सर्वांगीणता में प्रकट हुआ है। अपने सर्वांग सौंदर्य में प्रकट हुआ है।
मैं बेगाना था यजदां के परस्तारों की महफिल में,
गनीमत है कि इन्सां के परस्तारों में आ पहुंचा।
उरूसे-जिंदगी की नाजबरदारी का सौदा था,
उरूसे-जिंदगी के नाजबरदारों में आ पहुंचा।
बड़ी आकांक्षा थी कि जिंदगी की नववधू को कैसे वर लूं! उन्माद एक ही था
कि जीवन के साथ कैसे रास रचे!
उरूसे-जिंदगी की नाजबरदारी का सौदा था,
एक ही उन्माद था कि जीवन को कैसे विवाहित हो जाऊं? कबीर ने कहा हैः मैं
तो राम की दुल्हनिया। कैसे जीवन से यह प्रणय का बंधन बने? यह प्रीति का बंधन बने?
उरूसे-जिंदगी के नाजबरदारों में आ पहुंचा।
अब उन लोगों में आ पहुंचा हूं जो विवाहित हो चुके हैं।
अगर यह जिंदगी से प्यार भी इक जुर्म है फिर तो,
गुनहगारों में आ पहुंचा, खतावारों में आ पहुंचा।
लेकिन अगर जिंदगी से प्रेम भी अपराध है, तो यही सही। तो मैं गुनहगारों में रहूंगा, अपराधियों में रहूंगा।
और मैं तुमसे कहूं, तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे साधु-संन्यासी यही समझाते रहे हैं कि जिंदगी एक गुनाह है।
अगर यह जिंदगी से प्यार भी इक जुर्म है फिर तो,
गुनहगारों में आ पहुंचा, खतावारों में आ पहुंचा।
भटकता फिर रहा था दर-ब-दर और कू-ब-कू "ताबां",
यह यारों का तसर्रुफ है कि मैं यारों में आ पहुंचा।
अब उन प्यारों में आ पहुंचा हूं, जिनको ईश्वर की उतनी चिंता नहीं है जितनी जीवन की चिंता है। जो सिद्धांतों की बात कम करते हैं, मदमस्ती में ज्यादा डूबते हैं। जो शास्त्रों पर विवाद कम करते हैं, लेकिन संगीत में, नृत्य में, प्रभु के प्रेम में ज्यादा तल्लीन होते हैं। यह इन दीवानों की ही कृपा है कि मुझे भी सम्मिलित कर लिया गया है, कि मैं भी अब मधुशाला का हिस्सा हो गया हूं। प्रेम तो कठिन नहीं है, लेकिन इतनी हिम्मत करनी पड़ेगी। दयारे-जुहद छोड़ा और मैख्वारों में आ पहुंचा,

गुनाहे-जीस्त की खातिर गुनहगारों में आ पहुंचा।

दूसरा प्रश्नः प्रेम अव्याख्य क्यों है? हृदय में याद होते ही वाणी मौन हो जाती है। कुछ बता नहीं सकती क्या हो जाता है तब। आंखें अर्धोन्मीलित हो जाती हैं और सब खो जाता है! ऐसा क्यों हो जाता है? मेरी समझ में नहीं आता। प्रेम का यह ऐसा रूप कैसा?

आनंद भारती! प्रेम और समझ में आ जाए तो फिर प्रेम नहीं। जो समझ में आ जाए वह कुछ और। समझ बड़ी छोटी चीज है। जो चम्मच में भर जाए उसको सागर कहोगे? चम्मच बड़ी छोटी चीज है। प्रेम तो अकूत है, अपार है, अथाह है। समझ में नहीं आएगा। लाने की चेष्टा भी न करना। नहीं तो लाने की चेष्टा में एक ही संभावना है कि आता-आता प्रेम रुक न जाए।
प्रेम समझ से बहुत बड़ा है। प्रेम समझ को आत्मसात कर लेता है, लेकिन समझ प्रेम को आत्मसात नहीं कर सकती। बूंद तो सागर में उतर जाती है, एक हो जाती है, मगर बूंद सागर को नहीं समा सकती। प्रेम असीम है, बुद्धि की सीमा है। और इसीलिए प्रेम अव्याख्य है। क्योंकि व्याख्या तो बुद्धि से होती है।
व्याख्या का अर्थ ही क्या होता है?
व्याख्या का अर्थ होता हैः जिसको बुद्धि पूरा-पूरा समझने में सफल हो गई। बुद्धि ने जिसका गणित बिठा दिया कि दो और दो चार। बुद्धि ने जिसका रहस्य समाप्त कर दिया। व्याख्या का अर्थ होता हैः अब रहस्यपूर्ण कुछ भी न रहा।
मगर प्रेम तो बड़ी बात है, जिंदगी की छोटी-छोटी चीजों की भी तो व्याख्या कहां है? कोई तुमसे पूछे, सौंदर्य यानी क्या? क्या कहो? कोई व्याख्या है? कोई व्याख्या नहीं है। संगीत क्या? कोई व्याख्या है? कोई व्याख्या नहीं है। जैसे-जैसे गहराई में उतरोगे--काव्य की हो, संगीत की हो, सौंदर्य की हो, प्रेम की हो--वैसे-वैसे व्याख्या दूर छूटती जाएगी। ऐसा ही समझो कि जैसे गहराई की तरफ जाओगे, किनारा दूर छूटता जाएगा। जब सागर की अतल गहराई में पहुंच जाओगे, वहां किनारा कहां? वहां अगर पूछो कि किनारा चाहिए, तो एक ही उपाय है--लौट जाओ किनारे पर। मगर तब सागर की गहराई खो जाएगी। दोनों साथ-साथ नहीं सध सकते।
तू पूछती हैः "प्रेम अव्याख्य क्यों है?"
कौन सी चीज की व्याख्या है? अगर गौर से खोजो तो हर चीज की व्याख्या ऊपरी पाओगे। अगर कोई पूछ ले कि वृक्ष हरे क्यों हैं? माना कि वैज्ञानिक कुछ रास्ता बताता है, वह कहता है, क्लोरोफिल के कारण हरे हैं। मगर कोई पूछे कि क्लोरोफिल हरा क्यों होता है? बात वहीं की वहीं अटकी रह जाती है।

उस फूल को
सफेद होने की क्या जरूरत थी
वह लाल क्यों न हुआ?

लाल होता
तो भी सुंदर होता
और आंख तब भी
उस पर रुकती

मगर सफेद होकर उसने
गजब कर दिया
अपने आस-पास
एक उजाला भर दिया
और हतप्रभ कर दिया
सामने के
तालाब भर कमलों को

रूप पर
रूप के ऐसे हमलों को
रोका जाना चाहिए
प्रकृति को
करोड़ों बरसों के बाद
इतना तो आना चाहिए!

आदमी हर चीज पर रुकावटें लगाना चाहता है। अब फूल सफेद क्यों है? उसे लाल होना चाहिए। चांद प्यारा क्यों है? आदमी इस तरह के प्रश्न पूछता है। और कुछ छोटे-मोटे आदमी पूछते हैं, ऐसा नहीं है, बड़े-बड़े दार्शनिक भी इसी तरह के प्रश्न पूछते हैं। उत्तर तो आज तक किसी का मिला नहीं। उत्तर मिलेगा भी नहीं। उत्तर है ही नहीं। जीवन कोई समस्या नहीं है जिसका समाधान हो सके। जीवन एक रहस्य है। और रहस्य का अर्थ होता हैः जिसका समाधान न हुआ है, न होगा।
जीवन को जीया जा सकता है, समझा नहीं जा सकता। समझने में समय खराब करना
भी मत। उतना समय जीने में लगाओ। अगर कोई समझ कभी आएगी तो जीने से आएगी। मगर उसको समझ नहीं कहा जा सकता। बुद्ध को आई समझ। लेकिन वह समझ जीने से आई। और जब आई तो बुद्ध ने उस समझ से उत्तर नहीं बनाए। लोगों से कह दिया, ये प्रश्न पूछो ही मत। ये प्रश्न पूछने के नहीं हैं। इनमें पूछने में उलझे, समय गंवाओगे। और अगर कहीं किसी ने उत्तर दे दिया... और सब उत्तर गलत हैं। ख्याल रखना, बेशर्त, सब उत्तर गलत हैं। अगर किसी ने कोई उत्तर दे दिया और उत्तर तुमने पकड़ लिया, तो उस उत्तर में अटक जाओगे।
कोई पूछता है कि प्रेम क्या है? उत्तर देने वाले मिल जाएंगे। अगर तुम पूछोगे रसायनविद से, वह कहेगा, कुछ खास नहीं, हार्मोन्स के बीच आकर्षण है। लेकिन तुमने कभी गुलाब के फूल को भी प्रेम किया या नहीं? वहां तो हार्मोन का कोई आकर्षण नहीं होता। और कभी तुमने सुबह के सूरज के ऊगते क्षण में प्रेम किया या नहीं? वहां तो कोई हार्मोन नहीं होते। सूरज पर हो भी नहीं सकते, कभी के खाक हो गए होते। एक स्त्री-पुरुष का प्रेम भला हार्मोन के कारण होता हो, मगर एक स्त्री-पुरुष के बीच भी ऐसा प्रेम हो सकता है जिसमें कामुकता न हो। और सच तो यह है, जैसे-जैसे प्रेम ऊंचा होता है, वैसे- वैसे कामुकता विलीन होती जाती है।
उपनिषद के ऋषि ठीक कहते हैं; जब वे किसी वर-वधू को आशीर्वाद देते हैं
तो उनका आशीर्वाद बड़ा अदभुत है; आशीर्वाद है कि तुम्हारे दस बेटे हों और अंततः तुम्हारा पति तुम्हारा ग्यारहवां बेटा हो जाए। प्रेम की पराकाष्ठा तब है जब पति और पत्नी के बीच भी वह जो बायोलॉजी, जीव-शास्त्र का संबंध है, समाप्त हो जाए। तभी प्रेम अपनी पूरी ऊंचाई लेता है, पूरा निखार लेता है। तभी प्रेम अपने पूरे सरगम को प्रकट होता है। तब पंचम स्वर में प्रेम गीत गाता है। लेकिन तब बायोलॉजी, जीव-शास्त्र और हार्मोन नहीं रह जाते।
दो पुरुषों में भी प्रेम हो सकता है। होता है। मैत्री होती है, गहन मैत्री होती है। इतनी गहन मैत्री हो सकती है कि पुरुष अपनी पत्नी को छोड़ दे, लेकिन अपने मित्र को न छोड़े। वहां तो हार्मोन का कोई संबंध नहीं है। वहां तो एक जैसे हार्मोन हैं।
आदमी को इन छोटी-छोटी बातों से भुलाया जा सकता है, लेकिन उसकी समस्याएं हल नहीं की जा सकतीं।
और फिर मीरा का प्रेम हो गया कृष्ण से। कृष्ण मौजूद ही नहीं हैं। अब कल्पना के कृष्ण में कहीं हार्मोन होते हैं! एक तो कल्पना के कृष्ण, फिर कल्पना के हार्मोन, और प्रेम ऐसा हुआ कि घर-द्वार छोड़ दिया, लोकलाज छोड़ दी, सब छोड़-छाड़ कर मीरा दीवानी हो गई! इस प्रेम को क्या कहोगे? यह प्रेम तो फिर रसायनशास्त्र की परिभाषा में नहीं आएगा।
लेकिन कम से कम मीरा को कृष्ण की कल्पना तो है। चलो हो सकता है, कल्पना
के कारण। लेकिन बुद्ध को तो कोई कल्पना भी नहीं है किसी परमात्मा की। कोई परमात्मा है ही नहीं बुद्ध के लिए तो। बुद्ध तो ध्यान में डूबे। और ध्यान

में इतने डूबे कि भीतर से प्रेम के झरने फूटने लगे। किसी के प्रति नहीं, किसी दिशा में नहीं, बस प्रेम की गहराई अपने आप प्रकट होने लगी, सारे अस्तित्व के प्रति प्रेम बहने लगा। बुद्ध अगर चट्टान को छुएंगे तो उतने ही प्रेम से छूते हैं जितने प्रेम से वृक्ष को छूते हैं।
अब चट्टान में कौन से हार्मोन हैं? और चट्टान में कौन सी कल्पना है? लेकिन बुद्ध उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, सोते हैं, उनका सारा जीवन प्रेम की एक अभिव्यक्ति है। बुद्ध ने उस प्रेम को करुणा कहा है। नाम कुछ भी दो।
प्रेम अव्याख्य है। और जितनी व्याख्याएं की गई हैं, सब छोटी पड़ जाती हैं। और अच्छा है कि छोटी पड़ जाती हैं। सौभाग्य है आदमी का कि विज्ञान सब कुछ नहीं समझा पाता, नहीं तो हमारी जिंदगी जीने योग्य न रह जाए; आत्महत्या करने के सिवाय कोई उपाय न बचे। विज्ञान सब समझा दे।
असल में, इस बात पर ख्याल रखना, तुम्हारी जिंदगी में जो बिना समझा रह जाता है, वही जीने योग्य है। उसी में महिमा है। उसी में गरिमा है। उसी में गौरव है। उसी में अर्थवत्ता है। जब सब समझ में आ जाता है गणित की तरह, तो तुम रह जाओगे बैठे--अब क्या करना है? जहां रहस्य नहीं बचा, वहां जीवन जीने की आकांक्षा भी नहीं बचेगी। और इसीलिए विज्ञान जितना बढ़ा है, उतना ही लोगों के जीवन में ऊब बढ़ी है।
यह हैरानी की बात है। विज्ञान की बढ़ती के साथ ऊब बढ़ी है, रस क्षीण हुआ है; लोग उदास हैं, हताश हैं; उनके चेहरे पर धूल जमी है; उनकी आंखों में चमक नहीं है, उनके प्राणों में गीत नहीं है, उनके पैरों में नृत्य की पुलक नहीं है। पश्चिम में, जहां विज्ञान बहुत प्रभावी हो गया है, वहां आत्महत्याओं की संख्या बहुत बढ़ गई है। आत्महत्या होनी चाहिए भारत जैसे देश में। जहां लोग भूखे मर रहे हैं, बीमार हैं, भोजन नहीं है, रहने को मकान नहीं है, कपड़ा नहीं, नौकरी नहीं--वहां आत्महत्या होनी चाहिए। वहां आत्महत्या नहीं होती। आत्महत्याएं बढ़ रही हैं पश्चिम में। जितना समृद्ध देश है, उतनी आत्महत्या बढ़ जाती है। सच तो यह है, तुम आत्महत्या की दर का पता लगा लो, और उससे पता चल जाएगा कि उस देश की समृद्धि कितनी है।
जितना विज्ञान बढ़ता है, उतनी जिंदगी बोझिल हो जाती है। सब समझ में आ जाता है। और जब सब समझ में आ जाता है, तो जीने योग्य कुछ नहीं रह जाता। जीवन एकदम गद्य ही गद्य हो जाए तो आत्महत्या के सिवाय कुछ नहीं बचता। जीवन में कुछ पद्य भी होना चाहिए। पद्य का अर्थ होता हैः बेबूझ। झलक तो मिले, मगर पकड़ में न आए। कुछ पारे की तरह भी होना चाहिए--मुट्ठी बंधे और छितर-छितर जाए। और जिंदगी में ऐसा बहुत कुछ है। प्रेम बिल्कुल पारे जैसा है। मुट्ठी बांधोगे, छितर-छितर जाएगा। जितना पकड़ना चाहोगे व्याख्या में, उतनी ही मुश्किल पाओगे।

मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे?

जाने किन मीठे सपनों ने,
अंतर-पट पर ली अंगड़ाई!
कौन अपरिचित सी सुधि मेरे,
प्राणों में पावस भर लाई!
अपने नयनों की रिमझिम से,
जब मैंने सावन शर्माया!
जग ने भी भीगी पलकों से,
भोला सा यह प्रश्न उठाया!
नयन गगरिया छोटी-छोटी, इतना नीर समाया कैसे? मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे?

जब प्राणों की सोई पीड़ा,
रह-रह कर मुसकाती जाती!
जब मन-गिरि से टकराने को,

पीड़ा की बदली घिर आती!
टूटी सी यह वीणा जाने,
कैसे जीवन राग सुनाती!
भावों के उमड़े सागर की,
शब्दों में सीमा बंध जाती!
यह क्या जानूं मन-सरसिज में, सागर आ लहराया कैसे? मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे?

सपनों में भी तो पल भर को,
पीड़ा कब सहला मैं पाई!
नीर भरे दो झरनों से भी,
प्यास नहीं अपनी बुझ पाई!
यह मन अपनी करुणानिधि भी,
क्यों बेमोल लुटाता आया!
दग्ध हृदय के उदगारों को,
कविता कह कर जग हर्षाया!
जाने मेरे पागलपन ने, जग का मन बहलाया कैसे?
मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे?

प्रेम तो अचानक है, अनायास है। क्यों, कब, कैसे--किसी उत्तर से तृप्ति नहीं होगी। क्यों, कब, कैसे--कोई प्रश्न पूछा नहीं जा सकता। असंभव है प्रेम, लेकिन संभव होता है।
नयन गगरिया छोटी-छोटी, इतना नीर समाया कैसे?
मौन निशा में आज अचानक, मेरा जी भर आया कैसे?
कहां हैं उत्तर? छोटी-छोटी बातों के उत्तर भी नहीं हैं। आंख में आदमी
के आंसू आते हैं, वे भी निरुत्तर हैं, उनका भी कोई उत्तर नहीं है।
हां, विज्ञान से पूछोगे तो उत्तर हैं। लेकिन विज्ञान के उत्तर दो कौड़ी के हैं। विज्ञान तो कहेगा, इतना जल है आंसू में, और इतना नमक है, और इतना-इतना सब कुछ है--सब बता देगा। लेकिन वह जो सुख बहा था आंसू से, वह विज्ञान की पकड़ के बाहर रह जाएगा। वह जो दुख बहा था, वह भी पकड़ के बाहर रह जाएगा। कभी तो आंसू प्रेम के होते, कभी क्रोध के भी होते! और कभी दुख के होते हैं--महा पीड़ा के, और कभी महा उल्लास के, हर्षोन्माद के भी होते हैं। उनमें फर्क विज्ञान न कर पाएगा। विज्ञान के लिए तो आंसू आंसू हैं। विज्ञान तो स्थूल के उत्तर दे सकता है, सूक्ष्म उसकी पकड़ के बाहर है। और सूक्ष्म ही जीवन को जीने योग्य बनाता है।
आनंद भारती, प्रेम अव्याख्य है, अव्याख्य ही रहेगा। अव्याख्य होना उसका स्वभाव है, स्वरूप है। और व्याख्या की चिंता में क्यों पड़ो? जब भूख लगती है तो हम भोजन की व्याख्या नहीं पूछते। या कि पूछते हो? जब प्यास लगती है तो हम जल की व्याख्या नहीं पूछते। और कोई अगर व्याख्या बता भी दे तो प्यास बुझेगी नहीं। तुम्हें प्यास लगी है और कोई कहे कि फिकर न करो, जल की व्याख्या बताए देता हूं--एच टू ओ; कि दो परमाणु उदजन के और एक परमाणु अक्षजन का, इनके मिलने से जल बनता है; अब शांत रहो! तुम कहोगे, मेरी प्यास का क्या होगा? तो हो सकता है, समझाने वाला अगर सच में ही पंडित हो तो कहे कि बैठ कर मंत्र जपोः एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ... जपते-जपते-जपते-जपते मिलन हो जाएगा।
ऐसे ही तो लोग राम-राम-राम-राम जप रहे हैं। एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ। कुछ फर्क नहीं है उसमें। राम-राम जपने से क्या होगा? राम को पीओ! राम को जीओ! राम को भोगो! राम को पचाओ! राम-राम जपने से कुछ न होगा। और न एच टू ओ जपने से कुछ होने वाला है।
एक घर में मैं मेहमान हुआ। उन सज्जन ने हजारों किताबें बस राम-राम, राम-राम लिख कर रख छोड़ी हैं। दिन भर वे एक ही काम करते हैं। पैसे वाले हैं, कुछ कमाई की जरूरत नहीं है, बस उनका काम एक है--राम पर उपकार कर रहे हैं वे। बस बैठे किताब में लिखते रहते हैं। और भी काम चलता रहता है। मुनीम आते हैं,

पूछते हैं, वे मुनीम को जवाब भी देते रहते हैं, मगर राम-राम, राम-राम, वह तो यंत्रवत हो गया है। वे राम-राम लिखते ही रहते हैं। जो भी आता होगा उनके घर, उसको दिखाते होंगे। और सभी लोग प्रशंसा करते होंगे। मुझे भी ले गए वे। उन्होंने दिखाई अपनी लाइब्रेरी--हजारों किताबें खराब कर दी हैं। मैंने उनसे कहा, तुमने यह क्या किया? बच्चों में बांट देते, स्कूल में बांट देते, कुछ काम आ जातीं। यह तुमने राम-राम लिख कर स्याही भी खराब की, किताबें भी खराब कीं, अपना समय भी खराब किया।
उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं? आप पहले आदमी हैं! जो भी आता है वह कहता है, अहा, कितना पुण्य कमाया! आप यह कह रहे हैं?
मैंने कहा, इसमें पुण्य जरा भी नहीं है। और मैं तुम्हें बताए दे रहा हूं कि अगर कभी राम मिले, तो वे भी तुमसे यही कहेंगे--कि तूने इतनी किताबें खराब क्यों कीं? बच्चों के पास किताबें नहीं थीं, और तू किताबें खराब करता रहा! और तू मेरी खोपड़ी खाता रहाः राम-राम-राम-राम-राम! आखिर मुझे भी सोना पड़ता है, उठना पड़ता, बैठना पड़ता!
एक यहूदी मरा। वह बड़ा भक्त था, सुबह से शाम तक नियम से परमात्मा को याद करता था। मगर जिंदगी उसकी हमेशा ऐसे ही मुसीबत में बीती। और उसके सामने ही एक पापी रहता था, जिसने कभी याद ही नहीं किया परमात्मा को। दोनों संयोग से एक ही दिन मरे। दोनों एक साथ हाजिर हुए। उस पापी को तो परमात्मा ने अपने पास बिठाया और देवदूतों से कहा कि इन सज्जन को नरक ले जाओ!
तो उन सज्जन को नाराजगी आनी स्वाभाविक थी। वे बहुत नाराज हो गए, एकदम गुस्से में आ गए। उन्होंने कहा, यह हद्द हो गई! हमने तो सुना थाः देर है, अंधेर नहीं। यहां तो देर भी है और अंधेर भी है! जिंदगी भर भी हम परेशान रहे और यह मजा किया। इसने वहां भी मजा किया, यहां भी मजा करेगा--अपने पास बिठा लिया इसको। और मुझे नरक भेज रहे हो! और मैं जिंदगी भर तुम्हारी याद करता रहा! सुबह, रात, दिन, जब मौका मिला, तुम्हारी याद की।
परमात्मा ने कहा, उसी के कारण नरक भेज रहा हूं। मेरा सिर खा गए! और यहां तुम्हें पास न टिकने दूंगा। नहीं तो तुम मेरा सिर खोओगे। यह आदमी भला है। यह कम से कम चुपचाप तो रहता है। यह शोरगुल तो नहीं मचाता।
मैंने उन सज्जन से कहा, इतनी किताबें खराब कर दीं, पाया क्या? ऐसे कहीं कोई राम मिला है!
आनंद भारती, प्रेम की व्याख्या से क्या करना है? प्रेम को जीओ! ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय। लेकिन प्रेम को पढ़ने का ढंग जीवन है। जीवन की किताब में प्रेम लिखा है। वहीं से अनुभव उठेगा। और उठना शुरू हो रहा है। अब यह व्याख्या की बात बीच में लाकर एक पहाड़ खड़ा मत करो।
तू लिखती हैः "हृदय में याद होते ही वाणी मौन हो जाती है।"
शुभ हो रहा है। बड़भागी है!
"कुछ बता नहीं सकती क्या हो जाता है।"
पूछता कौन है? कम से कम मैंने नहीं पूछा। और कोई पूछे तो भी बताना मत। क्योंकि तू जो भी बताएगी वह व्यर्थ होगा। जो बताने योग्य है वह पीछे छूट जाएगा, वह बताया ही नहीं जा सकता। वह अकथ्य है।
और तू लिखती हैः "मेरी समझ में नहीं आता, ऐसा क्यों हो जाता है?"
अब समझ को जाने दे! बहुत दिन तो समझ के साथ रह लिया। अब जरा नासमझी से दोस्ती होने दो! बहुत दिन समझदारी कर ली, अब जरा दीवानगी से दोस्ती होने दो! बहुत दिन तर्क बिठा लिए, अब घड़ी आ गई मस्ती की! अब पीओ और पिलाओ! प्रेम पीओ, प्रेम पिलाओ!
और तू पूछती हैः "प्रेम का यह ऐसा रूप कैसा?"
यही रूप है प्रेम का। और तो कोई रूप मैंने सुना नहीं। और तो कोई रूप होता नहीं। और तो कोई रूप हो नहीं सकता। प्रेम बेबूझ पहेली है। दीवानों का अनुभव है। मस्तों की क्षमता है। समझ इत्यादि के छोटे-छोटे मापदंड अब काम न पड़ेंगे। जाने दो।
तू लिखती हैः "कुछ बता नहीं सकती क्या हो जाता है! आंखें अर्धोन्मीलित
हो जाती हैं, और सब खो जाता है।"

यही होना चाहिए। ऐसा ही होना चाहिए। मेरे आशीर्वाद ले और इस यात्रा
पर और-और आगे बढ़ी चल!

तीसरा प्रश्नः आप भारत देश की महानता के संबंध में कभी भी कुछ नहीं कहते हैं। न ही इस देश के नेताओं की प्रशंसा में कुछ कहते हैं। क्यों?

चंदूलाल! आप यहां कैसे आ गए? और ढब्बू जी को भी साथ ले आए हैं या नहीं?
गलत दुनिया में आ गए। यहां देशों इत्यादि की चर्चा नहीं होती। आदमी
के द्वारा नक्शे पर खींची हुई लकीरों का मूल्य ही क्या है? यहां तो पृथ्वी एक है। यहां कैसा भारत और कैसा पाकिस्तान और कैसा चीन? इस तरह की बातें सुननी हों तो दिल्ली जाओ। यहां कहां आ गए? और यहां ज्यादा देर मत टिकना। यहां की हवा खराब है! कहीं यहां ज्यादा देर टिक गए, नाचने-गाने-गुनगुनाने लगे, तो भूल जाओगे भारत इत्यादि।
जरूरत क्या है भारत की प्रशंसा की? और भारत की प्रशंसा क्यों चाहते हो? अहंकार को तृप्ति मिलती है। पाकिस्तान की प्रशंसा क्यों नहीं? प्रश्न ऐसा क्यों नहीं पूछा कि आप पाकिस्तान की महानता के संबंध में कुछ कभी क्यों नहीं कहते? पाकिस्तान कभी भारत था, अब भारत नहीं है। कभी बर्मा भी भारत था, अब भारत नहीं है। कभी अफगानिस्तान भी भारत था, अब भारत नहीं है। और जो अभी भारत है, कभी भारत रहे, न रहे, क्या पक्का है? तो पानी पर लकीरें क्यों खींचनी? कौन है भारत? किसको कहो भारत? रोज की राजनीति है, बदलती रहती है, बिगड़ती रहती है। आदमी लकीरें खींचता रहता है। आदमी बड़ा दीवाना है। लकीरें खींचने में बड़ा उसका रस है। और जमीन अखंड है। फिर भी उसको खंडों में बांटता रहता है।
हम तो यहां पूरी पृथ्वी के गीत गाते हैं। पूरी पृथ्वी के ही क्यों, पूरे विश्व के गीत गाते हैं। चांद-तारों की जरूर यहां बात होती है। सूर्यास्त की, सूर्योदयों की जरूर यहां बात होती है। वृक्षों की और फूलों की, नदी और पहाड़ों की, पशुओं और पक्षियों की, और मनुष्यों की जरूर यहां बात होती है। लेकिन यह कोई राजनैतिक अखाड़ा नहीं है, जहां हम भारत की प्रशंसा करें।
और भारत की प्रशंसा के पीछे तुम चाहते क्या हो, चंदूलाल? कि तुम्हारी प्रशंसा हो। कि देखो, भारत कितना महान देश है कि चंदूलाल भारत में पैदा हुए। तुम अगर कहीं और पैदा होते, तो वह देश महान होता। तुम जहां पैदा होते, वही देश महान होता। सभी देशों को यही ख्याल है।

जब अंग्रेज पहली दफा चीन पहुंचे, तो चीनी शास्त्रों में लिखा गया कि
ये बिल्कुल बंदर की औलाद हैं। ये आदमी हैं ही नहीं। ये पक्के बंदर हैं। इनकी शक्ल-सूरत तो देखो! इनके ढंग!
और अंग्रेजों ने क्या लिखा चीनियों के बाबत? कि इनको आदमी मानने में बड़ी कठिनाई है। आंखें ऐसी कि पता ही नहीं चलता कि खुली हैं कि बंद! भौंहें नदारद! दाढ़ी-मूंछ, अगर दाढ़ी में चार-छह बाल हैं तो गिनती कर लो। ये आदमी किस तरह के हैं? इनको हो क्या गया? नाकें चपटी, गाल की हड्डियां उभरी। ये तो एक तरह के केरीकेचर, व्यंग्य-चित्र। जैसे आदमी को उलटा-सीधा बना दो। कुछ भूल-चूक हो गई।
मगर यह सभी के साथ है। जर्मन समझते हैं कि वे सर्वश्रेष्ठ। सारी दुनिया पर उनका हक होना चाहिए। और भारतीय समझते हैं कि वे पुण्यभूमि। यहीं सारे अवतार पैदा हुए। सारे अवतारों ने इसी पुण्यभूमि को चुना--राम ने, कृष्ण ने, बुद्ध ने और महावीर ने। और कहीं पैदा होने को उनको जगह न मिली। और अगर तुम यहूदियों से पूछो, तो यहूदी कहते हैं कि यहूदी ही ईश्वर के द्वारा चुनी गई कौम है। ईश्वर ने यहूदियों को चुना है। और अगर ईसाइयों से पूछो, तो वे कहते हैं, ईसा के सिवाय और कोई ईश्वर का असली बेटा नहीं है। बाकी तो सब नकली तीर्थंकर, नकली पैगंबर, नकली अवतार--इनका कोई मूल्य नहीं है। हर देश, हर जाति अपनी प्रशंसा के गीत गाती है। यह बात ही मूढ़तापूर्ण है। यह अहंकार का ही प्रच्छन्न रूप है।

फिर कुछ, चंदूलाल, महान हो तो भी कुछ चेष्टा करो! अब तुम नहीं मानते हो,
तो प्रशंसा में कुछ बातें कहता हूं!

जनता का है राज यहां पर, गली-गली खुशहाल है।
ठुकी गरीबों के पांवों में, प्रजातंत्र की नाल है।।
चौराहों पर नेताओं की दादुर जैसी तान है।
मेरा देश महान है।

उल्लू यहां प्रकाश बांटते, सूरज का उपहास है।
गहन अंधेरा नयन-नयन में करता यहां निवास है।।
चमचों के घर यहां पहुंचता सरकारी अनुदान है।
मेरा देश महान है।

खद्दरधारी जीव यहां पर, हर प्राणी को खा रहा।
किंतु अहिंसा की परिभाषा माइक पर चिल्ला रहा।।
मगरमच्छ का यहां हो रहा देवों सा सम्मान है।
मेरा देश महान है।
भ्रष्टाचारी यहां लबादा ओढ़े हैं ईमान का।
बंदूकों की नोक बताती यहां मूल्य इंसान का।।
गाया जाता यहां प्रेम से जोंकों का बलिदान है।
मेरा देश महान है।

नीर-क्षीर का ज्ञान यहां पर कौओं के अधिकार में।
समझे जाते हंस यहां पर बुद्धू हर व्यापार में।।
पृथ्वीराज से बड़ी यहां पर जयचंदों की शान है।
मेरा देश महान है।

नहीं आ रही किसी दिशा से सूरज की आवाज है।
यहां अंधेरे के माथे को मिला अनोखा ताज है।।
लगता है तिनके-तिनके पर बिखरी हुई मसान है।
मेरा देश महान है।

क्या है महान? और क्यूं यह आकांक्षा? सच में जब कोई चीज महान होती है,
तो उसकी घोषणा नहीं करनी होती। उसका होना ही प्रमाण होता है। सूरज ऊग आया, प्रमाण हो गया कि सुबह हो गई। कोई बैंड-बाजे बजा कर खबर नहीं करनी पड़ती कि सुबह हो गई। कि भाई जागो, सूरज ऊग आया! कि हे फूलो, अब खिलो, कि सूरज ऊग आया! फूल खिल जाते हैं। पक्षी गीत गाने लगते हैं। लोग जग जाते हैं। सूरज आ गया, बिना कुछ कहे, बिना शोरगुल किए--जरा भी आवाज नहीं करता।
यह तो भीतर कहीं छिपी हुई हीनता का भाव ही है जो हमारे मन में यह आकांक्षा उठाता है--कोई कहे कि महान। यह इनफीरिऑरिटी कांप्लेक्स है। यह भीतर छिपी हुई हीनता की ग्रंथि और बीमारी है कि हम चाहते हैं कि कोई न कोई हमें महान कहे; किसी न किसी कारण से महान कहे। और हम बड़े प्रसन्न होते हैं। और तुम्हारे नेता होशियार हैं। वे तुम्हारी महानता के गीत गाते रहते हैं। तुम भूखे मर रहे हो, वे महानता के गीत तुम्हें पिलाते हैं। और तुम महानता के गीत पीकर अहंकार में अकड़े हुए, भूल ही जाते हो समस्याओं को। तुम्हारी समस्याएं भुलाने के लिए महानता का गीत अफीम का काम करता है। तो नेता आते हैं तो वे तुम्हारी महानता की... महान भारतीय संस्कृति! सबसे प्राचीन संस्कृति! सबसे धार्मिक संस्कृति!
बात कुछ जंचती नहीं। बात में कुछ सचाई नहीं है। लेकिन तुम्हें सुन कर अच्छी लगती है, प्रीतिकर लगती है; तुम भूल ही जाते हो अपनी भुखमरी, अपनी दीनता, अपना दारिद्य्र, अपनी बेईमानी, अपनी चोरी। और तुम भूल जाते हो नेताओं की चोरी और नेताओं की बेईमानी और नेताओं की दगाबाजी। यह महानता का गीत दोनों तरफ लाभ पहुंचाता है। तुम महान, तुम्हारे नेता महान, तुम्हारा

देश महान। और हालत? अगर हालत को जरा आंख खोल कर देखो तो बहुत डर लगता है। तो बेहतर यही है, आंख बंद रखो और महानता के गीत गाते रहो। अफीम का नशा है यह।
आदमी आदमी जैसे हैं, सब जगह एक जैसे हैं। आदमी-आदमी में कोई खास फर्क नहीं है। और जो फर्क हैं, वे बहुत ऊपरी हैं। किसी ने बाल ऐसे काट लिए हैं, किसी ने बाल वैसे काट लिए हैं, इन फर्कों से कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई एक भाषा बोलता है, कोई दूसरी भाषा बोलता है, इनसे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये सब ऊपरी बातें हैं। आदमी आदमी जैसा है, सारी जमीन पर एक जैसा है। उसमें कोई गुणात्मक भेद नहीं हैं। अगर कुछ भेद होंगे तो बस संस्कारगत हैं। कोई मंदिर जाता है, कोई मस्जिद जाता है। मगर जाने वाला एक जैसा ही है। मंदिर जाने वाला मंदिर में धोखा दे रहा है, मस्जिद जाने वाला मस्जिद में धोखा दे रहा है। मंदिर में जाने वाला मंदिर में झूठी प्रार्थना कर रहा है, गिरजे में जाने वाला गिरजे में झूठी प्रार्थना कर रहा है। गिरजा और मंदिर अलग। कोई कृष्ण के चरणों में जा रहा है, कोई क्राइस्ट के। मगर वह जो जाने वाला आदमी है, वह एक जैसा आदमी है। उसमें कोई फर्क नहीं है।
ऊपर-ऊपर से तुम कितनी ही धर्म की बातें करो, लेकिन भीतर तुम उतने ही भौतिकवादी हो जितने दुनिया में कोई और लोग। शायद थोड़े ज्यादा ही होओ, कम तो नहीं। तुम्हारी पकड़ चीजों पर उतनी ही है, जितनी किसी और की। सच तो यह है, तुम्हारी थोड़ी ज्यादा है, क्योंकि तुम्हारे पास चीजें कम हैं। तो चीजें कम हों तो उनकी कमी को पकड़ को ज्यादा करके पूरा करना पड़ता है। जिनके पास चीजें बहुत हैं, वे पकड़ेंगे भी तो कितना पकड़ेंगे? वे ज्यादा नहीं पकड़ सकते।
पश्चिम में जहां चीजें बहुत बढ़ गई हैं, उनको तुम कहते हो भौतिकवादी लोग, सिर्फ इसीलिए कि उनके पास भौतिक चीजें ज्यादा हैं। इसलिए भौतिकवादी। और तुम अध्यात्मवादी, क्योंकि तुम्हारे पास खाने-पीने को नहीं है, छप्पर नहीं है, नौकरी नहीं है। यह तो खूब अध्यात्म हुआ! ऐसे अध्यात्म का क्या करोगे? ऐसे अध्यात्म को आग लगाओ।
और जिनके पास चीजें बहुत हैं, उनकी पकड़ कम हो गई है, स्वभावतः। कितना पकड़ोगे? जिनके पास कुछ नहीं है, उनकी पकड़ ज्यादा होती है। जिनके पास सिर्फ लंगोटी है, वे उसको पकड़े बैठे रहते हैं कि वही हाथ से न छूट जाए। और तो कुछ है ही नहीं। लेकिन जिनके पास बड़ा विस्तार है, कुछ छूट भी जाए तो क्या फिकर! उनमें देने की भी क्षमता आ जाती है। बांटने की भी क्षमता आ जाती है। सच तो यह है कि जितनी भौतिक उन्नति होती है, उतना देश कम भौतिकवादी हो जाता है। क्योंकि जो चीज हमारे पास होती है, उस पर हमारी पकड़ कम हो जाती है। जो हमारे पास नहीं होती, उस पर हमारी पकड़ बहुत गहरी होती है, हमारी आकांक्षा बहुत गहरी होती है।
मनुष्य के मन के इस नियम को ठीक से समझ लेना। उलटा लगेगा यह। जो हमारे पास नहीं है, उसे हम ज्यादा पकड़ते हैं। और जो हमारे पास है, उसे हम कम पकड़ते हैं। तुम खुद ही अपने जीवन पर थोड़ा विचार करो, जो तुम्हारे पास है, उस पर तुम्हारी ज्यादा पकड़ नहीं होती। है ही, तो पकड़ना क्या है! जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी आकांक्षा होती है। उसे पकड़ने का इरादा बना रहता है।
यह देश अध्यात्म की व्यर्थ दावेदारी करता है। इस देश को पहले भौतिकवादी होना चाहिए, तो यह अध्यात्मवादी भी हो सकेगा। इस देश के पास अभी तो शरीर को भी सम्हालने का उपाय नहीं है, आत्मा की उड़ान तो यह भरे तो कैसे भरे? वीणा ही पास नहीं है, तो संगीत तो कैसे पैदा हो? पेट भूखे हैं, उनमें प्रेम के बीज कैसे फलें? पेट भूखे हैं, उनमें ध्यान कैसे उगाया जाए?
मेरे हिसाब में, हमने अगर कोई बड़ी से बड़ी भूल की है इन पांच हजार वर्षों में तो वह यह कि हमने भौतिकवाद की निंदा की है। और भौतिकवाद की निंदा पर अध्यात्मवाद को खड़ा करना चाहा है। उसका यह दुष्परिणाम है जो हम भोग रहे हैं। इसमें तुम्हारे साधु-संतों का हाथ है। और जब तक तुम यह न समझोगे कि तुम्हारे साधु-संतों की जिम्मेवारी है तुम्हें भिखमंगा रखने में, गरीब रखने में, दीन-बीमार रखने में, तब तक तुम इस नरक के पार नहीं हो सकोगे। क्योंकि तुम मूल कारण को ही न पहचानोगे तो उसकी जड़ कैसे कटेगी?

मेरे हिसाब में, भौतिकवाद अध्यात्मवाद का अनिवार्य चरण है। भौतिकवाद बुनियाद है मंदिर की और अध्यात्म मंदिर का शिखर है। बुनियाद के बिना मंदिर नहीं हो सकता। भौतिकवाद और अध्यात्म में कोई विरोध नहीं है, सहयोग है। आत्मा और शरीर में कितना सहयोग है, गौर से देखो तो! जो शरीर में घटता है वह आत्मा में घट जाता है। जो आत्मा में घटता है वह शरीर में घट जाता है। किसी आदमी को विश्वास दिला दो कि वह बीमार है, उसका शरीर बीमार हो जाएगा। तुम प्रयोग करके देख लो। तय कर लो कि फलां आदमी बिल्कुल स्वस्थ है, पूरा मुहल्ला तय कर ले कि जो भी उससे मिले, जयरामजी करने के बाद पहला सवाल यही पूछे कि भई, बात क्या है? शरीर तुम्हारा बड़ा पीला-पीला पड़ा जा रहा है! तुम कुछ बीमार हो? पहले वह इनकार करेगा, क्योंकि वह बीमार नहीं है। लेकिन जब दो-चार लोग पूछ चुकेंगे, तो इतने जोर से इनकार नहीं करेगा। उसे शक होने लगेगा। और सांझ होते-होते तुम देखोगे, वह बिस्तर पर लेट गया है। कंबल ओढ़े पड़ा है। हो सकता है कि बुखार चढ़ आए। इतने लोग कहते हैं तो झूठ तो न कहते होंगे!
तुमने उस आदमी को सम्मोहित कर दिया। तुमने उसके मन को प्रभावित किया, उसकी देह भी प्रभावित हो गई।
और इससे उलटा भी सच है। जब देह प्रभावित होती है तो मन भी प्रभावित होता है। ये कोई अलग-अलग चीजें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम्हारी आत्मा और तुम्हारी देह के बीच कैसा तारतम्य है, कैसा समन्वय है! समवेत परमात्मा और उसके अस्तित्व के बीच कैसा गहरा नाता है!
तो भौतिकवाद और अध्यात्मवाद विपरीत नहीं हो सकते। भारत ने बड़ी भूल की
है दोनों को विपरीत मान कर। पश्चिम भी भूल कर रहा है दोनों को विपरीत मान कर। पश्चिम ने भौतिकवाद चुन लिया अध्यात्म के खिलाफ। भारत ने अध्यात्म चुन लिया भौतिकवाद के खिलाफ। दोनों ने आधा-आधा चुना, दोनों तड़फ रहे हैं। दोनों मछली जैसे तड़फ रहे हैं, जिसका पानी खो गया हो। क्योंकि पानी समग्रता में है।
मेरा उदघोष यही है कि हमें एक नई मनुष्यता का सृजन करना है। ऐसी मनुष्यता का, जो दोनों भूलों से मुक्त होगी। जो न तो भौतिकवादी होगी, न अध्यात्मवादी होगी, जो समग्रवादी होगी। जो न तो देहवादी होगी, न आत्मवादी होगी, जो समग्रवादी होगी। जो बाहर को भी अंगीकार करेगी और भीतर को भी। बाहर और भीतर में जो विरोध खड़ा न करेगी। जो बाहर और भीतर के बीच संबंध बनाएगी, सेतु बनाएगी। एक ऐसी मनुष्यता का जन्म होना चाहिए। उसी मनुष्यता के जन्म के लिए प्रयास चल रहा है।
मेरा संन्यासी उसी नये मनुष्य की पहली-पहली खबर है। वह संसार को स्वीकार करता है, और फिर भी अध्यात्म को इनकार नहीं करता। वह अध्यात्म को स्वीकार करता है, फिर भी संसार को इनकार नहीं करता। वह संसार में रह कर और संसार के बाहर कैसे रहा जाए, इसका अनूठा प्रयोग कर रहा है।
मेरे मन में तुम्हारे तथाकथित भारत की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। और जितनी जल्दी इन थोथे दंभों से तुम मुक्त हो जाओ, उतना अच्छा है।
और तुम पूछते हो कि न ही मैं इस देश के नेताओं की प्रशंसा में कुछ कहता हूं।
मैं करूं भी तो क्या करूं, प्रशंसा योग्य कुछ हो भी तो! एक तो राजनेताओं में प्रशंसा योग्य कभी कुछ हो नहीं सकता। होता तो वे राजनेता नहीं होते। राजनीति में तो रुग्णचित्त लोग ही सम्मिलित होते हैं। विक्षिप्त चित्त लोग ही सम्मिलित होते हैं। महत्वाकांक्षी लोग उत्सुक होते हैं। राजनीति में तो वे ही लोग उत्सुक होते हैं, जिनके भीतर इतनी हीनता का भाव है कि वे किसी पद पर बैठ कर सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं हीन नहीं हूं। राजनीति में जिनके पास कोई भी गुण है, वे उत्सुक नहीं होते। जो मूर्तिकार हो सकता है वह मूर्तिकार होना पसंद करेगा, राजनीतिज्ञ नहीं। जो चित्रकार हो सकता है वह चित्रकार होना पसंद करेगा, राजनीतिज्ञ नहीं। जो संगीतज्ञ हो सकता है वह संगीतज्ञ होना पसंद करेगा, राजनीतिज्ञ नहीं। राजनीति तो गुणहीनों के लिए है। इसीलिए राजनीति में कोई योग्यता आवश्यक नहीं होती। असल में तो अयोग्यता ही योग्यता है वहां। जितना अयोग्य आदमी

हो, उतना राजनीति में आगे जा सकता है। क्योंकि योग्य आदमी तो थोड़ा झिझकता है, सोचता है कि अपनी योग्यता से चलना चाहिए। अयोग्य तो घुस जाते हैं। सौ- सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें। मारो, पीटो, घसीटो, कुछ भी करो, वे घुसते ही चले जाते हैं!

क्या कहें, कैसे कहें, किससे कहें, क्यों कर कहें
पीठ के पीछे कहें या रूबरू होकर कहें
कुछ समझ आता नहीं, हंस कर कहें, रोकर कहें
आज के नेता को लीडर मानें या जोकर कहें
हर किसी का है यहां अंदाज न्यारा, देखिए
देखिए, कुर्सीपरस्तों का नजारा देखिए

सींखचों में जेल के मिल-जुल के रोए थे अभी पीठ पर पर्वत दुखों के सबने ढोए थे अभी तान चादर, लोग सुख की नींद सोए थे अभी राहतों के ख्वाब पलकों में पिरोए थे अभी हैं बिखरने को सभी सपने दुबारा, देखिए देखिए, कुर्सीपरस्तों का नजारा देखिए

रात-दिन चलता है बस फर्जी मुलाकातों का दौर रूठने का सिलसिला, बेकार की बातों का दौर जाने किस दिन खत्म होगा आपसी घातों का दौर मनमुटावों का यह किस्सा, यह खुराफातों का दौर तिकड़मों का खुल गया फिर से पिटारा, देखिए देखिए, कुर्सीपरस्तों का नजारा देखिए

क्या मजा आता है जाने, रोज की तकरार में पगड़ियां पल-पल उछलती हैं भरे बाजार में
कोई उखड़ा कोई फिर से जम गया सरकार में
कोई डांवाडोल है, डूबा कोई मझधार में
क्या कहें, कैसे कहें, किससे कहें, क्यों कर कहें ढूंढ़ता है कोई तिनके का सहारा, देखिए
देखिए, कुर्सीपरस्तों का नजारा देखिए

अपहरण होते न हों, ऐसा नगर कोई नहीं
राहजन चारों तरफ हैं, राहबर कोई नहीं
जेल से छूटे गिरहकट, अब कसर कोई नहीं
चोर सब निर्भय बने, डंडे का डर कोई नहीं
रंग के मौसम में कांटों का इशारा देखिए
देखिए, कुर्सीपरस्तों का नजारा देखिए

किसकी प्रशंसा करो? और क्यों?
और चंदूलाल, यहां तुम भारत की और भारत के नेताओं की प्रशंसा सुनने आए हो? कि आए हो कि कुछ जागो, कुछ जीवन का तुम्हें स्वाद लगे, कि कुछ तुम भी परमात्मा के रस से संयुक्त हो सको! यहां तुम आए हो सौंदर्य का पान करने, प्रभु की प्रार्थना में डूबने, कि थोड़ा समाधि का साथ हो ले, कि थोड़ा जला हुआ दीया तुम्हारे बुझे हुए दीये के करीब सरक आए, कि तुम्हारे भीतर भी एक अभीप्सा उठे कि कब मैं जलूंगा, कब मेरा भी हृदय रोशन होगा!
आते हो कुछ और काम से, पूछताछ कुछ और करने लगते हो। ऐसी बातें घर छोड़
कर आया करो। ऐसे प्रश्न घर छोड़ कर आया करो। यहां तो प्रश्न लाओ कुछ प्रश्न जैसे! यहां तो प्रश्न लाओ कुछ जो तुम्हें जीवन के रहस्य के प्रति और भी जिज्ञासा से भरें। यहां तो प्रश्न लाओ कुछ ऐसे, जो मौत के पार है, उसका तुम्हें दर्शन करा सकें।

आखिरी प्रश्नः
फैलने को है विकल मेरे
हृदय का सिंधु भर कर
छोड़ कर तल आ गई है
आंख में आत्मा उमड़ कर
डोलती दुनिया सम्हालो
ज्वार आकुल फूटता है
शून्य का मैं व्यग्र
हाहाकार होना चाहता हूं
तुम मुझे अपने क्षितिज से
घेर कर बंदी बना लो
मैं तुम्हारे व्योम की
झंकार होना चाहता हूं।

सुरेंद्र सरस्वती! वही मैं कर रहा हूं। तुम्हें रंगा है ज्योति के इस रंग में, तुम्हें रंग रहा हूं समाधि के इस ढंग में, ताकि जो मैंने जाना है, तुम जान सको; ताकि जो मेरा अनुभव हुआ है, वह तुम्हारा अनुभव भी हो सके; ताकि विराट जो मेरी आंखों ने देखा है, वह तुम भी देख सको। पहले तुम्हें निमंत्रण दे रहा हूं कि जरा मेरी आंख से देखो, जरा मेरी खिड़की से झांको आकाश को। एक बार मेरी आंख से झांक लोगे, मेरी खिड़की से देख लोगे, तो फिर मेरी खिड़की की जरूरत न रह जाएगी। तुम अपने ही हृदय की खिड़की खोल लोगे। तुम अपनी ही आंख खोल लोगे। सुरेंद्र, होना शुरू हो गया है!
तुम पूछते होः
मैं तुम्हारे व्योम की
झंकार होना चाहता हूं।
स्वीकार हो तुम। झंकार होनी शुरू हो भी गई है। झंकार होनी शुरू हो गई, इसीलिए यह अभीप्सा उठी।
कुछ अनूठी बातें हैं इस दुनिया में!
एक पुरानी सूफी कहावत है कि परमात्मा को तुम तभी चुनते हो जब परमात्मा तुम्हें चुन लेता है! बड़ी मीठी, बड़ी अदभुत, अर्थपूर्ण कहावत है कि परमात्मा को तुम तभी चुनते हो जब परमात्मा ने तुम्हें चुन ही लिया। नहीं तो तुम चुनोगे भी नहीं। तुम परमात्मा को तभी पुकारते हो, जब उसने तुम्हें पुकार ही लिया। पहले वही पुकारता है। ठीक भी है। विराट ही पुकारेगा पहले। सागर ही पुकारेगा पहले। बूंद की बिसात क्या? तुम्हारे भीतर यह आकांक्षा उठी है कि तुम लीन हो जाना चाहते हो विस्तीर्ण में, इसका अर्थ सिर्फ एक ही है कि विस्तीर्ण ने तुम्हें चुन ही लिया। विस्तीर्ण ने तुम्हारे हृदय के तार छेड़ ही दिए हैं। झंकार शुरू हो ही गई है। बस इतना ही करना, इस झंकार के बीच जितनी बाधाएं हों, उनको हटाए चलना। अहंकार की बाधा मत खड़ी होने देना, ज्ञान की बाधा खड़ी मत होने देना; व्यर्थ के ऊहापोह, विचार की बाधा खड़ी मत होने देना; निर्विचार होना और ज्यादा से ज्यादा भाव में गीले होना।
बस दो बातें।
एक तरफ निर्विचार होते जाना और दूसरी तरफ भाव की आर्द्रता बढ़ाए जाना।
जो ऊर्जा विचार में लगी है, वही ऊर्जा भाव में संलग्न हो जाए, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी भी वह शुभ घड़ी आ जाएगी जब तुम उसके विराट के अंग हो जाओगे, भिन्न न रह जाओगे, अभिन्न हो जाओगे।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
सातवां प्रवचन

मेरा संदेश मेरा संदेश बन कर पहुंचाओ

पहला प्रश्नः संन्यास लिए आज छह साल पूरे हुए। संन्यास देकर आपने एक नया ही जीवन प्रदान किया है। जो आनंद मिल रहा है, उसके लिए आपके प्रति कैसे धन्यवाद प्रकट करूं? सिर्फ एक ही कांटा चुभता है--इतनी सुविधा और सामीप्य होने पर भी मैं आपको पूरा का पूरा नहीं पी पा रहा हूं। क्या रुकावट है, यह भी साफ नहीं। अब जी चाहता है, समीप ही नहीं, आपके उत्सव में पूरा ही डूब जाऊं। अब दुई खलती है। अब मिटा ही डालें।

अजित सरस्वती! मैं साक्षी हूं कि बहुत कुछ हुआ है। लेकिन बहुत कुछ अभी होने को शेष भी है। जितना हुआ है, उससे बहुत ज्यादा होने को शेष है। यह यात्रा समाप्त होने वाली यात्रा नहीं है।
संन्यास साधन नहीं है कि किसी साध्य को पाकर और पूर्ण हो जाएगा। संन्यास साधन भी है और साध्य भी। संन्यास मंजिल नहीं है, यात्रा है-- तीर्थयात्रा है। इस यात्रा का कोई अंत नहीं। यह शुरू तो होती है, लेकिन समाप्त नहीं होती। इसका प्रारंभ है, इसकी पूर्णता नहीं है।
और यही इसका सौंदर्य है। कि रोज नई चुनौती, कि रोज नये शिखर आह्वान करते हैं। कि रोज नये मार्ग निकल आते हैं। कि रोज-रोज नई अनुभूतियां द्वार पर दस्तक देती हैं। कि एक आनंद चुका नहीं कि कतारबद्ध आनंद खड़े हो जाते हैं। यह कोई एक दीया नहीं है, पूरी दीपमालिका है, पूरी दीपावली है।
इस सत्य को ठीक से समझ लेना जरूरी है। नहीं तो बहुत बार अकारण ही पीड़ा होगी।
मन की आकांक्षा होती है कि जो शुरू हुआ, वह पूरा हो जाए। यह मन का स्वभाव है। अधूरी चीज मन को जमती नहीं। वह उसे पूरा करना चाहता है। इसलिए किसी चीज को अधूरा छोड़ दो, तो मन वापस वहीं-वहीं लौटता है--कब पूरा कर लूं, कैसे पूरा कर लूं। मन पूर्णता का प्रेमी है। उसी प्रेम में मन जीता है। संन्यास की यात्रा में भी मन छाया की तरह पीछे चलेगा और कहेगाः कब सब पूरा हो जाए! कब परिपूर्णता आ जाए! कब वह आखिरी घड़ी आ जाए कि जिसके आगे फिर कुछ शेष न रहे!
अगर मन की इस आकांक्षा के मनोविज्ञान में उतरो, तो बहुत महत्वपूर्ण बातें हाथ लगेंगी। जरा गहरा गोता मारो, तो बड़े मोती हाथ लगेंगे। पूर्णता की आकांक्षा आत्मघात की आकांक्षा है। यह ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता। जब तुम किसी चीज को पूरा करना चाहते हो, तो उसका अर्थ है कि तुम उस संबंध में मर जाना चाहते हो। क्योंकि पूर्णता के बाद कोई जीवन नहीं बचता। जीवन तो अपूर्णता में है। जैसे ही कोई फूल पूरा खिल गया कि फिर गिरने का वक्त आ गया। और जैसे ही नदी सागर पहुंच गई कि समाप्त हो गई। जब तक सागर दूर है और सागर का आवाहन पुकार रहा है और नदी दौड़ी जा रही है पहाड़ों, पर्वतों, कंदराओं, खाइयों-खड्डों को पार करती, तब तक नदी का जीवन है। गीत जो पूरा हुआ, वह समाप्त भी हुआ। गीत जो अधूरा है, अभी झनकेगा, अभी नाचेगा, अभी गुनगुनाएगा। अभी पूर्ण होने की चेष्टा जारी रहेगी।
जीवन में कुछ चीजें हैं जो कभी पूरी होती नहीं। क्योंकि वे शाश्वत हैं, उनकी मृत्यु नहीं है, इसलिए पूरी नहीं होतीं। जीवन में प्रेम कभी पूरा नहीं होता। क्योंकि प्रेम पूरा हो जाए तो मर जाए। और प्रेम मरना जानता ही नहीं। जीवन में संन्यास कभी पूरा नहीं होता। पूरा हो जाए तो व्यर्थ हो जाए। कितना ही पूरा करो, कुछ शेष रह जाता है, शेष रह ही जाता है। ईशावास्य ठीक कहता हैः उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है।
और जैसे-जैसे संन्यास की गहराई बढ़ेगी, आनंद के नये-नये द्वार खुलेंगे, अमृत की बूंदाबांदी होगी, वैसे-वैसे ही अभीप्सा प्रबल होगी कि कब सब पूरा हो जाए! बूंद-बूंद से मन कैसे भरे? सागर, पूरा का पूरा सागर कैसे मिल जाए! लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं, अजित सरस्वती, सागर भी मिलेगा तो भी बूंद

ही सिद्ध होगा। क्योंकि सागरों के आगे महासागर हैं। उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाएगा। यह यात्रा अंत होने वाली नहीं है। इसीलिए इसे मैं तीर्थयात्रा कहता हूं। जो यात्रा अंत हो जाए, वह तीर्थयात्रा नहीं है। जो यात्रा अनंत है, वही तीर्थयात्रा है।
तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। तुम कहते होः "संन्यास लिए छह वर्ष पूरे हुए। संन्यास देकर आपने एक नया जीवन प्रदान किया है।"
मैंने नया जीवन प्रदान नहीं किया। संन्यास लेकर तुमने नया जीवन स्वीकार किया। मैं देना चाहूं तो दे नहीं सकता। तुम लेना चाहो तो ले सकते हो। मैं लाख देना चाहूं और तुम द्वार-दरवाजे बंद किए रहो, तो मेरे किए कुछ भी न होगा। मैं कितना ही थपथपाऊं तुम्हारे द्वार पर और तुम वज्र-बधिर बने रहो; मैं कितना ही पुकारूं, तुम सुनो और अनसुना कर दो... । वैसे भी मित्र हैं, जो सुनते हैं और अनसुना कर देते हैं। जिनके द्वार पर मैं दस्तक दिए जाता हूं और जिनके कान पर जूं भी नहीं रेंगती। जो जैसे हैं वैसे ही हैं। संन्यास बस ऊपर-ऊपर घटा है। वस्त्र उन्होंने रंग लिए हैं, आत्मा को रंगने से बचा रहे हैं। सोचते हैं, वस्त्र को रंग लिया तो काम पूरा हो गया। वस्त्र को रंगने से तो केवल तुम्हारी तरफ से इस बात की घोषणा होती है कि अब मैं अपनी आत्मा को रंगवाने को भी तैयार हूं। कि मैं छोड़ता हूं रंगरेज के हाथों में अपने को। कपड़े तुमने रंगे, आत्मा भी मेरी रंग दो!
मैं देना चाहूं तो नया जीवन तुम्हें नहीं दे सकता। कोई किसी को नया जीवन नहीं दे सकता। हां, लेना चाहो तो तुम ले सकते हो। कहावत है न, घोड़े को हम नदी तक ले जा सकते हैं, लेकिन पानी पीने को मजबूर नहीं कर सकते। खींच-खांच कर तुम्हें मैं नदी तक भी ले आऊं, मगर तुम अगर अंजुलि न बनाओ, तुम अगर झुको न, तुम अगर पानी अंजुलि में न भरो, तुम अगर पीओ न--कंठ तक आया हुआ पानी भी वापस लौटाया जा सकता है।
और ऐसा ही दुर्भाग्य है बहुत लोगों का। कंठ तक आए पानी को भी वापस लौटा देते हैं। होने-होने को बात थी और चूक जाते हैं। इंच का फासला था, शायद इंच का भी फासला नहीं था, और चूक जाते हैं। एक कदम और, और मंजिल पूरी हो जाती, मगर वह एक कदम ही नहीं उठ पाता। अटके रह जाते हैं।
तुमने साहस किया, मेरे इशारों को तुमने अंगीकार किया--तुमने श्रद्धा की--उस श्रद्धा से तुम्हें नया जीवन मिला। धन्यवाद देना हो, अपने को ही देना। अपना सम्मान करना। अपना आदर करना। क्योंकि उस आदर से और साहस बढ़ेगा, और स्वीकृति बढ़ेगी, और श्रद्धा बढ़ेगी।
कहा है तुमने कि जो आनंद मिल रहा है, उसके लिए कैसे आपके प्रति धन्यवाद करूं?
जब धन्यवाद नहीं किया जा सकता, तभी समझना कि धन्यवाद करने योग्य कुछ बात मिली। जिन बातों के लिए धन्यवाद दिया जा सकता है, उन बातों का कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो उन्हीं बातों का है, जहां धन्यवाद देने में जबान लड़खड़ा जाए, वाणी मौन हो जाए, शब्द खोजे न मिलें, कुछ भी कहो तो छोटा मालूम पड़े। न कहो तो बेचैनी हो, कहो तो सार्थक न मालूम पड़े। जब ऐसा कुछ घटता है, तभी जानना कि कुछ घटा। आभार प्रकट किया नहीं जा सकता। क्योंकि आभार की सीमा है, और आनंद की कोई सीमा नहीं है।
लेकिन मैं साक्षी हूं कि आनंद घट रहा है। और जब आनंद घटेगा तो आनंद की
और भी अभीप्सा पैदा होगी। क्योंकि जितना स्वाद लगेगा, उतनी अभीप्सा जगेगी। जितनी ज्योति दिखाई पड़ेगी, उतनी ही--और ज्योतिर्मय हो जाऊं--ऐसी प्रार्थना उठेगी। तमसो मा ज्योतिर्गमय! जरा सी झलक मिलेगी, तो फिर पूरा जीवन मेरा ज्योति से भर जाए--ऐसी प्रार्थना, ऐसा गीत स्वाभाविक है कि उठे। वही गीत उठ रहा है। उसे कांटा मत कहो। उसे भी सौभाग्य समझो। एक घूंट उतर गई है, स्वाद आ गया है, अब पूरे सागर को पीने का मन हो रहा है--वह भी स्वाभाविक है।
तुम कहते होः "सिर्फ एक कांटा चुभता है--इतनी सुविधा और सामीप्य होने
पर भी मैं आपको पूरा का पूरा नहीं पी पा रहा हूं।"

जितने करीब आओगे, उतनी ही यह पीड़ा होगी। क्योंकि जितने करीब आओगे, उतनी और करीब आने की आकांक्षा जगेगी। और जितने समीप आओगे, उतने और समीप हो सकते हो, यह बोध स्पष्ट होगा। और तब जरा सी दूरी भी खलेगी।
दूरियां भी मिटेंगी। अगर खलती हैं, तो उन्हें मिटना ही होगा। अगर उनकी पीड़ा हो रही है, तो वे ज्यादा दिन तक टिक नहीं सकती हैं। लेकिन यह पीड़ा भी मधुर है। यह पीड़ा भी सौभाग्य है। बड़भागियों को ही होती है। रुकावट कुछ भी नहीं है।
तुम पूछते होः "रुकावट क्या है, साफ नहीं होता।"
रुकावट कुछ भी नहीं है। यह जीवन का सहज विकास है। हर चीज एक विशिष्ट गति से बढ़ती है। मौसमी फूल जल्दी बढ़ जाते हैं। लेकिन जल्दी ही समाप्त भी हो जाते हैं। आकाश को छूने वाले देवदार बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं। प्रत्येक अनुभव की अपनी गति है। और हम लाख चाहें कि जल्दी हो जाए, हमारे चाहने से जल्दी नहीं होगी। हमारी चाह से हो सकता है देर हो जाए, और देर लग जाए। क्योंकि जो ऊर्जा विकास में लगती, वह चाह में लग जाएगी। उतनी ऊर्जा विकास को नहीं मिलेगी।
प्रेम का पौधा तो इस जगत में सबसे ऊंचा है, आकाश को छूता है। संन्यास प्रेम के पौधे को पैदा करने की भूमिका है, भूमि है। संन्यास की भूमि में प्रेम का पौधा पैदा हो जाए, तो परमात्मा से नाता जुड़े। प्रेम के फूल जब खिलेंगे आकाश में, तो वह खिलना ही प्रार्थना है। वही उस परमात्मा के चरणों में हमारी अर्चना है। देर लगेगी। कोई रुकावट नहीं है। प्रत्येक वस्तु के विकास का अपना क्रम है।
मां के पेट में बच्चा नौ महीने में योग्य होगा जन्म पाने के। कोई रुकावट नहीं है। कोई ऐसा नहीं है कि मां सोचे कि बड़ी देर लग रही है; कि तीन महीने हो गए, अभी तक बच्चा पैदा नहीं हुआ; चार महीने हो गए, बच्चा अभी तक पैदा नहीं हुआ--इतनी देर क्यों लग रही है? नौ महीने लगेंगे।
बड़ी प्यारी कहानी है लाओत्सु के संबंध में कि वह अपनी मां के पेट में बयासी वर्ष रहा। ऐसा हो तो नहीं सकता; इतिहास तो नहीं है यह, पुराण है; लेकिन बहुमूल्य है। और पुराण सदा इतिहास से ज्यादा मूल्यवान होता है--इसे याद रखना। इसे कभी भूलना ही मत। इतिहास तथ्य होता है, पुराण सत्य होता है। इतिहास तो क्षुद्र घटनाओं को इकट्ठा करता है। समय की रेत पर जो चिह्न छूट जाते हैं, उनको इतिहास इकट्ठा करता है। और शाश्वत में जो स्वर गूंजते हैं, पुराण उनको इकट्ठा करता है।
लाओत्सु जैसा बेटा पैदा हो, इतना परिपक्व, तो बयासी साल भी कम हैं मां
के पेट में रहना--यह अर्थ है कथा का। नौ महीने में तो साधारण बच्चे पकते हैं, नौ महीने में तो कोई भी पकता है, लाओत्सु जैसा बच्चा पैदा हो तो बयासी वर्ष भी कम हैं। जरूर लाओत्सु बयासी वर्ष मां के गर्भ में रहा होगा, तब इतना परिपक्व पैदा हुआ।
कहते हैं कि लोग रोते पैदा होते हैं। जरथुस्त्र के संबंध में कहानी
है कि जरथुस्त्र अकेला बच्चा है जो हंसता पैदा हुआ। रोते हुए पैदा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। रोते हुए मरना भी बिल्कुल स्वाभाविक है। हंसते हुए पैदा होना और हंसते हुए मरना बड़ी अनूठी घटना है। अब जरथुस्त्र जैसे बच्चे को, जो हंसता हुआ पैदा हुआ, इतना बोध लेकर पैदा हुआ कि जिंदगी उसे हंसने योग्य मालूम पड़ी, अगर मां के पेट में लंबे दिन तक रहना पड़े तो आश्चर्य नहीं है।
लाओत्सु के संबंध की कहानी यह भी कहती है कि लाओत्सु जब पैदा हुआ, उसके सारे बाल सफेद थे। बयासी साल मां के पेट में रहा, तो सारे बाल सफेद हो ही गए होंगे।
सफेद बाल प्रज्ञा के प्रतीक हैं, प्रौढ़ता के प्रतीक हैं। इतनी प्रज्ञा, इतनी गहन अनुभूति, इतना बोध, कि जैसे हिमालय के शिखर बर्फ से ढंके हों, ऐसे शुभ्र बालों से ढंका हुआ लाओत्सु पैदा हुआ।
हर चीज का समय है। हर चीज के विकास की अपनी गति है। हर चीज का अपना छंद है।

अजित, कोई कांटा नहीं है। पीड़ा तो है, लेकिन कांटे की पीड़ा नहीं है। पीड़ा इसी बात की है कि और हो सकता है, क्यों नहीं हो रहा है? पीड़ा यह दरिद्र की नहीं है, समृद्ध की है। यह पीड़ा दीन की नहीं है, दुखी की नहीं है, यह पीड़ा सुखी की है। आनंद हो रहा है, और भी तो हो सकता है! और क्यों नहीं हो रहा है? यह पीड़ा कांटे जैसी नहीं है, यह पीड़ा फूल जैसी है। यह फूल जैसी सुंदर है। और रुकावट कोई भी नहीं है। सहज छंद है विकास का। एक-एक कदम ही उठना चाहिए। बहुत जल्दी कदम उठ जाएं तो कच्चे रह जाते हैं। जीवन की प्रक्रियाएं पूरी होनी चाहिए। जल्दबाजी, अधैर्य घातक हो सकता है।
स्कूल में बच्चे परीक्षा देते हैं, तो चोरी भी कर सकते हैं, दूसरे की कापी में उत्तर देख सकते हैं; तो उत्तर तो लिख देंगे ठीक, लेकिन विधि नहीं होगी। और बिना विधि के उत्तर अर्थहीन है; पकड़े जाएंगे। गणित की किताब में गणित दिया होता है, किताब के पीछे उत्तर दिए होते हैं। गणित पढ़ लिया, किताब के पीछे उत्तर देख लिया, इससे तुम गणितज्ञ न हो जाओगे। विधि का क्या होगा? विधि समय लेती है। निष्कर्ष तक पहुंचना है तो प्रक्रिया से गुजरना होगा। कोई रुकावट नहीं है। लेकिन गंगा चलेगी गंगोत्री से, कोई रुकावट न हो
तो भी तो गंगासागर तक पहुंचने में समय लगेगा न! और जिनको हम रुकावटों की तरह देखते हैं, वे रुकावटें हैं? नहीं, रुकावटें नहीं हैं। अगर उन सबको हम हटा लें, तो गंगा का सारा सौंदर्य भी खो जाएगा। न हों बीच में पहाड़, न हों कंदराएं, न हों खड्ड, न हों चट्टानें, सपाट रास्ता हो गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक, राजपथ हो, न ऊंचाइयां हों, न नीचाइयां हों, न चक्करदार घुमाव हों, सीधा रेखा में बंधा हुआ रास्ता हो, तो नहर होगी, गंगा नहीं बचेगी।
और नहर और नदी में तुमने फर्क देखा?
नहर में वह सौंदर्य नहीं होता। क्योंकि नहर तो रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई रेलगाड़ी जैसी है। उसमें निसर्ग नहीं है, कृत्रिमता है। गंगा का आनंद ही यही है कि कभी उतरती है ऊंचे पहाड़ों से, गिरती है गहरे खड्डों में, कभी मैदानों में दौड़ती है, कभी बाएं, कभी दाएं, कभी नीचे, कभी ऊपर... उन सारी अनुभूतियों से गुजर कर ही तो गंगा की पवित्रता है, उसका सौंदर्य है; उसकी विशिष्टता है; उसकी निजता है, उसकी आत्मा है। नहरों की कोई आत्मा नहीं होती। सब नहरें एक जैसी होती हैं। नदियों की आत्माएं होती हैं। सब नदियां एक जैसी नहीं होती हैं।
मैं यहां तुम्हें अगर चरित्र सिखा रहा होता, तो तुम नहरों जैसे लोग होते। मैं तुम्हें चरित्र नहीं सिखा रहा हूं, मैं तुम्हें निसर्ग का सम्मान सिखा रहा हूं। मैं तुम्हें ऊपर से कोई आचरण नहीं दे रहा हूं, पुकार दे रहा हूं तुम्हारे अंतस को--कि खोजो अपना मार्ग, उतरो पहाड़ों से, चलो सागर की तलाश में। मगर तुम्हारा मार्ग तुम्हारा हो। तुम किसी का अनुकरण न करना। तुम किसी के पीछे मत चलना। पीछे चलने वाले कहीं पहुंचते ही नहीं। पीछे चलने वाले अंधे होते हैं और अंधे ही रह जाते हैं।
रुकावट कोई भी नहीं है, अजित! जो हो रहा है, जिस गति से हो रहा है, सम्यक है। मगर तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। आकांक्षा तो होती है, अभीप्सा होती है कि जल्दी हो जाए। कल का क्या भरोसा? जीवन हाथ रहे न रहे!
और तुम्हारी पीड़ा उन सभी की पीड़ा है, जिनको आनंद का स्वाद मिलेगा। जब स्वाद मिलता है, तो कोई पूरा-पूरा ही डूब जाना चाहता है--समीप ही नहीं आना चाहता, पूरा डूब जाना चाहता है। लेकिन पूरे डूबने की घटना एक विशिष्ट परिपक्वता के क्षण में घटेगी। हम उसे ला नहीं सकते। आएगी, अपने से आएगी। कब आ जाएगी, बिना खबर दिए, आकस्मिक द्वार पर खड़ी हो जाएगी कि तुम भौचक्क, अवाक रह जाओगे। तुम्हारी अपेक्षा से आने वाली नहीं है।
अक्सर तो ऐसा होता है, जब तुम्हें बिल्कुल भी अपेक्षा न होगी, जब तुम्हें बिल्कुल भी सुध न होगी, तब अचानक मेहमान आ जाएगा। क्योंकि जब कोई अपेक्षा नहीं होती, कोई आकांक्षा नहीं होती, तब तुम्हारा हृदय अपनी परिपूर्णता में खुला होता है। अपेक्षा में थोड़ा बंद हो जाता है। जितनी तेज अपेक्षा होती है, उतना संकीर्ण हो जाता है। तनाव पैदा हो जाता है। द्वंद्व बन जाता है। जब तुम निर्द्वंद्व होओगे, जब तुम जीवन को, जैसा जितना मिल रहा है, उतने के लिए ही धन्यवाद देकर अनुगृहीत होओगे, परितृप्त,

उतने से ही जितना परमात्मा दे आज, और ज्यादा की मांग न करोगे, उस दिन ज्यादा भी होगा। इस गणित को ठीक से याद रख लेना। मांग मत करना, तो ज्यादा रोज-रोज होगा। मांग करोगे, अड़चन पड़ जाएगी, बाधा बन जाएगी।
तुम कहते होः "अब जी चाहता है, समीप ही नहीं, आपके उत्सव में पूरा ही डूब जाऊं।"
डूब ही रहे हो। डूबते ही जा रहे हो। घटना इतनी स्वाभाविक रूप से घट रही है कि पता नहीं चल रहा है। रोज-रोज वृक्ष बड़े होते हैं, पता नहीं चलता। अभी हम यहां बैठे बात कर रहे हैं, वृक्ष बड़े हो रहे हैं। तुम जब आए थे तब और अब--फर्क पड़ गया। कुछ कलियां खिल गई होंगी, कुछ अंकुर फूट गए होंगे, कुछ पल्लव बाहर निकल आए होंगे, कुछ पुराने पत्ते गिर गए होंगे। प्रतिपल बड़े हो रहे हैं। मगर पहचान में नहीं आएंगे। हां, अगर दो-चार वर्ष बाद आओ यहां, तब चकित रह जाओगे देख कर--इतने बड़े हो गए वृक्ष!
बच्चा रोज बढ़ता है, मां को पता नहीं चलता। मेहमान वर्ष, दो वर्ष बाद जब
घर में आते हैं, तब वे कहते हैं कि बेटा बहुत बड़ा हो गया। मां रोज-रोज देखती थी।
ऐसी ही प्रत्येक साधक की दशा है। तुम अपने को रोज-रोज देखते हो। लगता है, कुछ नहीं हो रहा है, जल्दी नहीं हो रहा है। सब हो रहा है! मगर शनैः- शनैः। दूसरे पहचानेंगे, तुम न पहचान पाओगे। बहुत बार ऐसा होगा कि जो क्रांति तुममें घटेगी, उसे तुम न पहचान पाओगे पहले, दूसरे पहले पहचानेंगे। क्योंकि दूसरों के सामने तुम पूरे प्रकट नहीं होते, सदा उपलब्ध नहीं होते, वे कभी-कभी तुम्हें देखते हैं।
लेकिन मैं बारीकी से देख रहा हूं। मैं संन्यास देता हूं तो उसका अर्थ
ही यही है कि तब मैं तुम्हारा पीछा करूंगा। छाया की तरह तुम्हारा साक्षी रहूंगा। शुभ हो रहा है। उत्सव में डूबना भी हो रहा है। यह आकांक्षा भी उसी डूबने का एक हिस्सा है। दुई खल रही है--मिटने की तैयारी हो रही है। मिटना है। डूबना भी है उस उत्सव में, जो यहां निर्मित हो रहा है। इसमें और तुममें रंचमात्र भेद न रह जाए। यह तुम्हारा ही नृत्य हो, तुम्हारा ही उत्सव हो, तुम्हारा ही गीत हो। और तभी तो तुम इस योग्य बन सकोगे कि और जो प्यासे हैं बहुत, उनको भी निमंत्रण दे आओ।
मेरे प्रत्येक संन्यासी को न केवल खुद डूबना है, बल्कि एक दिन अपनी मस्ती के कारण और अनेकों को निमंत्रण भी दे आना है। उसकी मस्ती निमंत्रण दे आएगी।
यह दुनिया एक नये मनुष्य की प्रतीक्षा कर रही है। तुम सौभाग्यशाली हो, क्योंकि तुम्हारे हाथ में एक ऐसा अवसर है जो कभी-कभी मनुष्य-जाति के हाथ में होता है। हर पच्चीस सौ साल में सिर्फ एक बार ऐसा अवसर मनुष्य-जाति के हाथ में होता है, जब मनुष्यता एक नया कदम लेती है, एक नया सोपान चढ़ती है। वे पच्चीस सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। जो सौभाग्य बुद्ध के समय के लोगों का था, जो बुद्ध के संघ में बैठ कर लोगों ने आनंद अनुभव किया था, वैसे आनंद-अनुभव की तुम्हारी भी अनायास क्षमता है। अनअर्जित तुम्हारा सौभाग्य है। बुद्ध के पास बैठे थे जो, उन्हें भी पता नहीं था कि वे किस महाक्रांति में सम्मिलित हो रहे हैं। तुम्हें भी ठीक-ठीक पता नहीं है। जागोगे तो धीरे- धीरे पता चलेगा कि तुम सिर्फ किसी पिटी-पिटाई परंपरा के हिस्से नहीं हो। न तुम हिंदू हो, न मुसलमान, न ईसाई। तुम्हारा अतीत से कोई संबंध नहीं है। तुम तो एक भविष्य के उदघोषक हो। एक नये मनुष्य के। एक नई धार्मिकता के। डूबोगे तो औरों को भी डुबा सकोगे।
और अजित के मन में वह भी पीड़ा है। इस प्रश्न में तो नहीं लिखा है, लेकिन और-और प्रश्नों में बहुत बार लिखते हैं--कि कैसे आपकी बात दूसरों तक पहुंचाऊं? कैसे औरों को भी कह दूं कि संपदा लुट रही है और तुम क्यों वंचित हो?
डूबोगे उत्सव में भी! औरों से कहा भी जाएगा! औरों को डुबाओगे भी! पसे-हिजाब अभी तक हैं कितने नज्जारे,
उफक के पार हैं रक्सां हजार सय्यारे।
पर्दे के पीछे अभी बहुत सी बातें छिपी हैं।

पसे-हिजाब अभी तक हैं कितने नज्जारे,
उफक के पार हैं रक्सां हजार सय्यारे।
क्षितिज के पार हजारों नक्षत्र नाच रहे हैं और पर्दे के पीछे बड़े रहस्य छिपे हुए हैं। पर्दा उठाना है। क्षितिज के पार लोग देख सकें, ऐसी आंखें पैदा करवानी हैं। तुम थोड़े से संन्यासियों के पास आंखें पैदा हो जाएं, तो फिर हम संक्रामक बीमारी की तरह फैलना शुरू हों।

जैसे बीमारियां संक्रामक होती हैं, वैसे ही स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। बीमारियों से भी ज्यादा संक्रामक होता है। नहीं तो बुद्ध के समय में न तो प्रचार के साधन थे, न माध्यम थे, तो भी बुद्ध ने सारे एशिया को छा लिया। जीसस के समय में कोई साधन न थे, लेकिन सारी पृथ्वी जीसस की वाणी से गूंज उठी। आज तो पृथ्वी बड़ी छोटी हो गई है--एक छोटा सा गांव। प्रचार के साधन हैं, माध्यम हैं। आज तो हम प्रत्येक प्राण का तार छू सकते हैं; पर्दे उठाए जा सकते हैं, क्षितिज हटाया जा सकता है।
पसे-हिजाब अभी तक हैं कितने नज्जारे,
उफक के पार हैं रक्सां हजार सय्यारे।
कदम बढ़ा जरा जल्दी कदम बढ़ा हमदम,
कि कारवाने-तमन्ना है सुस्तगाम अभी।
आदमी बहुत धीमे-धीमे सरक रहा है, मुर्दे की तरह चल रहा है। इसलिए मित्रो, जरा जल्दी कदम बढ़ाओ!
कदम बढ़ा जरा जल्दी कदम बढ़ा हमदम,
कि कारवाने-तमन्ना है सुस्तगाम अभी।
जबीने-मेह पे छाई है जुल्मतों की गर्द,
निगारे-सुबह में गलतां है रंगे-शाम अभी।
सूरज पर धूल जमी है सदियों की। और सुबह भी कैसी सुबह है कि इसमें शाम अभी तक मिश्रित है।
जबीने-मेह पे छाई है जुल्मतों की गर्द,
निगारे-सुबह में गलतां है रंगे-शाम अभी।
बहारे-लाला-ओ-गुल है खिजांबदोश हनोज,
मजाके-बालो-परी है असीरे-दाम अभी।
दुनिया बदलनी है! अभी पतझड़ वसंत के कंधे पर सवार है। दुनिया बदलनी है! जिनके पास पंख हैं, उन्हें पंखों की याद नहीं है, वे पिंजड़ों में सिकुड़ कर बैठे हैं। जो आकाश में उड़ सकते हैं, भूल ही गए हैं कि उड़ने की उनकी क्षमता है।
बहारे-लाला-ओ-गुल है खिजांबदोश हनोज,
मजाके-बालो-परी है असीरे-दाम अभी।
हयात आज भी है जहमतकशे-हुदूदो-कुयूद,
खिरद भी खाम अभी है जुनूं भी खाम अभी।
जीवन बहुत सी सीमाओं में आबद्ध है--हिंदू की, मुसलमान की, जैन की, बौद्ध की; ब्राह्मण की, क्षत्रिय की, शूद्र की; भारतीय की, चीनी की, जापानी की--जीवन बहुत सी सीमाओं में बंद है। बुद्धि भी कच्ची है अभी आदमी की और हृदय तो और भी कच्चा है।
हयात आज भी है जहमतकशे-हुदूदो-कुयूद,
खिरद भी खाम अभी है जुनूं भी खाम अभी।
बुद्धि भी कच्ची है और पागलपन भी कच्चा है, प्रेम भी कच्चा है। इन्हें पकाना है। ये सीमाएं तोड़नी हैं।
हजार सदियों ने छोड़े हैं रंगारंग नुकूश,
मगर फसाना-ए-हस्ती है नातमाम अभी।
और सदियों-सदियों में अदभुत लोग हुए। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई जरथुस्त्र, कभी कोई मोहम्मद, कभी कोई कबीर, कभी कोई नानक। सदियों ने बहुत अदभुत रंग उड़ाए, बहुत ज्योतियां जलाईं। मगर कुछ अजीब सी बात है कि आदमी, दीये जब जलते हैं तो उनकी तरफ पीठ किए रहता है और दीये जब बुझ जाते हैं तो उनकी पूजा करता है।

हजार सदियों ने छोड़े हैं रंगारंग नुकूश,
मगर फसाना-ए-हस्ती है नातमाम अभी।
लेकिन आदमी वैसा का वैसा अपूर्ण, अधूरा, अधकचरा।
नया जहान, नई जिंदगी, नया इन्सान,
जमीं पे करना है जन्नत का एहतिमाम अभी।
स्वर्ग को उतारना है अभी पृथ्वी पर। उतारा नहीं जा सका। बातें चलती रहीं, उतारा नहीं जा सका। बड़ा काम है। और बड़ा काम है, इसलिए बड़े आनंद से भरो। छोटे काम तुम्हें विराट नहीं कर सकते। इस जगत में बड़े से बड़ा काम होने को शेष है। जमीन पर स्वर्ग को उतारना है। आदमी को प्रेम के पाठ, आनंद के पाठ सिखाने हैं। मगर वे ही सिखा सकेंगे ये पाठ, जो प्रेम में और आनंद में डूबेंगे।
तुम्हारी आकांक्षा, अजित, सुंदर है। लेकिन आकांक्षा को मांग मत बनाना। आकांक्षा को अपेक्षा मत बनाना। जीवन जिस गति से बढ़ रहा है तुम्हारा, उसे जबरदस्ती त्वरा मत देना। पकने दो। अपने आप परिपक्व होने दो।
मैं खुश हूं। मैं प्रसन्न हूं। मैं तुम्हारी गति से आनंदित हूं।

दूसरा प्रश्नः आश्रम में रह कर बहुत आनंदित हूं; पर कभी-कभी अचानक उदास हो जाती हूं। यह उदासी क्या है, जो आती है और चली जाती है? कृपया समझाएं।

रंजन भारती! जीवन का सबसे बड़ा पाठ जीवन के द्वंद्व को समझने में छिपा है। यहां दिन है तो रात है। और यहां जन्म है तो मृत्यु है। और यहां सफलता है तो असफलता है। और यहां दोनों साथ ही हो सकते हैं। जो भी चाहेगा कि एक को चुन लूं और दूसरे को छोड़ दूं, वह व्यर्थ की मुसीबत में पड़ जाएगा। उसकी जिंदगी चिंताओं से घिर जाएगी। चिंताओं से मुक्त होने का एक ही उपाय हैः दोनों को अंगीकार कर लो। दोनों हैं। दोनों साथ-साथ हैं।
गुलाब में फूल भी लगे हैं और कांटे भी। हमारा मन तो कहता है, फूल ही फूल हों। हमारा मन तो कहता है, दिन ही दिन हो। हमारा मन तो कहता है कि सुख ही सुख हो। मगर हमारे मन से अस्तित्व के नियम नहीं चलते। अस्तित्व के नियम तो जैसे हैं वैसे हैं। हमारे मन से अस्तित्व के नियम नहीं चल सकते, लेकिन हम अपने मन को अस्तित्व के नियमों के अनुसार चला सकते हैं। जो हो सकता है वह यह कि हम अस्तित्व के नियम को समझें और उसके अनुसार चलें। बस इस अनुसार चलने को ही मैं संन्यास कहता हूं।
अस्तित्व के नियम से जो लड़ रहा है, अज्ञानी है। क्योंकि हारेगा। अस्तित्व से जीता नहीं जा सकता। अस्तित्व से जीतना तो वैसे ही असंभव है जैसे कोई लहर सागर से जीतना चाहे, कि कोई पत्ता वृक्ष से जीतना चाहे, कि तुम्हारा बाल तुमसे जीतना चाहे। अस्तित्व को जीता नहीं जा सकता।
लेकिन अस्तित्व के साथ दो विकल्प हैं।
हम अस्तित्व के विपरीत हो सकते हैं या अस्तित्व के साथ हो सकते हैं।
लड़ सकते हैं, जीत तो नहीं सकेंगे। लड़ने में खुद ही टूटेंगे और मिटेंगे। और अगर अस्तित्व के साथ हो लें तो बिना जीते जीत हो जाती है। समर्पण में जीत है। अस्तित्व का नियम है कि जहां सुख है वहां दुख है। इस नियम को हम स्वीकार नहीं करना चाहते। हम कहते हैंः सुख-सुख तो हम चुनने को राजी हैं, दुख हम चुनने को राजी नहीं हैं। हम सिक्के का एक पहलू चुनना चाहते हैं, दूसरे पहलू को नहीं चुनना चाहते। दूसरा पहलू कहां जाए? एक पहलू तुमने चुना, दूसरा भी साथ आ गया।
तो पहली बात, रंजन, तू कहती हैः "आश्रम में रह कर बहुत आनंदित हूं; पर कभी-कभी अचानक उदास हो जाती हूं। यह उदासी क्या है, जो आती है और चली जाती है?"
उस आनंद की छाया है। उस आनंद का दूसरा पहलू है। आनंद को भी स्वीकार करो और उदासी को भी स्वीकार करो। तुम्हारी स्वीकृति में जरा भी भेद न हो। तुम चुनावरहित स्वीकार करो। आनंद आए तो आनंद और उदासी आए तो उदासी। तुम यह

मत कहना कि आनंद आए तो रुके, जाए न; और तुम यह मत कहना कि उदासी आई है तो चली जाए, रुके न। आनंद आए तो आनंद मेहमान बने। स्वागत करना। और उदासी आए तो उदासी का स्वागत करना--उतना ही जितना आनंद का किया है। तब तुम्हारे जीवन में एक क्रांति घट जाएगी।
कैसी क्रांति? कौन सी क्रांति?
तुम्हारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण घटना घटेगी! और वह घटना यह है कि तुम्हारे भीतर साक्षी का जन्म हो जाएगा। तुम आनंद को भी आते देखोगी, उदासी को भी आते देखोगी; आनंद को जाते देखोगी, उदासी को जाते देखोगी। और तुम्हारे भीतर एक बात स्पष्ट हो जाएगी कि मैं न तो आनंद हूं और न उदासी। मैं दोनों का द्रष्टा, साक्षी। मेरे सामने दोनों आते हैं, नाचते हैं, विदा हो जाते हैं। मैं अछूता, दर्पण की भांति। इस साक्षीभाव को अनुभव कर लेना ही समस्त धर्मों का सार है।
रंजन, तेरी तकलीफ यह है कि आनंद आता है, तो तू छाती लगा लेती होगी। कस
कर पकड़ लेती होगी। छूट न जाए! फिर न चला जाए। पहले भी आया था और चला गया, अब न चला जाए! इस बार तो नहीं जाने देंगे! तू घेरा बांधती होगी। तू गठबंधन बांधती होगी। तू भांवर डालती होगी। तू लक्ष्मण-रेखा खींचती होगी कि बस इसके बाहर मत जाना। और उसी सब में आनंद नष्ट हो जाएगा। आनंद को भोगने का समय भी कब मिलेगा तुझे? बचाने में ही समय व्यतीत हो जाएगा।
और फिर उदासी आती है, तो मन खिन्न होता है कि फिर आ गई उदासी। नहीं चाहते, वह आ गया। उदासी उतना उदास नहीं करती, जितना उदासी आ गई, यह बात उदास करती है।
उदासी की तो अपनी कुछ खूबियां हैं, अपने कुछ रहस्य हैं। अगर उदासी स्वीकार हो तो उदासी का भी अपना मजा है। मुझे कहने दो इसी तरह, कि उदासी का भी अपना मजा है। क्योंकि उदासी में एक शांति है, एक शून्यता है। उदासी में एक गहराई है। आनंद तो छिछला होता है। आनंद तो ऊपर-ऊपर होता है। आनंद तो ऐसा होता है जैसे नदी भागी जाती है और उसके ऊपर पानी का झाग। उदासी ऐसी होती है जैसी नदी की गहराई--अंधेरी और काली। आनंद तो प्रकाश जैसा है। उदासी अंधेरे जैसी है। अंधेरी रात का मजा देखा? अमावस की रात का मजा देखा? अमावस की रात का रहस्य देखा? अमावस की रात की गहराई देखी?
मगर जो अंधेरे से डरता है, वह तो आंख ही बंद करके बैठ जाता है, अमावस को देखना ही नहीं चाहता। जो अंधेरे से डरता है, वह तो अपने द्वार-दरवाजे बंद करके खूब रोशनी जला लेता है। वह अंधेरे को झुठला देता है। अमावस की रात आकाश में चमकते तारे देखे? दिन में वे तारे नहीं होते। दिन में वे तारे नहीं हो सकते। दिन की वह क्षमता नहीं है। वे तारे तो रात के अंधेरे में, रात के सन्नाटे में ही प्रकट होते हैं। वे तो रात की पृष्ठभूमि में ही आकाश में उभरते हैं और नाचते हैं।
ऐसे ही उदासी के भी अपने मजे हैं, अपने स्वाद हैं, अपने रस हैं। आनंद में ही आनंद नहीं है, रंजन, उदासी में भी आनंद है। मगर साक्षी को मिलता है। साक्षी हर चीज में से रस निचोड़ लेता है। कांटों में से फूल निचोड़ लेता है। पत्थरों को हीरे बना लेता है। साक्षी का जादू बड़ा है। इस एक शब्द में, साक्षी में, जादुओं का जादू है। तो तू साक्षी बन। जब आनंद आए, तो भी देखनाः आया। और जो आता है वह जाएगा, इसे भी स्मरण रखना। इसलिए पकड़ने की कोई जरूरत नहीं है। आओ तो ठीक, सिर आंखों, जाओ तो ठीक। आए तो स्वागत कर लेना, जाए तो अलविदा कह देना। न तो आते समय लगाव बनाना, न जाते समय मोह से पीड़ित होना। और ऐसा ही स्वागत करना उदासी का भी। आए तो स्वागत, जाए तो अलविदा।
उदासी में और आनंद में भेद छोड़ो। चुनाव छोड़ो। निर्विकल्प भाव से, अचुनाव, थिर भाव से दोनों को देखो। और तब आश्चर्यों का आश्चर्य घटित होता है। आनंद में तो आनंद होता ही है, उदासी में भी आनंद के नये-नये झरने फूट पड़ते हैं। आनंद में तो आनंद होता ही है, उदासी भी नये ढंग का आनंद प्रतीत होने लगती है। क्योंकि है तो आनंद का ही पहलू; है तो उसका ही दूसरा पहलू। तब फिर तुम्हें कोई पीड़ित नहीं कर पाएगा।
और इस चिंता में न पड़ो कि ऐसा क्यों होता है? यह स्वाभाविक है। जैसे दिन के पीछे रात, रात के पीछे दिन। कारण नहीं है। यह जीवन का नियम है। जीवन

का नियम है द्वंद्व। और तुम्हारे भीतर का नियम है निर्द्वंद्व। जीवन के द्वंद्व को निर्द्वंद्व साक्षी से देखो।
फिर रंजन, घर-द्वार छोड़ कर तू यहां आ गई है। पति को छोड़ आई है, बेटे को छोड़ आई है। यहां आई तो थी थोड़े दिन के लिए, फिर तेरा जाना संभव नहीं हो सका। तू डूबी सो डूबी। पति तेरे प्रतीक्षा कर रहे हैं लॉस एंजिल्स में, दूर अमरीका में। तुझे पता नहीं होगा, मुझे चिट्ठियां लिखते हैं! और उन चिट्ठियों में लिख देते हैं, रंजन को मत बताना। याद आती होगी तुझे घर की भी। माना कि अब यह तेरा घर है, फिर भी अतीत एकदम से तो नहीं पुंछ जाता। पुंछते-पुंछते ही पुंछता है। तू सब छोड़ आई है। उन सबकी रेखाएं रह गई होंगी। सब सुविधाएं छोड़ कर यहां आश्रम की सारी असुविधाओं में तू जी रही है। प्रेम है तेरा गहरा मुझसे। और सत्य की तेरी खोज गहन है। इसलिए यह तू सब कर सकी है। मगर कभी न कभी किसी क्षण में घर की याद आती होगी, गृहस्थी की याद आती होगी। तूने सब घर बसाया होगा, सुंदर-सुंदर फर्नीचर लाया होगा, चित्र टांगे होंगे, पर्दे लटकाए होंगे--बड़ी भावनाओं से, बड़े प्रेम से। पति को छोड़ आई, बेटे को छोड़ आई। स्वाभाविक है कि कभी-कभी तरंग आ जाती होगी, उदास करती होगी। जाना भी संभव नहीं है।
लेकिन ये घाव भीतर धीरे-धीरे भरेंगे। समय लगेगा। और समय हमें देना चाहिए। माना कि जो तू छोड़ आई है, सब सपना था। लेकिन सपने भी तो बड़े प्यारे होते हैं। सभी सपने दुखांत तो नहीं होते।

रात सपनों में ढली थी,
रात सपनों में पली थी,
हो गया जब प्रात देखाः
रात सपनों ने छली थी,
हो गई जिससे उनींदी रात सारी,
स्वप्न वह भी रह गया आखिर अधूरा!

स्वप्न जो था स्वप्न ही है, स्वप्न ही वह चिर रहेगा,
विवश मानव मूक स्वर में,
युग-युगों तक यह कहेगाः
हो गई जिससे उनींदी रात सारी, स्वप्न वह भी रह गया आखिर अधूरा!

रैन भी है चिर उनींदी,
हैं नयन भी चिर उनींदे!
ये विकल से कह रहे
अरमान युग-युग के उनींदेः
हो गई जिससे उनींदी रात सारी,
स्वप्न वह भी रह गया आखिर अधूरा!

एक अधूरा सपना पीछे छोड़ आई है। सपना ही था, इसलिए छोड़ भी सकी है। मगर सपना इतने दिन देखा था कि करीब-करीब सत्य मालूम होने लगा था। पति-पत्नी साथ रहते-रहते कितने सत्य हो जाते हैं! नाता सब नदी-नाव संयोग। कौन किसका है यहां? लेकिन कितने अपने मालूम होने लगते हैं! कभी-कभी तो ट्रेन में यात्रा करते वक्त भी दस-पांच घंटे में किसी से ऐसी मैत्री बन जाती है कि जब तुम्हारा स्टेशन आ जाता है और उतरने की घड़ी आती है तो पीड़ा होती है। घड़ी दो घड़ी का साथ था, फिर भी नाता बन गया, आसक्ति बन गई। रास्ते में मिले यात्री भी एक-दूसरे को पत्र लिखने लगते हैं, एक-दूसरे का पता लिख लेते हैं!
यह जिंदगी भी रास्ते पर चलते हुए राहगीरों का कारवां है। कोई साथ हो लिया, पति हो गया; कोई साथ हो लिया, पुत्र हो गया; कोई साथ हो लिया, मित्र हो गया। और इन सपनों में बड़ी मिठास है। नहीं तो इतने लोग सपने न देखते रहें। माना कि झूठ हैं, मगर मन को उलझाए रखते हैं, मन को भरमाए रखते हैं।

तुझे यादें आ जाती होंगी पुरानी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। साक्षीभाव से उन्हें देखना। जब छोड़ चुकी है परिवार को, तो परिवार की याद भी धीरे-धीरे छूट जाएगी।
मैं किसी को छोड़ने को कहता नहीं, यह ख्याल रखना। मैं किसी को शिक्षा नहीं देता कि परिवार को छोड़ दो। लेकिन तेरे बस के बाहर था। यह अन्याय हुआ होता कि तुझे मैं जबरदस्ती वापस भेजता। इसलिए तुझे रहने की स्वीकृति दे दी। नियम मेरे जड़ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति के साथ मेरा नियम रूपांतरित हो सकता है। मेरे पास कोई बंधे हुए हिसाब नहीं हैं। किसी को मैं कहता हूंः जाओ, लौट जाओ घर, परिवार की फिक्र करो। क्योंकि देखता हूं अभी लगाव और रस इतना है कि यहां रहोगे तो सिर्फ कष्ट ही कष्ट पाओगे। फिर किसी को मैं देखता हूंः जैसे जन्मजात संन्यासी। जैसे कि घर पीछे है या नहीं है, कोई भेद ही नहीं पड़ता। उसे अगर भेजूं जबरदस्ती, तो ज्यादती हो जाएगी, हिंसा हो जाएगी।
रंजन में ऐसा ही भाव मैंने देखा। आई थी दो-चार-दस दिन को; सिर्फ देखने
आई थी। इसीलिए पति मुझे उसके बार-बार लिखते हैं कि यह मामला क्या है? वह सिर्फ दो-चार-दस दिन के लिए गई थी, अब दस महीने हो गए हैं। अब लौटना है कि नहीं? लेकिन रंजन की आंख में देखता हूं तो लगता हैः निन्यानबे प्रतिशत उसका कोई लगाव नहीं है। निन्यानबे प्रतिशत वह मुक्त है। तो अब एक प्रतिशत के लिए निन्यानबे प्रतिशत का बलिदान नहीं दिया जा सकता। हां, अगर इससे उलटा होता कि देखता एक प्रतिशत यहां रहना चाहती है, निन्यानबे प्रतिशत घर, तो मैं उसे समझा-बुझा कर भेज देता, जरूर भेज देता। क्योंकि मेरे संन्यास को इस तरह की क्षुद्र सीमाओं में मैंने आबद्ध नहीं किया है। मेरा संन्यासी घर में रह सकता है, परिवार में रह सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे संन्यासी को घर में रहना ही पड़ेगा। अगर किसी के भीतर ऐसा भाव उठे कि घर छूट ही जाए, तो उसे मैं जरूर आज्ञा दूंगा कि वह घर से मुक्त हो जाए।
पति भी कुछ परेशान हैं, ऐसा नहीं है। क्योंकि पत्रों से ऐसा नहीं लगता
कि कोई हार्दिक पीड़ा है। नहीं तो दस महीने पत्नी न लौटी हो, आ गए होते। कुछ हार्दिक पीड़ा नहीं है। व्यवस्थागत पीड़ा है--कि कौन घर की सम्हाल करे? जो पत्र मुझे लिखते हैं, उनमें भाव ऐसा नहीं है कि मैं बिना पत्नी के कैसे रहूं? कि उसके बिना मुझे खल रहा है। कि उसके बिना मैं न सो सकता हूं, न भोजन कर सकता हूं। ऐसा कुछ नहीं है। कौन घर की फिक्र करे? कौन घर की चिंता करे? यह घर-गृहस्थी को कौन सम्हाले? इस सब में प्रेम का कोई नाता नहीं है, व्यवस्था की बात है। पत्नी एक व्यवस्थापक थी। शायद दोनों के बीच, जिसको नेह का नाता कहें, वह नहीं है। एक सामाजिक औपचारिक नाता है। नहीं तो दस महीने... पति को भागे आ जाना था! बेटे में उन्हें ज्यादा रस था, तो बेटे को वापस बुला लिया है। बेटा वापस चला भी गया।
लेकिन फिर भी रंजन को कभी-कभी याद आ जाती होगी। पति को शायद याद न भी आती हो। अमरीका में कोई पति हो और पत्नी हिंदुस्तान चली आए--उसको कहीं याद आने वाली पत्नी की! यह तो बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा! स्वतंत्रता अनुभव कर रहे होंगे। लेकिन रंजन को, स्त्री का हृदय है, कभी-कभी चिंता आती होगी, उदासी पकड़ लेती होगी। उस उदासी को साक्षीभाव से देखना। धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगी।
और अगर कभी जाना भी हो तुझे वापस घर अपने, तो साक्षी होकर ही जाना। उसके पहले जाना नहीं। ताकि वहां भी देख सके कि सब सपना है--अच्छा हो तो, बुरा हो तो। इस जगत में जो भी बाहर हो रहा है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है।
जो भीतर हो रहा है, वही एकमात्र मूल्यवान है। रंजन, भीतर की सुध ले!

मुकुल दल खोलो सुरभित द्वार।

दूर क्षितिज की लघु शय्या पर,
ऊषा जागी, विहंसा अंबर।
बिखरा वैभव उदयाचल का,

सरिता के ढुलमुल जल कन पर
उज्ज्वल जग का कोना-कोना, ओ मेरे सुकुमार।
मुकुल दल खोलो सुरभित द्वार।

अलसित निशि को बांध पाश में,
सिक्त कुमुद डोले लहरों पर।
आकुल अलिनि मलिन सी बैठी,
प्यास लिए अपने अधरों पर।
निज नूतन मकरंद बिंदु से, प्लावित कर संसार।
मुकुल दल खोलो सुरभित द्वार।

घड़ी आ गई है कि हृदय का कमल खोलो। सुबह हो गई है कि हृदय का कमल खोलो।
और हृदय का कमल खुलता है सिर्फ एक ही शर्त पूरी हो जाए तो। जैसे सूरज ऊगे तो झील पर कमल खिलता है, ऐसे ही साक्षी का तुम्हारे भीतर जन्म हो तो तुम्हारा हृदय-कमल खिलता है। आनंद को भी देखो, दुख को भी देखो; सफलता को भी, असफलता को भी; प्रेम को भी, क्रोध को भी। जो भी घटता है तुम्हारे चारों तरफ, देखते रहो। एक मेला भरा है, मन के न मालूम कितने भावों की पर्तें हैं, न मालूम कितने रूप हैं; मन कितने रंग रखता है, मन बहुरूपिया है, बहुत-बहुत रूपों में आता है, सबको देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो।
एक बात में थिरता बैठ जाए कि मैं द्रष्टा हूं, मैं साक्षी हूं। बस उसी भाव से मोक्ष का द्वार खुलता है। उसी भाव से हृदय का कमल खुलता है। उसी भाव की उपलब्धि का नाम बुद्धत्व है, संबोधि है, समाधि है।

तीसरा प्रश्नः मैं मृत्यु से बहुत डरता हूं। क्या करूं?

रामदास! मृत्यु तो सुनिश्चित है, डरो या न डरो। डरने से इतना ही होगा
कि ठीक से जी न पाओगे। मरने के पहले मर जाओगे। बहादुर तो एक बार मरता है, कहावत कहती है, कायर रोज-रोज मरता है, हजार बार मरता है। मृत्यु तो स्वाभाविक घटना है, जैसे जन्म। जब शुरुआत हुई है तो अंत होगा। और भय क्या है? क्या खो जाएगा? तुम्हारे पास है क्या जो मौत तुमसे छीन लेगी? ऐसा तुमने जीवन में पाया भी क्या है जो मौत लूट लेगी? ऐसा तुम कर भी क्या रहे हो जो मौत बीच में आकर बाधा डाल देगी?
उठे सुबह, रोटी-रोजी कमा ली, सांझ लौट आए, सो गए, फिर उठे सुबह--इस कोल्हू के बैल की तरह घूमने को तुम जिंदगी समझते हो? और इसी कोल्हू के बैल को मौत आकर रोक देगी, तो इतने डरे क्या हो? सच तो यह है, अगर तुम अपनी जिंदगी को गौर से देखो, तो तुम कहोगेः धन्यवाद मौत तेरा, कि तू आ गई! तू न आती तो बस हम पिरते ही रहते, पिरते ही रहते। यह कोल्हू का बैल चलता ही रहता, चलता ही रहता, न मालूम कितना तेल पेरना पड़ता, परिणाम तो कुछ भी न था। हाथ तो कुछ भी न लगता।
कहानी है प्रसिद्ध कि सिकंदर जब भारत की यात्रा पर आया तो यूनान के बहुत बड़े-बड़े मनीषियों ने उससे कहा कि हमने सुना है कि कहीं भारत के पहाड़ों में, छिपी हुई किसी कंदरा में एक झरना है जो अमृत का है, जो उसे पी लेता है वह अमर हो जाता है।
कौन अमर न होना चाहे? अगर मैं तुमसे कहूं कि हां, यह झरना है। तो कल तुम यहां कोई भी दिखाई न पड़ोगे! सब निकल पड़ोगे झरने की तलाश में।
सिकंदर ने बड़ी तलाश की, अंततः उस झरने पर पहुंच गया। अपने सैनिकों को, अपने सेनापतियों को उसने बाहर छोड़ दिया। उसने कहा, तुम बाहर रुको। एक ईर्ष्या उसके मन में पकड़ी कि ये सभी पी लें, तो फिर मेरे अमर होने की कोई खास विशिष्टता न रही। मैं ही पीऊंगा।
तलवारों से, नंगी तलवारों से गुहा का द्वार रोक दिया गया। सिकंदर अकेला भीतर गया। झरना था! ऐसी सुवास उठ रही थी उस जल से, ऐसा स्फटिक मणि जैसा स्वच्छ जल उसने कभी देखा नहीं था, जैसे चांद-तारों से पिघल कर रोशनी आ

गई हो! ठिठका, अवाक, अंजुलि भरने को ही था, तभी चट्टान के पास बैठे एक कौए ने कहा, रुक! रुक! एक मिनट रुक!
एक तो कौआ बोले! मगर चलेगा, सिकंदर ने सोचा, क्योंकि जहां अमृत का झरना हो, वहां और सब कुछ भी हो सकता है। कौए भी बोल सकते हैं। लेकिन कौए ने रोका तो ठिठक गया। पूछा, क्या कारण है? किसलिए रोकना चाहते हो?
कौए ने कहा कि इसलिए रोकना चाहता हूं कि मैंने इस झरने का पानी पीया।
आज सदियां-सदियां हो गईं, मैं मर नहीं पाता। चट्टानों से गिरता हूं, गले में फांसी लगाता हूं, जहर पीता हूं, छुरी छाती में भोंकता हूं, मगर मौत नहीं घटती। और मैं थक गया हूं। मैं बहुत थक गया हूं। वही काम रोज... वही कांव-कांव, वही कांव-कांव, वही कांव-कांव... रोआं-रोआं थक गया है मेरा, मैं मरना चाहता हूं। तुम तो बड़े यात्री हो, तुम्हें कहीं रास्ते में कोई ऐसी जगह पता है जहां इस अमृत का एंटीडोट, कहीं कोई ऐसा झरना है जहर का, जो अमृत का असर समाप्त कर दे? मुझे उसका पता दे दो! फिर तुम्हें जो करना हो करो; पीना हो पीओ, न पीना हो न पीओ। मगर अगर मेरी मानते हो तो सोच लो! जल्दी न करो, बैठ जाओ, विचार कर लो! क्योंकि एक दफा पीने के बाद फिर छुटकारा नहीं है।
और कहानी कहती है कि सिकंदर ने थोड़ी देर खड़े होकर वहां सोचा और तेजी
से गुफा के बाहर भागा। कौए ने कहा, भागते क्यों हो?
उसने कहा कि मुझे डर लगता है कि कहीं किसी उत्तेजनावश पी ही न लूं। तेरी बात मेरी समझ में आ गई। कांव-कांव, कांव-कांव... फिर कब तक यह चलेगा? फिर कोई अंत ही नहीं है।
तुम जरा सोचो, रामदास, अगर तुम अमर हो जाओ... तो कब तक कांव-कांव करनी है? क्यों इतने घबड़ाए हुए हो? मौत तो विश्राम है। मौत तो सिर्फ व्यर्थ की दौड़धूप से छुटकारा है। मौत को दुश्मन की तरह क्यों देखते हो? यहां दुश्मन तो कोई भी नहीं है। यह सारा अस्तित्व हमारा है, हम इसके हैं। इसी ने जन्म दिया, इसी ने मौत दी। जिसने जन्म दिया है, वह दुश्मन तो नहीं हो सकता। और जिसने जन्म दिया है, वहीं से मौत आती है। तो मौत भी जरूर मंगल लाती होगी, मंगलदायी होगी।
यह अस्तित्व मंगल से परिपूर्ण है। यहां अशुभ तो घटता ही नहीं। हां, तुम मान लेते हो किसी चीज को अशुभ तो बस अड़चन शुरू हो जाती है। सब मान्यता की बात है।
तुम कहते होः "मैं मौत से डरता हूं।"

ये मये-तल्ख भी पीनी ही पड़ेगी इक दिन।
कड़वी शराब है मौत की, माना, मगर एक दिन पीनी पड़ेगी।
ये मये-तल्ख भी पीनी ही पड़ेगी इक दिन।
मौत बरहक सही पर जीस्त का हासिल तो नहीं, कारवाने-तलबी-ए-शौक की मंजिल तो नहीं,
कितनी उलझी हुई राहों से गुजरना है अभी, जिंदगानी की मुहिम सर हमें करना है अभी,
जिंदगी मौत से तारीक भयानक पुरहौल,
एक गिरांबार तअंतुल का फुसुर्दा माहौल, इस सियहखाने में इक शमअ जला लें ऐ दोस्त, बज्मे-आजादी-ए-जमहूर सजा लें ऐ दोस्त, खूने-महताब से तामीरे-सहर करना है, कस्रे-जुलमत को अभी जेरो-जबर करना है, आलमे-ताजा की तशकील का सामान करें,
जब तलक जिंदा हैं क्यों मौत का अरमान करें, मौत तो आएगी, आकर ही रहेगी इक दिन।

तो न तो मौत से डरो और न मौत की आकांक्षा करो।
मौत तो आएगी, आकर ही रहेगी इक दिन।

मौत तो उसी दिन आ गई जिस दिन तुम जन्मे। उसी दिन सब घट गया। आधी बात घट गई, आधी घटने को रह गई है, वह घटेगी, घट कर ही रहेगी। उससे बचने का कोई उपाय नहीं। तो न तो मौत से बचने की चिंता करो; और न मौत को बुला लो जल्दी, इसकी आकांक्षा करो! ये जो जिंदगी के चार दिन मिले हैं, इनका कुछ उपयोग करो! इस जिंदगी को कुछ रोशनी बना लो! इस जिंदगी को उसकी तलाश में लगा दो जो कभी नहीं मरता। तुम्हारे भीतर वह तत्व भी मौजूद है।
इस सियहखाने में इक शमअ जला लें ऐ दोस्त,
अंधेरा है, माना; अंधेरा घर है, माना; मगर इसमें एक शमा जलाई जा सकती है।
इस सियहखाने में इक शमअ जला लें ऐ दोस्त,
बज्मे-आजादी-ए-जमहूर सजा लें ऐ दोस्त,
यहां बंधन ही बंधन हैं--जन्म का, मृत्यु का; इसका, उसका--लेकिन इन सारे बंधनों के बीच भी स्वतंत्रता का आविर्भाव हो सकता है। जन्म और मृत्यु के बीच में जो अवसर मिला है, अगर तुम उसमें अपनी तलाश कर लो, तो न जन्म बचेगा, न मृत्यु बचेगी। क्योंकि अपनी तलाश करके तुम उसे पा लोगे जो जन्म के पहले था और मौत के बाद भी रहेगा।
यह ख्याल रखना कि जिसे तुम पाओगे, वह तुम नहीं हो, वह परमात्मा है। तुम
तो जन्मे हो और तुम तो मरोगे; लेकिन तुम्हारे भीतर तुमसे ज्यादा कुछ मौजूद है। तुम्हारे भीतर तुम ही नहीं हो, तुमसे विराट मौजूद है।
उस विराट की अनुभूति हो तो ही मृत्यु का भय जाएगा। उस शाश्वत की थोड़ी
सी छाया भी पड़ जाए तुम्हारे ऊपर, तो फिर कैसी मृत्यु?
एक दिन तारीख की जुलमत में खो जाऊंगा मैं,
जिंदगी की राह में पामाल हो जाऊंगा मैं,
ये शफक आलूद शामें, नर्मो-नाजुक सी फिजा,
ढल गई रानाइए-फितरत मेरे अशआर में;
गा चुका हूं कितने रंगीं गीत साजे-इश्क पर
पढ़ चुका कितने कसीदे हुस्न की सरकार में; अहले-गुलशन से कहा अफसाना-ए-बर्को-शरार किस्सा-ए-मुफलिस सुनाया महफिले-जरदार में; दी बशारत सुबह की जुलमतजदा इन्सान को
कल्बे-अस्रे-नौ की धड़कन है मेरे अफकार में,
महरमे-असरारे-फितरत है मेरी फिक्रे-रसा
बारहा पहुंचा सवादे-साबितो-सय्यार में।
मेरे मरने से मेरे अशआर मर सकते नहीं,
मेरी तस्नीफें, मेरे अफकार मर सकते नहीं।

तुम तो मरोगे। तुम जैसा अपने को अभी मानते हो, वैसे तो तुम मरोगे। लेकिन तुम्हारे भीतर एक ऐसा गीत पैदा हो सकता है, जो बुद्ध के भीतर पैदा हुआ, जो कृष्ण के भीतर पैदा हुआ। वह गीत तुम्हारे भीतर भी पड़ा है। वीणा मौजूद है, तार छेड़ने की बात है। वह गीत कभी नहीं मरता। तुम्हारे भीतर कुरान पैदा हो सकती है, भगवद्गीता पैदा हो सकती है। वह कभी नहीं मरती। तुम्हारे भीतर संभावना है शाश्वत को पहचान लेने की।
रामदास, मौत से ही डरते रहे तो जिंदगी गंवा बैठोगे! ऐसे ही लोग जिंदगी गंवा रहे हैं। मौत से डर-डर कर! कोई धन कमाने में लगा है कि मौत से शायद धन होगा तो बचाव हो जाएगा। कोई बड़े पद पर पहुंचने में लगा है कि अगर राष्ट्रपति रहा तो मौत कोई ऐसी आसानी से नहीं ले जा सकेगी। हजार उपाय कर रहे हैं लोग। लेकिन मौत तो आएगी ही आएगी। मौत से बचा नहीं जा सकता। मौत जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। मगर फिर भी मैं तुमसे कह दूं, तुम नहीं मरते हो। तुम मरते हो और फिर भी तुम नहीं मरते हो। तुम्हारे भीतर दो हैं। एक तो वह है जिसको तुमने अपना समझ रखा है कि मैं हूं--अहंकार। और एक वह है जो तुम्हारी आत्मा। काश, तुम अपने अहंकार से मुक्त होकर अपनी आत्मा को देख लो एक क्षण को भी! और ध्यान इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अहंकार को

विसर्जित करके एक क्षण आत्मा की झलक मिल जाए कि मौत गई। मौत ही नहीं, जन्म भी गया।
यह जो इस देश में सदियों-सदियों से ऋषियों ने प्रार्थना की है कि हमें आवागमन से मुक्ति दिलाओ, उसमें ख्याल रखना, सिर्फ मृत्यु से ही मुक्ति नहीं मांगी है, जन्म से भी मुक्ति मांगी है--आवागमन से! न तो आएं, न जाएं। दोनों से छुटकारा चाहिए। न तो हमारा फिर जन्म हो, न फिर मृत्यु हो। असल में तो जन्म न होगा तो मृत्यु तो होगी कैसे?
तुम जीवन को तो जोर से पकड़ते हो और मरना नहीं चाहते। और जीवन को जो जोर
से पकड़ता है, उसे तो बुरी तरह मरना पड़ेगा। तुम जन्म तो चाहते हो, रामदास... अभी कुछ ही दिन पहले एक व्यक्ति कैंसर का बीमार मेरे पास लाया गया। बस आखिरी दिन हैं। चिकित्सकों ने कह दिया है कि महीना--या दो महीना ज्यादा से ज्यादा... । वह आदमी मुझे कम से कम दस वर्षों से जानता है। दस वर्षों से सुनता भी है। अनेक बार तय करके भी आया कि संन्यास ले लूं। लेकिन फिर संदेह उठ आते हैं, चिंताएं उठ आती हैं, संसार के ख्याल उठ आते हैं--और लौट जाता है। अब की बार आया, कहने लगा, एक ही प्रार्थना है आपसे। चिकित्सक कहते हैं, मौत तो निश्चित है। अब महीने, दो महीने में मैं गया। बस एक ही प्रार्थना है कि अगला जन्म आपके किसी संन्यासी के घर में हो।
अभी मरे नहीं हैं, अगले जन्म का इंतजाम कर रहे हैं। खुद संन्यास नहीं
ले पाए, किसी संन्यासी के घर में जन्म लेने का विचार रख रहे हैं।
मैंने उनसे कहा, महाराज, आप तो कम से कम संन्यास ले लो! और अब तो ज्यादा देर भी नहीं बची।
कहने लगे, मैं सोचूंगा।
मैंने कहा, तुम सोच रहे हो दस वर्षों से। अब कैंसर द्वार पर आकर खड़ा हो गया है, अब ज्यादा सोचने के लिए भी स्थान नहीं है, विचारों को दौड़ाने की भी सुविधा नहीं है।
नहीं, उन्होंने कहा, ऐसा कुछ पक्का नहीं; कुछ डाक्टर कहते हैं, शायद बच
ही जाऊं। फिर चमत्कार भी होते हैं। अब मैं आशीर्वाद लेता फिर रहा हूं साधु-संन्यासियों के। इसी आशा में आपके पास आया हूं। तो या तो आशीर्वाद दें कि मरूं न, अभी यह बीमारी टल जाए। और अगर यह बीमारी होनी ही है, अगर आपको ऐसा दिखाई पड़ता है कि यह टल ही नहीं सकती, तो इतना तो आशीर्वाद दे ही दें कि अगला जन्म किसी संन्यासी के घर में हो।
मौत से तो बचना चाहते हो, जन्म की आकांक्षा करते हो! यह तो कैसे होगा?
यह तो गणित बैठेगा नहीं। जन्म तो मौत की शुरुआत है। अगर मौत से बचना है, सच में बचना है, तो जन्म की आकांक्षा छोड़ दो। जन्म की तृष्णा छोड़ दो। जीवन का मोह छोड़ दो। अपने भीतर उसको खोजो जो जीवन का द्रष्टा है, जो जीवन का साक्षी है। वह तुम हो एक अर्थ में और एक अर्थ में तुम नहीं हो। अहंकार वहां नहीं है, वहां शुद्ध चैतन्य है। उस चैतन्य को ही ऋषियों ने कहाः तत्वमसि! वह तू ही है। वह परमात्मा ही है। उस अनुभव के बाद ही उदघोषणा की ऋषियों नेः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं। मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। ऐसा उस उदघोषणा का वास्तविक अर्थ है।
मृत्यु का डर वस्तुतः किस बात का डर है? रामदास, तुमने मृत्यु देखी? तुम मृत्यु को पहचानते हो? जिसको देखा नहीं, जिसको पहचाना नहीं, उससे डरते क्यों हो? उससे डरोगे कैसे? अज्ञात से तो कोई भी नहीं डरता। तुमने दूसरों को मरते देखा होगा। लेकिन दूसरों को मरते देखना, मृत्यु को देखना नहीं है, यह ख्याल रखना। क्योंकि दूसरे आदमी में तुम क्या देखते हो? इतना ही देखते हो न कि अभी सांस चलती थी, अब सांस नहीं चलती। तो सांस के न चलने में ऐसी क्या घबड़ाहट है? रात सो जाते हो और तुम्हें पता भी नहीं रहता कि सांस चलती है कि नहीं चलती।
और अभी चिकित्सकों ने यह खोजबीन की है कि पुरुषों की सांस रात में कई दफे बंद हो जाती है। अब रामदास और दिक्कत में पड़ेंगे। इसीलिए पुरुष रात में अधिक मरते हैं हृदय के दौरे से स्त्रियों की बजाय। स्त्रियों की बंद नहीं होती, स्त्रियां मजबूत हैं। स्त्रियां रात में भी सांस व्यवस्था से लेती हैं। पुरुषों की कभी-कभी चूक हो जाती है। पुरुष रात में एकाध-दो दफे

भूल जाते हैं। मिनट, आधा मिनट को डगमगा जाते हैं। इसलिए ज्यादा पुरुष मरते हैं रात में हृदय के दौरे से। स्त्रियां नहीं मरतीं।
रात तो सांस भूल ही जाती है तुम्हें, चलती है कि नहीं चलती--क्या पता? किसी को तुमने मरते देखा तो इतना ही देखा न कि सांस बंद हो गई? और यह
भी हो सकता है कि वे सज्जन योग साधे पड़े हों! शवासन साध लिया हो। बोलना बंद हो गया। तुमने ये ऊपर की घटनाएं देखी हैं, मगर भीतर उस आदमी को क्या हो रहा है, यह तो तुम कैसे देखोगे? भीतर तो हो सकता है कि वह आदमी परम आनंद में प्रवेश कर रहा हो।
और ऐसा कुछ तो होता ही है। जो लोग थोड़े ध्यान में पारंगत हो गए हैं, मृत्यु उनके लिए परम आनंद की तरह आती है। क्योंकि मृत्यु के क्षण में वे ध्यान में डूबने लगते हैं। शरीर छूट रहा है, इससे ज्यादा शुभ घड़ी ध्यान की और क्या होगी? विचार छूट रहे हैं, मन दूर जा रहा है, इससे ज्यादा अपूर्व घड़ी ध्यान की और क्या होगी?
जब बुद्ध मरने को हुए तो उन्होंने जो बात अपने शिष्यों से कही वह यही थी। उन्होंने कहा कि तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछ लो, अन्यथा मैं मृत्यु की तैयारी करूं।
आनंद ने पूछा, मृत्यु की तैयारी! क्या आप चिता पर चढ़ना चाहते हैं? क्या आप अपने हाथ से मरना चाहते हैं?
नहीं, बुद्ध ने कहा कि मरने की तैयारी का अर्थ है कि मैं क्रमशः जैसे- जैसे मौत आए वैसे-वैसे ध्यान में उतरता जाऊं। मौत शरीर को पकड़ ले, तो मैं ध्यान से शरीर को छोड़ दूं। मौत मुझसे छीन न पाए शरीर को, उसके पहले मैं छोड़ दूं। इधर मौत छीनने को हो, उधर मैं पहले ही छोड़ दूं। मौत मन को छीनना चाहे, उसके पहले मैं मन को छोड़ दूं। मौत को कहने को यह न हो कि उसे मेहनत करनी पड़ी। मेरे साथ मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। मैं जीने की भी कला जानता हूं और मरने की भी कला जानता हूं। क्योंकि मैं जीवन के भी पार हूं और मृत्यु के भी पार हूं।
और उन्होंने यही किया। आंख बंद कर ली, शरीर छोड़ दिया। मौत को इतना भी अवसर न दिया। इतना भी श्रम न करना पड़े मौत को। मन छोड़ दिया, भाव छोड़ दिया। तीनों तलों पर छोड़ दिया। और चौथे तल पर, अस्मिता के तल पर आखिरी छोड़ छोड़ दी। "मैं हूं", यह बात भी छोड़ दी। शून्य हो गए।

मौत क्या छीनेगी अगर तुम शून्य होना जानते हो? अगर तुम शून्य होना जानते हो तो पूर्ण उतर आएगा तुम में। मौत तुमसे कुछ भी न छीन सकेगी।
हां, लेकिन अगर रामदास, धन इकट्ठा किया, तिजोड़ी इकट्ठी की, मकान बनाया,
और इसी में सब नियोजन कर दिया, तो जरूर डर लगेगा कि मौत आती है, धन भी छीन लेगी, मकान भी छीन लेगी। अगर देह को ही सजाते रहे, तो घबड़ाहट होगी कि मौत आती है, देह छीन लेगी, सब किया-कराया मिट्टी हो जाएगा।
कुछ ऐसा करो जो मौत न छीन सके! शून्य को मौत नहीं छीन सकती। ध्यान को मौत नहीं छीन सकती। तो जो ध्यान को कमा लेता है, वह मृत्यु के पार हो जाता है।

आखिरी प्रश्नः आपने भीतर के सदगुरु की बात कही। उसका क्या अर्थ होता है, इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें। और वे सदगुरु कब और कैसे जाग्रत होते हैं, बताने की अनुकंपा करें।

समाधि! सदगुरु तो प्रतीक है। तुम्हारे भीतर ध्यान जग जाए, होश जग जाए, तुम मूर्च्छित न जीओ, बस इतना ही अर्थ है। तुम्हारे उठने में, बैठने में, चलने में जागृति हो, विवेक हो। तुम्हारे भीतर एक दीया जलता रहे होश का। तुम जो भी करो वह होश से हो। अगर कोई गाली दे, तो क्रोध बेहोशी में न हो जाए। ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े--कि अरे, यह मैंने क्या किया? कि अरे, मुझे याद क्यों न आया? अगर कोई गाली दे, तो यह भी उत्तर होश से देना। शांत, शीतल, भीतर उतर कर, अपने अंतस्तल में बैठ कर उत्तर देना।

और तुम हैरान होओगी, गाली का उत्तर तब क्रोध नहीं हो सकता, करुणा होगी। जहां होश आया, वहां क्रोध के अंगार बुझ जाते हैं। क्रोध के अंगार ही करुणा के फूल बन जाते हैं।
अभी तो ऐसा है कि तुम जो भी कर रहे हो, या कर रही हो, सब बेहोशी में है।
चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं--सब यंत्रवत।
इस सारी यांत्रिकता को तोड़ देने का नाम भीतर के सदगुरु को पाना है। चलते समय ख्याल रहे चलने का। बोलते समय ख्याल रहे बोलने का। सुनते समय ख्याल रहे सुनने का। तुम जो भी करो, जो भी कृत्य हो, उस कृत्य के पीछे होश तो खड़ा ही रहना चाहिए। छोटे-छोटे काम में भी। क्योंकि सवाल काम का नहीं है, सवाल होश का है। तब एक दिन ऐसी घड़ी आ जाती है कि दिन में तो होश रहता ही रहता है, रात नींद में भी होश की धारा बहने लगती है। एक होश की रोशनी बनी ही रहती है। सपने में भी होश रहता है कि यह सपना है। और जैसे ही तुम्हें यह होश आया कि यह सपना है, सपना समाप्त हो जाता है। फिर तो नींद में भी--कितनी ही गहरी नींद हो--तुम अपनी सुषुप्ति के भी साक्षी होते हो कि शरीर सोया हुआ है।
इसलिए कृष्ण ने कहा हैः या निशा सर्वभूतानाम तस्याम जागर्ति संयमी।
जो सबके लिए गहरी नींद है, जो सबके लिए निशा है, जो भोगी के लिए बिल्कुल बेहोशी है, वहां भी योगी जागा हुआ है।
पहले तो जागे में जागो, फिर सोने में जागना। मगर चौबीस घंटे का स्वाद धीरे-धीरे जागरण का हो जाए--तो सदगुरु!
समाधि समझी कि भीतर कोई सदगुरु बैठे हुए हैं!
भीतर संभावना है होश की। तुम्हारे भीतर अंतरात्मा है। मगर अंतरात्मा दबी है बाहर से डाले गए विचारों से। न मालूम कितने विचार थोप दिए गए हैं। मां-बाप ने थोपे हैं, शिक्षकों ने थोपे हैं, समाज ने थोपे हैं, पंडित-पुरोहित-राजनेताओं ने थोपे हैं--न मालूम कितने विचार थोप दिए गए हैं! तुम्हारे भीतर कौन है, इसकी तो पहचान ही नहीं रह गई है--इतने पर्दे हैं, पर्दों पर पर्दे हैं, कि पर्दे उठाते-उठाते थक जाओ। चेहरों पर चेहरे हैं, मुखौटे हैं, कि मुखौटे उतारते-उतारते थक जाओ, तुम्हें पता ही न चले कि असली चेहरा कहां है! तुम इस तरह हो जैसे प्याज की गांठ। उतारते जाओ पर्त पर पर्त और नई पर्त निकल आती है। और ध्यानी को यही करना होता है। प्याज की गांठ की तरह अपने को छीलना होता है। उतारते जाओ पर्त पर पर्त, जब तक कि शून्य हाथ में न रह जाए।
जिस दिन शून्य हाथ में रह जाएगा, सब पर्तें उतर गईं, उस दिन तुम्हारा सदगुरु जाग गया। और उस दिन वह भीतर का सदगुरु वही बोलेगा जो बाहर के सदगुरु सदा बोले हैं। क्योंकि बाहर और भीतर का भेद ही नहीं है सदगुरु में। बुद्ध जैसा बोलते हैं वैसा ही तुम्हारे भीतर का जाग्रत स्वरूप बोलेगा-- वही, ठीक वही। बुद्ध ने कहा हैः मुझे तुम कहीं से भी चखो, मेरा स्वाद एक है। जैसे सागर को कहीं से भी चखो, खारा है। जहां भी तुम जागृति को चखोगे, उसका स्वाद एक है।

हे मेरे अंतर के वासी,
कुछ तो बोलो!
दो क्षण को ही आ पाया हूं
कोलाहल से दूर
जगत के, अपने मन के!
सदा न ऐसा हो पाता
कुछ अपनी कह लो
मेरी सुन लो!
अंतर के वासी बोलो तो!
चलता-चलता थक जाता हूं
जग की राहें,
सुनता-सुनता थक जाता हूं जग की बातें

कहता-कहता थक जाता हूं
जग से बातें,
आज मिला अवसर कुछ अपनी
तुम से कह लूं,
बात तुम्हारी भी मैं सुन लूं, हे मेरे अंतर के वासी,
कुछ तो बोलो!
साथ तुम्हारा थकन मिटाता, साथ तुम्हारा राह सुझाता, फिर भी साथ न रहने पाता,
ऐसा क्यों है?
हे मेरे अंतर के वासी
कुछ तो बोलो!
मुझको खींच रहा है फिर
जग का कोलाहल,
मुझको खींच रहा है फिर
मन का कोलाहल,
मुझको खींच रही हैं फिर
जगती की राहें!
अनबोले भी शक्ति नई
तुमने दी मुझको,
चिर कृतज्ञ मैं,
लो मेरा नतशिर प्रणाम
अंतर के वासी!

वह जो भीतर का सदगुरु है, कुछ बोलता नहीं। वहां तो मौन में ही बोध का आविर्भाव होता है। वहां शब्दों की गति नहीं है, वहां तो निःशब्द है, शाश्वत निःशब्द है।
तुम मन का कोलाहल समाप्त करो। मन का शोरगुल समाप्त करो।
पहले मन से उतरो भाव में, फिर भाव से उतर जाओ अस्तित्व में। और फिर अस्तित्व से उतर जाओ अनस्तित्व में। ये चार चरण हैं। उस अनस्तित्व को बुद्ध ने अनत्ता कहा है। नागार्जुन ने शून्य कहा है। पतंजलि ने समाधि कहा है। उस समाधि में तुम्हारे भीतर जो छिपा हुआ परमात्मा है, वह प्रकट होगा। जैसे हजार-हजार सूर्य ऊग आएं एक साथ; कि करोड़-करोड़ कमल खिल जाएं एक साथ; अनाहत का नाद हो; कि ओंकार गूंजने लगे तुम्हारे भीतर।
भीतर का सदगुरु तो केवल प्रतीक है। तुम जो हो, उसे जान लेना भीतर के सदगुरु को जान लेना है। मैं कौन हूं, इसका उत्तर पा लेना भीतर के सदगुरु को जान लेना है।

अंतिम प्रश्नः आपका संदेश?

रोशनलाल! रोशनी फैलाओ, यही मेरा संदेश। खुद रोशन बनो, औरों को रोशन करो! खुद का दीया जलाओ, बुझे दीयों को अपनी ज्योति बांटो!

फैलाओ जीवंत
एक ही शब्द
इतना काफी से ज्यादा है
सार्थक होने के लिए
जीवंत शब्द वह
तुमको ही नहीं जिलाएगा
आस-पास जिंदगी भर देगा
मुरझाए हुए
सारे परिवेश को

हरियाला कर देगा

शब्द वह
"प्यार" है
भीतर की अपनी
गहराई के भी भीतर
जाओ और फिर
जीवंत इस शब्द की
मुक्ता को ऊपर लाओ
और खोलो उस
लब-बस्ता सदफ के ओंठ
"प्यार" का मोती निकलेगा जोती जिसकी
सूरज से ज्यादा है
बेशक तुम्हारा अपना
अपने बारे में
बड़े होने का ख्याल
इस जीवंत शब्द को
पाने और फैलाने में
बाधा है
छोटा करो अपने को
बड़ा करो जिंदा इस शब्द को और फैलाओ इसे
मिल-जुल कर
आसमान की तरह
खुल कर
हवा और पानी की तरह
बह कर
किरन की तरह रह कर!

एक शब्द है मेराः प्रेम! उसे फैलाओ! लेकिन प्रेम को तुम तभी फैला सकते हो, जब तुम प्रेमपूर्ण हो जाओ। और प्रेम को ही मैं ज्योति कहता हूं। क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त और कोई प्रकाश नहीं है। और सब प्रकाश तो बाह्य हैं, प्रेम अंतर का प्रकाश है--बिन बाती बिन तेल। लेकिन उसमें बाधा है। प्यार का सूरज निकले, तो बड़ा प्रगाढ़ है, उसकी रोशनी अपूर्व है।
"प्यार" का मोती निकलेगा
जोती जिसकी
सूरज से ज्यादा है
बेशक तुम्हारा अपना
अपने बारे में
बड़े होने का ख्याल
इस जीवंत शब्द को
पाने और फैलाने में
बाधा है
मगर एक ही बाधा हैः जब तक अहंकार है, तब तक प्रेम नहीं। जब तक मैं-भाव है, तब तक प्रेम नहीं। और जब तक प्रेम नहीं, तब तक प्रकाश नहीं।
तुम पूछते हो मेरा संदेश क्या है?
संदेश मेरा छोटा हैः प्रेम को फैलाओ, प्रकाश को फैलाओ।

मेरे कुछ करने से
अगर एक भी मन खिला,
तो मुझे कितना मिला।

मेरे कुछ कहने से
एक भी आंख अगर
खुशी से भर आई,
तो मैंने कैसी
एक संपन्न घड़ी बिताई।

अगर पानी की धार में
बहते किसी कीड़े को
मैंने तिनके का सहारा दिया, तो उस तिनके से
मैंने कितना और कैसा
सहारा लिया।

घड़ी दिन में एक भी
ऐसी बीते,
तो दिन न लगें फिर
रीते-रीते।
मैं इसी सबको
करता हुआ
सार्थक हूं अपने होने में,
चारों तरफ
छोटी-छोटी खुशियां
छोटे-छोटे सहारे
बोने में।

ऐसा ही तुम भी करो। छोटी-छोटी खुशियां बोओ अपने चारों तरफ। एक भी घड़ी ऐसी हो जीवन में, तो जीवन रीता न रह जाए।
घड़ी दिन में एक भी
ऐसी बीते,
तो दिन न लगें फिर
रीते-रीते।
मैं इसी सबको
करता हुआ
सार्थक हूं अपने होने में,
चारों तरफ
छोटी-छोटी खुशियां
छोटे-छोटे सहारे
बोने में।
रोशन बनो, और रोशनी के लिए छोटे-छोटे सहारे बोओ--छोटे-छोटे तिनके सही!
और तुम्हारी जिंदगी अपूर्व कृतार्थता से भर जाएगी। तुम धन्यभागी हो जाओगे! बांटोगे जितना, उतना पाओगे। परमात्मा का यह शाश्वत नियम है। जो देगा, उसे मिलेगा। जितना देगा, उससे करोड़ गुना मिलेगा। दो! और प्रेम तुम्हारे पास इतना है कि कितना ही दो, चुकेगा नहीं।
कृपणता न रखो। कंजूस न रहो। प्रेम को बांटो। प्रकाश को बांटो। दुनिया
को बहुत जरूरत है। लोगों के हृदय प्रेम से रीते हैं। प्रकाश का अनुभव उनकी आंखों को होना ही बंद हो गया है।
मगर यह तुम तभी कर सकोगे... यह मेरा संदेश कुछ ऐसा नहीं है कि मैंने तुमसे कह दिया और तुमने किसी और को कह दिया... यह तुम तभी कर सकोगे, जब तुम मेरा संदेश बन सकोगे।
मेरा संदेश मेरा संदेश बन कर ही पहुंचाया जा सकता है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
आठवां प्रवचन

वह आया हुआ है, तुम भागे हुए हो!

पहला प्रश्नः
तुम बसे नहीं इनमें आकर,
ये गान बहुत रोए।
कब तक बरसेगी ज्योति बार कर मुझको? निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझको?
किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे? खींचते हृदय पर रेख निकल जाओगे? किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा?
बाणों के आगे प्राण खोल धर दूंगा?
यह सोच विरह में अकुला कर,
ये गान बहुत रोए।
तुम बसे नहीं इनमें आकर,
ये गान बहुत रोए।

शिवानंद भारती! परमात्मा तो प्रतिपल आ रहा है। आने की बात भी कहनी ठीक नहीं। परमात्मा आया ही हुआ है। परमात्मा भविष्य नहीं है। परमात्मा वर्तमान है। हवा का झोंका आए, तो वही आता है। और सूरज की किरण आए, तो वही आता है। और पक्षियों के गीत हों, तो वही गाता है। उसके अतिरिक्त तो यहां कुछ है ही नहीं।
इसलिए हमारी प्रार्थनाएं उसे बुलाने की व्यर्थ चली जाती हैं।
वह आया हुआ है और हम बुलाते हैं। वह द्वार पर खड़ा है और हम दूर तलाशते हैं। वह निकट से भी निकट है और हमारी आंखें चांद-तारों में उलझी हैं। मनुष्य चूकता है, इसलिए नहीं कि परमात्मा दूर है, इसलिए नहीं कि परमात्मा छिपा है, बल्कि इसलिए कि परमात्मा इतना प्रकट है, इतना निकट है, इतना उघड़ा है कि हम उसे पहचान नहीं पाते। जैसे मछली सागर की सागर को न पहचान पाए। वहीं जन्मी, वहीं बड़ी हुई, वहीं जीयी, वहीं खेली-कूदी, जीवन का सारा जाल रचाया--सागर तो सदा था। मछली को सागर की याद तभी आती है जब मछुवा उसे पकड़ लेता है और फेंक देता है रेत पर। सागर से टूटती है, तो सागर की याद आती है। लेकिन मनुष्य तो परमात्मा से टूट ही नहीं सकता। ऐसा कोई तट नहीं है, जहां तुम्हें फेंका जा सके। क्योंकि जहां भी है, जो भी है, परमात्मा ही है। परमात्मा से भिन्न होने का उपाय नहीं है। यही सबसे बड़ी अड़चन है। काश, हम उससे भिन्न हो सकते, तो क्षण में हम उससे जुड़ने के लिए तैयार हो जाते। क्योंकि भिन्न होते ही तड़फते। मछली की तरह तड़फते। हम अभिन्न हैं। हम हैं ही नहीं, वही है। हम उसकी ही श्वासें हैं, हम उसकी ही धड़कन हैं, हम उसकी ही लहरें हैं।
इसलिए प्रार्थना न करो कि परमात्मा कब आएगा। कुछ दूसरी तरफ से कोशिश करनी होगी। परमात्मा आया हुआ है, हमने आंखें बंद कर रखी हैं। शिवानंद, आंखें खोलो! परमात्मा आया हुआ है, हम पीठ किए खड़े हैं।
शिवानंद, जिस तरफ पीठ किए हो, उस तरफ मुंह करो! परमात्मा आया हुआ है, उसने अपनी वीणा छेड़ी हुई है--सदा से छेड़ी हुई है; उसका संगीत सनातन है। शिवानंद, अपने कान खोलो! सुनो! शांत हो, मौन हो, शून्य हो। और तब तुम्हें यह कहने की जरूरत न रह जाएगी--कि कब आएगा परमात्मा? कब उसका रथ आएगा? कब उसका बाण मेरे प्राणों को छेद कर निकल जाएगा?
प्रतिपल बाण साधे खड़ा है। मगर तुम हो ही नहीं! तुम ऐसे भागे हो, तुम ऐसे चंचल हो, कि लक्ष्य-भेद किया नहीं जा सकता। लक्ष्य तो थिर हो, तो तीर बेध सकता है। तुम थिर ही नहीं हो। तुम तो प्रतिपल बदले जा रहे हो। तुम तो पानी की धार हो। एक क्षण को भी थिर होकर बैठ जाओ, और उसका तीर तुम्हारे हृदय को पार करके निकल जाएगा।

और ऐसा मैं किसी सिद्धांत के कारण नहीं कहता हूं। सिद्धांतों में मुझे कोई रस नहीं है। ऐसा मैं अपने अनुभव से कहता हूं। तुम्हारे ही जैसे बहुत दिन तक मैंने भी प्रार्थना की है। और सब प्रार्थनाएं व्यर्थ गईं। क्योंकि प्रार्थना तो कर रहा था परमात्मा से, और पीठ भी किए था उसकी तरफ। सूर्य-नमस्कार भी कर रहा था, और सूर्य की तरफ आंखें बंद भी किए था।
कैसे होगी प्रार्थना पूरी? फिर रोओगे न तो और क्या करोगे? तुम्हारे गीत बस तुम्हारे आंसुओं में ही प्रकट होंगे। तुम्हारा सारा प्राण एक उदासी, एक गहन निराशा, एक हताशा से भर जाएगा। तुम्हारे जीवन की पूरी कथा विषादपूर्ण हो जाएगी। तुम्हारी कथा एक व्यथा हो जाएगी। अनुभव से कहता हूं। जो तुम कर रहे हो, वही मैंने किया है।
लेकिन जब बार-बार प्रार्थना हारती गई, और बार-बार अर्घ्य चढ़ाया और उसके चरणों तक न पहुंचा, और बार-बार अर्चना की और शून्य में खो गई, तो एक बात स्मरण में आनी शुरू हुईः कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं उसकी तरफ पीठ किए हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं इतना भागा-भागा हूं कि उसका बाण अगर आए भी तो मुझे बेध न पाएगा। मुझे थिर होना होगा। थिरता ही ध्यान है। और मुझे शांत होना होगा। शांत होना ही उसकी तरफ उन्मुख होना है। और मुझे शून्य होना होगा। क्योंकि शून्य के अतिरिक्त न कोई प्रार्थना है, न कोई पूजा है, न कोई अर्चना है।

जो मेरा अनुभव मैं कहता,
अनुभव वह केवल मेरा है
ऐसी बात नहीं है!
जीवन के सागर से
अनुभव के बादल
उठते रहते हैं,
छा जाते निस्सीम गगन में, जीवन-रस बरसा देते हैं
गिरि-शिखरों पर
चट्टानों पर
खेतों में, खलिहानों में मरु खंडों पर
नदियों-नालों में
अनुभव के बादल अनगिन हैं भूरे पीत-गुलाबी बादल
श्वेत-श्याम रतनारे बादल नारंगी कजरारे बादल
हंसते बादल
रोते बादल
अट्टहास भी करते बादल
भोले-भाले शिशु से बादल
दानव से नख वाले बादल
इंद्रधनुष इनमें खिलते हैं वज्र कभी इनसे गिरते हैं! अनुभव के बादल अनगिन पर
मात्र एक जीवन का सागर
जिसकी गहराई को कोई
अब तक नाप नहीं पाया है,
देश-काल भी जिसकी सीमा
अब तक जान नहीं पाए हैं,
वह अगाध है,
वह असीम है,
जिसको कहते क्षितिज
हमारे ही वीक्षण की

वह सीमा है!
उसका कोई क्षितिज नहीं है! अनुभव के बादल अनगिन पर
सब उठते जीवन-सागर से
इसीलिए तो
जो मेरा अनुभव, मैं कहता
अनुभव वह केवल मेरा है
ऐसी बात नहीं है!

जो मैं कह रहा हूं, मेरा अनुभव है! लेकिन मेरा ही है, ऐसी बात नहीं है।
जो भी जागे, सबका वही अनुभव है। जिन्होंने भी आंख खोलीं, सबका वही अनुभव है। अनुभवी एकमत हैं। सबै सयाने एकमत! और विवाद अगर कहीं है तो पंडितों में है। जिनकी प्रज्ञा जग गई है, उनमें कोई विवाद नहीं है। सिद्धांतों और शास्त्रों का ऊहापोह है तो शास्त्रियों में है। वे शास्त्रों का भी शस्त्र की तरह उपयोग करते हैं। लड़ने के नये-नये बहाने हैं। अहंकार की प्रतिष्ठा के नये-नये उपाय। लेकिन बुद्धों में, सिद्धों में कोई विवाद नहीं है। विवाद असंभव है। हो ही नहीं सकता। अनुभव तो एक है।
और अनुभव जिसका है, वह एक ही सागर है। सारे बादल एक ही सागर से उठते हैं। फिर वे भूरे हों कि पीले हों कि सतरंगे हों, इससे अंतर नहीं पड़ता। सारे बादल एक ही सागर से उठते हैं। लेकिन वे बादल चट्टानों पर भी बरसते हैं, पहाड़ों पर भी बरसते हैं, खेत-खलिहानों में भी बरसते हैं--और तब अंतर पड़ जाता है। पत्थर पर वे ही बादल बरसते हैं, मगर दूब नहीं ऊगती। चट्टानों पर वे ही बादल बरसते हैं, मगर चट्टानें खाली की खाली रह जाती हैं। आर्द्र नहीं हो पातीं। गीली नहीं हो पातीं। रससिक्त नहीं हो पातीं। वे ही बादल झीलों में भर जाएंगे। झीलें चूंकि खाली थीं, शून्य थीं, इसलिए वे ही बादल झीलों पर जब बरसेंगे, तो झीलें भर जाएंगी। और पहाड़ चूंकि पहले से ही भरे हैं, इसलिए वे ही बादल पहाड़ों पर भी बरसेंगे लेकिन पहाड़ खाली के खाली रह जाएंगे।
अहंकार है तो तुम खाली के खाली रह जाओगे। अहंकार को जाने दो, झील की नाईं हो जाओ, बादल तो बरस ही रहे हैं, भरने में देर न लगेगी।
और इतना स्मरण रखनाः वह आ भी जाएगा, उसका रथ तुम्हारे प्राणों को पार करके निकल भी जाएगा, उसका बाण तुम्हें बेध भी देगा, तुम उसे अनुभव भी कर लोगे, फिर भी तुम उसे जान न पाओगे। उसे जानने का कोई भी उपाय नहीं है। उसे जीया जा सकता, जाना नहीं जा सकता।
जिसकी गहराई को कोई
अब तक नाप नहीं पाया है,
देश-काल भी जिसकी सीमा
अब तक जान नहीं पाए हैं,
वह अगाध है,
वह असीम है,
जिसको कहते क्षितिज
हमारे ही वीक्षण की
वह सीमा है!
उसका कोई क्षितिज नहीं है!
उसकी कोई सीमा नहीं है--न समय में, न क्षेत्र में। इसलिए हम उसे जान-जान कर भी जान नहीं पाते। जितना जानते हैं, उतना ही रहस्यपूर्ण होता चला जाता है।
तुम्हारी प्रार्थना शुभ है। पर प्रार्थना के अनुकूल तुम्हें स्वयं
भी होना होगा। तुम्हारी पूजा शुभ है। लेकिन जो दीये तुमने जलाए हैं पूजा के थाल में, वे तुम्हारी आत्मा के दीये नहीं हैं। तुम जो फूल चढ़ाने ले आए हो परमात्मा के चरणों में, वे तुम्हारी आत्मा के फूल नहीं हैं, वे तुम्हारी चेतना के फूल नहीं हैं। तोड़ लाए हो किन्हीं वृक्षों से--गुलाब है

और चंपा है और चमेली है--और उनके फूल चढ़ा दिए हैं तुमने पत्थर की एक मूर्ति पर।
सब झूठा है। पत्थर की मूर्ति झूठी--आदमी की बनाई हुई। फूल उधार-- किन्हीं वृक्षों से ले आए। ज्योति भी अपनी नहीं। प्रार्थना-पूजा भी बासी। कोई गायत्री दोहरा रहा है, कोई कुरान की आयत पढ़ रहा है, कोई नमोकार-मंत्र का उच्चारण कर रहा है। प्रार्थना भी अपनी नहीं, भाव भी अपने नहीं, इतने उधार--परमात्मा पत्थर का, फूल वृक्षों के, पूजा उधार, प्रार्थना बासी, दीया भी अपने चैतन्य का नहीं--फिर कैसे होगा?
कुछ तो प्रामाणिक लाओ!

आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे?

तेरे तल में अंधियारा है,
फिर भी तू अंधियारा हरता।
सांस-सांस पर धूम्र रूप में तू प्रतिपल निज व्यथा उगलता। देख रही हूं तेरी लौ में, तेरा आकुल हृदय मचलता।
पर तम को हरने में ही तो,
है यह तेरा जीवन जलता।
जगती को जीवन देकर भी,
मैं प्रकाश कर पाऊं कैसे? आज बता दे दीप मुझे प्रिय, मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे?

आता है परवाना उड़ कर,
लेकिन वह भी जल ही जाता।
तेरे प्राणों की ज्वाला में, पागल अपना तन झुलसाता।
उसका यह बलिदान न तेरी,
गति में कुछ बाधा पहुंचाता। धन्य-धन्य है जीवन तेरा,
अविरत गति से जलता जाता।
क्षणभंगुर यह जीवन-दीपक,
इसको सफल बनाऊं कैसे?
आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे?

दीये बनो! शिवानंद, दीये बनो! भीतर का दीया जलाओ। उसे ही मैं ध्यान कह रहा हूं। भीतर का दीया जलाओ। उसे ही मैं प्रेम कह रहा हूं। फूल खिलाओ चेतना के, करुणा के, आनंद के, अहोभाव के, कृतज्ञता के। इन फूलों को चढ़ाओ। और पत्थर की मूर्तियों को तलाश करने जाने की जरूरत नहीं है। वह सब तरफ मौजूद है। सब दिशाओं में भरा है। जिस दिशा में झुकोगे, उसी के चरण हैं। जिस चरण में झुकोगे, उसी के चरण हैं। और प्रार्थना अपनी उठने दो! कम से कम प्रार्थना तो निज की हो। तुतलाती ही हो, तो भी चलेगा। तुतलाती प्रार्थनाएं भी पहुंच जाएंगी और गायत्री के शुद्धतम मंत्र भी नहीं पहुंचेंगे। यह प्रश्न मंत्रों का नहीं है, ध्वनियों का नहीं है, मात्राओं का नहीं है, व्याकरण, भाषा का नहीं है, यह प्रश्न तो प्रीति का है।
छोटे से बच्चे को देखा है जब पहली दफे तुतलाता है? तो मां कितनी आनंदित हो जाती है! यही बच्चा एक दिन विश्वविद्यालय से लौटेगा पीएचड़ी. लेकर, बड़ी सुंदर भाषा बोलेगा, अलंकृत, मगर मां फिर वैसी प्रसन्न कभी नहीं होगी! इसकी पीएचड़ी. की उपाधि भी अब कुछ अर्थ न रखेगी। वह जो पहली बार यह

तुतलाया था--कुछ बोला नहीं था, ऐसे ही आवाज की थी... मम्-मम्... लेकिन मां आनंदित हो गई थी। उस पहली आवाज में निसर्ग था, स्वभाव था। अब शिक्षा है, संस्कार है--मगर सब उधार है। वह पहली आवाज इसके प्राणों से उठी थी।
ऐसी ही आवाज परमात्मा तक पहुंचती है, ख्याल रखना!
अपनी कहो। और कुछ कहने को न बने तो रोओ! आंसू तो अपने हैं! आंसुओं के साथ कम से कम एक अच्छी बात है कि आंसुओं की कोई गायत्री नहीं, कोई कुरान नहीं। तुम किसी और के आंसू नहीं गिरा सकते। अपने ही आंसू। वे पहुंच जाएंगे। वे उसके चरणों को पखार देंगे।
और इतना फिर दोहरा दूंः वह आया हुआ है, तुम भागे हुए हो। सवाल उसके आने
का नहीं है, सवाल तुम्हारे खड़े हो जाने का, ठहर जाने का है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहीं कहा है कि मनुष्य की सुख की खोज ही बताती है
कि मनुष्य दुखी है। क्या मनुष्य दुख लेकर ही जन्म लेता है? उसका यह बुनियादी दुख क्या है? और क्या इस दुख का निरसन भी है?

आनंद मैत्रेय! मनुष्य की जन्म की प्रक्रिया को समझना जरूरी है। मां
के पेट में तो बच्चा अपूर्व सुख जानता है, स्वभावतः। न कोई चिंता, न कोई फिक्र। भोजन की भी योजना नहीं करनी होती। वह भी अनायास अपने आप मां से मिलता है। श्वास भी खुद लेनी नहीं पड़ती, मां लेती है। और बच्चा तो तैरता है मां के गर्भ में, जैसे क्षीरसागर में विष्णु। क्षीरसागर में विष्णु की कल्पना निश्चय ही मां के पेट में बच्चे के तैरने की कल्पना से पैदा हुई है। मां के पेट में जल और नमकों का ऐसा मिश्रण होता है कि बच्चा डूब नहीं सकता। एक विशेष मात्रा में अगर पानी में नमक मिला दिया जाए तो फिर उसमें आदमी डूब नहीं सकता।
तुमने भूगोल में पढ़ा होगा, यूरोप में मृत सागर है। मृत सागर की खूबी यही है, उसमें इतना लवण इकट्ठा हो गया है कि उसमें मछली भी जी नहीं सकती। उसमें कोई प्राणी नहीं जीता। इस लिहाज से वह मृत है। और उसकी दूसरी खूबी यह है, उसमें तुम किसी आदमी को डुबाना भी चाहो तो डुबा नहीं सकते। आदमी के वजन से ज्यादा वजन पानी का हो गया है।
ठीक वही स्थिति मां के पेट में होती है। इसलिए जब गर्भवती होती है कोई स्त्री, तो नमक खाने में उसका रस बहुत बढ़ जाता है, नमकीन चीजें उसे प्रीतिकर लगने लगती हैं। क्योंकि पेट सारा नमक मांगता है--और नमक, और नमक। मां के पेट में बच्चा तैरता है। तापमान बिल्कुल एक रहता है, नौ महीने तक, थिर, तापमान में जरा सा अंतर नहीं होता। तापमान बड़ा सुखद होता है, और एक सा थिर रहता है तो बड़ा शांतिदायी होता है। और मां के पेट में कोई आवाजें नहीं पहुंचतीं। सिर्फ आधुनिक आवाजों को छोड़ कर--जैसे जेट हवाई जहाज की आवाज पहुंचती है। वह खतरनाक है। वैज्ञानिक इस पर चिंतन करते हैं कि वह बच्चों को नुकसान पहुंचाएगी। वह बच्चों को विकृत करेगी। साधारणतः प्राकृतिक रूप से कोई आवाज मां के पेट तक नहीं पहुंचती। सन्नाटा है। अपूर्व शांति है। नौ महीने बच्चा इस शून्य में, इस ध्यान में, इस सुविधा में, इस सुरक्षा में, इस स्वाभाविकता में जीता है, उसे सुख का अनुभव होता है। हालांकि उसे पता नहीं चलता कि यह सुख है। सुख का पता तो तब चलेगा जब दुख का पता चलेगा। सुख की याद तो पीछे आएगी। मगर पता चले या न चले, बड़ी सुखद दशा है।
फिर नौ महीने के बाद एक उपद्रव घटता है। जिस घर में नौ महीने बच्चा रहा है, वहां से अचानक उखाड़ा जाता है और दुख की शुरुआत होती है। जन्म दुख है। नौ महीने जिस सुविधा में रहा है, वहां से बच्चे को टूटता पड़ता है। और एक अज्ञात, अनजान जगत में प्रवेश करना होता है; जहां हर चीज चोट पहुंचाती मालूम पड़ती है।
अभी पश्चिम में कुछ वैज्ञानिक इस पर काम कर रहे हैं, उन्होंने जो शोधें की हैं वे महत्वपूर्ण हैं। वे कहते हैं, अस्पतालों में जहां बच्चों का जन्म होता है, इतना तेज प्रकाश जला कर रखा जाता है कि हमें ख्याल ही नहीं है कि हम बच्चों की आंखों को खराब कर देते हैं। बच्चे नौ महीने शांत अंधकार में रहे हैं, जहां रोशनी की किरण भी नहीं थी। उनकी आंखों के तंतु

बहुत कोमल हैं। और अस्पताल में जहां वे पैदा होते हैं, वहां ट्यूबलाइट जल रहे हैं। भयंकर रोशनी है। बच्चों के कोमल तंतुओं वाली आंखें इस भयंकर रोशनी से भारी आघात पाती हैं। शोधकर्ताओं का कहना है कि दुनिया में इतने चश्मों की जरूरत न हो, इतने लोगों की आंखें खराब न हों, अगर बच्चों को हम थोड़े सौम्य प्रकाश में पैदा होने की सुविधा दे सकें। बहुत सौम्य प्रकाश चाहिए। इतना सौम्य कि बच्चे को मां के गर्भ के अंधेरे में और इस प्रकाश में ज्यादा अंतर न मालूम पड़े। अंतर धीरे-धीरे पड़ना चाहिए, क्रमशः पड़ना चाहिए, ताकि आघात न हो।
बच्चा पैदा हुआ नहीं कि हमने तत्क्षण उसकी नाल काटी। हम झटके देते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यह नाल का काटा जाना, तत्क्षण, जीवन भर के लिए घाव हो जाता है। यह मनुष्य की चेतना में घाव हो जाता है। क्योंकि इसी नाल से बच्चा श्वास लेता था, यही उसके प्राण का आधार थी, यही उसका अस्तित्व था। इसे तुम झटके से तोड़ देते हो। अभी बच्चे ने स्वयं श्वास लेनी शुरू भी नहीं की है और तुम झटके से उसकी नाल काट देते हो।
नये आविष्कार यह कह रहे हैं कि पहले बच्चे को श्वास लेना सीखने दो। जब बच्चा पूरी तरह श्वास लेने लगे--जरा रुको, जल्दी क्या है--फिर नाल काटना। रूपांतरण हो जाने दो। बच्चे को मां से श्वास लेने की जगह स्वयं श्वास लेने की क्षमता अर्जित कर लेने दो। जरा रुको क्षण भर, पांच मिनट, दस मिनट, पंद्रह मिनट ज्यादा से ज्यादा। पांच से पंद्रह मिनट के बीच रुकने की जरूरत है। तो बच्चे को कम चोट लगेगी। खुद श्वास लेने लगेगा तो कम चोट लगेगी।
और बच्चा अगर श्वास नहीं लेता तो डाक्टर उसकी टांगों को पकड़ कर शीर्षासन करवा देता है, उलटा लटका कर उसकी पीठ को थपथपा देता है जोर से, ताकि घबड़ाहट में उसकी श्वास शुरू हो जाए। यह कोई जिंदगी को शुरू करने की व्यवस्था हुई? यह तो हिंसात्मक व्यवहार हुआ।
फिर बच्चे को लपेट दिया जाता है कपड़ों में। अभी उसकी त्वचा बहुत कोमल है, कितना ही कोमल कपड़ा तुम लपेटो, उसकी त्वचा को अभी कष्टपूर्ण मालूम होता है। नये शोधकर्ता कहते हैं कि बच्चे को पहले पानी के टब में रखना चाहिए, उसी तापमान पर जिस तापमान में मां के पेट में था। और पानी के टब में वही अनुपात होना चाहिए रासायनिक रूप से जो मां के पेट में नमकों का था, ताकि बच्चा पानी में तैर सके। और धीरे-धीरे रूपांतरण करो! दुनिया में कम दुख होगा।
फिर सारा शिक्षण अस्वाभाविक है। हम बच्चे के स्वभाव को स्वीकार नहीं करते। हम उसके ऊपर आदर्श थोपते हैं। हम बच्चे को मौका नहीं देते कि वह वैसा जी ले जैसा जीने को पैदा हुआ है। हम उसके चारों तरफ ढांचे, चरित्र, नियम, मर्यादाएं बांधते हैं। हम लक्ष्मण-रेखाएं खींचते हैं। हम बच्चे को विकृत करते हैं, अप्राकृतिक करते हैं। फिर दुख घना होता जाता है।
दुख की परिभाषा मेरे हिसाब मेंः अस्वाभाविक हो जाने का नाम दुख है। स्वाभाविक होने का नाम सुख है। जब भी हम स्वभाव के अनुकूल होते हैं, तब सुख होता है।
तुम खुद ही अपने जीवन में थोड़ी जांच करना। जब भी तुम स्वभाव के अनुकूल होते हो, तब एक सुखद आभा तुम्हें घेर लेती है। और जब भी तुम स्वभाव के प्रतिकूल होते हो, तब एक दुख, पीड़ा, एक घाव, तुम्हारी आत्मा में एक नासूर बन जाता है। और हमारी पूरी जीवन-प्रक्रिया जिसको हम शिक्षण कहते हैं, जिसको हम बच्चे को संस्कार देना कहते हैं...
अजीब-अजीब संस्कार हैं! अजीब-अजीब मूढ़तापूर्ण संस्कार हैं! जैसे यहूदी बच्चा पैदा हुआ, या मुसलमान बच्चा पैदा हुआ, तो "खतना" करो। जननेंद्रिय सर्वाधिक संवेदनशील इंद्रिय है। बच्चा पैदा हुआ और यहूदी पहला काम यह करेंगे कि उसकी जननेंद्रिय की चमड़ी को काट दो। तुम उसे ऐसी चोट पहुंचा रहे हो, जिसको शायद वह जिंदगी भर कभी नहीं भर पाएगा। मगर मूढ़तापूर्ण धारणाएं हैं, कि "खतना" करने से ही वह यहूदी होगा, नहीं तो वह यहूदी नहीं रह जाएगा। इस तरह के न मालूम कितने रीति-रिवाज हैं जो हम

बच्चों पर थोपते हैं। अगर उन सबका आंकलन किया जाए, तो पता चलेगा कि आदमी की छाती पर यह हिमालय जैसा दुख क्यों बैठ गया है।
फिर जो भी बच्चा करना चाहता है, वही हम गलत बताते हैं। अगर वह बाहर खेलना चाहता है, तो गलत। सर्दी पकड़ जाएगी। अगर धूप में खेलना चाहता है, तो गलत। अगर झाड़ों पर चढ़ना चाहता है, तो गलत। अगर नदियों में तैरना चाहता है, तो गलत। अगर पहाड़ों पर जाना चाहता है, तो गलत। गलतियों का अंबार है। बच्चा जो भी करना चाहता है, गलत! और जो हम करवाना चाहते हैं, वह बच्चे की समझ में नहीं आता--कि क्यों करे? उसके स्वभाव में उसके लिए कोई जगह नहीं है।
एक मां अपने बच्चे को पालक की भाजी खिला रही थी। वह रो रहा है और वह उसको पालक की भाजी खिला रही है। क्योंकि पालक की भाजी स्वास्थ्यप्रद है। और बच्चा रोता हुआ कह रहा है कि जब मैं आइसक्रीम खाता हूं तो तू मुझे रोकती है, और जब पालक की भाजी मैं खाना नहीं चाहता तो मुझे खिलाती है! तो उसकी मां ने कहा कि पालक की भाजी में विटामिन होते हैं। तो उस बच्चे ने कहा कि यह किस तरह का ईश्वर है जिसने पालक की भाजी में विटामिन रखे और आइसक्रीम में विटामिन नहीं!
जो भी बच्चे को प्रीतिकर है, उसमें कुछ गलती है। और जो भी हम उस पर थोपना चाहते हैं, वह बच्चे को प्रीतिकर नहीं है। इस द्वंद्व में, इस फांसी में जीवन का सारा सुख छिन जाता है। और धीरे-धीरे हम एक ऐसे मनुष्य को पैदा करते हैं, जो अत्यंत दुख से भरा हुआ मालूम पड़ता है, जो दुख ही दुख मालूम पड़ता है।
फिर जब यह आदमी हम पैदा कर लेते हैं दुखी, तो यह आदमी पूछता है कि इतना दुख क्यों है? तो इसके लिए हमें व्याख्याएं देनी पड़ती हैं। तो हमारे पंडित हैं, पुरोहित हैं, वे इसकी व्याख्याएं खोजते हैं। कोई कहता है, तुमने पिछले जन्म में पाप किए थे, उनकी वजह से तुम दुख भोग रहे हो।
नितांत व्यर्थता की बात है। यह पिछले जन्मों के पापों का परिणाम नहीं
है जो तुम दुख भोग रहे हो, यह इसी जन्म का तुम्हारे ऊपर किए गए पापों का परिणाम है। तुम्हारे ऊपर जो ज्यादतियां की गई हैं, उनका परिणाम है जो तुम दुख भोग रहे हो। लेकिन व्याख्या तो देनी पड़ेगी। और व्याख्या जंच जाती है, कि पिछले जन्मों के दुख का परिणाम भोग रहा हूं। पिछले जन्मों में पाप किए, उनका यह फल है। तो एक आश्वासन मिल गया कि ठीक है, तो दुखी रहना पड़ेगा। अब एक ही आशा हैः इस जन्म में पाप न करना; तो अगले जन्म में सुख मिलेंगे।
मगर किसी को भी सुख मिलता दिखाई नहीं पड़ता। और तुम सभी पिछले जन्म में सोचते रहे होओगे कि अगले जन्म में सुख मिलेंगे। यह अगला जन्म है! इसमें भी सुख नहीं मिल रहा है। और अगले जन्म में भी सुख नहीं मिलेगा। क्योंकि जीवन की पूरी व्यवस्था अवैज्ञानिक है, अप्राकृतिक है। जीवन की पूरी अब तक की, अब तक आदमी को जैसा निर्मित करने का उपाय किया गया है, वह इतना झूठा है, इतना कृत्रिम है कि उससे सुख पैदा नहीं हो सकता। यह तुम्हारे पिछले जन्मों के पापों का फल नहीं है।
कोई कहते हैं कि इसलिए तुम्हें दुख मिल रहा है क्योंकि अदम ने... अब अदम ने कब किया था पाप! और कोई खास पाप न किया था, ज्ञान के वृक्ष का फल खा लिया था। क्योंकि परमात्मा ने मना किया था कि मत खाना, आज्ञा का उल्लंघन किया था। अदम ने तो आज्ञा का उल्लंघन किया था हजारों साल पहले, फल तुम भोग रहे हो!
ऐसी-ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें लोगों को समझाई गई हैं। लेकिन सचाई नहीं कही जाती। क्योंकि सचाई कही जाए तो हमें क्रांति करनी पड़े आज। अब अदम ने पाप किया था, हम क्या कर सकते हैं? झेलना पड़ेगा। पिछले जन्म में पाप किया था, अब क्या करोगे? अब पिछले जन्म में तो लौटा नहीं जा सकता, इसलिए झेलना पड़ेगा।
तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे राजनेता एक साजिश में हैं। वह साजिश यह है कि तुम्हें दुख झेलने के लिए राजी किया जाए। तुम्हें दुख झेलने के लिए इस तरह राजी किया जाए कि तुम्हें पता ही न चले कि तुम राजी कर लिए गए हो। तुम्हारे दुख पर मलहम-पट्टी कर दी जाए और यह सत्य तुमसे छिपा लिया जाए कि दुख निर्मित किया जा रहा है। तुम्हारी समाज की व्यवस्था,

तुम्हारे सोचने के ढंग, तुम्हारे आदर्श, तुम्हारे मूल्य, सब दुख पैदा कर रहे हैं। मगर अगर यह बात कही जाए तो फिर इन सारे मूल्यों को बदलना होगा। और उन मूल्यों के साथ लोगों के न्यस्त स्वार्थ जुड़े हैं। सच तो यह है, आदमी दुखी रहे, इसमें बहुत लोगों का स्वार्थ है। कोई नहीं चाहता आदमी सुखी हो। मैंने सुना है, एक रात एक शराबघर में बहुत उत्सव रहा। एक आदमी अपने साथियों को लेकर आया था, खूब पीना-पिलाना चला--देर तक, आधी रात तक। शराबघर का मालिक, दुकानदार बड़ा खुश था। जब ये मेहमान जाने लगे तो उसने अपनी पत्नी से कहा, ऐसे मेहमान रोज आते रहें तो हमारे भाग्य में भी चार चांद जुड़ जाएं। जाते हुए मेहमान ने सुन लिया। उसने कहा, हम तो रोज आएं, प्रार्थना किया करो कि हमारा धंधा ठीक से चलता रहे। हमारा धंधा ठीक चले, हम तो रोज आएं! प्रार्थना करना हमारे लिए। तो उसने कहा, जरूर प्रार्थना करेंगे। लेकिन तभी उसने पूछा, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि आपका धंधा क्या है? उसने कहा, यह तुम न पूछो तो अच्छा, नहीं तो प्रार्थना करना जरा मुश्किल होगा। तो और उत्सुक हुआ वह शराब का दुकानदार। उसने कहा, तब तो बताओ ही, यह धंधा कौन सा है तुम्हारा? तो उसने कहा, मैं धंधा करता हूं मरघट पर लकड़ी बेचने का। लोग मरें ज्यादा, तो मेरी लकड़ी बिकती है। लकड़ी बिके तो हम तो रोज आएं। तुम जरा प्रार्थना करते रहना कि हमारा धंधा ठीक से चलता रहे।
अब बड़ी मुश्किल हो गई। किसी का धंधा है मरघट पर लकड़ी बेचना, तो उसकी प्रार्थना एक ही है कि हे प्रभु, आज कोई मरे! वह मरने पर ही जी रहा है।
यह समाज, अगर तुम गौर से देखो इसको चारों तरफ, तो तुम चकित हो जाओगे-- तुम्हारे दुख पर जी रहा है। इस समाज में जो लोग सिर पर सवार हो गए हैं, धन और पद और सब दृष्टियों से जिन्होंने शक्ति अर्जित कर ली है, वे तुम्हारे दुख पर जी रहे हैं। तुम दुखी हो, इसलिए उनके हाथ में शक्ति है। अगर तुम सुखी हो जाओ, उनके हाथ से शक्ति छिन जाए।
समझो कि एक समाज सुखी हो गया, कल्पना करो कि एक समाज बिल्कुल सुखी है।
हर आदमी मस्त है अपनी मस्ती में। और राजनेता कहते हैं कि हमें युद्ध करना है; हमें पड़ोसी से युद्ध लड़ना है। कोई युद्ध पर जाने को तैयार होगा? लोग कहेंगे, हमें प्रयोजन? हम क्यों लड़ें? जिंदगी हमारी इतनी आनंदपूर्ण है, इसे हम क्यों गंवाएं? लेकिन राजनेता कहेगा, झंडा ऊंचा रहे हमारा! वे कहेंगे, तुम रखो अपना झंडा ऊंचा, हमारी जिंदगी तुम्हारे झंडे ऊंचे से बहुत ऊंची है। ये तो दो कौड़ी के लोग हैं जो झंडा ऊंचा रहे हमारा, इसके लिए मरने को तैयार हो जाते हैं। जिनकी जिंदगी में कुछ है ही नहीं। नहीं तो झंडों में है क्या?
लेकिन झंडों पर लोग मर जाते हैं। ऐसे मूढ़ हो, झंडों पर मर जाते हो! कि किसी ने झंडा नीचा कर दिया कि बस! जीवन रहे कि जाए! कपड़े के टुकड़े तुमने झंडे बना लिए हैं, डंडों में पोकर खड़े हो गए हो, और इनके लिए लड़ रहे हो? जरूर तुम्हारी विक्षिप्तता और तुम्हारा दुख बहुत घना होगा।
मैंने सुना है, एडोल्फ हिटलर से मिलने इंग्लैंड का एक बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ गया था--युद्ध के पहले, दूसरे महायुद्ध के पहले। और एडोल्फ हिटलर उसे प्रभावित करना चाहता था, चौंकाना चाहता था, धमकाना चाहता था। वह उसका ढंग था। वे सातवीं मंजिल पर खड़े हैं मकान की, छत पर खड़े हैं। और एडोल्फ हिटलर ने कहा कि देखो, मुझसे झंझट मत लो! क्योंकि मेरे पास ऐसे सैनिक हैं कि जो सारी दुनिया को जीत लेंगे। मेरे सैनिकों का मुकाबला कोई भी नहीं कर सकता। और तभी अचानक, अंग्रेज राजनीतिज्ञ को चौंकाते हुए, उसने अपने पास खड़े एक सैनिक से कहा, छलांग लगा जा! सातवीं मंजिल से वह आदमी एकदम छलांग लगा गया। अंग्रेज राजनीतिज्ञ तो भौचक्का रह गया! क्योंकि कोई आदमी मरने को ऐसा, इतनी आतुरता दिखाए! थोड़ा झिझकता, थोड़ा पूछता कि किसलिए? क्यों? मगर वह छलांग ही लगा गया! उसको प्रभावित देख कर हिटलर ने और एक दांव मारना चाहा, दूसरे सैनिक से कहा कि तू भी छलांग लगा जा! दूसरा भी छलांग लगा गया! तब तो अंग्रेज राजनीतिज्ञ थरथरा गया। उसको थरथराया देख कर हिटलर ने तीसरे से कहा, तू भी छलांग लगा जा! तब तक तो अंग्रेज राजनीतिज्ञ झपटा, उस आदमी को पकड़ा और कहा कि तुम पागल हो गए हो? इस तरह मरा जाता है? तुम्हें जीने में कोई रस नहीं है? उस आदमी ने कहा, छोड़ो मेरा हाथ! तुम इसको जिंदगी

कहते हो? जो हम जी रहे हैं, तुम इसको जिंदगी कहते हो? इस आदमी के साथ जीने की बजाय मर जाना बेहतर है।
यहां लोग इतना मरने को उत्सुक हैं, क्योंकि जिंदगी बेकार है। कोई भी मरने को उत्सुक है। किसी भी बहाने। इसलाम खतरे में है--चले कुछ मूढ़ मरने को! हिंदू धर्म खतरे में है--चले कुछ मूढ़ मरने को! कोई भी बहाना चाहिए। मरने की ऐसी आतुरता क्या बताती है? एक ही बात बताती है कि तुम्हारे जीवन में रस नहीं है, तुम्हें जीवन का अनुभव नहीं है। जीवन इतना बहुमूल्य है, परमात्मा की ऐसी अपूर्व भेंट, ऐसा प्रसाद, और तुम ऐसे गंवाने को तैयार हो जाते हो--झंडा झुक गया, कि इरछा-तिरछा हो गया, कि बस मरे! कि जरा सी जमीन का टुकड़ा किसी ने ले लिया कि मरे!
जमीन किसकी है? और ये राष्ट्रों की सीमाएं, और इन सीमाओं पर मरने की ऐसी तैयारी, और मरने वालों की इतनी प्रशंसा और इतना सम्मान और महावीर चक्र! ... कम से कम महावीर को तो बदनाम न करो! चक्र तुम्हें देना हो दो। घनचक्करों को महावीर चक्र दे रहे हो! जिनमें बुद्धि भी नहीं है नाममात्र को।
लेकिन यह सारा का सारा इंतजाम, यह सारा व्यवस्था का जो जाल है, यह जमा
ही इस बात पर है कि आदमी दुखी है। आदमी दुखी है तो चीजें बिकती हैं।
तुम देखते हो? कारों के विज्ञापन देखते हो? कपड़ों के विज्ञापन देखते हो? सिगरेटों के विज्ञापन देखते हो? जरा विज्ञापनों को गौर से देखो। हर विज्ञापन यह कह रहा है कि आदमी दुखी है और उसका शोषण करने के लिए विज्ञापन है। कि जब तक तुम्हारे घर में दो कारें न होंगी, तब तक सुख नहीं हो सकता-- अमरीका के पत्रों में ऐसे विज्ञापन होते हैं--जब तक तुम्हारे गैरेज में दो कारें नहीं हैं, तब तक कोई सुखी नहीं हो सकता। अब दुखी आदमी सोचता है कि चलो, यही सही! शायद ऐसे ही सुख मिल जाए! दो कारें हो जाती हैं, सुख नहीं मिलता। तब तक विज्ञापन और आ जाते हैं, वे कहते हैं, अब एक नाव भी चाहिए, पहाड़ पर एक मकान भी चाहिए, तब सुख होगा--ऐसे सुख कुछ आसान है! सुख के विज्ञापन बढ़ते जाते हैं।
सारे विज्ञापन इतना ही कह रहे हैं कि आदमी दुखी है। और आदमी दुखी है
तो उसे चीजें बेची जा सकती हैं। व्यर्थ की चीजें बेची जा सकती हैं जिनकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इस आशा में आदमी खरीदने को तत्पर रहता है कि शायद सुख मिल जाए। शायद ऐसे मिल जाए। शायद वैसे मिल जाए। शायद ये कपड़े पहनने से स्त्रियां मोहित होने लगें। देखते हैं कपड़ों के विज्ञापन? कि इस कपड़े को पहनने वाला आदमी हजारों में अलग ही दिखाई पड़ता है। सारी स्त्रियां चौंक कर उसकी तरफ देखती हैं। आशा बंधती है कि शायद... मेरी तरफ तो कोई स्त्री चौंक कर नहीं देखती, और मैं अगर किसी की तरफ चौंक कर देखूं तो एकदम पुलिसवाले को बुलाती है, शायद इस कपड़े के पहनने से... खूबसूरत सूरत मिल्स के कपड़े... शायद स्त्रियां देखने लगें चौंक कर! शायद इंद्र अप्सराएं भेजने लगे!
तुम्हें आशाओं पर जिलाया जा रहा है।
सिगरेटों के विज्ञापन होते हैं कि इस सिगरेट को पीने में ही प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा? सिगरेट को पीने में? और सिगरेटें हैं, उनकी कीमतें इतनी ज्यादा हैं कि बहुत ही कम लोग पी सकते हैं। वह सिगरेट तुम्हारे हाथ में है तो प्रतिष्ठा है। जिसके हाथ में यह सिगरेट है, उसके चेहरे पर सफलता की शान है।
और हर तरह के उपाय खोजे जाते हैं।
एक आदमी सौ साल का हो गया था। पत्रकार उससे मिलने गए। उन्होंने पूछा
कि तुम्हारे सौ साल के होने का राज क्या है?
उसने कहा, जरा दो दिन रुकना पड़ेगा। अभी राज नहीं बता सकता, दो दिन बाद बताऊंगा।
उन्होंने कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है! तुम सौ साल जी भी चुके, क्या राज का तुम्हें पता नहीं है? दो दिन में खोजबीन करोगे?
उसने कहा कि नहीं, राज का तो सब पता है, मगर दो दिन बाद बताऊंगा। क्योंकि अभी मेरा कई विज्ञापन कंपनियों से सौदा चल रहा है। जिससे तय हो

जाएगा! ओवॅलटीन पीने से सौ साल जीया, कि बॉर्नविटा, कि पारले के बिस्कुट... अभी कई कंपनियों से मेरा चल रहा है। जरा तय हो जाने दो। दो दिन के बाद ही पक्का कह सकता हूं कि किस कारण से मैं सौ साल जीया।
आदमी दुखी है, उसका शोषण किया जा सकता है। सुखी आदमी का शोषण नहीं किया जा सकता।
मेरे हिसाब में सुखी आदमी बगावती होता है। सुखी आदमी एक क्रांति है। उसका तुम कैसे शोषण करोगे? तुम उसे धोखा न दे सकोगे। वह इतना आनंदित है, वह अपने चैन की बांसुरी बजा रहा है कि वह तुम्हारी संगीन लेकर लड़ने को नहीं जाएगा। वह इतनी चैन की बांसुरी बजा रहा है कि वह राजनीति के दांव-पेंचों में नहीं पड़ेगा। उसे दिल्ली में कोई रस नहीं होगा। कोई लाख कहे कि दिल्ली पास है; कोई लाख कहे कि दिल्ली अब पहुंचे, तब पहुंचे; वह जाएगा ही नहीं दिल्ली। वह कोई पागल हो गया है जो दिल्ली जाए! वह अपने छोटे से साधारण जीवन में ऐसे असाधारण सुख को अनुभव कर रहा है कि क्यों चिंता करेगा कि प्रधानमंत्री बने? यह तो दुखी लोगों की दौड़ है। कि क्यों राष्ट्रपति बने? यह तो दुखी लोगों की दौड़ है। यह तो दुखी आदमी की चेष्टा है कि शायद राष्ट्रपति हो जाऊं, तो सुख मिले। मिलता नहीं, लेकिन तब तक तो बहुत देर हो गई होती है। तब तक तो पूंछ कट ही गई होती है। फिर कहने में भी कोई सार नहीं होता।
मैंने सुना है, एक फकीर ने एक गांव में आकर घोषणा कर दी कि जिसको भी ईश्वर के दर्शन करने हों, उसे नाक कटानी पड़ेगी। और बात लोगों को जंची। क्योंकि कई लोग कई तरह से कोशिश कर रहे थे और ईश्वर के दर्शन नहीं हो रहे थे। फिर बात और भी जंची, क्योंकि फकीर की नाक कटी हुई थी। और बात असल यह थी कि फकीर किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ गया था किसी गांव में और उसके पति ने उसकी नाक काट दी थी। अब वह अपनी नाक बचाने के लिए, कटी हुए नाक बचाने के लिए यह तरकीब खोज लिया था। वह यह कहता था कि नाक क्या कटी कि परदा गिरा गया! नाक के कटते ही एकदम परमात्मा के दर्शन हो गए!
अब परमात्मा के दर्शन तो बहुत लोगों को करने हैं। क्योंकि इतने लोग दुखी हैं, इतने पीड़ित हैं, इतने परेशान हैं कि अब कुछ और नहीं मिला जीवन में तो कम से कम परमात्मा ही मिल जाए! कुछ लोग आने लगे, सत्संग करने लगे फकीर का। और फकीर तो एक ही बात कहता था कि भई, और कुछ भी करो, कुछ होगा नहीं। मुझे देखो! अरे, इतना सा त्याग नहीं कर सकते?
आखिर एक हिम्मतवर आदमी ने... हिम्मतवर कहो या बुद्धू कहो। अक्सर एक ही तरह के लोग हिम्मतवर होते हैं, वे ही बुद्धू होते हैं, वे ही हिम्मतवर होते हैं। अक्सर बुद्धू दुस्साहसी होते हैं। एक बुद्धू खड़ा हो गया, उसने कहा कि ठीक है जी। बहुत से बहुत नाक ही कटेगी, और क्या! वैसे ही जिंदगी कटी जा रही है। मगर यह भी करके देखे लें। एक दांव सही।
एकांत में लेकर फकीर ने उसकी नाक काट दी। नाक तो कट गई, ईश्वर वगैरह कुछ दिखाई नहीं पड़ा। उसने कहा, ईश्वर दिखाई नहीं पड़ रहा।
उसने कहा, अब तू चुप रह! क्या मुझको दिखाई पड़ रहा है तू समझता है? मेरी
कट गई, मैं अपनी बचा रहा हूं, अब तेरी कट गई, तू अपनी बचा। अगर किसी से कहा कि नाक कट गई और ईश्वर नहीं दिखा, तो लोग तुझे बुद्धू समझेंगे। लोग हंसेंगे। अब तो सार इसी में है बेटा, कि तू भी एकदम मस्त हो जा! और एकदम डोल! और जो भी मिले उससे कह कि भैया गजब! इतना सरल साधन! सहज-योग! नाक क्या कटी, एकदम द्वार खुल गए!
उस आदमी ने भी सोचा और उसने कहा कि बात यही ठीक है। गांव में एकदम नाचता हुआ पहुंचा, ढोल बजाता हुआ। लोगों ने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा, ईश्वर के दर्शन हो गए।
फिर और लोग भी आने लगे। और सबके साथ यही होने लगा। उस गांव में नाक-कटों की एक भीड़ इकट्ठी हो गई। सम्राट तक खबर पहुंची। सम्राट भी हैं तो उतने ही दुखी जितना कोई और। सम्राट ने अपने वजीर से कहा कि अगर नाक ही कटने से परमात्मा का दर्शन होता है, तो जिंदगी है ही कितने दिन की? ऐसे भी मैं बूढ़ा हो गया। दो-चार साल जीऊंगा ज्यादा से ज्यादा, शायद इतना भी न जीऊं। परमात्मा के दर्शन तो कर ही लेने चाहिए। अब जरा सी नाक के पीछे क्या

परमात्मा के दर्शन से वंचित रहना? और इतनों को हुआ है, तो गलत तो हो ही नहीं सकता।
लोगों का तर्क है यह कि भीड़ को हो जाए तो गलत नहीं हो सकता है। और सचाई
यह है कि अक्सर भीड़ गलत होती है। सौ में निन्यानबे मौकों पर गलत होती है। भीड़ और सही, जरा मुश्किल बात है। सत्य तो कभी एकाध के पास होता है, भीड़ के पास सत्य नहीं होता।
वजीर ने कहा कि जरा तुम रुको, मुझे जरा पता लगा लेने दो, ठीक-ठीक पता लगा लेने दो। वजीर ने बहुत पता लगाया, कई लोगों को पूछा। लेकिन जिससे पूछे वही एकदम, आनंद-आंसू बहने लगें, और डोलने लगे, और कहे कि दर्शन हो गए! वजीर को भरोसा न आए। बेईमान वजीर, आसानी से भरोसा भी कैसे आए! जिंदगी भर बेईमानी की, सबको धोखा दिया, तो ही तो वजीर हुआ। नाक कटने से ईश्वर का उसको कोई संबंध न दिखाई पड़े, कोई गणित भी न दिखाई पड़े, तर्क भी न दिखाई पड़े। राजा तो बिल्कुल राजी ही होने के करीब था। उसने कहा, बस एक दिन और मुझे समय दे दो। उसने चार-पांच नाक-कटों को पकड़वाया, कठघरे में अंदर बंद करवाया और उनकी अच्छी पिटाई करवाई। जब उनकी खूब पिटाई करवाई और कहा कि सच-सच बोलो, नहीं तो और पीटे जाओगे, तो उन्होंने कहा, अब आप जब ज्यादा पिटाई कर रहे हैं तो फिर सच बोलना ही पड़ेगा। सच यह है कि कोई ईश्वर वगैरह का दर्शन हुआ नहीं है। लेकिन अब हम करें भी क्या? नाक तो कट ही गई! अब अपनी आत्मरक्षा के लिए यही कहना उचित है।
लोग सोचते हैं कि राष्ट्रपति होने से या प्रधानमंत्री होने से सुख मिल जाएगा। जब तक हो पाते हैं तब तक नाक कट जाती है। फिर प्रधानमंत्री होकर यह कहें कि नहीं मिला सुख, तो लोग और कहेंगे कि बुद्धू! हम पहले ही कहते थे कि इसमें कोई सार नहीं। तो फिर तो चेहरा बनाए रखना पड़ता है। तो अपनी पहन ली शेरवानी इत्यादि, अचकन वगैरह डाट ली, चले! फिर एक चेहरा बनाए रखना पड़ता है--कि नहीं, सब मिल गया! जो पाना था, मिल गया।
यह सारा जगत दुखी है। इस दुख के कारण राजनीति पैदा हो रही है। इस दुख
के कारण अनेक तरह के थोथे धंधे चल रहे हैं। इस दुख के कारण हजारों लोगों के न्यस्त स्वार्थ पूरे हो रहे हैं। इस दुख के कारण मंदिरों में भीड़ है, मस्जिदों में भीड़ है, गिरजे-गुरुद्वारों में भीड़ है। मनुष्य दुखी है, तो पंडित-पुजारी के पास जाता है। तुम जब सुख में होते हो, परमात्मा को याद करते हो? सुख में याद भी आती है परमात्मा की? दुख में आती है। तब एक बात पक्की है कि अगर किन्हीं लोगों को परमात्मा के नाम पर धंधा करना है, तो तुम्हें दुखी रहना अत्यंत आवश्यक है; तुम्हें दुखी रखना आवश्यक है। मनुष्य अब तक बहुत गहरे शड्यंत्र का शिकार है।
तुम पूछते हो, आनंद मैत्रेयः "आपने कहीं कहा है कि मनुष्य की सुख की खोज बताती है कि मनुष्य दुखी है।"
निश्चित ही। सुख की खोज दो बातें बताती है। एक, कि मनुष्य दुखी है। और दो, कि मनुष्य कहीं किसी अंतस्तल में जानता है कि सुख क्या है। मनुष्य ने किसी अनजान क्षण में सुख का अनुभव किया है। भूल गया हो, अचेतन में दब गया हो, लेकिन मां के गर्भ में बच्चे ने जाना है कि सुख क्या है। आज भी उसका झरना धीरे-धीरे कहीं भीतर बहता है। अंतर्गर्भ में कहीं आज भी उसे उस सुखद स्मृति की सुवास आती है। आज भी वह दीया बिल्कुल बुझ नहीं गया है।
तो दो बातें तय हैं, कि एक तो मनुष्य को किसी अचेतन में अनुभव है कि सुख क्या है। नहीं तो जिसका हमें अनुभव न हो, उसकी हम खोज नहीं कर सकते। जिस आदमी ने गुलाब का फूल देखा ही न हो, वह एकदम गुलाब के फूल की खोज करने लगे, क्या तुम सोचते हो यह संभव है? जिसने हीरा न देखा हो, जिसने हीरे के संबंध में जाना न हो, वह हीरे की खोज पर निकल जाए, यह कैसे संभव है? मनुष्य ने जरूर हीरा जाना है, गुलाब का फूल कभी खिला है। उसके नासापुट अभी भी किसी सुगंध को याद करते हैं। उसके अंतर्तम में अभी भी कहीं कोई स्मृति विराजमान है--भूल गई, हजार-हजार धूल में जम गई, हजार-हजार बातों की भीड़ में खो गई--मगर है, मगर कहीं है। कहीं झरना अब भी झरता है। तो एक तो प्रत्येक मनुष्य को सुख का कहीं अचेतन में अनुभव है। और दूसरा, जीवन बड़ा दुख है। जीवन बिल्कुल उससे विपरीत है। और इसीलिए सुख की तलाश है।

सुख की तलाश ही धर्म है। सुख की तलाश ही परमात्मा की तलाश है। तुम नाम कुछ भी दे दो। आनंद कहो, मोक्ष कहो, महासुख कहो, परमात्मा कहो, निर्वाण कहो, कुछ भेद नहीं पड़ता। आदमी एक ऐसी अवस्था की खोज कर रहा है जहां दुख न हो, जहां दुख का कांटा न हो, जहां दुख जरा भी साले न। और यह खोज स्वाभाविक है। लेकिन इस खोज में बाधा डालने वाले लोग हैं। क्योंकि वे चाहते हैं, तुम खोजते ही रहो, खोज न पाओ। खोजते रहो तो उनका धंधा चले। खोज ही लो तो उनका धंधा समाप्त हो जाए।
एक डाक्टर बूढ़ा हो गया। उसका बेटा मेडिकल कालेज से डाक्टर होकर घर आ गया। बाप ने कहा कि अब तू सम्हाल काम को, मैं बहुत थक गया हूं, एक महीने भर के लिए पहाड़ पर विश्राम कर आऊं।
बाप तो पहाड़ पर विश्राम करने गया। महीने भर बाद जब लौटा तो बेटा स्टेशन उसका स्वागत करने आया, बाप के चरण छुए और कहा, पिताजी, आप जान कर प्रसन्न होंगे कि जिस बूढ़ी स्त्री को आप तीस साल में ठीक नहीं कर पाए, उसको मैंने ठीक कर दिया।
बाप ने माथा ठोंक लिया। बाप ने कहा, नालायक, कमबख्त, उस स्त्री को मैं
ही तो ठीक होने नहीं दे रहा था। नहीं तो तू पढ़ता कैसे, डाक्टर कैसे होता? यह उसी की कृपा है! और उसी के आधार पर तेरा छोटा भाई डाक्टर हो रहा है। और उसी के आधार पर तेरी छोटी बहन भी डाक्टर होने वाली है। तूने यह क्या किया? तूने तो सब बर्बाद ही कर दिया, धंधा ही बर्बाद कर दिया। उसी ब.ूढी स्त्री को बचा कर तो मैं सारा धंधा चला रहा था।
वह धनपति थी। ख्याल रखना, गरीब आदमी बीमार हो तो जल्दी ठीक हो जाता है। अमीर बीमार हो तो देर लगती है। लगनी ही चाहिए। जितने अमीर होओगे, उतनी ज्यादा देर लगेगी। क्योंकि आखिर चिकित्सक को भी जीना है, तुम्हीं को तो नहीं जीना है!
चीन में पुराना नियम था, अदभुत नियम था। और कभी दुनिया अच्छी होगी तो
वह नियम सारी दुनिया में लागू होगा। चीन का नियम था कि मरीज चिकित्सक को इलाज के पैसे नहीं देता था, बीमारी ठीक करने के पैसे नहीं देता था। फिर? स्वस्थ रहने के पैसे देता था। हर साल मरीज ने बांध रखे थे कि इतने रुपये मैं दे दूंगा, अगर साल भर स्वस्थ रहा। अगर बीमार पड़ गया तो काट लूंगा।
यह बहुत अजीब लगेगा नियम। लेकिन यह नियम बड़ा सार्थक है, बड़ा महत्वपूर्ण है। यह नियम जरूर लाओत्से की छाया में पला होगा। यह नियम लाओत्से के कारण ही पैदा हुआ होगा। लाओत्से का कहना है कि चिकित्सक का नियम यही होना चाहिए कि वह मरीज को स्वस्थ रखे और स्वस्थ रखने के पैसे पाए। अगर मरीज बीमार हो जाए, पैसे कट जाएं। तो ही चिकित्सक लोगों को स्वस्थ रखने में उत्सुक रहेगा। नहीं तो उलटी बात हो जाएगी।
अभी तो दुनिया में उलटी बात है। चिकित्सक राह देखता है। जैसे कभी मलेरिया फैल जाता है, तो डाक्टर उसको कहते हैंः सीजन आ गया। बड़े मजे की बात है! सीजन? लोग मर रहे हैं और उनका सीजन आ गया! फ्लू फैल गया, और डाक्टरों के चित्त देखो, कैसे मग्न, प्रसन्न!
मुल्ला नसरुद्दीन के घर उसके डाक्टर ने कई दफा आदमी भेजा कि तुम अपने बेटे का बिल नहीं चुका रहे हो। तुम्हारे बेटे को चेचक की बीमारी हुई थी और मैं इतनी बार आया, इतनी दवा की। जब नौकर को सुना ही नहीं उसने और बार-बार लौटा दिया, तो डाक्टर एक दिन खुद ही गया। और मुल्ला से कहा कि नसरुद्दीन, चुकाते हो बिल कि नहीं?
नसरुद्दीन ने कहा, बिल मुझसे मांगते हो? चुकाओ तुम! क्योंकि मेरे लड़के ने ही चेचक पूरे स्कूल में फैलाई। तुमने जो कमाई की, उसमें नब्बे प्रतिशत मेरा है। मेरे बेटे की ही करतूत है। और तुम मुझसे बिल मांगते हो? शर्म नहीं आती! तुम्हें धन्यवाद देना चाहिए।
चिकित्सक अगर बीमारी पर जीएगा, तो खतरा है। और पुरोहित तुम्हारे दुख
पर जी रहा है, यही खतरा है।
मैं चाहता हूं, मनुष्य सुखी हो। लेकिन मनुष्य सुखी होगा तो पुरोहित-पंडित-मौलवी विदा हो जाएंगे। इनकी क्या जरूरत रह जाएगी? अगर मनुष्य सुखी होगा, तो मंदिर-मस्जिदों में घंटे बजने और पूजाएं बंद हो जाएंगी। इनका कोई

प्रयोजन न रह जाएगा। अगर मनुष्य सुखी होगा तो बुद्धू राजनेता तुम्हारी अगुवाई न कर सकेंगे। क्योंकि सुख के साथ ही साथ प्रतिभा का जन्म होता है। दुख में प्रतिभा क्षीण हो जाती है। सुख में प्रतिभा निखर आती है। मनुष्य सुखी होगा तो राष्ट्र विदा हो जाएंगे। क्योंकि राष्ट्रों ने सिवाय युद्धों के और दुखों के कुछ भी नहीं दिया। मनुष्य सुखी होगा तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन विदा हो जाएंगे। क्योंकि इन सब मतभेदों ने आदमी को लड़ाया, काटा, हिंसा की, खून-खराबा किया। इससे सुख नहीं आया, इससे जमीन नरक बनी। मनुष्य सुखी होगा तो न हिंदू होगा, न मुसलमान होगा, न भारतीय होगा, न चीनी होगा। मनुष्य सुखी होगा तो सिर्फ सुखी होगा। और तब परमात्मा की तरफ एक नई ही प्रार्थना उठेगी--धन्यवाद की!
अभी तो तुम्हारी प्रार्थनाएं मांग की हैं। हे प्रभु, यह दे दो, वह दे दो! बस मांगे ही चले जाते हो। और जब तक मांग है तब तक प्रार्थना झूठी है। फिर एक और तरह की प्रार्थना होगी कि हे प्रभु, तूने इतना दिया! एक गहन कृतज्ञता, एक गहन आभार। और जब प्रार्थना में आभार होता है तो प्रार्थना का सौंदर्य ही अनूठा होता है। फिर प्रार्थना में प्रसाद होता है। फिर प्रार्थना में पंख होते हैं, आकाश में उड़ने की क्षमता होती है।
मैं जरूर मनुष्य को सुखी देखना चाहता हूं। इसीलिए मुझसे राजनेता नाराज हैं। मुझसे पंडित-पुरोहित-मौलवी नाराज हैं। इससे मुझसे वे सारे लोग नाराज हैं जिनके न्यस्त स्वार्थों पर चोट पहुंच सकती है। इससे मुझसे वे सारे लोग नाराज हैं जो लोगों को नाक काटना सिखा रहे हैं। मैं लोगों से कह रहा हूं, कुछ काटने की जरूरत नहीं है--नाक ही नहीं, कुछ भी काटने की जरूरत नहीं है। क्रोध भी काटने की जरूरत नहीं है, काम भी काटने की जरूरत नहीं है; रूपांतरण करना है, काटना नहीं है। नाक काटो कि क्रोध काटो, काम काटो; जो भी तुम काटोगे, तुम अधूरे हो जाओगे, अपंग हो जाओगे। तुम कुरूप हो जाओगे। तुम्हें परमात्मा ने सर्वांग-पूर्ण बनाया है, सुंदर बनाया है। तुम्हें सब दिया है जो जरूरी है। हां लेकिन, जो तुम्हें दिया है, उसमें और-और परिष्कार हो सकते हैं, अनंत परिष्कार हो सकते हैं। तुम्हें वीणा दे दी है, अब गीत तुम कैसा गाओगे, यह तुम पर निर्भर है।
क्या तुम सोचते हो, कोई आदमी को वीणा बजाना न आता हो और अंट-शंट वीणा बजाए, तो तुम उससे कहोगे कि वीणा को आग लगा दो?
यही तुम्हारे धर्मगुरु तुमसे कहते रहे हैं। तुम्हें, क्रोध का क्या करें, यह नहीं आता। कामवासना का कैसे रूपांतरण करें, यह समझ में नहीं आता। तुम्हारे पंडित-पुरोहित कहते हैंः काट डालो, फेंक दो! कामवासना बचनी ही नहीं चाहिए, जला डालो।
लेकिन जिसके जीवन में कामवासना जल गई, उसके जीवन में एक तरह का रूखापन-सूखापन आ जाता है। उसमें फिर हरियाली नहीं रह जाती। रसधार नहीं बहती। फिर वह एक ऐसी नदी है जिसमें धार तो रही ही नहीं, बस रेत ही रेत रह गई है। जिस दिन तुम अपने क्रोध को काट डालोगे, उसी दिन तुममें करुणा पैदा होने की संभावना समाप्त हो जाएगी। क्योंकि क्रोध ही करुणा के लिए खाद बनता है। माली बनो, नाक काटने से कुछ भी न होगा। कलाकार बनो, गुणी बनो, रसायनविद बनो। और ये सब रासायनिक ऊर्जाएं हैं। क्रोध को अगर ठीक-ठीक समझा जाए, क्रोध के साथ अगर ध्यान जोड़ दिया जाए, क्रोध धन ध्यान और करुणा का जन्म हो जाता है। काम के साथ अगर ध्यान जोड़ दिया जाए, तो ब्रह्मचर्य का जन्म हो जाता है। काम धन ध्यान = ब्रह्मचर्य।
कुछ काटना नहीं है, रूपांतरित करना है।
धर्म कला है। जीवन-निषेध नहीं, जीवन-विधेय है।
और अगर हम बच्चों को बचपन से ही स्वाभाविक रखने में सफल हो पाएं, अगर
हम उनको सहज और नैसर्गिक होने में सहारा दे पाएं, तो सम्यक शिक्षा होगी।
क्योंकि शिक्षा का एक ही लक्ष्य हो सकता है कि मनुष्य सुखी कैसे हो। शिक्षा का और कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। शिक्षा का एक ही लक्ष्य हो सकता हैः सच्चिदानंद की उपलब्धि कैसे हो?
लेकिन तुम्हारे स्कूल गणित सिखाते हैं, भूगोल सिखाते हैं, और न मालूम क्या-क्या सिखाते हैं। हिंदू-मुसलमान के युद्ध सिखाते हैं; ईसाई-

152

मुसलमानों के जेहाद सिखाते हैं; जहर सिखाते हैं। तुम्हारा अतीत छोटे-छोटे बच्चों के कोमल मस्तिष्कों में भर दिया जाता है। ठूंस-ठूंस कर भर दिया जाता है। और बच्चे असहाय हैं। न तो भाग सकते हैं, न बच सकते हैं। उनको लोभ दिया जाता है कि जो भी तुम्हें पिलाया जा रहा है, अगर ठीक-ठीक पीया और फिर परीक्षा की कापी पर ठीक-ठीक वमन कर दिया, उलटी कर दी बिल्कुल वैसी जैसी तुमने ली थी, बिना पचाए, तो तुम्हें बड़े पुरस्कार मिलेंगे। और अगर असफल हो गए, अगर हार गए, अगर अनुत्तीर्ण हो गए, तो बड़े कष्ट पाओगे, अपमान पाओगे। लेकिन न उन्हें प्रेम सिखाया जा रहा है, न उन्हें ध्यान सिखाया जा रहा है। और जहां प्रेम और ध्यान सिखाया जा रहा हो, सरकार मानने को भी राजी नहीं है कि वह स्थान शिक्षा का स्थल हो सकता है।
कल ही सरकारी कागजात मुझे मिले हैं, कि इस आश्रम को वे शिक्षा का स्थान नहीं मान सकते। उनकी शिक्षा की धारणा यह है कि औरंगजेब के संबंध में लोगों को पढ़ाओ, कि शिवाजी महाराज के संबंध में लोगों को समझाओ! मैं जो यहां कर रहा हूं, वह उन्हें शिक्षा नहीं मालूम होती। और सचाई यह है कि जिसको वे शिक्षा कहते हैं, वह शिक्षा नहीं है; शिक्षा के नाम पर धोखा है। उनकी शिक्षा से मनुष्य पैदा नहीं होता। उनकी शिक्षा से मशीनें पैदा होती हैं। मैं यहां ध्यान सिखा रहा हूं, प्रेम सिखा रहा हूं, उत्सव सिखा रहा हूं; होली सिखा रहा हूं, दीवाली सिखा रहा हूं। यह शिक्षा नहीं है! उत्सव से उन्हें क्या लेना-देना? आनंद से उन्हें क्या लेना-देना? ईश्वर-साक्षात्कार से उन्हें क्या लेना-देना? वे इस बात को मानने को राजी नहीं हैं कि इस स्थल को विश्वविद्यालय कहा जाए। सारे विश्व से लोग यहां आए हुए हैं। भारत के किसी विश्वविद्यालय में इतने देशों के लोग नहीं हैं जितने यहां हैं। यह विश्वविद्यालय नहीं है!
सारे विश्व के लिए जो विद्यालय हो, वह विश्वविद्यालय है।
लेकिन उनके अपने हिसाब हैं। वे कहते हैं कि यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन जब तक स्वीकार न करे, तब तक आप विश्वविद्यालय शब्द का प्रयोग भी करेंगे तो यह अपराध है।
कानूनविद कभी-कभी बहुत अंधे हो सकते हैं। लकीर के फकीर होते हैं। आंख खोल कर देख नहीं सकते कि ऐसा कोई देश नहीं है जहां के लोग यहां न आ गए हों। कुछ सीखने आए हैं; कुछ सीख रहे हैं। जीवन की कला सीख रहे हैं। जीवन के रूपांतरण का विज्ञान सीख रहे हैं। यह विश्वविद्यालय नहीं है! क्योंकि कानून के हिसाब से विश्वविद्यालय शब्द का उपयोग भी तभी किया जा सकता है, जब सरकार इसको स्वीकृति दे। शब्दों पर भी सरकारी मोहर चाहिए! शब्दों का भी पेटेंट हो गया है! शब्दों की भी अब हमारी मालकियत नहीं है!
मुझे कुछ रस भी नहीं है इसको विश्वविद्यालय कहने में। सच तो यह है कि तुम्हारे जैसे विश्वविद्यालय हैं, उनको देख कर इसको विश्वविद्यालय कहना ही नहीं चाहिए। क्योंकि तुम्हारे कचरा विश्वविद्यालयों के साथ मैं इसको एक ही श्रेणी में नहीं रखना चाहता। मैं खुद ही नहीं पसंद करूंगा कि यह विश्वविद्यालय कहा जाए। लेकिन सचाई यह है कि यह विश्वविद्यालय है और तुम्हारे विश्वविद्यालय विश्वविद्यालय नहीं हैं।
लेकिन उनकी अपनी धारणा है। शिक्षा का उनका बड़ा अजीब अर्थ है। शिक्षा
का अर्थ हैः जो थोप दिया जाए ऊपर से।
मेरा शिक्षा का अर्थ हैः जो तुम्हारे भीतर दबा है, जो तुम्हारा स्वभाव है, उसे उभारा जाए। ऊपर से न थोपा जाए, जगाया जाए। वास्तविक शिक्षण तुम्हारी सोई हुई आत्मा को जगाने की प्रक्रिया है। जानकारी नहीं है शिक्षण। जानकारी के अंबार लगा देने से भी कोई शिक्षित नहीं होता। पठित हो जाएगा, शिक्षित नहीं होता। लेकिन तुम्हारे भीतर का जो सोया हुआ परमात्मा है, अगर जरा भी जग जाए, जरा भी करवट ले ले, तो शायद तुम पठित न होओ, लेकिन शिक्षित तुम होओगे। हो सकता है तुम्हारी जानकारी ज्यादा न हो, न के बराबर हो, लेकिन तुम्हारा ज्ञान अपूर्व होगा; तुम्हारे भीतर ज्ञान की एक ज्योति होगी, एक आभा होगी! और ऐसी आभा, जो न केवल तुम्हें बदलेगी, बल्कि औरों को भी बदलेगी।

मनुष्य सुखी हो सकता है। मनुष्य सुखी होने को पैदा हुआ है। लेकिन हम उसे सुखी नहीं होने दे रहे हैं। मनुष्य स्वभावतः सुख में जन्मा है। लेकिन जन्मते ही हमने उसे दुख देने शुरू कर दिए हैं। और हमने इतनी सदियों से दुख दिए हैं कि अब हम यह भूल ही गए हैं कि दुख देने के लिए जिम्मेवार हम हैं। अच्छे-अच्छे नामों पर भी हम मनुष्य को विकृत कर रहे हैं। सुंदर-सुंदर नामों की आड़ में हम मनुष्य को जीने नहीं दे रहे हैं; पंगु कर रहे हैं। हमने मनुष्य को लंगड़ा कर दिया है, बहरा कर दिया है, अंधा कर दिया है। फिर से उसकी आंख खोली जानी चाहिए। फिर से उसके कान सक्रिय होने चाहिए। फिर उसका हृदय धड़कना चाहिए।
यह हो सकता है। क्योंकि यह हमारी स्वाभाविक क्षमता है। यह न हो पाए तो दुर्भाग्य; यह हो तो कुछ विशिष्ट बात नहीं। वृक्ष फूल तक पहुंच जाएं, यह स्वाभाविक है; न पहुंचें फूल तक तो कुछ बीच में बाधा पड़ गई। हर वृक्ष फूल तक पहुंच जाता है। पक्षी आनंदित हैं, पशु आनंदित हैं--एक आदमी को छोड़ कर। और आदमी सर्वाधिक आनंदित हो सकता है। पशु और पक्षी और पौधे क्या आदमी के साथ होड़ करेंगे!
मगर अभी हालत उलटी हो गई है। अभी गुलाब के पास खड़े होओगे, तो तुम उदास दिखते हो, गुलाब ज्यादा प्रसन्न दिखता है। अभी मोर को नाचते देखोगे, तो तुम्हारे भीतर ईर्ष्या पैदा होती है। मोर को तुम्हें देख कर ईर्ष्या पैदा नहीं होती, दया आती होगी कि बेचारा आदमी!
होना उलटा था। मनुष्य जीवन का चरम उत्कर्ष है, चैतन्य का सबसे ऊंचा शिखर है, परमात्मा की सबसे बड़ी कृति है। मगर न्यस्त स्वार्थ, स्थापित स्वार्थ, समाज के ठेकेदार, धर्मगुरु और राजनेता, इन सबके हाथ आदमी की गर्दन ऐसी दबाई गई है कि आदमी फांसी पर लटका हुआ है, आदमी सूली पर लटका हुआ है। आदमी जिसे सिंहासन पर होना था, सूली पर लटका है।
मैं उसे सिंहासन पर बिठाना चाहता हूं। और मजा यह है कि मैं जिस आदमी
को सिंहासन पर बिठाना चाहता हूं, वही आदमी मेरा विरोध करेगा। क्योंकि वह सूली का आदी हो गया है। मैं जिस आदमी के सम्मान के गीत गा रहा हूं, वे ही आदमी मुझे गालियां दे रहे हैं।
बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा है कि तुम जब लोगों को समझाने जाओगे तो
एक बात सदा ख्याल रखनाः तुम उनके हित में समझाओगे, मगर वे तुम्हारे साथ बहुत दुर्व्यवहार करेंगे। क्योंकि तुम्हारा देखना एक ऊंचाई से है; तुम पर्वत के शिखर से देखोगे; और वे अंधेरी खाइयों में जी रहे हैं, वे तुम्हें समझ न पाएंगे।
पूर्णकाश्यप नाम का भिक्षु जा रहा है बुद्ध के विचार को फैलाने।
बुद्ध ने कहा, तू कहां जाएगा?
उसने कहा, मैं सूखा प्रांत नाम का प्रदेश है बिहार में, वहां जाऊंगा।
क्योंकि वहां अब तक कोई भिक्षु आपका संदेश लेकर नहीं गया।
बुद्ध ने कहा, तू वहां न जा, पूर्ण! तू रुक, मेरी मान। इतनी मेरी मान।
वहां मत जा! वहां के लोग अच्छे नहीं हैं। इसीलिए तो अब तक कोई भिक्षु वहां गया नहीं। वहां के लोग बहुत दुष्ट हैं, महादुष्ट हैं। सताने में मजा लेते हैं। अकारण सताते हैं। तो तू मुश्किल में पड़ेगा।
लेकिन पूर्ण ने कहा, इसीलिए तो मैं जाना चाहता हूं। आखिर किसी को तो जाना चाहिए वहां! क्या उनको ऐसे ही छोड़ देना है?
उसका तर्क तो वजनी था। क्या उन्हें ऐसे ही छोड़ देना है? क्या उन पर करुणा नहीं करनी है?
तो बुद्ध ने कहा, ठीक है, तू जिद्द करता है तो जा। लेकिन तीन प्रश्नों
के उत्तर दे दे। पहला प्रश्न, अगर वे तुझे गालियां देंगे तो तुझे क्या होगा?
तो पूर्ण ने कहा, मुझे क्या होगा? यही होगा कि लोग भले हैं; सिर्फ गालियां देते हैं, मारते नहीं; मार भी तो सकते थे।
बुद्ध ने कहा, दूसरा प्रश्न, अगर वे मारें, मारने ही लगें, फिर तुझे क्या होगा?

पूर्ण ने कहा कि मैं समझूंगा कि लोग भले हैं, मारते ही हैं, मार ही नहीं डालते; मार भी तो डाल सकते थे।
बुद्ध ने कहा, तीसरा प्रश्न, बस तीसरा और आखिरी। अगर वे तुझे मारने ही लगें, मार ही डालने लगें, तो मरते-मरते तुझे क्या होगा?
तो पूर्ण ने कहा, मुझे होगा कि कितने भले लोग हैं, मुझे उस जीवन से छुटकारा दिला दिया जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी। मैं धन्यवाद देता मर जाऊंगा।
बुद्ध ने कहा, फिर तू जा सकता है, फिर तू कहीं भी जा सकता है। फिर तू तैयार हो गया।
लोग ऐसे ही अदभुत हैं। उनके हित की बात कही जाए, तो भी उन्हें रुचिकर न लगेगी। क्योंकि सदियों-सदियों से उन्होंने जिसे हित समझा है, यह बात उसके विपरीत पड़ेगी। उनकी फांसी को वे फांसी नहीं समझते, गलहार समझते हैं। जंजीरों को जंजीरें नहीं समझते, आभूषण समझते हैं। बेड़ियों को बेड़ी नहीं समझते, पायल समझते हैं, कि घुंघरू समझते हैं। और जब तुम उनके घुंघरू तोड़ोगे-- जो उनको घुंघरू मालूम पड़ते हैं, तुमको बेड़ी मालूम पड़ते हैं--तो वे नाराज होंगे।
मुझसे लोग नाराज हैं। मेरा कसूर सिर्फ एक है--कि मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि तुम दुखी क्यों हो। किसी पिछले जन्मों के कारण नहीं, किसी भाग्य के कारण नहीं, सिर्फ एक अंधी वर्तमान व्यवस्था के कारण। और जिम्मेवार तुम हो। क्योंकि तुम उस अंधी व्यवस्था को सहारा दे रहे हो। तुम अपना हाथ भी अलग नहीं करते।
इस अंधी व्यवस्था से अपने हाथ को अलग कर लेने का नाम संन्यास है। मेरी संन्यास की वही धारणा है। संन्यासी मैं उसे कहता हूं जो इस अंधी, शोषण की, दुख लाने वाली, पीड़ादायी, नरक निर्मित करने वाली व्यवस्था है, उससे अपना सहयोग तोड़ लेता है। वह कहता है, मैं इसमें सहयोगी नहीं हूं। जो कहता है, मैं अब सुख से जीऊंगा और नाक कटाने की मेरी तैयारी नहीं है--मैं कुछ भी कटाऊंगा नहीं, मुझे जो भी परमात्मा ने दिया है उस सबका उपयोग करूंगा और उस सबके भीतर से उसकी तलाश करूंगा जो छिपा है। मैं अपनी वीणा के तारों को तोडूंगा नहीं। अगर उनसे बेसुरा राग उठ रहा है, तो मैं राग उठाना सीखूंगा, तो मैं वीणा बजाना सीखूंगा।
वीणा बजाना सीखो, तुम्हारे भीतर सुख के सागर लहरा सकते हैं!

आखिरी प्रश्नः आप कुछ करें! आदमी रोज-रोज पापों की गर्त में डूबा जा रहा है। आदमी ऐसा बुरा तो कभी न था, जैसा आज है। आदमी को आखिर हो क्या गया है?

निरंजन! आदमी सदा से ऐसा ही है। शायद अगर कोई अंतर पड़ा है तो वह यही कि आदमी आज पहले से ज्यादा बेहतर है। क्योंकि आदमी आज पहले से ज्यादा सचेत है। इतना सचेत कभी भी न था। आदमी आज सोच-विचार करने लगा है। इतना सोच-विचार उसने कभी न किया था। ये अच्छे लक्षण हैं। ये वसंत के पहले खिलते हुए फूल हैं। वसंत आता ही होगा।
मैं निराशावादी नहीं हूं। और मैं आज के आदमी का विरोधी नहीं हूं।
जितने पीछे लौटो, आदमी उतना अंधा था। जितने पीछे लौटो, उतना अंधविश्वासी था। जो मैं तुमसे आज कह रहा हूं, अगर दो हजार साल पहले कहता, तो तुमने कभी की मुझे सूली लगा दी होती। आखिर तुमने जीसस को सूली लगाई ही थी! और जीसस ने जो कहा था वह उतना खतरनाक नहीं है जो मैं कह रहा हूं। और तुमने सुकरात को जहर पिलाया ही था! और सुकरात ने जो कहा था वह उतना खतरनाक बिल्कुल नहीं है जो मैं तुमसे कह रहा हूं।
आदमी पहले से बुरा नहीं हो गया है, निरंजन! हां, इतना जरूर हुआ है कि पुराने ढांचे ढीले पड़ गए हैं। पुरानी आज्ञाकारिता ढीली पड़ गई है। पुराने बंधन ढीले पड़ गए हैं। तो तुम्हें शक पैदा होता है कि आदमी बुरा हो गया है। आदमी बुरा नहीं हो गया है। आदमी थोड़ा ज्यादा स्वतंत्र हो गया है जरूर। और यह अच्छा लक्षण है! क्योंकि स्वतंत्रता शुभ है। आदमी आज उतने ही अंधे

हिसाब से पंडित-पुरोहितों के पीछे नहीं चलता, जैसे पहले चलता था। इससे पंडित-पुरोहित चिल्लाते हैं कि बिगड़ गया आदमी। लेकिन मेरे देखे ऐसा नहीं है। मैं तो जितना पीछे लौट कर देखता हूं, आदमी को उतना बुरा पाता हूं। और यही स्वाभाविक भी है। क्योंकि विकास का क्रम चल रहा है। हम बहुत धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं, माना, जल्दी बढ़ना चाहिए, थोड़ी त्वरा होनी चाहिए, मगर हम बढ़ रहे हैं।
आज से दो हजार साल पहले युद्धों को धर्मयुद्ध कहा जाता था। आज कोई युद्ध धर्मयुद्ध नहीं कहा जा सकता--कोई युद्ध। धर्म के नाम पर लड़ा हुआ युद्ध भी आज अधर्म-युद्ध कहा जाएगा। यह आदमी की चैतन्य की बढ़ती हुई क्षमता का सबूत है। आज हर युद्ध का विरोध है।
आज आश्चर्य की घटना घटती है कि अगर अमरीका वियतनाम में बम गिराता है,
तो अमरीकी युवक ही उसका विरोध करते हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ था दुनिया में। क्योंकि अगर हिंदुस्तान पाकिस्तान पर बम गिराए और हिंदुस्तान में कोई विरोध करे, तो तुम उसको गद्दार कहोगे। अभी हिंदुस्तान पिछड़ा है। अमरीका के युवकों ने, वियतनाम में बम गिराए जाएं, इसका विरोध किया। और फिर भी दुनिया ने उनको गद्दार नहीं कहा। उनको शांतिवादी कहा, शांतिप्रिय कहा। युवकों ने युद्ध में जाने से इनकार किया, सजाएं भुगतीं, जेलों में गए। अभी हिंदुस्तान इन अर्थों में बहुत पिछड़ा हुआ है। अगर हिंदुस्तान-पाकिस्तान का युद्ध हो और हिंदुस्तान में हजारों युवक यह कह दें कि हम युद्ध में नहीं जाएंगे, क्योंकि युद्ध अमानवीय है, तो तुम सोचते हो क्या होगा? तुम उनको गद्दार कहोगे। तुम उनका सम्मान न कर सकोगे। तुम यह सोच ही न सकोगे, यह कैसी बात हुई! क्योंकि तुम अभी भी हजार साल पीछे जी रहे हो। तुम अभी भी पुरानी भाषाओं में सोचते हो--युद्ध, धर्मयुद्ध, राष्ट्र, राष्ट्रीयता। ये सब पिटी-पिटाई बातें हो गईं। इनका कोई भविष्य नहीं है। सारी पृथ्वी एक है, इसका भाव उठ रहा है। और आने वाली पच्चीस वर्षों की यात्रा बड़ी अनूठी होने वाली है। यह सारी पृथ्वी एक होकर रहेगी। ये सब राष्ट्रों की सीमाएं बेहूदी हैं। इनके होने की अब कोई जरूरत नहीं है। आदमी आदमी एक है। फिर काला हो, कि गोरा हो, कि पीला हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये ऊपर के भेद हैं, भीतर के भेद नहीं।
लेकिन जरा तुम पुराने दिन की बातें सोचो!
राम का तुम कितना सम्मान करते हो! राम को तुमने अवतार कहा है। लेकिन जरा विचार करो, अगर आज की भाषा से सोचो, तो क्या राम को तुम अवतार कह सकोगे? अयोध्या में एक ब्राह्मण का बेटा मर गया। मरा अयोध्या में। ब्राह्मण बहुत नाराज हुआ। बाप के सामने बेटा मर जाए! उसने राम के पास दुहाई की। और कारण तुम जानते हो ब्राह्मणों ने क्या खोजा? कारण ब्राह्मणों ने यह खोजा कि हजारों मील दूर एक शूद्र चोरी से वेद-पाठ सुन लिया है, उसके कारण अयोध्या में इस ब्राह्मण का बेटा मर गया है। तो राम ने उस शूद्र के कानों में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया; क्योंकि उसने वेद सुन लिया था। ऐसे राम को तुम आज अवतार कह सकोगे?
मुझसे बहुत लोग कहते हैं कि आप कृष्ण पर बोले, बुद्ध पर बोले, महावीर
पर बोले, जीसस पर बोले; आप राम पर क्यों नहीं बोलते हैं?
कुछ अड़चनें हैं जिनके कारण मैं राम पर नहीं बोलता हूं। अब मैं इस घटना
का क्या करूंगा अगर बोलूं तो? इस घटना को कैसे... ? बहुत तरह से सोचता हूं कि किसी तरह से इस घटना को लीपा-पोता जा सके--राम को मैं भी बचाना चाहूं-- मगर यह बहुत मुश्किल है! राम का व्यवहार अमानवीय है। लेकिन उन दिनों यह बात ठीक थी। उन दिनों शूद्र को कोई मनुष्य थोड़े ही मानता था।
राम सीता को जीत कर लौटे हैं। और राम का उदाहरण ले रहा हूं, क्योंकि राम मर्यादा पुरुषोत्तम! श्रेष्ठतम पुरुष के जब ये व्यवहार हैं तो और दूसरों का तो क्या कहना? इसलिए राम का उदाहरण ले रहा हूं। श्रेष्ठतम का उदाहरण लेना चाहिए। क्योंकि निकृष्टतम तो निकृष्टतम हैं ही। लेकिन जब श्रेष्ठतम ऐसा व्यवहार करे, तो फिर निकृष्ट का तो तुम खुद ही हिसाब लगा लेना।

राम युद्ध जीत लिए हैं, सीता को अशोक-वाटिका से लाया गया है, और राम ने
जो शब्द कहे सीता से, वे अभद्र हैं, अशोभन हैं। वाल्मीकि में राम ने कहा है सीता को कि तू यह मत सोचना कि मैं तेरे लिए युद्ध लड़ा। तेरे होने न होने से क्या फर्क पड़ता है? मैं तो युद्ध लड़ा हूं कुल की प्रतिष्ठा के लिए।
कुल की प्रतिष्ठा! प्रेम का सम्मान नहीं, कुल का अहंकार! सीता के प्रति कोई सदभाव या कोई प्रेम नहीं। और फिर सीता से चाहाः अग्नि-परीक्षा दो।
कोई पूछता नहीं कि रामजी, आप भी इतने दिन अकेले रहे; कौन जाने किसी स्त्री इत्यादि से संबंध हो गया हो। तो आप दोनों ही परीक्षा क्यों नहीं देते हैं? सीता ही परीक्षा दे, वह स्त्री जाति का अपमान है। और राम की कोई परीक्षा नहीं? राम को भी इतनी ईमानदारी बरतनी चाहिए थी कि दोनों आग से गुजरते। लेकिन सीता को आग से गुजारा जाता है। क्योंकि पुरुष तो ठीक है ही। और पुरुष तो पुरुष है। उसकी महिमा तो अपार है। स्त्री की परीक्षा होनी चाहिए। स्त्री विश्वास योग्य नहीं है। यह फिर अपमान हुआ। और अपमान पर अपमान होते चले गए।
और बाद में, अंततः अग्नि-परीक्षा भी ले ली और फिर भी सीता का परित्याग
कर दिया, क्योंकि एक धोबी ने कह दिया अपनी पत्नी को, कि मैं कोई राम नहीं हूं कि तू रात भर घर के बाहर रहे और तुझे फिर मैं घर के भीतर ले लूं!
अगर ऐसा ही था तो स्वयं भी चले जाते वन। लेकिन पद को तो नहीं छोड़ा, पत्नी को छोड़ दिया। पद पत्नी से बड़ा है। पद प्रेम से बड़ा है। राज्य नहीं छोड़ा! छोड़ देते कि ठीक है, अगर लोगों को संदेह है तो मैं भी जाता हूं। लेकिन गर्भिणी स्त्री को छुड़वा दिया जंगल में। परीक्षा ले ली थी उसकी। फिर तो यह अन्याय हुआ।
मगर स्त्री के साथ अन्याय होता ही रहा, शूद्र के साथ अन्याय होता ही रहा। और अब भी हो रहा है। भारत में अब भी शूद्र जिंदा जलाए जाते हैं, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है, उनके बच्चों की हत्याएं की जाती हैं, उनके मकानों में आग लगाई जाती है--आज भी।
भारत पिछड़ा हुआ है। भारत समसामयिक नहीं है।
लेकिन अगर तुम पूछते हो कि आदमी रोज-रोज पापों के गर्त में क्यों डूबा
जा रहा है, तो तुम गलत पूछते हो। जहां तक आदमी का संबंध है, पूरी आदमियत का संबंध है, आदमी ऊपर उठ रहा है। आदमी के संबंध में निराश होने का कोई कारण नहीं है। आदमी की चेतना विकसित हो रही है, निखर रही है, सुंदर हो रही है। आज शूद्र जलाया जाता है तो तुम्हारे मन में भी कचोट लगती है। आज अगर शूद्र की स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है, तो तुमको भी अड़चन होती है। ये शुभ लक्षण हैं।
तो मैं ऐसा नहीं मानता कि आदमी पाप की गर्त में गिर गया है। मैं ऐसा भी नहीं मानता कि आदमी को क्या हो गया है! आदमी जो कुछ भी है, वह हजारों साल तुम्हारी परंपराओं ने जैसा उसे बनाया है, वैसा है। लेकिन उसमें कुछ-कुछ नई किरण फूटनी शुरू हो गई है। मैं आदमी के भविष्य के प्रति बहुत ही आशान्वित हूं। कठिनाइयां हैं, अंधेरे हैं, मुसीबतें हैं, लेकिन ये सब मुसीबतें पार की जा सकती हैं, ये सारी कठिनाइयां तोड़ी जा सकती हैं। सच तो यह है, ये सारी कठिनाइयां सीढ़ियां बन सकती हैं और ये सारी मुसीबतें निखार ला सकती हैं।

तलखियां जैसे फिजाओं में घुली जाती हैं,
जुलमतें हैं कि उमड़ती ही चली आती हैं,
आशियानों के करीं बिजलियां लहराती हैं,
जिंदगी एक अटल कोहे-गिरां है लेकिन,
जिससे बेदाद के शैतान भी टकराते हैं,
आग और खून के तूफान भी टकराते हैं,
मुंह की खाते हैं, पछड़ जाते हैं, जक पाते हैं, बागे-आलम पे हुए कितने खिजां के यलगार जिंदगानी पे कई मौत ने छापे मारे।
कभी यूनां से कभी रोम से तूफान उठे,

वादी-ए-नील से उबला कभी खूनी सैलाब,
आग भड़की कभी आतिशकदे-फारस से
जिंदगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई,
जितनी ताराज हुई, और संवरती ही गई।

जिंदगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई,
जिंदगी निखरती ही रही है, सारी आगें जलती रही हैं, शोले बरसते रहे हैं।
जिंदगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई,
जितनी ताराज हुई, और संवरती ही गई।
जितनी ध्वस्त हुई, उतनी और संवरती ही गई।
मैं निराशावादी नहीं हूं। अतीत की व्यर्थता की अगर मैं तुमसे बात कहता हूं तो सिर्फ इसीलिए ताकि तुम उसके ऊपर उठ सको, ताकि तुम उसमें दबे न रह जाओ।
जिंदगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई,
जितनी ताराज हुई, और संवरती ही गई।
मैं तो देखता हूं एक नया सूरज, एक नई सुबह, एक नया मनुष्य, एक नई पृथ्वी--वह रोज निखरती आ रही है। अगर हम थोड़े सजग हो जाएं तो यह और जल्दी हो जाए, यह रात जल्दी कट जाए, यह प्रभात जल्दी हो जाए।
ध्यान के दीयों को जलाओ और प्रेम के गीतों को गाओ। प्रेम के गीत और ध्यान के दीये, जो सुबह आज तक आदमी के जीवन में नहीं हुई, उसे पैदा कर सकते हैं। और आदमी बहुत तड़प लिया है, नरक में बहुत जी लिया है। समय है कि अब हम स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार लें। स्वर्ग उतर सकता है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
नौवां प्रवचन

ममता बंधन, प्रेम मुक्तिदायी

पहला प्रश्नः मैं ध्यान करूं या भक्ति? वर्षों से यही सोच रहा हूं। और चूंकि कुछ तय ही नहीं हो पाता है, इसलिए प्रारंभ भी करूं तो कैसे करूं?

कृष्णदास! मन के खेल बहुत सूक्ष्म हैं। मन की राजनीति बड़ी गहरी है। मन
एक कुशल कूटनीतिज्ञ है। और उसकी सबसे बड़ी कूटनीति यह है कि तुम्हें कभी तय ही न करने दे। तुम्हें कभी निर्णय ही न लेने दे। तुम्हें कभी किसी निष्पत्ति पर न पहुंचने दे। क्योंकि न होगा बांस, न बजेगी बांसुरी। निष्पत्ति ही न ले सकोगे तो कृत्य का जन्म ही नहीं होगा।
तो मन सदा डांवाडोल रखता है। मन कहता हैः यह या वह। और मन अनंत काल तक ऐसे ही डांवाडोल रख सकता है, रखा है। कृष्णदास, तुम कुछ इस जन्म में ही ऐसा सोच रहे, ऐसा नहीं, न मालूम कितने जन्मों से ऐसे ही सोच रहे होओगे। और तब मन का तर्क ठीक भी है कि जब तय ही न हो पाए, तो कुछ करूं तो कैसे करूं? पहले तय तो हो जाने दो! और मन तय होने न देगा। क्योंकि तय करने की क्षमता ही मन की नहीं है। निष्कर्ष मन की संभावना नहीं है। निष्कर्ष लिए जाते हैं हृदय से, भाव से, श्रद्धा से।
मन तो केवल संदेह करना जानता है। मन बहुत कुशल है संदेह करने में, बहुत प्रवीण है। संदेह को उसने खूब निखारा है। उस पर खूब धार धरी है। संदेह की छुरी उसके हाथ में है। और जो भी सामने पड़ जाए, वह छुरी टुकड़े- टुकड़े कर देती है। मन तोड़ना जानता है, जोड़ना नहीं जानता।
शेख फरीद, एक मुसलमान फकीर के पास एक सम्राट मिलने आया। उसके पास एक बहुमूल्य कैंची थी। सोने की थी, उस पर हीरे-जवाहरात जड़े थे। लाखों रुपए उसकी कीमत थी। किसी सम्राट ने उसे भेंट दी थी। क्या ले चलूं फकीर के पास? फरीद के प्रति उसकी बड़ी भावना थी। तो जो बहुमूल्यतम उसके पास चीज थी, वही कैंची ले आया। फरीद को कैंची दी।
कैंची लेकर फरीद हंसने लगा और उसने कहाः गलत जगह ले आए। मैं इस कैंची
का क्या करूंगा? क्योंकि काटने का धंधा ही मैंने बंद कर दिया। मैं चीजों को तोड़ता नहीं। मैं तो चीजों को जोड़ता हूं। अच्छा हो तुम कैंची तो ले जाओ, एक सुई-धागा मेरे लिए ला देना। क्योंकि सुई-धागे से जोड़ना हो सकेगा। कैंची से काटना होता है।
फरीद ने बड़े ही प्यारे ढंग से बड़ी अनूठी बात कह दी। मस्तिष्क तो कैंची है, काटता है। हृदय सुई-धागा है, जोड़ता है। श्रद्धा जोड़ती है, संदेह खंड-खंड करता है। श्रद्धा अखंड करती है।
तुम सोचते ही रहोगे तो कभी निर्णय न कर पाओगे कि भक्ति करूं या ध्यान।
और मजा यह है कि दोनों में क्या तुम सोचते हो बहुत भेद है? दोनों मार्ग हैं उसी एक मंजिल के। कोई पूरब से चले कि कोई पश्चिम से, पहुंच जाना है वहीं। सभी नदियां सागर में पहुंच जाती हैं। रास्ते अलग हैं, दिशाएं अलग हैं। और सभी श्रद्धाएं परमात्मा में पहुंच जाती हैं, फिर श्रद्धा भक्ति की हो कि श्रद्धा ध्यान की। श्रद्धा पहुंचाती है, न तो भक्ति पहुंचाती है और न ध्यान पहुंचाता है। ध्यान और भक्ति तो केवल निमित्त हैं, जो चीज पहुंचाती है वह श्रद्धा है।
और तुम संदेह में पड़े हो। तो तुम डूबते रहोगे, उबरते रहोगे, डूबते रहोगे, उबरते रहोगे। तुम कभी न घर के होओगे न घाट के, तुम धोबी के गधे रहोगे। तुम्हारी जिंदगी में कभी फूल न खिलेंगे। क्योंकि कभी तुम इतनी श्रद्धा ही न कर पाओगे कि जड़ें जमने का समय मिल सके।
फिर ध्यान और भक्ति में भेद क्या है, जिसके लिए तुम इतना चिंतन कर रहे हो?
ध्यान है आत्म-स्मरण और भक्ति है परमात्म-स्मरण। ध्यान है इस बात के प्रति बोध कि मैं परमात्मा हूं और भक्ति है इस बात का बोध कि शेष सब परमात्मा है। जो जान लेता है कि मैं परमात्मा हूं, वह निश्चित ही जान लेता

है कि शेष सब भी परमात्मा है। क्योंकि जो मेरे भीतर जीवित है, वही शेष सबके भीतर जीवित है। जो मेरे भीतर श्वास ले रहा है, वही सबके भीतर श्वास ले रहा है। तो ध्यानी अंततः भक्ति पर पहुंच ही जाता है।
और जो सोचता है कि सबके भीतर परमात्मा विराजमान है, क्या वह अपने को अपवाद कर लेगा? क्या वह अपने को छोड़ कर सब में परमात्मा देखेगा? सिर्फ अपने में नहीं देखेगा? जिसे सब में दिखाई पड़ेगा, उसे स्वयं में भी दिखाई पड़ेगा। भक्ति से जो चलेगा, ध्यान उसके पीछे अपने आप छाया की भांति चला आता है।
भक्ति और ध्यान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--तुम क्या सोचने बैठे हो? करना ही न हो तो बात अलग, तो खूब सोचो! जिसे न करना हो, उसके लिए श्रेष्ठतम विधि है, सोचना। जिसे कभी जीवन को रूपांतरित न करना हो, उसके लिए सबसे बड़ी सुरक्षा है, सोचना। यह बचाव है। इस आड़ में तुम छुपे रह सकते हो। मगर किसको धोखा दोगे? यह आत्मवंचना है। अपने को ही धोखा दोगे।
कृष्णदास, अब कुछ करो। कुछ भी सही। निर्णय न कर सको, तो एक रुपया हाथ में लेकर उसे फेंक कर चित-पट कर लो! और तुमसे मैं कहता हूं, चित भी उसकी, पट भी उसकी।

फिर चिरागों से धुआं उठने लगा, कुछ कीजिए।
अब तो इस घर में भी दम घुटने लगा, कुछ कीजिए।
आज अपनी खिड़कियां खोलें तो खोलें किस तरह,
इन उजालों का भरम खुलने लगा, कुछ कीजिए।
रात का आलम अगर होता तो कोई बात थी,
दिन निकलते आदमी लुटने लगा, कुछ कीजिए।
दोस्तो फिर इस शहर पर गिद्ध मंडराने लगे,
मौत का सामान फिर जुटने लगा, कुछ कीजिए।
एक जंगल फिर कहीं तारी न हो इस दौर में,
जिंदगी का हरापन बुझने लगा, कुछ कीजिए।

जरा देखो तो, जिंदगी का हरापन बुझने लगा। दिन बीते जाते हैं। दिन रीते जाते हैं।
मौत का सामान फिर जुटने लगा, कुछ कीजिए।
और मौत कब पकड़ लेगी और तुम यही बैठे सोचते रहोगे कि ध्यान करें कि भक्ति? और मौत तुमसे यह न पूछेगी कि मरना है कि नहीं? मौत बस आकर दबोच लेगी। सोचने-विचारने का मौका न देगी। कुछ करो!
लेकिन करना तभी संभव हो पाता है, जब व्यक्ति विचार के व्यर्थ ऊहापोह
से मुक्त हो। जिंदगी कुछ करने से बदलती है, बैठे-बैठे सिर के भीतर खुजलाहट को चलाते रहने से नहीं। और विचार खुजलाहट से ज्यादा नहीं है, खुजली का खुजलाना है। उससे कुछ राहत नहीं मिलती। भला शुरू-शुरू में थोड़ी मिठास का अनुभव होता हो, फिर पीछे बहुत पीड़ा होती है।
जगाओ अपने को! ध्यान तो ध्यान, भक्ति तो भक्ति। मरता हुआ आदमी यह नहीं पूछता कि जल सरोवर का है, कि कुएं का है, कि नदी से लाए। मरता हुआ आदमी जल को देख कर एकदम अंजुलि भर कर पीने में लग जाता है।
तुम्हें भ्रांति है। तुम सोच रहे हो, सदा जीना है; कि बहुत समय तुम्हारे पास है; कि गंवाओ जितना चाहो उतना!
कहते होः "वर्षों से सोच रहा हूं, कुछ तय नहीं हो पाता।"
जन्मों तक सोचो, तब भी तय नहीं होगा। तय करना मन की क्षमता नहीं है। इस सत्य को देखो--मन कभी तय नहीं कर पाता। और जो भी तुमने कभी तय किया है, जरा अपने भीतर छानना, खोदना और तुम पाओगेः निर्णय सदा हृदय से आते हैं।
तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए। मन तो सोचता ही रहता है। लेकिन हृदय है कि प्रेम में पड़ गया। इसीलिए तो मन कहता है कि हृदय अंधा है, कि प्रेम अंधा है। अगर मन की आंख से कोई प्रेम करने चले, तो प्रेम कभी होगा ही नहीं। तुम सोचने-विचारने में ही समय गंवा दोगे।

तुम्हारे जीवन में जो भी हुआ है... कोई संगीतज्ञ हो गया है; देखे जरा गौर से। अगर मन से सोचता कि संगीतज्ञ हो जाऊं, कि डाक्टर हो जाऊं, कि चिकित्सक हो जाऊं, कि इंजीनियर हो जाऊं, कि यह हो जाऊं, वह हो जाऊं, तो दुनिया में हजार विकल्प थे। लेकिन उसके हृदय को संगीत ने पकड़ लिया। सब छोड़-छाड़ कर वह संगीत में डूब गया। तो संगीतज्ञ हो पाया है।
तुमने भी जिंदगी में कुछ किया होगा। अच्छे काम न किए होंगे तो कम से
कम बुरे काम तो किए ही होंगे। पाठ तो एक ही है, अच्छे काम हों कि बुरे काम हों। किसी ने गाली दी। तुम जरा सोचो बैठ कर कि उत्तर दें कि न दें? सोचो बैठ कर कि उत्तर किस भाषा में दें? गालियां कौन सी ठीक और मौजूं और न्यायसंगत होंगी? सोचो बैठ कर, इसने जो गाली दी है कहीं सच्ची ही न हो! जैसे किसी ने तुमसे कह दियाः उल्लू का पट्ठा। हो सकता है कि तुम उल्लू के पट्ठे ही हो। तो इसमें फिर गाली क्या रही? हो सकता है इसने ठीक ही कहा हो। या यह भी हो सकता है कि इसने बिल्कुल झूठ कहा है। तो झूठ से क्या परेशान होना!
इसीलिए तो बुद्धों ने कहा है कि बुरा काम करने के पहले सोचना; जितना सोच सको सोचना। बुद्धों ने कुंजी दी है तुम्हें, कि अगर तुमने बुरे काम करने के पहले सोचा, तो बुरे काम कर न सकोगे। कुंजी वही है! जिस काम के संबंध में सोचोगे, उसे कर न सकोगे। बुद्धों ने कहा हैः शुभ काम करना हो तो तत्क्षण कर लेना, सोचना मत। और बुरा काम करना हो तो जल्दी क्या है? टालना। कल करेंगे, परसों करेंगे, थोड़ा सोच लें, फिर करेंगे।
तुम उलटा करते हो। बुरा काम तो तत्क्षण कर लेते हो, बिना सोचे कर लेते हो। जब कोई गाली देता है, उस समय तुम फिर नहीं सोचते कि भई आना कल, जरा मैं सोच लूं! उसी क्षण जूझ जाते हो। और जब कोई शुभ काम करना हो--कि भक्ति, कि ध्यान--तो तुम वर्षों से सोच रहे हो!
बुद्धों में और तुम में इतना ही फर्क है। बुद्धिमानों में और गैर-बुद्धिमानों में इतना ही फर्क है। ज्यादा फर्क नहीं है। गैर-बुद्धिमान बुरे को बिना सोचे करते हैं, बुद्धिमान भले को बिना सोचे करते हैं। बस इतना छोटा सा फर्क, लेकिन जमीन-आसमान का फर्क हो जाता है।

जगाओ थोड़ा अपने हृदय को। तुम्हारा हृदय सोया पड़ा है। बुद्धि शोरगुल मचा रही है और हृदय बिल्कुल बेहोश है।

बन न जाए यह शहर की जिंदगी जैसी कहीं,
जोर से पत्थर उछालो, झील को सोने न दो।

वर्जनाएं जिस कथा का शीर्षक था
देर से आई समझ में आ गई है
चापलूसी में किनारों की लगे जो
यह नदी सी जिंदगी पथरा गई है

गड़ गई जब पांव में, इसको हिलाते ही रहो, दर्द जितना हो मगर इस कील को सोने न दो। हो रहे आबाद बाहर से, सही है
सिर्फ भीतर ही उजड़ते जा रहे हैं
और समझौता सभी ने कर लिया है
शब्द ही बस युद्ध लड़ते जा रहे हैं

बैठना इसका अशुभ है, यह उड़े, उड़ती रहे, कंकड़ें मारो, समय की चील को सोने न दो।

आंसुओं को हम पिरोने में लगे थे
दर्द की जब राजधानी लुट रही थी
हम विधायक की तरह थे स्नानघर में

रोशनी की जब जवानी लुट रही थी

गांव ही बस रह गया है रोशनी के नाम पर,
कुछ करो इस आखिरी कंदील को सोने न दो।

तुम्हारे भीतर ज्योति का स्रोत हृदय है। तुम्हारे भीतर जलती हुई कंदील हृदय है। बुद्धि तो बहुत जागी है और हृदय की कंदील बहुत सोई है। उसे जगाओ थोड़ा।
और जगाने का उपाय क्या है?
छोटे-छोटे श्रद्धा के कृत्यों में उतरो। छोटे-छोटे निर्णय लो। बड़े निर्णय की भी मैं नहीं कह रहा हूं। तैरने जाते हो तो उथले में तैरना सीखते हो, फिर गहरे की यात्रा करते हो। चलो, उथले में ही थोड़े-थोड़े निर्णय लो। और फिर करके देखो, तब तो कुछ निर्णय हो। भक्ति भी करके देखो, ध्यान भी करके देखो। दोनों का स्वाद लेकर देखो। कौन जाने कौन रुच जाए! किसी को भक्ति रुच जाती है, किसी को ध्यान रुच जाता है। लेकिन स्वाद के बिना रुचे तो कैसे रुचे?
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। कुछ लोग जो भक्ति से पहुंचते, कुछ लोग
जो ध्यान से पहुंचते। कौन जाने, कृष्णदास, तुम उन दो में से किसमें होओ? मगर एक बात पक्की है कि दो में से एक में जरूर तुम होओगे। चलो, दोनों का ही स्वाद ले लें। फिर जो पट जाए, जो भा जाए, जो रुच जाए; जो पच जाए, जो तुम्हारी मांस-मज्जा बन जाए। फिर उसी को चुन लेना।

अपनी-अपनी मंजिल सबकी अपनी-अपनी चाल,
रुकता कोई तोड़ निकलता है कांटों का जाल।

बैसाखी के बल पर कोई चूमे गिरि का भाल,
तू अपना हौसला न कम कर अपने पांव सम्हाल।

तू जंगल का फूल खिला है पतझड़ के भी बीच,
कागज के नकली फूलों का लेकिन कौन कमाल।

कुछ ऐसे कोमल तन अतिशय सुख भी जिनको भार, कुछ ऐसे दुखते मन जिनके मुख पर नहीं मलाल।

प्रश्नों की तो भीड़ बड़ी है, उत्तर देगा कौन, पर कुछ ऐसे उत्तर जिनका कोई नहीं सवाल।

मुसकानों पर ताला छोटी खुशियों पर भी रोक, आंसू कुंठा दर्द वेदना का अब नहीं अकाल।

उनका क्या कहना जिनके सोने-चांदी के पंख,
पिंजरे के पंछी कैसे उड़ बैठें अपनी डाल।

कुछ क्षण को सहला तो लें युग-युग के दुखते घाव,
पंछी ले उड़ जाएंगे फिर आखेटक का जाल।

अपनी-अपनी मंजिल सबकी अपनी-अपनी चाल,
रुकता कोई तोड़ निकलता है कांटों का जाल।

तुम्हारी भी अपनी कोई चाल है। मगर चलो तो पहचान में आए। ऐसे भी चलो, वैसे भी चलो।
इसीलिए तो मेरे इस बुद्धक्षेत्र में ध्यान भी चल रहे हैं, भक्ति भी चल रही है। प्रेमी नाच रहे हैं मस्ती में और ध्यानी ध्यान कर रहे हैं। दोनों

साथ-साथ चल रहा है। ऐसा कभी भी नहीं हुआ था। बुद्ध के पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे ध्यान किए। मीरा के पास जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने भक्ति की। यह पृथ्वी पर पहली बार हो रहा है, जहां सूफी मस्ती और सूफी नृत्य और जहां भक्तों का आनंद और भक्तों की गागर छलक रही, और जहां साथ-साथ विपस्सना ध्यान और झाझेन और गहन-गहन ध्यान की प्रक्रियाएं भी साथ-साथ चल रही हैं। दोनों अवसर तुम्हें दे रहा हूं। तुम मालिक हो। दोनों का स्वाद ले लो। फिर निर्णय अपने से हो जाएगा।
मगर तुम बैठे बाहर। न तुम करते ध्यान, न तुम करते भजन, तुम बैठे दूर प्रेक्षक की तरह, दर्शक की तरह विचार कर रहे--क्या करूं, क्या न करूं? ऐसा तो नहीं है कि कहीं बहुत आलस्य है मन में, बहुत तमस है मन में?
दो आलसी एक वृक्ष के नीचे पड़े थे... सत्यप्रिया ने मुझे एक छोटा सा चुटकुला भेजा है... जामुन का वृक्ष। एक जामुन गिरी। एक आदमी ने दूसरे से कहा कि हद्द हो गई अलाली की भी! जामुन गिरी और तू इतना भी न कर सका--और जिंदगी की मैत्री, और लोग कहते हैं कि मित्र वही जो वक्त पर काम आए--जामुन पड़ी है और तू उठा कर मेरे मुंह में भी नहीं दे सकता! यह कैसी मैत्री? उस दूसरे आदमी ने कहा, और अपनी तो सोचो! अभी कुत्ता मेरे कान में मूत रहा था, जीवन-जल बरसा रहा था, और तुमने देख भी लिया तो भी आंख बंद किए पड़े रहे! कुत्ते को भगा भी न सके!
एक आदमी राह से गुजर रहा था, उसने दोनों की बात सुनी। सोचा होगा, हद्द
हो गई अलाली की भी! लेकिन फिर भी दया तो आई। अब यह तो सीमा के बाहर हो गई बात कि कुत्ता जीवन-जल बरसाए, तो भी दूसरा भगाए, खुद न भगाया। तो वह पास आया और उसने दो जामुनें उठा कर दोनों के मुंह में डाल दीं और कहा, भाई, अब तो प्रसन्न हो? और जाने लगा। उन्होंने कहा, रुको! गुठलियां कौन निकालेगा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह सब सोच-विचार सिर्फ आलस्य को सुंदर परिधान पहनाना है? कुछ करना नहीं चाहते--न ध्यान, न भक्ति--सो सुगम उपाय खोज लिया हैः सोचते रहेंगे, विचार करते रहेंगे।
जिंदगी में और चीजों के संबंध में तो कृष्णदास, ऐसा नहीं करते। पानी पीएं या न पीएं? भोजन करें या न करें? आज रात सोएं या न सोएं? जिंदगी के और सब काम तो तुम मजे से किए जा रहे हो, सिर्फ भक्ति में और ध्यान में ही सारा सोच-विचार लगा दिया? शायद कारण यह हो कि जिन चीजों का तुम्हारी आंखों में मूल्य है, उनको तो तुम कर लेते हो; और जिनका मूल्य नहीं है, उनको सोचते हो। या तो भूल ही जाओ। क्यों व्यर्थ समय गंवाना? ध्यान, भक्ति, दोनों भूल जाओ। या तो भूल ही जाओ, झंझट छोड़ो, जिंदगी में और हजार काम हैं! कुछ थोड़ा और कमा लो, कुछ थोड़ा और बड़ा मकान बना लो, थोड़ा और बैंक में धन इकट्ठा कर लो। कहां की व्यर्थ की बातों में पड़े हो! या तो छोड़ ही दो! और अगर न छोड़ सकते होओ, अगर यह धुन उठ ही रही हो, तो फिर दोनों करके देख लो। निर्णय आएगा अनुभव से। श्रद्धा जगेगी अनुभव से। प्रीति उमगेगी अनुभव से।

दूसरा प्रश्नः आपने एक प्रवचन में कहा था कि पुरुष के लिए "मैं-भाव"
और स्त्री के लिए "मेरा-भाव" अर्थात ममता बाधा है। क्या ममता प्रेम का ही दूसरा रूप नहीं है? क्या इतने प्रेमपूर्ण गुण को, जो कि मेरे जीवन पर छा गया है, उसे छोड़ना ही पड़ेगा? और रूखा-सूखा होकर रहना पड़ेगा? कृपया मार्गदर्शन दें।

कश्मीरा! मैं और मेरा, दोनों प्रेम के दुश्मन हैं। दोनों प्रेम को नष्ट करते हैं। दोनों प्रेम के लिए कैंसर हैं। और तू समझ रही है कि मैं और मेरा ही प्रेम है! और तू समझ रही है कि मैं और मेरा चला गया, तो जीवन रूखा- सूखा हो जाएगा! जीवन रूखा-सूखा है--मैं और मेरे के कारण। और अगर थोड़ी-बहुत हरियाली कहीं जीवन में हो भी, कहीं एकाध-दो पत्ते कभी निकल भी आते हों, तो यही समझना कि मैं और मेरे के बावजूद निकल आते हैं; मैं और मेरे के कारण नहीं। कुछ हिस्सा होगा तेरे भीतर जो मैं और मेरे से खाली है, वहीं थोड़ी हरियाली होगी, वहीं थोड़ा मरूद्यान होगा। नहीं तो मरुस्थल ही मरुस्थल होगा।

मैं यानी अहंकार। अहंकार और प्रेम का क्या संबंध हो सकता है? प्रेम तो अहंकार का विसर्जन है। जब भी किसी के प्रति प्रेम उमगता है, तो उसके प्रति हम अपना अहंकार छोड़ देते हैं, उसके प्रति हम अपने मैं को समर्पित कर देते हैं। फिर चाहे साधारण जगत का प्रेम हो और चाहे भगवान का प्रेम हो, मौलिक प्रक्रिया तो एक ही है। जिस स्त्री को तुमने प्रेम किया, या जिस पुरुष को तुमने प्रेम किया, उस प्रेम में तुम्हें परित्याग क्या करना पड़ता है? प्रेम मांगता क्या है?
एक ही चीज मांगता है कि मैं को समर्पित करो। और जब भी कोई स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के प्रति अपने मैं को समर्पित कर पाते हैं, तो उनके जीवन में बड़ी हरियाली होती है, बड़े फूल खिलते हैं, बड़ी सुवास उठती है। मगर यह बहुत मुश्किल से होता है। क्योंकि आखिर स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष है। इनके प्रति मैं को पूरी तरह समर्पित करना करीब-करीब असंभव है। और अगर कभी-कभी समर्पित हो भी जाए, तो वह क्षणभंगुर ही होता है। उस क्षण में थोड़ी झलक मिलती है रस की, थोड़ा मन विमुग्ध होता है, थोड़े प्राण आनंदित होते हैं, मगर क्षण को! और फिर अंधेरी रात। फिर गहन अंधेरी रात। एक क्षण को जैसे कौंध गई बिजली और फिर अमावस की रात। जो पहले से भी ज्यादा अंधेरा कर देती है। इसलिए प्रेम में थोड़ा सुख भी है और बहुत ज्यादा दुख भी है। जिन्होंने प्रेम किया है उन्होंने सुख ही नहीं जाना, उन्होंने सुख से भी ज्यादा गहन दुख जाना है। इसलिए बहुत से लोग तो प्रेम में पड़ते ही नहीं। छोटे से सुख से वे वंचित रह जाएंगे, मगर बहुत बड़े दुख से भी वंचित रह जाएंगे। इसीलिए तो बहुत से लोग सदियों-सदियों तक जंगल में भाग गए हैं। उन स्थानों से भाग गए हैं जहां प्रेम हो सकता था। संसार का अर्थ क्या होता है? जहां प्रेम होने की संभावना है। जहां प्रेम का अवसर है। जहां दूसरे मौजूद हैं। जहां कौन जाने कब किसी से मन का मेल बैठ जाए! कौन जाने कब किसी से राग जुड़ जाए! कौन जाने कब किसी की वीणा के साथ वीणा बज उठे! कौन जाने कब और किसके साथ!
भाग जाओ! सदियों-सदियों से साधु-संत भागते रहे जंगलों में, पहाड़ों में। किससे भाग रहे हैं? वे कहते हैं, हम संसार से भाग रहे हैं। लेकिन अगर तुम उनके मनोविज्ञान को समझो, तो इस बात में ज्यादा अड़चन न होगी समझने में कि वे प्रेम से भाग रहे हैं, संसार से नहीं। प्रेम की जहां संभावना है, चुनौती है, वहां से भाग रहे हैं। संसार प्रेम का ही दूसरा नाम है।
प्रेम से तो भाग जाते हैं, क्योंकि प्रेम से डर लगता है--थोड़ा सा सुख लाता है और बहुत दुख लाता है। एकाध तो गुलाब का फूल खिलता है, जरूर खिलता है, मगर हजार-हजार कांटे ले आता है, सारी छाती कांटों से छिद जाती है। हां, आती है कभी-कभी एक सुवास भी, एक सुगंध की लहर भी, और फिर बहुत दुर्गंध भर जाती है। थोड़ा सा सुख और परिणाम में बहुत दुख। तो लोगों ने सीधा गणित बिठा लिया कि भाग ही जाओ ऐसी जगह से, जहां दुख-सुख का इतना उपद्रव है।
लेकिन ऐसे भागे हुए लोग महा अहंकारी हो जाते हैं। इसलिए तुम अपने साधु-संतों में जिस तरह का अहंकार देखोगे, वैसा अहंकार कहीं और न देखोगे। उनका अहंकार बहुत प्रकट होगा, बहुत प्रगाढ़ होगा, बहुत सूक्ष्म होगा और बहुत गहरा होगा। क्योंकि प्रेम ही मिटा सकता था अहंकार को। वे तो प्रेम को ही छोड़ कर चले गए। अब तो अहंकार को मिटाने वाला कोई भी न रहा। अब तो बीमारी ही रही, औषधि न रही। और उनके जीवन में तुम्हें रेगिस्तान मिलेगा, वहां कोई हरियाली नहीं होगी।
कश्मीरा, तू ठीक कहती है। अगर मैं पुराने ढंग के साधु-संन्यासी पैदा
कर रहा होता तो तेरा वक्तव्य बिल्कुल ठीक था--कि फिर तो जीवन रूखा-सूखा हो जाएगा। लेकिन मैं तो किसी और ही संन्यास की बात कर रहा हूं। ऐसे संन्यास की जो प्रेम से भागता नहीं, वरन प्रेम के सत्य में जागता है। ऐसे संन्यास की जो प्रेम को क्षणभंगुर ही नहीं स्वीकार करता, बल्कि अपनी शाश्वत सचाई की तरह अंगीकार करता है। जो संसार से नहीं भागता और प्रेम से नहीं भागता, बल्कि अहंकार को त्यागता है। क्योंकि दुख प्रेम से नहीं आता, प्रेम से तो सुख ही आता है, क्षणभंगुर ही सही। हां, जब प्रेम चला जाता है और अहंकार मजबूत हो जाता है, तब दुख आता है।
यह जरा सूक्ष्म प्रक्रिया है, इसलिए ठीक से देखोगे तो ही समझ पाओगे।

दुख प्रेम से कभी नहीं आता। दुख अहंकार से आता है, मोह से आता है, ममता
से आता है, मैं-भाव से आता है। इसलिए शुरू-शुरू में प्रेम के संबंध बड़े सुखद और प्रीतिकर होते हैं। हनीमून के दिन बड़े सुखद होते हैं, बड़े प्रीतिकर होते हैं। क्योंकि अभी मैं नहीं आया। अब आएगा। जल्दी ही विवाह होगा, घर-गृहस्थी बसेगी, और मैं लौटेगा अपने पूरे फौज-फांटे के साथ, अपने पूरे हमले के साथ। पति पैदा होगा, प्रेमी विदा हो जाएगा। पत्नी पैदा होगी, प्रेयसी विदा हो जाएगी। प्रेयसी मर जाएगी, उसकी लाश पर पत्नी खड़ी होगी। प्रेमी राख हो जाएगा, उसकी राख पर पति अकड़ आएगा, अकड़ कर खड़ा होगा। जहां पति और पत्नी आ गए, वहां दुख आ गया। जब तक प्रेमी थे और प्रेयसी थी, कुछ बात और थी, गुण और था। अभी मैं नहीं था। अभी दावा नहीं था। अभी दावेदारी नहीं थी। अहंकार के कारण आता है दुख। ममता अहंकार का रूप है। मेरा, यह दावा ही अहंकार है। जिस दिन तुमने कहा, यह मेरी पत्नी है, उसी दिन तुमने उस स्त्री के प्राणों की आहुति चढ़ा दी। तुमने उसकी स्वतंत्रता मार डाली। तुमने उसकी गर्दन दबा डाली। अब तक जीवित थी, आकाश में उड़ता हुआ पक्षी थी, अब पिंजड़े में बंद पत्नी है। हां, तुमने आभूषण दे दिए हैं, सुंदर साड़ियां ले आए हो, वह सब तुमने पिंजड़े को खूब सजा दिया है। लेकिन अब रस नहीं बहेगा। और जिसको तुमने पिंजड़े में बंद किया है, वह बदला लेगी। आखिर कौन परतंत्र होना चाहता है? वह भी मालिक होना चाहेगी। वह भी तुम पर कब्जा करना चाहेगी। उसमें भी हजार ईर्ष्याएं पैदा होंगी, हजार जलनें पैदा होंगी, हजार महत्वाकांक्षाएं पैदा होंगी। पति सोचता हैः मैं मालिक। पत्नी सोचती हैः मैं मालिक। दोनों एक-दूसरे पर कब्जा करने की चेष्टा में लगे होते हैं।
यह है ममता का जाल। इस ममता के जाल में, कश्मीरा, कहां हरियाली? धोखा है। या कि दूर का ढोल है सुहावना।
तू पूछती हैः "आपने एक प्रवचन में कहा था कि पुरुष के लिए मैं-भाव और स्त्री के लिए मेरा-भाव अर्थात ममता बाधा है। क्या ममता प्रेम का ही दूसरा रूप नहीं है?"
नहीं, जरा भी नहीं। ममता प्रेम की लाश है। प्रेम की सड़ांध है। ममता प्रेम की समाप्ति की घोषणा है। जब तक प्रेम है, तब तक ममता नहीं होती, मोह भी नहीं होता। तब तक एक निश्छलता होती है, एक स्वतंत्रता होती है। जब तक प्रेम है, तब तक प्रेमी एक-दूसरे को मुक्त करते हैं। प्रेम मुक्ति लाता है, ममता बंधन लाती है। दोनों एक कैसे हो सकते हैं?
मगर तेरी बात मैं समझता हूं। शब्दकोश में यही अर्थ लिखा है। और जीवन
के सामान्य शिक्षण क्रम में भी यही समझाया जा रहा है कि ममता यानी प्रेम। मगर अस्तित्व के जगत में ममता प्रेम नहीं है, प्रेम का ठीक विपरीत है। अगर प्रेम अमृत है तो ममता जहर है।
तू कहती हैः "क्या ममता प्रेम का ही दूसरा रूप नहीं है?"
जरा भी नहीं! जहां से उड़ चुका प्रेम वहां पड़ी रह जाती है एक मुर्दा लाश, उसको तुम ममता कहते हो। फिर पूजो उस लाश को। चढ़ाओ फूल उस पर। लेकिन जीवन उस घर से उड़ चुका। खाली पिंजड़ा रह गया है, हंसा जा चुका।
तूने पूछाः "क्या इतने प्रेमपूर्ण गुण को... "
ममता को मैं प्रेमपूर्ण गुण कहता ही नहीं। ममता अगर ठीक से पहचानी जाए तो घृणा तो हो सकती है, प्रेम नहीं हो सकती। जरा जटिल होगी बात समझनी, क्योंकि सदियों-सदियों का संस्कार हमारा ऐसा है कि ममता यानी प्रेम। और मैं तुमसे कह रहा हूंः ममता का अर्थ ही यह होता है कि प्रेम नहीं है, अब हम चाहते हैं कि कब्जा हो दूसरे पर। ममता राजनीति है, प्रेम धर्म है। ममता मालकियत है, प्रेम मुक्तिदायी है। ममता कहती है कि मुझे कभी मत छोड़ना। ममता कहती है कि मैंने यह लक्ष्मण-रेखा खींची, इसके बाहर मत जाना। ममता कहती है, तुम मेरे हो, और किसी के भी नहीं। ममता बड़ी ईर्ष्यालु है। और ईर्ष्या घृणा का हिस्सा है, घृणा की छाया है। ममता ने रूप ले लिया है प्रेम का, मुखौटा ओढ़ लिया है प्रेम का, और इसलिए खूब धोखा दे रही है।
लेकिन सच्चा प्रेम दूसरे पर दावा नहीं करता।
खलील जिब्रान ने ठीक कहा हैः तुम अपने बच्चों को प्रेम तो करना, लेकिन अपने विचार मत देना। तुम अपने बच्चों को प्रेम तो करना, लेकिन उन पर अपना

अधिकार मत जतलाना। क्योंकि अधिकार जतलाया, अपने विचार दिए--तुमने उनकी गर्दन पर फांसी लगा दी। उन्हें तुमने अपने सांचे में ढाला--कि यह घृणा हो गई, प्रेम न रहा।
दो प्रेमी एक-दूसरे के मालिक नहीं होते, एक-दूसरे के संगी-साथी होते हैं। दो प्रेमी एक-दूसरे से अपेक्षाएं नहीं रखते, मांगें नहीं रखते, शर्तें नहीं रखते। उनका दान बेशर्त होता है। प्रेमी देना चाहता है और ममता लेना चाहती है। ममता छीन-झपट है--ज्यादा! और ज्यादा! और ज्यादा! और ममता का यह भिक्षापात्र कभी भरता नहीं। प्रेम कहता हैः ले लो। मैं बांट रहा हूं। मैं धन्यभागी हूं कि तुमने स्वीकार किया। लेकिन प्रत्युत्तर नहीं मांगता प्रेम। ममता देना तो चाहती नहीं, और प्रत्युत्तर मांगती है-- दो! ममता का स्वर है--दो! और दो! इतना काफी नहीं है।
कौन पत्नी राजी है अपने पति के प्रेम से? सोचती हैः और मिलना चाहिए। कौन पति राजी है अपनी पत्नी के प्रेम से? सोचता हैः और मिलना चाहिए। बच्चे प्रसन्न हैं अपने माता-पिताओं से? सोचते हैंः और मिलना चाहिए। और माता- पिता प्रसन्न हैं अपने बच्चों से? सोचते हैंः और मिलना चाहिए। कितना ही मिले, ममता का भिक्षापात्र भरता नहीं। और प्रेम भिक्षापात्र है ही नहीं। प्रेम तो बादशाहत है। प्रेम तो दान है। प्रेम तो देना है। प्रेम तो बांटना है।
ये दोनों बड़ी अलग बातें हैं, कश्मीरा! ममता को प्रेमपूर्ण गुण मत समझ लेना, अन्यथा प्रेम से तू वंचित ही रह जाएगी। कूड़े-कंकड़ बीनती रहेगी, जब कि पास ही हीरों की खदानें थीं। कूड़े-कंकड़ भी कभी-कभी बड़े चमकीले होते हैं और हीरों का धोखा दे सकते हैं। पारखी चाहिए। और प्रेम की परख गहरी परख है। क्योंकि उससे बड़ा कोई हीरा नहीं है। प्रेम तो कोहिनूर है। सभी उसको नहीं समझ पाएंगे।
तूने पूछाः "... प्रेमपूर्ण गुण को, जो कि मेरे जीवन पर छा गया है... "
छा गया होगा तेरे जीवन पर, मगर वह प्रेमपूर्ण गुण नहीं है। फिर से तलाशना। फिर से टटोलना। किसी सस्ती चीज से राजी मत हो जाना। मैं तो चाहता हूं कि सच्चा प्रेम तुम्हें उपलब्ध हो। क्योंकि सच्चा प्रेम एक दिन प्रार्थना बन जाता है। और ममता संसार में भटकाती रहती है। ममता एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे पर भिखारी की तरह भटकाती रहती है। और प्रेम एक दिन तुम्हें परमात्मा के महल में प्रवेश दिला देता है। प्रेम एक दिन तुम्हें परमात्मा का प्यारा बना देता है।
लेकिन प्रेम के पहले पाठ तो यहीं सीखने होंगे मानवीय जीवन में। बच्चों से, पति से, पत्नी से, मित्रों से--इनसे ही पहले-पहले प्रेम के पाठ सीखो! ममता को जाने दो और प्रेम को जगाओ। मांगो मत, दो। दावा मत करो। अधिकार मत जतलाओ। और जिससे भी प्रेम करो, स्मरण रखना कि भूल-चूक से भी उसके आस-पास लक्ष्मण-रेखा न खींची जाए। ध्यान रखना, जिसको भी प्रेम करो, वह तुम्हारे प्रेम के बोझ से दबे न। तुम्हारा प्रेम उसे निर्भार करे, पंख दे, उड़ने की क्षमता दे। तुम्हारा प्रेम उसे और-और लोगों को प्रेम करने के योग्य बनाए।
ममता क्या कहती है? ममता कहती है, बस मुझे प्रेम करना, किसी और को नहीं। ममता ऐसी है, जैसे पति घर से बाहर निकला, पत्नी कहे कि देखो, चौबीस घंटे और कहीं सांस मत लेना। जब लौट कर आओ तो मेरे पास ही सांस लेना। क्योंकि मुझसे विवाह किया है न! मैं तुम्हारा जीवन हूं न! तो हर कहीं सांस लेने में शर्म नहीं आती? जब मैं तुम्हारा जीवन हूं, तो जब मेरे पास बैठो तब मजे से सांस लेना, जी भर कर सांस लेना, खूब ले लेना, ताकि चौबीस घंटे काम आए। ममता ऐसी ही मांग करती है--कि मुझे प्रेम करना, किसी और को नहीं।
ममता तो इतनी ईर्ष्यालु है कि जब एक बहुत बड़े संगीतज्ञ बीथोवन से पूछा गया कि तूने विवाह क्यों न किया? तो बीथोवन ने कहा, संगीत से विवाह हो गया, तो मैंने और एक दूसरा प्रतियोगी घर में न लाना चाहा। क्योंकि मेरी पत्नी और मेरे संगीत के बीच संघर्ष होना सुनिश्चित था।
अगर पति अपनी वीणा बजा रहा है तल्लीन होकर और पत्नी मौजूद है, तो उसे क्रोध आता है। मेरे रहते और तुम वीणा में तल्लीन हो? मैं हूं पत्नी या

वीणा है तुम्हारी पत्नी? कौन है, यह निर्णय होना चाहिए। पत्नियां पतियों के हाथ से किताबें छीन कर फेंक देती हैं--कि मेरे रहते और तुम किताब पढ़ रहे हो, शर्म नहीं आती? पत्नियां बर्दाश्त नहीं कर सकतीं पतियों का संगीत-प्रेम। कठिन हो जाता है। दूसरी स्त्री की तो बात छोड़ दो, संगीत जो कि स्त्री नहीं है, उससे भी इतना प्रेम कठिन हो जाता है।
दुनिया के बड़े कवि, बड़े संगीतज्ञ, बड़े कलाकार, मूर्तिकार, चित्रकार अक्सर अविवाहित रहे। उसका कारण यह नहीं था कि वे कोई पुराने ढब के संन्यासी थे। उसका कुल कारण इतना था कि दो-दो पत्नियों को एक साथ चलाना जरा मुश्किल मामला! झगड़ा-झंझट!
सुकरात की पत्नी इतनी ईर्ष्या से भर जाती थी सुकरात से जब वह अपने विद्यार्थियों से बात करता था और अपने मित्रों से दर्शन की चर्चा छेड़ता था... क्योंकि वह ऐसा तल्लीन हो जाता था कि भूल ही जाता था कि पत्नी भी है। एक दिन तो वह इतने क्रोध में आ गई कि उसने उबलती हुई केतली उसके सिर पर से उड़ेल दी। उसका आधा चेहरा सदा के लिए जल गया। उसके शिष्य तो भौचक्के रह गए! एक शिष्य ने पूछा कि आपका इस संबंध में क्या कहना है?
सुकरात ने कहा, कुछ भी कहना नहीं है, मैं उसकी तकलीफ समझता हूं। मैं तुमसे विचार में, चर्चा में ऐसा लीन हो जाता हूं कि उसे ईर्ष्या जगती है। जरा सोचने जैसा है। पत्नी की तो ममता रही होगी, मोह रहा होगा, सुकरात
का जरूर प्रेम रहा होगा। सुकरात ने एक क्रोध का शब्द नहीं कहा। सुकरात ने सिर्फ इतना कहा कि मैं उसकी पीड़ा समझता हूं। मुझे उसकी वेदना का अनुभव है। बस इतना। और जहां बात टूट गई थी, वहीं बात शुरू कर दी। यह प्रेम है, जो दूसरे की पीड़ा भी अनुभव करता है। खुद को दी गई पीड़ा से भी ज्यादा जो दूसरे की पीड़ा अनुभव करता है।
लेकिन सुकरात की पत्नी ने जो किया, वह ममता थी, मोह था। वह चाहती थी, सुकरात बस मेरा हो। कि मेरे कान में फुसफुसाए, मुझसे बातें करे। इतने रस से औरों से बातें करे?
कश्मीरा, ममता को प्रेमपूर्ण गुण मत समझो। अधिक स्त्रियों ने यही समझ रखा है। वही स्त्रियों का रोग है। ममता स्त्रियों का रोग है और अहंकार पुरुषों का रोग है। मैं-भाव पुरुषों का रोग है और मेरी चीजें स्त्रियों का रोग है--मेरी साड़ियां, मेरा मकान, मेरा धन, मेरी दौलत, मेरी यह, मेरी वह। इसलिए तुम देखते हो न, हिंदुस्तान में तो हम स्त्री को घरवाली कहते हैं, पुरुष को घरवाला नहीं कहते। बेचारा कमाए वह, ठोकरें खाए वह; सुबह से सांझ तक टूटे, मरे, ढोए बोझ जीवन का; लेकिन घरवाली कहते हैं स्त्री को। उसके पीछे कारण है। क्योंकि ममता, मेरा, वह दावा स्त्री का है। जैसे घर की और सब चीजें उसकी हैं, उन्हीं चीजों में एक चीज पति भी है। उन्हीं चीजों में उसके बच्चे भी हैं।
पुरुष को अहंकार, मैं-भाव भारी होता है। उसके मैं पर चोट नहीं लगनी चाहिए। स्त्री की मेरी चीजों पर चोट नहीं लगनी चाहिए। मगर ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक पुरुष रूप है, एक स्त्रैण रूप है। दोनों से मुक्त होना है, तभी प्रेम का जन्म होता है। अहंकार अपनी समस्त अभिव्यक्तियों में विदा हो, तो प्रेम के मंदिर के द्वार खुलते हैं। और तब प्रेम का मंदिर जल्दी ही धर्म का मंदिर बन जाता है। जहां प्रेम है, वहां धर्म है।
कश्मीरा, तुझे रूखा-सूखा नहीं होना पड़ेगा। मैं लोगों को रूखा-सूखा बनाने में भरोसा नहीं करता। मैं तो उनके विरोध में हूं। इसीलिए तो सारे रूखे-सूखे लोग मेरे विरोध में हैं। मैं तो चाहता हूं लोगों का जीवन हरा हो, खूब हरा हो। खूब उनमें फूल खिलें। खूब पत्तियों से लोग लदें।
लेकिन सपने छोड़ने बड़े मुश्किल होते हैं। ममता तेरा सपना है।

सपना सपना ही रहने दो।

सपना ही लेकर मैं, अपना
यह लघु संसार बसा लूंगी!

मन बहलाने को मैं, अपना
तुमसे स्वर ले कुछ गा लूंगी! चिर मौन रहे तुमको प्यारा, मुझको तो अपनी कहने दो!
सपना सपना ही रहने दो!

यह छलना ही संबल मेरा,
यह सपना भी विश्वास भरा!
तुमको पाकर हो जाएगा,
जड़ जीवन भी उल्लास भरा!
विश्वास-लहर पर छहर-छहर,
यह जीवन तरणी बहने दो!
सपना सपना ही रहने दो!

मैं तुमको अपना बना सकूं, इतना मुझको अधिकार कहां!
फिर भी रोके से रुकता है,
आकुल अंतर का प्यार कहां!
मैं तुमको प्यार करूं जी भर,
इतना सा सुख तो रहने दो!
सपना सपना ही रहने दो!

सपना सपना भी मालूम हो जाए, तो भी व्यक्ति चाहता है कि बना रहे, बना रहे; टूट न जाए, छूट न जाए। लेकिन सपना अगर सपना है तो कितना ही प्यारा हो और कितना ही माधुर्यपूर्ण हो और कितना ही सुखद लगे, सपना ही है--तो व्यर्थ है।
जागो, ममता के सपने से जागो, तो प्रेम का सत्य-संसार शुरू होता है। नींद तोड़ो। अहंकार निद्रा है और निरहंकारिता जागरण है। और तब तुम्हारे जीवन में सच में ही पहली बार उल्लास आएगा, उत्सव आएगा। तुम्हारी जिंदगी मैं बनाना चाहता हूं सतरंगी, इंद्रधनुषी। तुम्हारी जिंदगी मैं बनाना चाहता हूं सातों स्वरों वाली। पूरा सरगम तुम्हारा हो। मगर तुम छोटी-छोटी चीजों से राजी हो--यह मेरा मकान, यह मेरी दुकान, यह मेरा पति, यह मेरा बेटा-- तुम छोटी-छोटी चीजों से राजी हो। यह सारा अस्तित्व तुम्हारा हो सकता है! जरा मेरा-भाव छोड़ो।
रामतीर्थ ने कहा हैः जिस दिन मैंने अपना छोटा सा आंगन छोड़ दिया, सारा आकाश मेरा आंगन हो गया। और जिस दिन मैंने अपने छोटे से दीये फूंक कर बुझा दिए, सारे आकाश के तारे मेरे दीये हो गए। और जिस दिन मैंने एक घर क्या छोड़ा, सारा अस्तित्व मेरा घर हो गया।
वह ठीक कहा है। मैं कोई शब्दशः नहीं कह रहा हूं कि तुम अपना घर छोड़ दो, अपना आंगन छोड़ दो। सिर्फ ममता छोड़ दो आंगनों से, ताकि सारा आकाश तुम्हारा हो सके--तुम्हारा है। और जब छोटे-छोटे आंगन तुम्हें इतनी हरियाली देते हैं, तो जरा सोचो तो, गणित को फैलाओ तो, सारा आकाश कितनी हरियाली न देगा! जब छोटे-छोटे प्रेम की बूंदाबांदी तुम्हें इतना हरा कर जाती है, तो जब सावन के मेघ बरसेंगे और परमात्मा बरसेगा--अमी बरसे, बिगसत कंवल--तब कितनी हरियाली, कितना उत्सव, कितना शाश्वत जीवन!
मैं तुम्हारी जिंदगी को रोज होली, रोज दीवाली बना देना चाहता हूं। मगर सपने तो छोड़ने होंगे। सत्य के प्रति जागना जरूरी है।

तीसरा प्रश्नः जीवेषणा है क्या? जीवन में इतना दुख हम देखते हैं, कुछ-कुछ समझ में भी आता है, फिर भी जीए जाने का मन क्यों होता है?

जीवेषणा अपने शुद्धतम रूप में परमात्मा है। जीवेषणा अपने शुद्धतम रूप में जीवन की शुद्ध ऊर्जा है। और शाश्वत है। न उसका कोई प्रारंभ है, न

उसका कोई अंत है। परमात्मा जीवन है। परमात्मा और जीवन मेरे लिए पर्यायवाची हैं। परमात्मा कोई अलग-थलग बैठा हुआ व्यक्ति नहीं है। यह जीवन का जो अनंत-अनंत विस्तार है, इसका ही एक प्रीतिपूर्ण नाम है परमात्मा। तुम्हारे भीतर जो जीवन की अनंत अभीप्सा है, वह परमात्मा का ही रूप है।
तो एक बात तो जो सबसे पहले कह देना चाहूं वह यह कि जीवेषणा शुभ है, जीवेषणा सत्य है। उससे बचने का न कोई उपाय है, न कोई आवश्यकता है। उससे भागने की कोई जरूरत भी नहीं है। उसे जीने की जरूरत है। उसे भोगो! परम भोगी बनो!
लेकिन तुम्हारा प्रश्न कुछ और है। तुम्हारा जीवेषणा से कुछ और अर्थ है। तुम्हारा अर्थ हैः यह शरीर सदा बना रहे। तुम जीवेषणा के अशुद्ध रूपों के संबंध में पूछ रहे हो--कि मैं बड़े पद पर पहुंच जाऊं, कि बहुत धन मेरे पास हो, कि बड़ी प्रतिष्ठा हो, कि बड़ा नाम हो, कि बड़ा यश हो, कि मैं कभी मिटूं न, यह देह बनी ही रहे, बनी ही रहे, यह जीवन कभी हाथ से मेरे छूटे न।
ये जीवेषणा के अशुद्ध रूप हैं। जैसे हीरा कीचड़ में गिर गया हो। और जैसे हीरे पर कीचड़ की पर्तें जम गई हों। ये पर्तें तो धोनी होंगी।
और तुम कहते हो कि समझ में भी आता है कि जीवन में बड़ा दुख है।
नहीं; समझ में अभी आता नहीं, विश्वनाथ भारती! सुनते हो, तर्कयुक्त लगता है, मगर समझ में नहीं आता। सुनते हो, विचारशील हो, तो विचार में संगति देखते हो, मगर हृदय में नहीं उतरती। ऊपर-ऊपर रह जाती है, तिरती-तिरती रह जाती है। एक कान से प्रवेश करती है, दूसरे कान से निकल जाती है। लगती है आई-आई, और आते-आते छूट जाती है, छिटक जाती है हाथ से। पकड़ नहीं बैठ पाती। क्योंकि पकड़ बैठ जाए तो क्रांति हो जाए।
और मन इस संबंध में भी बड़ी होशियारी करता है। मन कहता है, देखो विश्वनाथ, सब तो समझ में आ गया, कि जीवन में दुख ही दुख है। अब क्या जीवन में और मांग करनी, और अपेक्षा करनी, और आकांक्षा करनी?
मन की जो बात समझ में आ गई है, उतने भर से काफी नहीं है। तुम्हारे समग्र तलों पर बात समझ में आनी चाहिए। मन को ही समझ में नहीं, हृदय को भी। हृदय को ही नहीं, तुम्हारी अंतरात्मा को भी। जब तुम्हारे तीनों आयाम, जब तुम्हारी त्रिपुटी, जब तुम्हारी त्रिमूर्ति एक ही समझ में पिरो जाती है जैसे कि कोई माली फूलों को एक ही धागे में पिरो देता है, जिस दिन तुम्हारी समझ तुम्हारी समग्रता की समझ होती है, तुम्हारा रोआं-रोआं जिसके लिए गवाही बन जाता है, उस दिन क्रांति घटित होती है। उस दिन फिर पूछना नहीं पड़ता कि कैसे छोड़ें? नहीं, उतनी गहरी समझ का सहज परिणाम होता है कि जो व्यर्थ है वह छूट जाता है।
तुम कहते होः "कुछ-कुछ समझ में आता है।"
तो ध्यान रखना, दूसरी बात, समझ या तो पूरी होती है या नहीं होती। कुछ-कुछ, ऐसी समझ होती ही नहीं। वह फिर धोखा है। कुछ-कुछ समझ का कोई मतलब ही नहीं होता। जैसे तुम किसी से कहो कि मुझे तुमसे कुछ-कुछ प्यार हो गया है। तो वह भी थोड़ा चौंकेगा, कुछ-कुछ? मतलब क्या हुआ कुछ-कुछ का? या तो आदमी जिंदा होता है या मरा होता है। कुछ-कुछ जिंदा? या तो आदमी जागा होता है या सोया होता है। कुछ-कुछ जागा? ऐसी बात बनती नहीं। जीवन के सत्य या तो पूरे होते हैं या नहीं होते। जैसे वर्तुल पूरा होता है। तुम यह नहीं कह सकते कि यह वर्तुल थोड़ा अधूरा है। अधूरा वर्तुल वर्तुल ही नहीं होता। पूरा होता है तो ही वर्तुल होता है। तुम यह नहीं कह सकते कि कोई चीज थोड़ी-थोड़ी सत्य है। असंभव! सत्य के खंड नहीं होते। समझ के भी खंड नहीं होते। जब सत्य के ही खंड नहीं होते, तो समझ के खंड कैसे हो सकते हैं?
तो तुम कहते होः "कुछ-कुछ समझ में आता है।"
वह मन तुम्हें धोखा दे रहा है। वह कह रहा है, देखो, बौद्धिक रूप से समझ में आ रहा है। मगर बौद्धिक समझ कोई समझ नहीं है। सब समझ लोगे और जैसे हो वैसे ही रहे आओगे।
एक आदमी को हम कहें कि यह रहा दरवाजा, निकलना तो इससे निकलना, दीवाल से निकलोगे तो सिर टूट जाएगा। और जब हम दुबारा देखें, वह आदमी फिर दीवाल से सिर टकरा रहा है। और हम उससे पूछें कि क्यों भाई, क्या हुआ? तो वह कहे, कुछ-

169

कुछ तो समझ में आता है कि दरवाजा वह है। मगर क्या करूं, आप ही बताएं, कैसे दीवाल से निकलना छोडूं?
अगर समझ में आ गया है कि यह दरवाजा है, तो दीवाल से निकलना छूट ही गया।
और अगर समझ में नहीं आया और अभी भी दीवाल से निकलने का मोह लगा है, तो बात साफ है कि अभी भी तुम्हें दीवाल में दरवाजा दिखाई पड़ता है। और वह जो दरवाजा दिखाया गया है, जिसको तुम कहते हो--कुछ-कुछ दिखाई पड़ता है--वह सिर्फ औपचारिक शिष्टाचार निभा रहे हो। तुम यह कह रहे हो कि आपने इतनी मेहनत की, और मैं कुछ-कुछ भी न समझूं, तो बड़ा अन्याय हो जाएगा आप पर। बुद्धों पर कृपा कर रहे हो तुम! कि इतनी मेहनत की बेचारों ने, सदियों-सदियों से समझाते रहे हैं--तो कुछ-कुछ समझ में आता है।
मगर मैं तुम्हें पहली बात ही साफ कर दूं, कुछ-कुछ का कोई मूल्य नहीं है। कुछ-कुछ को मूल्य देना ही मत, अन्यथा धोखे में अटके रहोगे। समझ में आता हो तो दरवाजे से निकलो। समझ का एक ही प्रमाण हैः दरवाजे से निकलना। और समझ में न आता हो, तो कृपा करके साफ कहो कि मुझे वह दरवाजा दिखाई नहीं पड़ता। मुझे तो दीवाल में दरवाजा दिखाई पड़ता है। मैं दीवाल से ही निकलता रहूंगा। इसमें कम से कम ईमानदारी होगी। और जहां ईमानदारी है, वहां से सत्य बहुत ज्यादा दूर नहीं होता। इसमें प्रामाणिकता होगी। नहीं तो तुम दोहरी झंझट में पड़ गए। निकलोगे दीवाल से और बातें दरवाजे की करोगे।
यही लोग कर रहे हैं। धर्म की बातें करते हैं और जीते कीचड़ में हैं। कमल की प्रशंसा के गीत गाते हैं और कीचड़ ढोते हैं। बातें स्वर्ग की करते हैं, पृथ्वी पर सरकना भी नहीं आता, रेंगना भी नहीं आता। मुंह में राम-राम, बगल में छुरी। करते कुछ हैं, कहते कुछ हैं। पढ़ते गीता हैं, मगर जीवन में कोई गीत नहीं। भगवद्गीता तो बहुत दूर, गीत भी कोई नहीं जीवन में, गुनगुनाहट भी कोई नहीं। ऐसे तो कुरान पढ़ते हैं, लेकिन आंखों में कोई झलक नहीं है, प्राणों में कोई संगीत नहीं है। यह धोखा पैदा हुआ है। यह कुछ-कुछ समझने के कारण धोखा पैदा हुआ है।
मैं तुमसे दो-टूक बात कहना चाहता हूं। मेरे संन्यासी हो, तो मैं दो- टूक बात ही करना चाहता हूं। कोई गैर-संन्यासी मुझसे पूछता है तो मैं थोड़ा शिष्टाचार भी बरतता हूं। मगर विश्वनाथ, तुम तो मेरे संन्यासी हो। तुमसे कोई शिष्टाचार का नाता नहीं है। तुमसे तो आत्मिक नाता है। मौका लगे तो तुम्हारी पूरी गर्दन काट दूंगा। कुछ-कुछ से नहीं चलेगा।
तुम पूछते होः "कुछ-कुछ समझ में भी आता है, फिर भी जीए जाने का मन क्यों होता है?"
समझ में नहीं आता, इसलिए जीए जाने का मन होता है। वह समझ सिर्फ होशियारी है। और चूंकि समझ कुछ-कुछ है, बस ऊपर-ऊपर है, थोथी है, छिछली है, मन निश्चिंत अपने दांव खेले चला जाता है। मन कहता है, आज नहीं हुआ, मगर कल नहीं होगा, इसका क्या पक्का है? आज सुख नहीं मिला, कल मिले! जीवन का रस आज नहीं पा सके, लेकिन कल पा लो! इस स्त्री से नहीं मिला, किसी और स्त्री से मिल जाए--कौन जाने! इस पद पर नहीं मिला, किसी और पद पर मिल जाए! तो थोड़ा और तलाश लो। अभी जल्दी क्या है? अभी निर्वाण की इतनी उत्सुकता क्या है? निर्वाण तो होना ही है आखिर में! इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में हो जाएगा!
इसलिए भारतीयों ने तो बड़ी सुगम तरकीब खोज ली--अनंत जन्मों का सिद्धांत खोज लिया। इससे आलस्य को बड़ी सुविधा मिल गई। करने की कोई जल्दी न रही। आदमी ऐसा बेईमान है कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बात में से कुछ ऐसी तरकीब निकाल लेता है। आदमी ऐसा वकील है, ऐसा कानूनविद है, हर चीज में से तरकीब निकाल लेता है।
पूरब का एक अपूर्व सिद्धांत कि जीवन बार-बार होता है, अनंत बार होता है, पुनर्जन्म होता है, जिन्होंने कहा था, उनका प्रयोजन कुछ और था। बुद्ध ने कहा, महावीर ने कहा, कृष्ण ने कहा, सबने कहा। भारत में एक ही सिद्धांत है जिस पर भारत के सारे धर्म राजी हैं। बाकी किसी सिद्धांत पर राजी नहीं हैं। इसलिए यह सिद्धांत साधारण नहीं हो सकता। महावीर कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। आत्मा और संसार काफी हैं। और बुद्ध तो कहते हैं कि न कोई

परमात्मा है, न कोई आत्मा है, और न कोई संसार है। यह सब सपना है। और हिंदू तीनों मानते हैं--संसार को भी मानते हैं, आत्मा को भी मानते हैं, परमात्मा को भी मानते हैं। बड़े विरोध हैं। मगर एक संबंध में तीनों राजी हैं। और कभी- कभी बहुत आश्चर्य होता है कि इस एक सिद्धांत पर तीनों क्यों राजी हैं कि पुनर्जन्म होता है?
उनके इशारे, उनके इरादे कुछ और थे। उनका इरादा यह था कि तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि यही गोरखधंधा तुम पहले करते रहे न मालूम कितनी बार, अब भी कर रहे हो, आगे भी करते रहोगे--ऊबना है या नहीं ऊबना है?
तुम जानते हो, मनुष्य अकेला प्राणी है जो ऊब सकता है, जिसकी क्षमता ऊबने की है। दुनिया का कोई और जानवर ऊबता नहीं। तुमने किसी भैंस को ऊबे देखा? कि बैठी हो ऊबी हुई, बिल्कुल उदास, बोर्ड। कभी नहीं। तुमने किसी गधे को ऊबे देखा? भैंस वही घास रोज चरती रहती है, वही-वही घास, कभी नहीं ऊबती। गधा वही-वही रेंकना रोज करता रहता है, वही संगीत, वही स्वर, अपना एकतारा बजाता रहता है, कभी नहीं ऊबता। मनुष्य को छोड़ कर पृथ्वी पर कोई प्राणी ऊबने की क्षमता नहीं रखता। यह बात महावीर, बुद्ध और कृष्ण, सबको दिखाई पड़ गई कि मनुष्य के भीतर अगर कोई एक अदभुत क्षमता है, तो वह ऊब जाने की क्षमता है। इसका उन्होंने उपयोग करना चाहा। इसकी विधि बनाई। इसका उपाय खोजा।
तो मनुष्य को उबाने के लिए सबसे बड़ी बात क्या हो सकती है? ऊब किस बात
से पैदा होती है? पुनरुक्ति से ऊब पैदा होती है। अगर तुम्हें वही-वही बात रोज-रोज सुननी पड़े, अगर वही-वही कहानी रोज-रोज पढ़नी पड़े, अगर वही-वही फिल्म रोज-रोज देखनी पड़े, तो तुम ऊब जाओगे। और ऊब जाओगे तो तुम छुटकारा पाना चाहोगे--कि कैसे छुटकारा हो?
भारतीय सारे धर्म कहते हैं कि अनंत बार तुम यही गोरखधंधा कर चुके हो,
जो तुम कर रहे हो--ममता के जाल, और धन-पद-प्रतिष्ठा के फैलाव, मेरा-तेरा, झगड़े-झांसे, अदालतें-मुकदमे, सब कर चुके हो। अनंत बार। अभी भी कर रहे हो। और आगे भी अनंत बार करते रहने का इरादा है? ऊबोगे नहीं? कब तक ऊबना है? जिस दिन ऊबोगे इस सब से, उसी दिन तुम्हारे भीतर मनुष्य अपनी गरिमा को उपलब्ध होगा।
यह तो उनकी नजर, यह तो उनका इरादा था। मगर हमने इसमें से क्या तरकीब निकाली? हम भी कुछ दांव में उनसे पीछे नहीं रहते! बुद्ध अपने पासे फेंकते हैं, हम भी कुछ कम नहीं हैं, हम भी शकुनि की चालें चलते हैं। हम भी तरकीबें निकालते हैं। तुम डाल-डाल, तो हम पात-पात! हम भी कहते हैं कि तुम हमें उबाना चाहते हो? इतना आसान नहीं! हम कहते हैं, जब अनंत जन्म हैं तो जल्दी क्या? हमारी कानूनी तरकीब देख रहे हो? हम कहते हैं, तो फिर जल्दी क्या है? तो फिर थोड़े दिन और जरा देख लें। थोड़े दिन खेल और देख लें। अगले जन्म में निपट लेंगे--ध्यान, भक्ति अगले जन्म में कर लेंगे। अभी तो थोड़े दिन और... एक चुनाव और लड़ लें! यह बयासी करीब आया जा रहा है! इस बार और दांव लगा लें! एक बार और लाटरी का टिकट खरीद लें! यह धंधा बिल्कुल हाथ में है, इसको तो न छोड़ें! इसको तो पूरा कर लें! यह ग्राहक आ ही गया दुकान पर, इसको तो लूट ही लें! फिर अगले जन्म में देख लेंगे। फिर थोड़ा ध्यान ज्यादा करना पड़ेगा तो थोड़ा ज्यादा कर लेंगे। और अगला जन्म कोई अभी तो आया नहीं जाता। अभी देर है काफी। आगे टालते रहो!
हमने तरकीब निकाल ली। बुद्धों ने चाहा था कि हम ऊब जाएंगे और ऊब से हमारे जीवन में क्रांति पैदा हो जाएगी। हम ऊबे तो नहीं, हम आलसी हो गए, महाआलसी हो गए। भारत से ज्यादा आलसी देश पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। और इसके आलस्य के पीछे पुनर्जन्म के सिद्धांत की पृष्ठभूमि है।
भारत की यह दुर्दशा देख कर, पश्चिम में जो धर्म पैदा हुए--यहूदी, ईसाई
और इसलाम--उन तीनों ने पुनर्जन्म का सिद्धांत नहीं माना। भारत की दुर्दशा देख कर। भारत की दुर्दशा पुरानी है। यह तो सबसे पुरानी भूमि है जगत में। यह तो सबसे पुरानी सभ्यता और संस्कृति है। इसकी भूलों से उन्होंने पाठ लिए। वे तो तीनों धर्म बाद के धर्म हैं। उन्होंने तीनों ने इनकार कर दिया पुनर्जन्म के सिद्धांत से, क्योंकि उसमें से हमने चालबाजी निकाल ली थी।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मो.जे.ज को, मोहम्मद को, जीसस को पता नहीं है पुनर्जन्म का। उनको उतना ही पता है जितना बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को। मगर उन्होंने इसकी बात नहीं की, क्योंकि इसका दुष्परिणाम देखा जा चुका था। सिद्धांत सच था, लेकिन लोग बेईमान हैं। सिद्धांत क्या करेगा? दरवाजा तो सच था, लेकिन लोग दीवाल से ही निकलते जा रहे हैं। तो उन्होंने तीनों ने एक बात स्वीकार की कि एक ही जन्म है, और जो कुछ करना है इसी जन्म में करना है।
उनकी नजर भी बड़ी महत्वपूर्ण थी। उनके इरादे भी उतने ही शुभ थे। वे चाहते थे--ताकि तुम्हारे जीवन में त्वरा आ जाए, तीव्रता आ जाए। एक ही जन्म है! तुम चौंक जाओ, अवाक हो जाओ। और तुम कहो, जो भी करना हो, जल्दी कर लूं। कहीं ऐसा न हो कि यह जीवन हाथ से निकल जाए; और फिर दुबारा तो अवसर मिलेगा नहीं। एक ही अवसर है। तो ध्यान करना है तो ध्यान, भक्ति करनी है तो भक्ति, जीवन को अगर परमात्मा में समर्पित करना है तो कर ही लूं, कल पर छोड़ना ठीक नहीं। यह तो इरादा था मो.जे.ज का, मोहम्मद का, जीसस का।
लेकिन आदमी तो बेईमान का बेईमान है, वह पूरब का हो कि पश्चिम का, कोई फर्क नहीं पड़ता। पश्चिम के आदमी ने इससे क्या बेईमानी निकाली? उसने निकालाः एक ही जीवन है, भाई, भोग ही लो। फिर मिलेगा नहीं। फिर दुबारा तो मिलना नहीं है, इसलिए जितना लूट सको, लूट लो। जितना चूस सको, चूस लो। खाओ, पीओ, मौज करो। एक ही जीवन है। चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात। तो गा लो, नाच लो, मस्त हो लो। भोग लो, कमा लो। जो भी महत्वाकांक्षाएं पूरी करनी हैं, कर लो।
और चूंकि एक ही जीवन है, तो पश्चिम में बड़ी आपाधापी पैदा हो गई, बड़ी भाग-दौड़ पैदा हो गई। इसलिए पश्चिम में स्पीड पैदा हुई। हर चीज में, जल्दी करो! इसकी बहुत फिकर नहीं है कि समय बचा कर क्या करोगे? समय बचना चाहिए। जहां एक घंटे में पहुंच सकते हो, वहां एक मिनट में पहुंच जाओ। फिर चाहे बाकी जो उनसठ मिनट बचे, ताश खेलो--क्योंकि समय कैसे कटे? बड़ी भाग-दौड़ पैदा हुई! पश्चिम में जो इतनी त्वरा आई, गति आई, उसके पीछे सिद्धांत है एक जन्म का।
मगर उसके दुष्परिणाम हुए। जैसे हम आलसी हो गए, पश्चिम तनावग्रस्त हो गया। जब इतनी भाग-दौड़ होगी तो चित्त तनावग्रस्त होगा। पश्चिम विक्षिप्त हो गया। भागो! कहीं ठहरना नहीं है, रुकना नहीं है, समय हाथ से जा रहा है। इसलिए जल्दी करो। तो हर काम जल्दी किया जा रहा है।

किसी चीज को विश्राम से, शांति से भोगने की क्षमता पश्चिम की समाप्त
हो गई है। भोजन है, तो जल्दी अंदर फेंक दो। लोग घूमने जाते हैं तो कार में जाते हैं। कार जा रही है साठ-सत्तर-अस्सी मील की रफ्तार से। न झाड़ दिखाई पड़ते हैं, न फूल दिखाई पड़ते हैं, न पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ती है--घूमने गए थे!
कल मैं एक अंग्रेज लेखक की डायरी पढ़ रहा था। उसने लिखा है कि मेरे पास कार है, मैं दो सौ मील का चक्कर लगा आता हूं, फिर भी मुझे उतना आनंद नहीं आता, जितना मेरे पिता को पांच मील का चक्कर लगाने में आता था। क्योंकि पक्षी, और पौधे, और वृक्ष, और सूरज, और सूरज की छनती हुई किरणें वृक्षों से! हाईवे पर भागती हुई कारों को ये सब कहां?
लोग तेजी से यात्रा कर रहे हैं, सारी दुनिया का चक्कर लगा रहे हैं। पर्यटक सारी दुनिया में घूमते फिर रहे हैं। कहीं कुछ सुख नहीं दिखाई पड़ता, आनंद नहीं दिखाई पड़ता। पश्चिम में एक तीव्रता आ गई, जल्दी करो! इसलिए पश्चिम एक ही शादी से राजी नहीं हो सकता। दस-पांच बार स्त्रियां बदल लो, एक ही जिंदगी है। पता नहीं किस स्त्री से सुख मिल जाए, किस पुरुष से सुख मिल जाए! नौकरियां बदल लो। तीन साल से ज्यादा अमरीका में कोई आदमी एक धंधे में नहीं रहता। और तीन साल से ज्यादा एक गांव में भी नहीं रहता। और तीन साल से ज्यादा एक शादी में भी नहीं रहता। यह तीन का आंकड़ा बड़ा आध्यात्मिक आंकड़ा है। यह पुराने दिनों से ही चला आ रहा है--त्रिमूर्ति, त्रिवेणी, त्रिपुटी।

अब यह नई त्रिवेणी, यह नई त्रिपुटी, यह नई त्रिमूर्ति। तीन साल में जल्दी झटपट करो! जिंदगी हाथ से भागी जा रही है! कहीं विराम मत लगाओ!
तो पश्चिम विक्षिप्त हो रहा है। चाहा था कुछ और--कि तुम परमात्मा को याद करना, क्योंकि जिंदगी जल्दी हाथ से चली जाएगी, कल पर मत टालना। और पूरब ने चाहा था कुछ और--कि तुम ऊब जाना, कि यही गोरखधंधा बहुत बार कर चुके, अब तो प्रार्थना करो कि छुटकारा दिला दो इस आवागमन से। मगर लोग आलसी हो गए। लोग बेईमान हैं। बड़े से बड़े सत्यों का भी ऐसा अनुवाद करते हैं कि सत्य का ठीक विपरीत हो जाता है।
तुम पूछते होः "फिर भी जीने का मन क्यों होता है?"
विश्वनाथ, मन तुम्हें समझाए जाता है कि अभी तक जो हुआ, माना दुख है, मगर कल का क्या! कल की क्या गारंटी है! जो आज तक नहीं हुआ, वह कल हो सकता है।

हर अंधेरा या उजाला वक्त
यों तो बीत जाता है,
कुछ खुशी के, कुछ गमों के रंग भरने
रोज आता है,
न्याय के, अन्याय के सिक्के चला कर
मूल्यमानों को कहीं सूली चढ़ा कर नित नये कल की उमंगों को सजा कर डूब जाता है।
वक्त कितना सख्त लेकिन पारदर्शी है!

वक्त लेकिन, हार जाने को
कभी कहता नहीं है,
वक्त पाकिट या तिजोरी में
छुपा रहता नहीं है।
वक्त कहता है, खिलेंगे फूल कल
कुछ और प्यारे
वक्त कहता है, रहेंगे
अब नहीं सपने कुंआरे।
वक्त कहता है--
गलत होना, बहुत ज्यादा गलत है। वक्त कलियों की दुआ है,
वक्त किरणों की शपथ है।
वक्त कहता है--
सभी का कल बड़ा मोहक सुखी है,
किसलिए अंतर्मुखी हो?
किसलिए यह बेरुखी है?
वक्त युग के अश्रु चुनता है
वक्त सबका दर्द सुनता है
वक्त सचमुच क्रांतदर्शी मर्मस्पर्शी है वक्त कितना सख्त लेकिन पारदर्शी है!

समझ तो पक्की नहीं है, तो समय धोखा देगा। वक्त लेकिन, हार जाने को
कभी कहता नहीं है,
वक्त कहता है, खिलेंगे फूल कल
कुछ और प्यारे
वक्त कहता है, रहेंगे
अब नहीं सपने कुंआरे।
वक्त कहता है--
गलत होना, बहुत ज्यादा गलत है। वक्त कलियों की दुआ है,

वक्त किरणों की शपथ है।
वक्त कहता है--
सभी का कल बड़ा मोहक सुखी है,
किसलिए अंतर्मुखी हो?
किसलिए यह बेरुखी है?
वक्त युग के अश्रु चुनता है
वक्त सब का दर्द सुनता है
वक्त सचमुच क्रांतदर्शी मर्मस्पर्शी है
वक्त कितना सख्त लेकिन पारदर्शी है!
समय धोखा देता है अगर समझ न हो। समय बड़ा मनमोहक है। समय कहे ही चला जाता हैः जरा और, जरा और, थोड़ी प्रतीक्षा और। अब आई मंजिल, अब आई मंजिल, सपने पूरे होने के करीब हैं, अभी तो अंतर्मुखी मत हो जाओ--अभी यह कैसी बेरुखी है? अभी उदासीन मत हो जाओ, अभी संन्यासी मत हो जाओ। कौन जाने कल सब हो जाए जो सदा से चाहा था और अब तक नहीं हुआ है!
समझ नहीं है तो समय का तुम पर प्रभाव होगा।
यह जान कर तुम थोड़े हैरान होओगे कि मन और समय एक ही घटना के दो नाम हैं। बोध और समय से मुक्ति एक साथ घटती है। बोध कालातीत है। इसलिए जैसे ही ध्यान में प्रवेश करोगे या भक्ति में, वैसे ही तुम पाओगे--समय मिट गया, तुम समय के बाहर हो गए। जहां विचार नहीं, वहां समय नहीं। और जहां विचार हैं, वहां समय है।
जिंदगी के भबकते हुए मैखाने से,
बादा-ए-तल्खी-ए-अय्याम अभी पीना है।
समय समझाए चला जाता है। नये प्रलोभन दिए जाता है। वह कहता है, अभी तो जिंदगी की शराब पीने को बाकी है।

जिंदगी के भबकते हुए मैखाने से,
बादा-ए-तल्खी-ए-अय्याम अभी पीना है।
साजगारी नहीं करती है हवा-ए-इमरोज,
फिर भी उम्मीद पे फर्दा की हमें जीना है।

नारसाबख्त जमाने का बहीमाना चलन,
कितनी उफ्तादें हैं दुनिया में मोहब्बत के लिए।
और बेरूह रवायत का फसुर्दा निजाम
ये भी मिनजुमला-ए-आफात है उल्फत के लिए।

दर्द के बोझ से एहसास दबा जाता है,
हौसले पस्त हुए जाते हैं तदबीरे-शल।
तीरा-ओ-तार है दुनिया-ए-तमन्ना की फिजा,
छा रहे हैं गमो-आलाम के गहरे बादल।

टिमटिमाता हुआ उम्मीद का नन्हा सा चिराग,
किसी मायूस के सीने का महकता हुआ दाग।
अब भी जलता है मगर गम के शबिस्तानों में।

दुख भरी रातें हैं, मगर एक उम्मीद का चिराग जलता रहता है, एक आशा का चिराग जलता रहता है।
टिमटिमाता हुआ उम्मीद का नन्हा सा चिराग,
किसी मायूस के सीने का महकता हुआ दाग।
अब भी जलता है मगर गम के शबिस्तानों में।
जिंदगी के भबकते हुए मैखाने से,
बादा-ए-तल्खी-ए-अय्याम अभी पीना है।
साजगारी नहीं करती है हवा-ए-इमरोज,
फिर भी उम्मीद पे फर्दा की हमें जीना है।

समय धोखा देगा। मन धोखा देगा। और तब तक आशा बनी रहेगी। हर निराशा के बावजूद भी आशा बनी रहेगी। और हर उम्मीद के मर जाने के बाद भी भीतर एक उम्मीद का दीया टिमटिमाता रहेगा। इसी को तुम जीवेषणा कह रहे हो।
यह जीवेषणा नहीं है। यह जीवेषणा का विकृत रूप है, विक्षिप्त रूप है। इसे शुद्ध करो। कल जीना है, तो जीवेषणा विकृत। अभी जीना है, तो जीवेषणा शुद्ध होने लगती है। वर्तमान में जीओ, जीवेषणा शुद्ध होने लगती है। वर्तमान के अतिरिक्त न कोई अतीत बचे, न कोई भविष्य; यह क्षण बस तुम्हें समग्रीभूत रूप से घेर ले, सब तरफ से घेर ले; इस क्षण के अतिरिक्त और कोई क्षण न हो, तो उस क्षण की शुद्धि में समय विलीन होगा, मन दूर छूट जाएगा, आशा- निराशा के जाल समाप्त हो जाएंगे। और उस क्षण की शुद्धि में तुम जीवेषणा को किसी और ही रंग और रूप में पाओगे। तुम जीवेषणा को परमात्मा के रूप में पाओगे। और तब उसे जीवेषणा कहना ठीक नहीं है। एषणा का अर्थ होता है वासना। तब तो उसे जीवन कहना ही ठीक है।
परमात्मा जीवन है। परमात्मा शाश्वत जीवन है। लेकिन हमारी उससे पहचान नहीं। और चूंकि हमारी उससे पहचान नहीं और हम सोचते हैं, शरीर ही हमारा जीवन है, इसलिए मन में आकांक्षा उठती है कि बचा लें, थोड़ी देर और ज्यादा जी लें। अभी कुछ भी तो भोगा नहीं, थोड़ा और जी लें।
उपनिषदों में ययाति की कथा है।
ययाति की मौत आई। वह सौ साल का हो गया था। सम्राट था। उसकी सौ रानियां थीं, उसके सौ बेटे थे। जब मौत आई, ययाति थर्रा गया। कौन न थर्रा जाए! यद्यपि सौ साल जी लिया था, सौ रानियां थीं, सौ बेटे थे, बड़ा साम्राज्य था, मगर कब कभी कुछ पूरा होता है! कब तृप्ति होती है! कितना ही हो, अतृप्ति तो अतृप्ति ही बनी रहती है। गिड़गिड़ाने लगा, मौत के सामने हाथ जोड़ने लगा, कहा, यह तो बहुत जल्दी हो गई; कुछ खबर तो करनी थी! कुछ वर्ष दो वर्ष पहले मुझे खबर कर दी होती, तो जो मंशाएं मेरी अधूरी रह गई हैं, वे मैं पूरी कर लेता। मैं तो कुछ पूरा कर ही नहीं पाया और तू द्वार पर आ गई, बिना खबर दिए! दया कर, थोड़ा समय और दे दे, तो अधूरे सपने पूरे कर लूं। सदा-सदा इच्छाएं पलती रही हैं, उनको भर लूं। अतृप्त, भूखा मुझे मत मार।
मृत्यु ने कहा, मुझे ले जाना तो पड़ेगा। तो एक काम करो--उस बूढ़े पर दया आ गई--तुम्हारा बेटा अगर कोई जाने को राजी हो तुम्हारी जगह, तो मैं उसको ले जाऊं। मगर ले जाना तो मुझे पड़ेगा ही।
ययाति अपने बेटों के सामने गिड़गिड़ाने लगा। जरा सोचो, सौ साल का बूढ़ा, अपने जवान बेटों के सामने गिड़गिड़ाने लगा कि कोई भी राजी हो जाओ।
जो बुजुर्ग बेटे थे--कोई सत्तर साल का था, कोई अस्सी साल का भी था, कोई साठ का था, कोई पचास का था--वे तो कन्नी काट गए, वे तो यहां-वहां देखने लगे। और स्वाभाविक। जब सौ साल में तुम्हारी इच्छाएं पूरी नहीं हुईं, तो पचास साल के बेटे की इच्छा कहां से पूरी हो गई होगी? वह क्यों मरे? क्यों किसी के लिए मरे?
हम कहते हैं लोगों से कि मैं तुम्हारे लिए मर जाऊंगा, लेकिन अगर यह मौका आ जाए, तो हम कहेंगे--अरे, वह तो बात की बात थी। कहने की बात थी। पति कहता है पत्नी से कि मैं मर जाऊंगा तेरे बिना। कोई मरता-करता नहीं। पत्नियां कहती हैं कि मर जाएंगे तुम्हारे बिना। लेकिन अंग्रेजों को सतियों की प्रथा बंद करनी पड़ी, क्योंकि पत्नियां जबर्दस्ती जलाई जा रही थीं। और अगर मरना ही होता तो कानून तो नहीं रोक सकता था। पहले कितनी सतियां होती थीं! अब तो कोई सती होती दिखाई पड़ती नहीं। वे सतियां जरूर जबर्दस्ती करवाई जा रही थीं। पूरा इंतजाम किया गया था उनको जबर्दस्ती जला देने का। कौन मरना चाहता है!
बेटे इधर-उधर देखने लगे। सिर्फ एक छोटा बेटा, सबसे जवान बेटा, जिसने अभी जिंदगी का कुछ भी नहीं देखा था, जिसकी उम्र बीस साल से ज्यादा नहीं थी, वह खड़ा हो गया; उसने कहा कि मैं तैयार हूं, मैं जाता हूं।
बाप खुश हो गया। बाप ने बड़े आशीष दिए। जरा सोचो! बाप ने बड़े आशीष दिए
कि बेटे, तू ही मेरा असली बेटा है। तुझे मेरे आशीर्वाद! तुझे बहुत पुण्य होगा! तू अपने बाप को बचा रहा है।

लेकिन मौत को बहुत दया आई इस बेटे पर, कि यह बूढ़ा खुद तो बच रहा है और बीस साल के जवान को भेज रहा है, जिसने अभी कुछ भी नहीं देखा, अभी जीवन के न कोई कड़वे-मीठे अनुभव हुए। मौत ने उस बेटे से कहा कि तू सोच ले एक बार! तू नासमझ मालूम होता है! तू यह नहीं देखता कि तेरा बाप सौ साल का होकर भी मरना नहीं चाहता है! तेरे भाई सब बैठे हैं। तेरे निन्यानबे भाई चुप बैठे हैं, नीची नजरें किए, कोई नहीं मरना चाहता। तू क्यों मरना चाहता है?
उस बेटे ने बड़ी बहुमूल्य बात कही। उसने कहा कि मैं यही सोच कर मरना चाहता हूं कि सौ साल के मेरे पिता हो गए, इनकी इच्छाएं पूरी नहीं हुईं, तो अब अस्सी साल मैं क्यों घिट्टे खाऊं? ये सौ साल के होकर भी गिड़गिड़ा रहे हैं, सौ साल का होकर मैं भी गिड़गिड़ाऊंगा। ये मेरे भाई कोई अस्सी साल के हैं, कोई सत्तर साल के, कोई साठ साल के, ये सिर झुकाए बैठे हैं। अगर ये सत्तर-अस्सी साल के होकर भी जीवन की इच्छाएं पूरी नहीं कर पाए, तो मैं कैसे कर पाऊंगा? इन सबको देख कर ही मैं राजी हो गया हूं कि यह बात ही फिजूल है! यह मामला कुछ उलझने जैसा नहीं है। तू मुझे ले चल।
फिर भी बाप को होश न आया, बेटे ने जब ऐसी अदभुत बात कही। तब भी किसी और भाई को होश न आया, लोग बैठे ही रहे। लोग ऐसा पकड़ते हैं जिंदगी को!
कहानी बड़ी प्रीतिकर है। सौ साल बीत गए, बेटे की उम्र बाप को लगी। सौ साल के बाद फिर मौत आई, और बाप फिर गिड़गिड़ाने लगा। और उसने कहा कि अभी तो कुछ भी पूरा नहीं हुआ। ये सौ साल ऐसे बीत गए कि पता ही नहीं चला। पल में बीत गए। तब तक उसके सौ बेटे और पैदा हो चुके थे। नई-नई शादियां कर ली थीं उसने। मौत ने कहा, तो फिर किसी बेटे को भेज दे।
और ऐसा चलता रहा। ऐसा, कहते हैं, दस बार हुआ। कहानी बड़ी प्रीतिकर है! हजार साल का हो गया बूढ़ा, तब भी... मौत आई और मौत ने कहा, अब क्या इरादे हैं? ययाति हंसने लगा। उसने कहा, अब मैं चलने को तैयार हूं। नहीं कि मेरी इच्छाएं पूरी हो गईं--इच्छाएं वैसी की वैसी अधूरी हैं--मगर एक बात साफ हो गई कि कोई इच्छा कभी पूरी हो ही नहीं सकती। मुझे ले चलो! मैं ऊब गया। यह भिक्षापात्र भरेगा नहीं। इसमें तलहटी नहीं है। इसमें कुछ भी डालो, यह खाली का खाली रह जाता है।
जीवेषणा शरीर से बंधी हो, इच्छाओं से बंधी हो, मन से बंधी हो, तो संसार। और जीवेषणा सबसे मुक्त हो जाए--न संसार, न शरीर, न मन--तो एषणा नहीं रह जाती, जीवन ही रह जाता है। शुद्ध जीवन। खालिस जीवन। शुद्ध कुंदन। वही निर्वाण है। वही मोक्ष है।

आखिरी सवालः मैं आपको सुनता हूं तो चकित हो रह जाता हूं! अवाक होता हूं, आश्चर्यविमुग्ध होता हूं, लेकिन संन्यास में छलांग नहीं लगा पाता हूं। क्या करूं?

राधारमण! अवाक होते हो? सच, अवाक होते हो? सच, विस्मयविमुग्ध होते हो? आश्चर्यचकित होते हो? तब तो छलांग लग ही जाएगी। फिर होश किसको रहेगा छलांग से रुकने का? मदमस्त होते हो? तो पता ही नहीं चलेगा कब छलांग लग गई। छलांग लग जाएगी तभी पता चलेगा कि अरे, छलांग लग गई!
मगर तुम कंजूसी कर रहे हो। थोड़े-थोड़े अवाक होते होओगे--मात्रा में, होम्योपैथी की मात्रा में! बच-बच कर! ज्यादा बरसने लगता होऊंगा तो छाता लगा लेते होओगे। ऐसे दूर-दूर खड़े रहते होओगे, द्रष्टा की तरह। अभी तुम्हारा-मेरा संबंध भोक्ता की तरह नहीं जुड़ा। अभी तुम्हारा संबंध सुनने वाले की तरह है, एक श्रावक की तरह। अभी तुम्हारा संबंध एक भक्त की तरह नहीं जुड़ा। और भक्त का ही संबंध होता है। श्रावक का कोई संबंध होता है! सुन लिया, बात अच्छी लगती है, थोड़ा इकट्ठा कर ली, थोड़ा ज्ञान बढ़ गया, थोड़ी ज्ञान की संपदा बढ़ गई, थोड़ा अहंकार को और आभूषण मिल गए, थोड़ा बात करने को बात मिल गई, थोड़ा औरों के सामने ज्ञान बघारने की सुविधा मिल गई।
मगर अगर सच ही तुम कहते हो कि अवाक हो रहे हो, चकित हो रहे हो, विस्मयविमुग्ध हो रहे हो, तो फिर पूछना क्या है? और छलांग भी कोई पूछ-पूछ कर लगानी होती है? छलांग तो वही जो बिना पूछे लगानी। पूछ-पूछ कर लगानी तो

वह तो सीढ़ियां चढ़ना है। वह तो हिसाब-किताब बिठालना है। कि क्या मिलेगा, क्या नहीं मिलेगा? क्या फायदा, क्या हानि? कितना जाऊं, कितना न जाऊं? इतना जाऊं कि अगर जरूरत पड़े तो वापस लौट सकूं।
छलांग का मतलब होता हैः दीवानगी। छलांग का अर्थ होता हैः पागल प्रेम। चूक मत जाना! सुनते-सुनते ही मत रह जाना!

जब वक्त का अनोखा रथ चमकदार
रुक गया अकस्मात आकर तुम्हारे द्वार
तुम रह गए अवाक
अविश्वास भरी आंखों से देखते रहे चकाचौंध
सुनते रहे जयकार,
समय की मुड़ती हिलोर पर,
बह कर आया हुआ
निर्णय का स्वर्ण-मुकुट
अनायास
चकरा कर घूम गई धरती
तुम्हारे आस-पास,
मुग्ध देखते ही रहे
ज्वार की अपार फेन-चूड़ा पर उठा हुआ अमृत-घट
वक्त का रथ जो तुम्हारे लिए लाया था तुमने उसे लिया नहीं!
बांट कर पीया नहीं!

जब एक अकल्पित अनहोनी दिशा से सन्नाटा फैलाता तूफान आया था दमघोंट अंधकार चारों तरफ छाया था, तुम्हारी अलग-अलग नावें
लोप हुई थीं झपट उड़ते कुहासों में लोगों ने तब एक बड़ा दीपक जलाया था तूफान चीरता, पथ को दिखाता जो किनारे तुम्हें लाया था,
भूल कर भूमिका
तुम वह अजूबा सबको दिखाने लगे इस हाथ उस हाथ
आपस में दीपक फूंकने, बुझाने लगे और गहरे अंधकार गर्त में
लोग समाने लगे
वह चिराग चौमुख कर
लोगों को तुमने दिया नहीं! रोशनी पर धूल पड़ी
चांदना हुआ नहीं!

देखो, वह ताजी खुली गंध-हवा
बही थी जो इस विशाल वृक्ष पर होने लगी है मंद
उलटी बयार में
एक-एक गलत कदम
घनघनोर चक्रमित बगूला बना जाता है उलझ रहीं
जूझ रहीं आपस में डालियां
झौरों से झौंरे
पत्तों से पत्ते

तिनकों से क्षुद्र तिनके जल रहे असहाय नीड़
फट रहे चिंदियों से फल-फूल
फूट रहे भरे-भरे मधुकोष
वृक्ष का शरीर
जिंदा लोथड़ों में कट कर
उछल-उछल जाता है
धूल और धक्कड़ में
भन्नाती निकल पड़ीं रक्त-सोख मक्खियां निर्द्वंद्व घूमते हैं सीना तान हिंस्र जंतु घात लगा खड़े हर तरफ क्रूर बटमार
कांपते हैं निर्दोष
दमखुश्क हर द्वार
अडिग महावृक्ष अभी करता है इंतजार,
माथे पर अनुभव की तेजस्वी रेखाएं
देख रहीं धारावाही त्रिकाल
देख रहीं
इस अखंड वृक्ष का किसे है ख्याल, शीश जिसका खुद ही है आकाश
जड़ों में जमी बैठी हैं
अनगिन शताब्दियां
मनवंतर बन गए जिसके रस की सुवास छाया के छत्रक में
संस्कृति की जगमग नक्षत्र माल
ममता बनी गंगा
तप जिसका बन गया दिपनार हिमवान
मोर पंख मैदान
विंध्या लालिम हिरण्य
धीरज का अलख ध्यान
रांगोली वन प्रांतर, गांव, खेत, खलिहान सतिए पर अक्षत सी संतान
उठ रही इस औघड़ तरु से
मौन काल की पुकार
छाया भोगने वालो होशियार
यह सब तुम पर निछावर किया
हर बार
किंतु वक्त करता नहीं
किसी का भी इंतजार
समय का रथ ज्यादा रुक नहीं पाता है
रखा-रखा अमृत भी विष बन जाता है
चूका हुआ क्षण कभी वापस नहीं आता है।

अवाक हो? आश्चर्यविमुग्ध हो? चकित हो? छलांग का भाव उठा? फिर पूछो मत। फिर लगने दो छलांग!
मुग्ध देखते ही रहे
ज्वार की अपार फेन-चूड़ा पर उठा हुआ
अमृत-घट
वक्त का रथ जो तुम्हारे लिए लाया था
तुमने उसे लिया नहीं!
बांट कर पीया नहीं!
वह चिराग चौमुख कर
लोगों को तुमने दिया नहीं!
रोशनी पर धूल पड़ी

चांदना हुआ नहीं!
उठ रही इस औघड़ तरु से
मौन काल की पुकार
छाया भोगने वालो होशियार
यह सब तुम पर निछावर किया
हर बार
किंतु वक्त करता नहीं
किसी का भी इंतजार
समय का रथ ज्यादा रुक नहीं पाता है रखा-रखा अमृत भी विष बन जाता है चूका हुआ क्षण कभी वापस नहीं आता है। आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
दसवां प्रवचन

स्वर्ग तो हमारा स्वभाव है

पहला प्रश्नः
बिन मांगे सच्चे रत्नों से झोली भर दी
बिन चाहे मेरे जीवन में खुशियां भर दीं
ये कैसे क्या कुछ हुआ, इसे कह दो भगवन
अनहोनी थी जो बात, उसे होनी कर दी

जगदीश भारती! अनहोना न कभी हुआ है, न होता है। जो होता है, वह हो सकता था, इसीलिए होता है। स्वाभाविक था, इसीलिए संभव हुआ।
जब पहली बार स्वयं का अनुभव शुरू होगा, तो ऐसा लगेगा ही कि कुछ अनहोना
हो रहा है। अब तक तो नहीं हुआ था, जन्मों-जन्मों से नहीं हुआ था, आज अचानक रात टूट गई, सुबह हो गई, अंधेरा रोशनी बन गया; अब तक तो कांटे ही कांटे थे, आज अचानक फूल खिले--खिले ही नहीं, कांटे फूलों में रूपांतरित हो गए, तो लगेगा कि कुछ अनहोना हो रहा है।
मगर फिर भी मैं तुम्हें याद दिलाऊं, जो भी हो रहा है, अनहोना नहीं हो सकता। अघट घटता ही नहीं। अस्वाभाविक न हो सकता है, न होने की कोई संभावना है। देर-अबेर कितनी ही हो जाए, तुम वही हो जाने वाले हो जो तुम होने को पैदा हुए हो। तुम्हें वही होना है, तुम जो हो। भूले रहो, बिसरे रहो, कितना ही अपनी तरफ पीठ किए रहो, और कितने ही अड़ंगे खड़े कर लो, मार्ग में कितनी ही चट्टानें बिछा दो कि झरना बह न सके, लेकिन जिस दिन भी चट्टानें हटाओगे, जिस दिन भी पर्दे उठाओगे, जिस दिन भी घूंघट सरकाओगे, उस दिन लगेगा चमत्कार ही! मगर चमत्कार नहीं है।
चमत्कार लगेगा, क्योंकि इतने दिन तक भुलाए रखा था कि सुध ही चली गई थी। स्मरण भी नहीं आता था सुबह का। सूरज सपनों में भी नहीं झांकता था। मगर फिर भी, रात है तो सुबह है। और संसार है तो मोक्ष है। और मन है तो मन से मुक्ति है। मन भरा है विचारों से। विचारों की तरंगों पर तरंगें। झील देखी है--तरंगों पर तरंगें--ऐसा मन है। लेकिन कभी झील चुप भी होती है, शांत भी होती है, एक तरंग भी नहीं होती है। झील तब दर्पण बन जाती है। तब झील में झलकता है आकाश, तारे, चांद। तब झील में झलकते हैं पास खड़े वृक्ष। तब झील उसे दर्शाती है, जो है।
ऐसी ही मन की दो अवस्थाएं हैं। एकः विक्षुब्ध; आंधी, तूफान, अंधड़, तरंगें, लहरें, लहरों पर लहरें, सब डांवाडोल--चंचलता। और दूसरी अवस्था हैः निर्विचार। न कोई तरंग, न कोई लहर, मन हो गया शांत एक झील। बस तत्क्षण जो है... जो है वह तो सदा से है, सिर्फ हम उद्विग्न थे, इसलिए उसे झलका न पाए, उसे जान न पाए। जैसे ही हम अनुद्विग्न होते हैं, वैसे ही सारा परमात्मा सब दिशाओं से हमारी तरफ दौड़ पड़ता है। हम भर दिए जाते हैं, शून्य होते ही भर दिए जाते हैं।
मगर जगदीश, तुम ठीक कहते हो। जब पहली बार ऐसा होता है, तो लगेगा हीः
बिन मांगे सच्चे रत्नों से झोली भर दी
जिस झोली को तुम सोच रहे हो मैंने भर दी, वह भरी ही हुई थी। सिर्फ तुमने अपनी झोली में टटोला न था। गुदड़ी में लाल है, मगर तुम भागे फिरते सारे संसार में। गुदड़ी को टांगे कंधे पर। गुदड़ी में टटोलते नहीं। संसार खोज आते हो, घर में खोजते नहीं। और जितना खोजते हो बाहर, उतनी ही बेचैनी बढ़ती जाती है। क्योंकि रोज-रोज असफल होते हो, रोज-रोज हारते हो। रोज-रोज आशाएं धूल-धूसरित होती हैं। रोज-रोज कल्पनाओं के दीये फिर बुझ जाते हैं। सोचते थे, कल हो जाएगा। कल आ गया और कुछ भी नहीं हुआ। विषाद घेर लेता है। अंधकार और घना हो जाता है। निराशा छाती पर हिमालय बन कर बैठ जाती है। हटाए नहीं हटती।
जैसे-जैसे दिन बीतते हैं जीवन के, वैसे-वैसे ही आदमी आशाएं खोने लगता है। उसकी आंखें चमक खो देती हैं। उसके प्राण हिम्मत खो देते हैं। उसके पैर

डगमगाने लगते हैं। अपने पर भरोसा चला जाता है। आत्म-श्रद्धा चली जाती है। इतनी बार हारोगे तो आत्म-श्रद्धा खो ही जाएगी। इतनी बार पराजित होओगे तो कैसे माने जाओगे कि एक न एक दिन जीतूंगा, जरूर जीतूंगा? हर चीज की सीमा है। एक बार हारे, सोचा कि जीतूंगा। दो बार हारे, सोचा कि जीतूंगा। लेकिन कितनी बार हार कर तुम यह जीतने की आशा बनाए रखोगे?
तो जैसे-जैसे बाहर खोजते हो, वैसे-वैसे झोली और खाली मालूम होने लगती है। जैसे-जैसे वासनाओं में दौड़ते हो, वैसे-वैसे और भिखमंगे हो जाते हो। यहां भिखमंगे तो भिखमंगे हैं ही, यहां जिनके पास सब कुछ है, वे भी भिखमंगे हैं। जब तक वासना है तब तक भिखमंगापन है। वासना भिक्षापात्र है। वासना का अर्थ हैः और! और! और और का कोई अंत नहीं है। और की दौड़ कहीं समाप्त होती नहीं। कितना ही मिल जाए, और! बाहर दौड़ता हुआ आदमी धीरे-धीरे विक्षिप्त हो जाता है। बाहर की दौड़ की अंतिम निष्पत्ति विक्षिप्तता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।
और मजा ऐसा है--चमत्कारों का चमत्कार, आश्चर्यों का आश्चर्य, भरोसा न आए, बात ऐसी है--कि जिसे तुम तलाश रहे हो, वह तुम्हारी गुदड़ी में है। और गुदड़ी तुम्हारे कंधे पर टंगी है। उसमें तुम टटोलते नहीं। अपने भीतर टटोलते नहीं। "अपने माहिं टटोल!" जिस दिन यह बोध आ जाता है, भीतर टटोलने का, उसी दिन क्रांति घट जाती है।
वही क्रांति घटनी शुरू हो गई है। मैंने तुम्हारी झोली नहीं भरी। तुम्हारी झोली भरी ही हुई थी, सिर्फ तुम्हें झकझोरा, कि जगदीश, जरा जागो और देखो, व्यर्थ मांगने जा रहे हो उसे जो तुम्हें मिला ही हुआ है! तुमने सुनी। हजार को कहो तो एकाध सुनता है। और हजार सुनें तो एकाध मानता है। और हजार मानें तो एकाध उस मान्यता को कृत्य में रूपांतरित करता है। तुमने सुना, तुमने माना, तुमने उसे कृत्य में रूपांतरित किया। अचानक तुम्हें लगा कि मैं तो सोचता था झोली खाली है, भर दी गई! भरी नहीं गई है, भरी ही हुई थी। परमात्मा ने प्रत्येक को सम्राट की तरह ही बनाया है। भिखारी परमात्मा बनाता ही नहीं, बना नहीं सकता। यह अस्तित्व सिर्फ सम्राटों को ही पैदा करता है, जिनकी सबकी क्षमताएं अनंत हैं। यहां बूंदों में सागर छिपाए गए हैं। यहां छोटे-छोटे आंगन में भी विराट आकाश समाया हुआ है। जरा देखने की आंख, जरा निखार, जरा सूझ, जरा दृष्टि पैनी--और भिखमंगापन समाप्त हो जाता है, करना नहीं पड़ता।
बिन मांगे सच्चे रत्नों से झोली भर दी
बिन चाहे मेरे जीवन में खुशियां भर दीं
और यह बात भी समझने जैसी है। यह क्रांति बिन मांगे ही होती है। क्योंकि मांगने वाला आदमी तो बाहर ही आंख गड़ाए रहता है। मांगने वाले की आंख तो उस पर गड़ी होती है जिससे वह मांग रहा है। स्वभावतः, अगर तुम किसी के द्वार पर दस्तक दिए हो और भिक्षा मांगने गए हो, तो तुम्हारी नजर तो उस आदमी पर होगी जो भिक्षा देने वाला है। तुम तो उसकी आंखों में टटोलोगे--दया, ममता, करुणा, थोड़ा कुछ सहारा मिल जाए। तुम अपने में थोड़े ही देखोगे! भिखारी अपने में देखने की क्षमता नहीं जुटा सकता। उसे नजर तो दूसरे
पर ही लगाए रखनी होगी। भिखारी अपने को भूल ही जाता है, दूसरे ही उसे दिखाई पड़ते हैं। तुम्हें वही दिखाई पड़ता है जो तुम मांगने चले हो और जिससे मांगने चले हो।
तुमने एक बात ख्याल की? रास्ते से लोग गुजरते हैं, लेकिन हर आदमी अलग-अलग चीजें देखता है। चमार लोगों के जूते देखता है। चमार की पहचान ही लोगों से उनके जूतों से है। चमार जूते को ही देख कर तुम्हारा पूरा मनोविज्ञान समझ लेता है। जूते की खस्ता हालत बता देती है कि तुम्हारी जेब की हालत कैसी होगी। चुनाव जीते कि हारे इस बार--जूता बता देता है। दर्जी तुम्हारे कपड़े ही देखता है। जिसकी जो मांग है, वह वही देखता है। आंखें वहीं गड़ी रहती हैं। जूते वाला, जूता सुधारने वाला, जूता बेचने वाला बस लोगों के पैर ही देखता है, उनके चेहरे नहीं देखता। चेहरों से उसे क्या लेना-देना? चेहरे हों तो ठीक, न हों तो ठीक। जूतों से प्रयोजन है। वही उसे आकृष्ट करते हैं।

तुम अगर भूखे हो या तुमने उपवास किया है, तो रास्ते पर तुम्हें सिर्फ होटलें दिखाई पड़ेंगी, और कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। रास्ते पर तुम्हें सिर्फ भोजन की उड़ती हुई गंधें मालूम पड़ेंगी। लेकिन जिस दिन तुम्हारा पेट भरा है उस दिन ये होटलें और रेस्तरां तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते। जब तुम्हारी जेब गरम है, तब तुम कुछ और चीजें देखते हो। जिसे हीरे खरीदने हैं, उसे हीरे की दूकानें दिखाई पड़ती हैं।
हमारी दृष्टि वहां जाती है, जिसकी हमारी मांग है।
हिंदू गुजर जाता है, उसको मस्जिद नहीं दिखाई पड़ती। मस्जिद के पास से गुजरता है, नहीं दिखाई पड़ती। मुसलमान गुजरता है, उसे दिखाई पड़ती है। हिंदू को मंदिर दिखाई पड़ता है। मुसलमान वहीं से गुजर जाता है, उसे मंदिर का कोई पता ही नहीं चलता। हम वही देखते हैं जिसकी हम तलाश करते हैं। और अपने पर नजर तो कैसे आए? तलाश तो हम अपनी कभी करते ही नहीं।
हां, जो अपनी तलाश करे, उसके लिए एक शर्त पूरी करनी पड़ती है--उसे चाह से अपने को मुक्त कर लेना होता है। क्योंकि चाह दूसरे से बांधती है। चाह का अर्थ ही होता हैः मेरे और दूसरे के बीच सेतु। चाह एक सेतु है, जो मुझे दूसरों से जोड़ती है। जिस व्यक्ति को स्वयं को जानना है, उसे चाह के सारे सेतु तोड़ देने पड़ते हैं। उसे आंख भीतर लौटा लेनी होती है। उसे भीतर देखने की क्षमता और भीतर सुनने की क्षमता जुटानी पड़ती है। वही ध्यान है। और वह होना शुरू हो जाए, तो जीवन खुशियों से भर जाता है। इतनी खुशियों से, जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। इतनी खुशियों से, जिनके तुम सपने भी देखना चाहो तो नहीं देख सकते। अनुभव ही नहीं है तो सपना कैसे देखोगे?
सपने भी तो हम उन्हीं बातों के देखते हैं, जिनका हमें अनुभव है। थोड़ा- बहुत हेर-फेर कर लेते होंगे, थोड़ा रंग-रोगन कर लेते होंगे, लेकिन सपने भी तुम उन्हीं बातों के देखते हो जिनका तुम्हें अनुभव है। जिसका अनुभव नहीं है, उसका तुम सपना भी नहीं देख सकते, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए तुम्हारे सपनों की जांच करके जाना जा सकता है कि तुम्हारी जिंदगी के अनुभव क्या हैं। मनोवैज्ञानिक तुम्हारे सपनों का विश्लेषण करते हैं ताकि तुम्हारे जीवन का अर्थ पता चल जाए। तुम्हारी रात तुम्हारे दिन का प्रतिफलन है। तुम्हारी रात तुम्हारे दिन की गूंज है।
अभी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कितनी खुशियों के तुम मालिक हो! कितनी खुशियां तुम्हारा स्वरूपसिद्ध अधिकार हैं! खुशियां ही खुशियां तुम पर बरस सकती हैं! मेघ तैयार हैं बरसने को। तुम लेने को तैयार नहीं। तुम भागे-भागे हो। तुम कभी उस जगह हो ही नहीं जहां मेघ बरसने को राजी हैं। तुम कहीं और हो--अतीत में, भविष्य में, मगर वर्तमान में कभी भी नहीं। और जो भी बरसता है, वह वर्तमान में बरसता है। परमात्मा वर्तमान में बरसता है। परमात्मा का एक ही समय हैः वर्तमान। और तुम्हारा, वर्तमान छोड़ कर सब है। अतीत भी तुम्हारा, भविष्य भी तुम्हारा, वर्तमान भर तुम्हारा नहीं है। वर्तमान में हो जाना ही तो ध्यान है। ऐसे जीना कि अतीत की छाया न हो, भविष्य की योजना न हो, तो फिर तुम्हारे भीतर कोई विचार न रह जाएंगे, तुम निर्विचार हो जाओगे। जहां वर्तमान ही है सिर्फ, वहां कैसे विचार? वहां एक अपूर्व शांति हो जाएगी। और उसी शांति में खुशियां बरस उठती हैं।
बिन मांगे...
तुम कहते होः
... मेरे जीवन में खुशियां भर दीं
ये कैसे क्या कुछ हुआ, इसे कह दो भगवन
यह हुआ नहीं है--तुम इसे होने नहीं दे रहे थे। यह तो होना ही चाहता था। नदी तो सागर पहुंचना ही चाहती थी, तुमने बांध बना लिया था। वृक्ष तो फूल बनना ही चाहता था, लेकिन तुमने बीज की छाती पर पत्थर रख दिया था। जो होना था, वह तुम नहीं होने दे रहे थे।
आध्यात्मिक जीवन कोई उपलब्धि नहीं है। आध्यात्मिक जीवन सिर्फ बाधाएं
न डालने का नाम है। इसे तुम ठीक से समझ लो। इसे मुझे फिर से दोहराने दो। आध्यात्मिक जीवन कोई नई उपलब्धि नहीं है। स्वरूप की अभिव्यक्ति है। जो है, उसी का पाना है। लेकिन हम उसे नहीं पा पा रहे हैं, क्योंकि हमने बहुत सी

बाधाएं खड़ी कर दी हैं, हमने बहुत सी अड़चनें खड़ी कर दी हैं। आंख देख सकती है, मगर आंख पर पर्दा डाल रखा है।
हटाओ पर्दे! पर्दे हटते ही सब प्रकट हो जाएगा। जैसे अंधे आदमी की अचानक आंख खुल जाए, जगदीश, तो चकित हो जाएगा न! कहेगा कि एकदम रंग बरस उठे! एकदम रोशनी बरस उठी! यह कैसा चमत्कार कर दिया! अनहोनी थी जो बात, उसे होनी कर दी!
लेकिन जिसके पास आंखें हैं वह कहेगा कि अनहोनी नहीं थी, हो ही रही थी। वृक्ष हरे थे, गुलाब लाल थे, चांद-तारों में रोशनी थी, सिर्फ तुम्हारी आंखें बंद थीं। जगत वही का वही है। अंतर अगर पड़ गया है थोड़ा सा तो तुममें पड़ गया है। और वह भी बहुत थोड़ा सा। बस पलक झपकने और खोलने की बात है। तुम अंधे भी नहीं हो, सिर्फ पलकें बंद किए बैठे हो।
तुम्हें शायद याद ही नहीं रही कि पलकें खोली जा सकती हैं। तुम्हें बचपन से ही पलकें बंद करना सिखाया गया है। तुम्हें शुतुरमुर्ग का तर्क सिखाया गया है। तुम्हें कहा गया है, जिंदगी में बड़ी कठिनाइयां हैं, बड़े दुख हैं, बड़े संकट हैं, बड़ी विपदाएं हैं। आंख बंद रखना, न दिखाई पड़ेंगे संकट, न दिखाई पड़ेंगी विपदाएं, न दिखाई पड़ेंगी कोई कठिनाइयां। और न दिखाई पड़ेंगी, तो शुतुरमुर्ग का तर्क यह है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह नहीं है। इसलिए शुतुरमुर्ग अपने दुश्मन को देख कर अपने सिर को रेत में गड़ा लेता है। और जब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, तो कहता है, जो दिखाई नहीं पड़ता, वह हो कैसे सकता है?
तुम शुतुरमुर्ग पर हंसना मत। वही तो सारे नास्तिकों का तर्क है--कि ईश्वर हो कैसे सकता है, दिखाई नहीं पड़ता! सब नास्तिक शुतुरमुर्ग हैं। और सब शुतुरमुर्ग नास्तिक हैं। नास्तिकता का आधारभूत दृष्टिकोण यही है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह हो नहीं सकता। और मजा यह है कि तुम देखते हो नहीं। तुम्हें कोई दिखाए तो भी तुम आंख नहीं खोलते।
नवीनतम शोधें इस सत्य को प्रकट करती हैं कि मनुष्य केवल दो प्रतिशत घटनाओं को अपने भीतर आने देता है, अट्ठानबे प्रतिशत को बाहर रोक देता है। तुम सिर्फ दो प्रतिशत को देखते हो, अट्ठानबे प्रतिशत को नहीं देखते। तुम सिर्फ दो प्रतिशत को सुनते हो, अट्ठानबे प्रतिशत को नहीं सुनते। तुम सिर्फ दो प्रतिशत जीते हो, अट्ठानबे प्रतिशत नहीं जीते। तुम्हारी जिंदगी इसीलिए तो ऐसी कुनकुनी है। तुम्हारी जिंदगी में इसीलिए तो कोई त्वरा नहीं है, कोई तीव्रता नहीं है, कोई सघनता नहीं है। और बिना सघनता और तीव्रता के कैसे आनंद होगा?
खुशियां बरसीं, क्योंकि तुम राजी हो गए जगदीश, थोड़ी सी बाधाएं हटाने को। तुम आंख खोलने को राजी हो गए। महंगा मालूम पड़ता है लोगों को आंख खोलना। क्योंकि उन्होंने कुछ चीजें मान रखी हैं, वे डरते हैं कि आंख खोलें, कहीं ऐसा न हो कि वे चीजें हों न। लोग डरते हैं आंख खोलने में कि कहीं कुछ सपने खो न जाएं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात बड़बड़ा रहा था। उसकी पत्नी उठ कर बैठ गई कि क्या बड़बड़ा रहा है? एकदम गिनती बोल रहा था--सत्तानबे, अट्ठानबे, निन्यानबे... और बड़ा बेचैन मालूम हो रहा था और करवटें बदल रहा था। पत्नी ने उसे झकझोर कर उठाया, सोचा कि कोई दुःस्वप्न देख रहा है। मुल्ला ने आंखें खोलीं और कहा कि सब नष्ट कर दिया। देवदूत खड़ा था सामने और वह कह रहा था, ले ले, कितना चाहिए? उसी से सौदा चल रहा था। पक्का कंजूस देवदूत था वह थी। मैं कहूं सत्तानबे, तो वह कहे छियानबे। मैं कहूं अट्ठानबे, तो वह बामुश्किल से सत्तानबे। मैं किसी तरह खींच-खींच कर सौ के पास ला रहा था--निन्यानबे से आगे बढ़ने को वह राजी नहीं था। और यह तूने क्या किया, बीच में उठा दिया? अब गड़बड़ मत करना। जल्दी से उसने आंख बंद कर लीं और बोला कि अच्छा, कहां हो? प्रकट हो जाओ! मगर अब कौन है वहां? और कौन प्रकट हो? मुल्ला ने कहा, अच्छा तो निन्यानबे ही ले लेंगे। चलो जाने दो, जिद्द मैं नहीं करता, छोड़ो जिद्द! चलो अट्ठानबे सही, सत्तानबे सही! मगर अब वहां कौन है? सपना टूट गया सो टूट गया। फिर दुबारा नहीं जोड़ा जा सकता।

लोग आंखें खोलने में डर रहे हैं। डर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने कुछ सपने बसा रखे हैं। कोई सोचता है कि मकान बना लिया, सब कुछ बना लिया; पत्नी है, बच्चा है, सब कुछ है; पद है, प्रतिष्ठा है, सब कुछ है; लोगों में सम्मान है, आदर है, सब कुछ है; डरता है, कि कहीं आंख खोली और सचाई पता न चल जाए! कहीं ऐसा न हो कि जो लोग प्रशंसा करते हैं, पता चले कि वे ऊपर-ऊपर ही प्रशंसा करते हैं, पीछे गालियां देते हैं। आंख खुलेगी तो सब पता चल जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे बोला कि मैंने और मेरे मित्र ने तय किया कि जब हमारी मित्रता इतनी गहरी है, तो हम एक-दूसरे से कभी झूठ न बोलेंगे, सत्य ही बोलेंगे। इतनी तो मित्रता में क्षमता होनी चाहिए-- प्रामाणिक होने की, सत्य होने की।
मैंने पूछा, फिर क्या हुआ?
मुल्ला ने कहा, फिर मत पूछो। आज बीस साल हो गए, बस एक ही दिन सत्य हम एक-दूसरे से बोले कि दोस्ती खत्म हो गई, बीस साल से बोलचाल बंद है।
इस दुनिया में ऊपर की बातें कुछ और हैं, भीतर की बातें कुछ और हैं। जो तुम्हारे सामने तुम्हारी प्रशंसा के पुल बांध जाता है, पक्का समझो कि तुम्हारे पीछे जाकर निंदा करेगा। उसे करनी ही पड़ेगी। उसके कारण हैं। उसने प्रशंसा करके जो कष्ट पाया है, उसका बदला लेगा। तुम्हारी प्रशंसा करने में उसे कोई बड़ी खुशी नहीं हो रही थी; उसके निहित स्वार्थ थे; वह कुछ तुमसे लेने आया था। तुमसे कुछ पाना चाहता था, बिना प्रशंसा के नहीं पा सकता था, तो मक्खन लगा रहा था। तो वह चमचागिरी कर रहा था। लेकिन पीड़ा तो उसे हो रही थी, उसके अहंकार को तो चोट लग रही थी कि किस बुद्धू को मैं बुद्धिमान कह रहा हूं! किस पाखंडी को चरित्रवान कह रहा हूं! किस अभद्र को भद्र कह रहा हूं! किस कंजूस को कृपालु कह रहा हूं! यह सब वह अनुभव कर रहा था। उसे कष्ट तो हो रहा था। और अपने अहंकार को भी चोट लग रही थी कि आज दुर्भाग्य का दिन कि किसी का चमचा होना पड़ रहा है! इसका बदला लेगा ही लेगा। पीठ पीछे लेगा। आज नहीं कल लेगा।
जो आदमी तुम्हारी प्रशंसा करे, उससे सावधान रहना। वह तुम्हारी निंदा करेगा ही। निंदा उसे करनी पड़ेगी, तभी उसके चित्त को शांति मिलेगी। तभी संतुलन हो सकेगा। तभी वह रात चैन से सो सकेगा। अगर उसने निंदा न की तो उसके ऊपर बड़ा बोझ रह जाएगा।
तो तुम डरते हो कि अगर आंख खोली... और आंख खोली तो आंख पारदर्शी हो जाती है। कोई प्रशंसा कर रहा है, तो प्रशंसा ही नहीं दिखाई पड़ती, उसके भीतर छिपी हुई निंदा भी दिखाई पड़ती है। कोई झूठ बोल रहा है, झूठ ही नहीं दिखाई पड़ता, उसके भीतर पड़ा हुआ सच भी दिखाई पड़ता है। आंख पारदर्शी हो जाती है। आर-पार देखने लगती है। लोगों के हृदय खुले हो जाते हैं, आंख के सामने हो जाते हैं। वे जो भीतर छिपाए हैं, उसे छिपा नहीं सकते। हर चीज झलकने लगती है।
इससे लोग आंख खोलने से डरते हैं, भयभीत होते हैं, कि अगर आंख खोली, और कहीं ऐसा न हो कि इतने भ्रम जो पाल रखे हैं, वे सब टूट जाएं? कहीं अपने पराए सिद्ध न हों? कहीं प्रशंसा निंदा न हो जाए? कहीं सम्मान अपमान न निकले? और यह जो घर बनाया और यह जो पत्नी है और ये जो बच्चे हैं, जिनको मैं सोचता हूं मेरे हैं, जिनके लिए मैं सब समर्पित कर रहा हूं, कहीं ऐसा न दिखाई पड़ जाए कि कौन किसका? यहां कौन किसका? कौन मेरा? कौन तेरा? आंख खोलते डर लगता है। अभी आंख बंद रखो। अभी और थोड़ी देर यह मीठा सा सपना चल रहा है, इसे देख लो। सपनों के कारण लोग आंख नहीं खोल रहे हैं। जो व्यक्ति भी आंख खोलने को राजी हो जाए, वही संन्यासी है। जो कहे, जो भी हो, परिणाम चाहे कुछ भी हो, फल चाहे कैसा भी कड़वा आए, सत्य अगर कड़वा भी है तो भी वांछनीय है और झूठ अगर मीठा भी है तो भी वांछनीय नहीं है, क्योंकि झूठ आखिर झूठ है।
बुद्ध ने कहा है, झूठ पहले मीठा और फिर कड़वा होता है। और सत्य पहले कड़वा, फिर मीठा होता है।
कड़वाहट से लोग बच रहे हैं। सत्य की पीड़ा से बच रहे हैं। इसलिए आंखें बंद किए बैठे हैं। लाख उनसे कहो आंखें खोलो, आंख खोलते नहीं। कुछ तो इतने होशियार हैं कि आंख बंद किए-किए, आंख खोल ली हैं, इस बात के सपने देखने लगते

हैं। आंख बंद किए-किए सपने देखने लगते हैं कि हां, खुली आंख, खोल ली आंख। इन्हीं को तुम तथाकथित धार्मिक लोग कहते हो।
जीवन उनका प्रमाण नहीं देता कि उनकी आंखें खुली हैं। क्योंकि जिसकी आंख खुली हो, उसे मंदिर और मस्जिद में भेद रहेगा? जिसकी आंख खुली हो, उसे राम और अल्लाह में भेद रहेगा? जिसकी आंख खुली हो, उसे गीता और कुरान में भेद रहेगा? जिसकी आंख खुली हो, उसे काले और गोरे में भेद रहेगा? जिसकी आंख खुल गई, उसके सारे भेद गिर गए। भेद ही आंख बंद होने के भेद हैं। आंख खुलते ही अभेद हो जाता है। आंख खुलते ही यह सारा अस्तित्व एक ही परमात्मा की अभिव्यक्ति हो जाता है।
तो बहुत लोग हैं जो सोचते हैं कि उन्होंने आंख खोल ली। आंख खोली नहीं है। तुमने कभी-कभी ऐसा सपना भी तो देखा होगा न, जिसमें तुम्हें लगता है तुम जग गए। जरा वैसे सपने याद करो। जरूर सभी को कभी न कभी ऐसा अनुभव हुआ होगा कि सपने में सपना देखा कि जग गए। सुबह पता चला कि वह जगना जगना नहीं था, वह तो सपने का ही एक ढंग था। सपने में भी सपने देखे जा सकते हैं। सपनों के भीतर सपने देखे जा सकते हैं। तुमने चीनी डिब्बे देखे न--डिब्बों के भीतर डिब्बे, डिब्बों के भीतर डिब्बे! वैसे ही सपनों के भीतर सपने और सपनों के भीतर सपने देखे जा सकते हैं।
तुम रात सोए और तुमने एक सपना देखा कि तुम घर लौटे हो दफ्तर से थके- मांदे... सपना देख रहे हो... कि घर लौटे हो दफ्तर से थके-मांदे, बिस्तर पर पड़ गए हो, सोने की तैयारी कर रहे हो। सो चुके हो, अब तुम सपना देख रहे हो सोने में कि सोने की तैयारी कर रहे हो, और तुम सो गए--यह दूसरे सपने में। और तुमने एक सपना देखा इसके भीतर कि तुम फिल्म देखने जा रहे हो और तुम एक फिल्म देख रहे हो।
तुम सपने के भीतर सपने देख सकते हो। चित्त बड़ा जटिल है। और सपने के भीतर जो सबसे अजीब सपना है और सबसे आश्चर्यजनक सपना है, वह है जागने का सपना। वह भी पैदा हो जाता है। मन कहता है, तुम जो चाहो, वही हम देने को राजी हैं।
तुम सपने का मनोवैज्ञानिक आधार समझते हो?
पहले तो लोग सोचते थे सदियों तक कि सपना नींद में बाधा है। अभी भी इस देश में लोग ऐसा ही सोचते हैं कि जिस दिन सपने आए, उस दिन नींद ठीक नहीं हुई। सपनों ने नींद में बड़ी बाधा डाली। मगर आधुनिक मनोवैज्ञानिक शोध कुछ उलटा ही नतीजा निकाली है। नतीजा आधुनिक शोध का यह है कि सपने नींद में बाधा नहीं हैं, सहयोगी हैं। बिना सपनों के तुम सो ही न सकोगे। सपना तो नींद की तरकीब है कि कहीं तुम जग न जाओ। सपना नींद का उपाय है तुम्हें सुलाए रखने का।
जैसे समझो, तुमने उपवास किया। एकादशी का व्रत आ गया और उपवास किया। अब रात भूख तो लगेगी ही। दिन भर ही लगी रही थी। किसी तरह दिन भर तो टालते रहे। यहां-वहां, राम-राम, भजन करते रहे। धर्म-प्रवचन सुनने चले गए, मंदिर में जाकर बैठ गए, पूजा की थाली सजा ली, किसी तरह अपने को उलझाए रखे। लेकिन रात क्या करोगे? सोते ही शरीर मांग करेगा, भूख लगी है। और अगर भूख लगी है तो नींद कैसे लग पाएगी? तो सपना एक रास्ता बनाएगा। सपना कहेगा, आज राजमहल में तुम्हारा निमंत्रण है। चले! बड़ा भोज हो रहा है। छत्तीसों प्रकार के व्यंजन बने हैं। भोजनों में से गंध आ रही है। एक से एक सुंदर भोजन, जो तुमने कभी नहीं किए हैं, जिनको तुमने सिर्फ कहानियों में पढ़ा है, वे सब उपलब्ध हैं। तुम डट कर भोजन कर रहे हो।
यह सपना तुम्हारी नींद को टूटने से बचा रहा है, नहीं तो भूख तुम्हारी नींद तोड़ दे।
सबको अनुभव होगा। रात सोए, जोर से तुम्हारे ब्लैडर पर दबाव पड़ना शुरू हुआ। जीवन-जल बाहर जाना चाहता है। अब उठो, नींद टूटेगी। अब बाथरूम जाओ, नींद में बाधा पड़ जाएगी। तत्क्षण नींद एक सपना पैदा करती है। नींद सपना पैदा करती है कि तुम उठ गए, बाथरूम गए, जीवन-जल से छुटकारा पा लिया, वापस आकर सो गए। यह सब सपने में हो रहा है। यह ब्लैडर को धोखा दिया जा रहा है। यह तुम रोज इस तरह के सपने देखते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने दो साथियों के साथ हज-यात्रा को गया। तीनों बड़े पहुंचे फकीर। एक मामला ऐसा बना कि एक गांव में बहुत मांगा, भिक्षा तो मिली ही नहीं। जो थोड़े-बहुत पैसे थे, तीनों ने इकट्ठे करके हलुवा खरीदा। हलुवा इतना कम था और भूख इतनी ज्यादा थी कि एक का ही पेट भर सकता था। तीनों में विवाद छिड़ा कि कौन भोजन करे? तीनों ने सिद्ध करने की कोशिश की कि किसका जीवन जगत के लिए ज्यादा उपयोगी है। मगर कोई निर्णय न हो सका। तीनों अपना-अपना दावा कर रहे थे कि मेरे बिना जगत खाली हो जाएगा। मेरी फिर बड़ी जरूरत होगी दुनिया को। और मेरा स्थान कभी भरा न जा सकेगा। विवाद इतना बढ़ गया कि दिन भर तो ऐसा विवाद में गुजर गया। सांझ हो गई। भूख जैसे बढ़ती गई, वैसे विवाद भी बढ़ता गया। गाली-गलौज पर नौबत आ गई। मार-पीट पर नौबत आ गई। फिर आखिर तीनों ने कहा कि हम फकीर आदमी हैं, ज्ञानी आदमी हैं, मार-पीट करना शोभा नहीं देता हलुवा के पीछे! एक काम करो--मुल्ला नसरुद्दीन ने ही कहा--एक काम करो। हलुवे को सम्हाल कर रख दो, और हम तीनों सो जाएं। सुबह उठ कर जो बता सकेगा कि जिसने सबसे सुंदर सपना देखा--तीनों अपने-अपने सपने बता देना-- जिसने सबसे सुंदर सपना देखा हो, सबसे धार्मिक, सबसे पुण्य का, वही हलुवे का मालिक हो जाएगा।
बात जंची। तीनों सो गए। तीनों ने खूब कल्पना की कि कौन सा सपना सुबह बताना है। क्योंकि सपने कोई ऐसे मनचाहे तो आते नहीं। चाहो कुछ, आते कुछ हैं। पुण्य के चाहो, पाप के आते हैं। तुम ईश्वर को देखना चाहो, ईश्वर तो दिखाई ही नहीं पड़ते, शैतान दिखाई पड़ते हैं।
खैर सपने का कोई सवाल न था, सुबह उठ कर तीनों ने कहा कि भाई, अपने-अपने सपने बोलो। अब तो भूख भी बहुत लग आई! और अब तो बस हलुवा ही हलुवा याद आ रहा है।
एक ने कहा कि मैंने सपना देखा कि स्वयं खिज्र... खिज्र सूफियों का मार्गदर्शक गुरु है; अदृश्य गुरु जो भटके हुए लोगों को मार्ग पर ले जाता है; जो पहुंचे हुए सिद्धों को भटकने नहीं देता, गिरने नहीं देता, सम्हाले रखता है। वह ऊंची से ऊंची बात है सूफियों में, खिज्र का दर्शन। तो उसने कहा, खिज्र का दर्शन हुआ। दर्शन ही नहीं हुआ, खिज्र ने एकदम गले से लगा लिया--आलिंगनबद्ध। अब इससे बड़ा और क्या हो सकता है! हलुवा कहां है?
दूसरे ने कहा कि रुको, यह कुछ भी नहीं है। क्योंकि मैंने देखा कि स्वयं परमात्मा... खिज्र-विज्र का हिसाब ही कहां है... स्वयं परमात्मा मुझे देखते ही एकदम सिंहासन से उठे और अपने सिंहासन पर पास में बिठाया। निकालो हलुवा कहां है?
नसरुद्दीन ने कहा, मेरा सपना भी सुनो। मुझे पता नहीं किसने आवाज दी-- परमात्मा थे, खिज्र थे, कि शैतान था, कौन था मुझे कुछ पता नहीं--सपने में मैंने आवाज सुनी कि अरे उल्लू के पट्ठे, पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है? हलुवा खा! सो मैं तो उठ कर हलुवा खा गया। क्योंकि आज्ञा का उल्लंघन... अब जिसने भी दी हो आज्ञा, मुझे कुछ पक्का पता नहीं। सपने में कौन चिल्लाया, कुछ मुझे पक्का पता नहीं। हलुवा अब नहीं है। वह तो पच भी चुका।
सपने भी तुम्हारी नींद को सम्हालते हैं। सपने भी तुम्हारी नींद के अनुषंग हैं। और बहुत सपने तुमने बना कर रखे हैं। कोई खिज्र को देख रहा है, कोई खुदा को देख रहा है, कोई आवाजें सुन रहा है कि हलुवा अभी खा! तुमसे अगर मैं कहूंः आंख खोलो! तो तुम कहोगे, जरा ठहरो। जरा हलुवा तो खा लेने दो! सपना ही सही, मगर कुछ तो है। ना-कुछ से तो कुछ ही भला।
लेकिन जगदीश, तुम राजी हुए; तुमने थोड़ी आंख खोलने की हिम्मत जुटाई; तो
जो हुआ, वह सभी को हो सकता है। तो आज तुम कह सकते हो--अनहोनी थी जो बात, उसे होनी कर दी।
नहीं, अनहोनी नहीं थी। मेरे किए कुछ भी नहीं हो सकता। न तुम्हारे किए कुछ हो सकता है। हमारे किए तो सिर्फ बाधाएं पड़ सकती हैं। हम जो भी करेंगे, वह नकारात्मक है। हम नकारात्मक बाधाएं खड़ी न करें, तो परमात्मा स्वयं प्रत्येक को हाथ पकड़ कर ले चल रहा है। हम भर बीच-बीच में न आएं, तो परमात्मा मिला ही हुआ है। झोली भर जाएगी मोतियों से, खुशियां बरसेंगी। अमी बरसे, बिगसत कंवल! अमृत बरसेगा, तुम्हारे सहस्रार का कमल खुलेगा।

यह हो सकता है, जो सब बुद्धों को हुआ। तुम्हारी भी बांसुरी वैसी ही बज सकती है जैसी कृष्ण की बजी। और तुम्हारे पैर भी वैसे ही नाच सकते हैं जैसे मीरा के पैर नाचे। जो एक मनुष्य को हुआ है, वह सभी मनुष्यों को हो सकता है। चिराग टिमटिमा रहा है, जुल्मतों की छांओं में
कि जैसे ताइरे-कफस घुटी-घुटी फजाओं में
दमागो-दिल के दरमियां रुके हुए से वलवले
कि जैसे बेड़ियां पड़ी हों गाजियों के पांओं में
नवेदे-मौसमे-बहार गुल-ब-गुल चमन-चमन
कि जैसे आशिकों का जिक्र वह भी गांवों-गांवों में तरस-तरस के मर रही हैं दिल ही दिल में हसरतें
कि जैसे बेगमाते-सीमतन हरमसराओं में
हवा में कोंपलों की भीनी-भीनी सरसराहटें
कि जैसे नोंक-झोंक हो रही हो अप्सराओं में
मिठास बन गई हैं यूं भी जिंदगी की तल्खियां
कि जैसे कैफे-सरमदी शबाब की खताओं में

आंख खुली हो तो यह संसार ही स्वर्ग है।
मिठास बन गई हैं यूं भी जिंदगी की तल्खियां
जिंदगी की कड़वाहटें भी मिठास बन जाती हैं और कांटे भी फूल और जहर भी अमृत।
मिठास बन गई हैं यूं भी जिंदगी की तल्खियां
कि जैसे कैफे-सरमदी शबाब की खताओं में
जीवन की साधारणता साधारणता नहीं है; सिर्फ हम आंख बंद किए हैं। अन्यथा यहां सभी कुछ असाधारण है। यहां का कंकड़-पत्थर भी कोहिनूर है। क्योंकि कंकड़-कंकड़ में परमात्मा समाया हुआ है--और कोहिनूर में क्या ज्यादा हो सकता है? यहां पत्ते-पत्ते पर उसके हस्ताक्षर हैं, और पक्षी- पक्षी के कंठ में उसका गीत है। जरा आंख खोलो! जरा कान खोलो! जरा हृदय खोलो! जरा द्वार दो! और अनहोना होना शुरू हो जाता है। शुरू-शुरू में अनहोना लगेगा, अंत में तो तुम पाओगे--कुछ उलटा ही पाओगे--अंत में तुम पाओगे कि संसार अनहोना था, हमारा अज्ञान अनहोना था, हमारा अंधकार अनहोना था, हमारी पीड़ा अनहोनी थी, हमारा नरक अनहोना था, नहीं होना था और हो गया था। और स्वर्ग तो हमारा स्वभाव है।

दूसरा प्रश्नः प्रार्थना कैसे और कब जन्मती है?

रूपेश! प्रार्थना के उतने ही रूप, जितने प्रार्थना करने वाले लोग। प्रार्थना की कोई बंधी-बंधाई रूपरेखा नहीं है। जैसे चमेली के फूल चमेली के फूल और गुलाब के फूल गुलाब के फूल, और चंपा के फूल चंपा के फूल। रंग भी अलग, ढंग भी अलग, गंध भी अलग, रूप भी अलग, सौंदर्य अलग। लेकिन एक बात समान है कि सभी फूल हैं, सभी खिले, सभी ने अपना आनंद लुटाया।
प्रार्थना के भी अनंत फूल खिलते हैं। मीरा की प्रार्थना और चैतन्य की प्रार्थना में उतना ही फर्क है जितना चंपा और चमेली में। जीसस की प्रार्थना और मोहम्मद की प्रार्थना में उतना ही अंतर है जितना कमल और गुलाब में। लेकिन फिर भी प्रार्थना का सार तो एक है।
तो दो बातें समझनी होंगी। एक तो प्रार्थना का सार, उसका अंतर्गर्भ; और
एक प्रार्थना की अभिव्यक्ति। एक तो प्रार्थना का केंद्र और दूसरी प्रार्थना की परिधि।
परिधि तो भिन्न-भिन्न होंगी। यह जगत बहुत वैविध्यपूर्ण है। और अच्छा
है कि वैविध्यपूर्ण है, अन्यथा बड़ा उबाने वाला होता। यहां एक ही जैसे फूल होते, एक ही जैसे लोग होते, एक ही जैसे वृक्ष होते, तो आत्महत्या करने के अतिरिक्त और कुछ भी न सूझता। अच्छे होते तो भी। समझो कि सभी रामचंद्र जी! लिए धनुष-बाण, चले जा रहे हैं! बहुत घबड़ाहट हो जाती। सच तो यह है कि बिना रावण के रामलीला भी न बनती। घूमते रहते रामचंद्र जी धनुष-बाण लिए और सीता

मैया को साथ लिए! जब तक रावण न मिले, रामलीला न बने। और कब तक घूमोगे मंच पर? जनता भी कहेगी, अब घर जाएं, अब पर्दा गिराओ!
यहां राम उतने ही आवश्यक हैं, जितना रावण। नहीं तो राम की कथा में रस
ही न रह जाए। यहां तारे उतने ही जरूरी हैं, जितना अंधेरा आकाश। नहीं तो तारे चमकें ही न। पृष्ठभूमि चाहिए। यहां वैविध्य है, विरोध है। और दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।
तो पहली तो बातः भिन्न-भिन्न प्रार्थनाएं हैं। प्रार्थना के रंग अलग, ढंग अलग। इससे यह मत समझना कि प्रार्थनाओं की आत्मा अलग-अलग है। आत्मा अलग-अलग नहीं है, सिर्फ देह; सिर्फ आवेष्टन, सिर्फ परिधान। आत्मा तो एक है। प्रार्थना की आत्मा है समर्पण। मैं नहीं हूं, तू है, ऐसा भाव प्रार्थना का प्राण है। फिर यह भाव कैसे प्रकट होगा, यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर होगा।
मीरा में नाच कर प्रकट होगा। मीरा नाच कर अपने को खो देगी। मैं नहीं हूं, तू है, इस बात की अभिव्यक्ति मीरा में नाच कर होगी। ऐसी नाचेगी, ऐसी नाचेगी, कि नर्तक खो जाए, नृत्य ही रह जाए।
बुद्ध में यही प्रार्थना नृत्य में पैदा नहीं होगी, शून्य में पैदा होगी। नाचना तो दूर, हिलना-डुलना भी नहीं होगा। बुद्ध तो पत्थर की, संगमरमर की प्रतिमा की भांति थिर--जरा भी नहीं अथिर, बिल्कुल थिर बैठे होंगे। उनके भीतर भी वही प्रार्थना खुल रही है, लेकिन मौन, शांत, शून्य, नाचती हुई नहीं। इस प्रार्थना का नाम ध्यान। जब प्रार्थना शून्य होती है, गुनगुनाती नहीं, गीत नहीं गाती, तब ध्यान। और जब ध्यान गुनगुनाता है, गीत गाता है, तब प्रार्थना।
फिर प्रार्थना प्रार्थना में भी भेद होंगे। गाए जाने वाले गीत भी अलग-अलग होंगे। अलग-अलग भाषाएं हैं। अलग-अलग लोग हैं। अलग-अलग लोगों की संवेदनशीलताएं हैं। अगर किसी संगीतज्ञ को प्रार्थना का जन्म होगा, तो वह अपनी वीणा उठा लेगा। और क्या करेगा? छेड़ देगा वीणा को! अगर किसी चित्रकार को प्रार्थना पैदा होगी तो वह क्या करेगा? उठा लेगा अपनी तूलिका, फेंक देगा रंग कैनवस पर, उंडेल देगा रंग। अगर किसी कवि को प्रार्थना पैदा होगी, तो काव्य जन्मेगा। अलग-अलग लोगों की संवेदनशीलताएं हैं। तो उनकी अलग-अलग अभिव्यक्तियां होंगी।
तुम्हारी संवेदनशीलता पर निर्भर होगी तुम्हारी प्रार्थना। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, किसी और की प्रार्थना को मत उधार लेना। अन्यथा तुम आत्मघात कर लोगे। किसी दूसरे के अंधे अनुयायी मत बन जाना। सीखो सबसे, लेकिन करो वही जो तुम्हारा प्राण कहे। सुनो सबकी, गुनो सबकी, मगर जीओ वही जो तुम्हारा अंतर-भाव कहे। सदगुरुओं के पास उठो-बैठो, लेकिन नकलची मत बन जाना। नकलची बनने की आकांक्षा पैदा होती है। क्योंकि नकलची बनना बहुत साधारण होता है, सस्ता होता है। अपने प्राणों को जगाना तो जरा महंगा सौदा है। लेकिन किसी और के वस्त्र ओढ़ लेने तो बहुत आसान हैं।
सुनो, समझो, सीखो, सब जगह झुको, मगर एक बात कभी न भूले कि परमात्मा ने तुम्हें एक आत्मा दी है और तुम्हारी आत्मा में कुछ बीज छिपे हैं, उन्हें प्रकट होना है। पता नहीं जुही के हैं, कि चंपा के हैं, कि केवड़े के हैं। जब तक प्रकट न हो जाएंगे तब तक पता हो भी नहीं सकता। उनकी कोई भविष्यवाणी भी नहीं हो सकती, कि तुम नाचोगे, कि तुम गाओगे, कि तुम बिल्कुल चुप हो जाओगे। मगर प्रार्थना का प्राण एक है--समर्पण। अस्तित्व के प्रति लीनता का भाव। अस्तित्व से मैं भिन्न नहीं हूं, एक हूं, इसकी प्रतीति। फिर वह प्रतीति तुम जैसी भी प्रकट करो, वैसी ही सुंदर।
पूछते हो तुमः "प्रार्थना कैसे और कब जन्मती है?"
प्रार्थना जन्मती है, जब तुम्हारा कर्ता का भाव खूब-खूब हार चुका होता है। जब तुम लड़े, जूझे और हर बार हारे। जब तुम धारा के विपरीत तैरे और हर बार टूटे। जब जीवन से लड़-लड़ कर तुम गिर जाते हो टूट कर, तब प्रार्थना जन्मती है। हारे को हरिनाम! हारना बिल्कुल जरूरी है।
जो जीत ही रहा है, उसके जीवन में प्रार्थना पैदा नहीं होगी। क्योंकि उसको तो अकड़ पैदा होगी। वह तो कहेगा, मैं कुछ हूं! और जहां मैं है, वहां

प्रार्थना नहीं है। टूटे मैं, इसकी कगारें बहती जाएं जीवन की धारा में, यह चट्टान मैं की क्षीण होते-होते रेत हो जाए। जिस दिन तुम अनुभव करोगे कि यह मेरे का भाव ही गलत है, इस मेरे-भाव से ही संघर्ष पैदा होता है, इस मेरे-भाव से ही मैं अस्तित्व से युद्ध में संलग्न हो गया हूं, जब कि अस्तित्व से आलिंगनबद्ध होना है, युद्ध में संलग्न नहीं; अस्तित्व से मैत्री साधनी है, हम अस्तित्व के हैं, अस्तित्व हमारा है; जिस दिन तुम्हें ऐसा अनुभव होगा, जिस दिन ऐसी विवशता, ऐसी मजबूरी तुम अनुभव करोगे कि अलग होना संभव नहीं है, अलग होना भ्रांति है, बस उसी दिन प्रार्थना का जन्म होगा।

मैं चाहता हूं--
बालों का पकना रुक जाए।
मैं चाहता हूं--
जवानी का ढलना रुक जाए।
लेकिन!
बाल पकेंगे ही।
जवानी ढलेगी ही।
मैं इसे रोक नहीं सकता
यहीं पर
पराजित हो जाता हूं।
संघर्ष
की प्रवृत्ति अपने आप में
लय हो जाती है।
तर्क का स्थान
प्रार्थना ले लेती है।

जब तुम जीवन को देखोगे, इसकी अनिवार्यता को देखोगे, इसकी अपरिहार्यता
को देखोगे, और जब देखोगे कि मेरे किए कुछ भी नहीं होता--मैं गिर जाएगा। और जहां मैं गिरा, वहां प्रार्थना जन्मी।
तो एक तो प्रार्थना का जन्म होता है मैं की पराजय में, मैं की आत्यंतिक पराजय में। धन्यभागी हैं वे जिनका मैं पराजित हो जाता है। अभागे हैं वे जो छोटे-मोटे खिलौनों को जीत लेते हैं और समझते हैं कि जीत गए। किसी ने थोड़ा सा बैंक में धन इकट्ठा कर लिया है, वह अकड़ा फिरता है, उछला फिरता है; उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। कोई किसी पद पर पहुंच गया है, जरा उसकी अकड़ देखो! दो दिन की अकड़ है। दो दिन भी टिक जाए तो बहुत है। मगर जब पद पर है तब उसकी अकड़ देखो! तब उसके अहंकार को बल मिल रहा है। ऐसे आदमी में प्रार्थना पैदा नहीं होती। कैसे होगी?
धन्यभागी हैं वे जिनके जीवन में इस तरह के खिलौने धोखा नहीं देते। जो जानते हैं कि खिलौने खिलौने हैं, सब पड़े रह जाएंगे। सब ठाट पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बंजारा। उन्हें पता है कि मौत आती है और जल्दी ही कारवां रवाना हो जाएगा। और यहां के पद और यहां का धन और प्रतिष्ठाएं, सब यहीं पड़ी रह जाएंगी। इनको बटोरने में जो मैं समय गंवा रहा हूं वह व्यर्थ ही जा रहा है। जिसे ऐसा दिखाई पड़ जाता है, वह बड़भागी प्रार्थना को उपलब्ध होता है।
और प्रार्थना है रहस्य का अनुभव। प्रार्थना तर्क नहीं है, विचार नहीं है; प्रार्थना भावना है। तर्क के पास उत्तर हैं, प्रश्न हैं, प्रश्नों में से उत्तर निकलते हैं, उत्तरों में से नये प्रश्न निकल आते हैं। तर्क प्रश्न और उत्तरों के बीच में उलझा रहता है। न तो कोई उत्तर अंतिम है, न कोई प्रश्न वस्तुतः सार्थक है। क्योंकि सार्थक प्रश्न वही है जो अंतिम उत्तर ले आए। लेकिन तर्क डोलता रहता है घड़ी के पेंडुलम की तरह उत्तरों और प्रश्नों के बीच में। खुद ही प्रश्न बनाता है, खुद ही उत्तर रचता है। हर उत्तर में नये प्रश्न खोज लेता है। हर प्रश्नों के नये उत्तर बना लेता है। एक पहेली है जो आदमी बैठ कर सुलझाता रहता है। यह कभी सुलझती नहीं। यह कभी सुलझेगी ही नहीं।

प्रार्थना विचार नहीं है। प्रार्थना न तो प्रश्न है और न उत्तर है।
प्रार्थना तो प्रश्न और उत्तर का चुप हो जाना है। प्रार्थना अवाक अवस्था है। विस्मयविमुग्ध! जगत के रहस्य के सामने सिर्फ ठिठका खड़ा रह गया कोई। कुछ सूझा नहीं, सब सूझ-बूझ खो गई। बस वहीं प्रार्थना का जन्म है।

अज्ञात स्थल में डूबती
अनुगामिता किरणें
अभिसंधि से बचती हुई
अभिनव मिलन की ओर
बढ़ कर
गुम गईं
आलोक के इस
विलोपन के बाद
नीले आस्मां में
कुछ छितरे हुए
टुकड़े उभर आए
और इसमें रात भर
भटकने के बाद,
किसको क्या पता
यह
चांद बनजारा
किधर जाए!

नहीं कुछ पता है कि कहां से आए हैं, नहीं कुछ पता है कि कहां जाना है। किसको क्या पता
यह
चांद बनजारा
किधर जाए!
जो जीवन को उसकी रहस्यमयता में स्वीकार कर लेते हैं। जो कहते हैं कोई उत्तर नहीं है जीवन का और न कोई प्रश्न है। जीवन है, और जीवन एक रहस्य है-- समस्या नहीं, एक रहस्य। समस्या के समाधान होते हैं, रहस्य का कोई समाधान नहीं होता। जीवन कोई पहेली नहीं है कि जिसको हल किया जा सके। जीवन एक रहस्य है। जितना जानोगे, उतना गहन होता जाता है। जितना इसमें उतरोगे, उतना अथाह होता जाता है। जितना जानोगे, उतना कम जानोगे। जो पूरा-पूरा जान लेते हैं, वे कहते हैं कि हम कुछ जानते ही नहीं।
उपनिषद कहते हैंः जो कहे मैं जानता हूं, जानना कि नहीं जानता। और जो कहे कि मैं नहीं जानता, जानना कि जानता है।
सुकरात ने कहा है कि मैं एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
ऐसी घड़ी में प्रार्थना का जन्म होता है, ऐसे रहस्य की प्रतीति में-- जहां सब ज्ञान व्यर्थ हो गया, जहां सारा कर्तृत्व व्यर्थ हो गया, जहां सारी अस्मिता, अहंकार गल गया--हारे को हरिनाम!

तीसरा प्रश्नः मैं ध्यान में गहरा जाना चाहता हूं। पर फिर डर लगता है
कि पत्नी-बच्चों का क्या होगा? मेरे भय को हरें! मुझे आश्वस्त करें!

हरिप्रसाद! मरोगे या नहीं मरोगे? मरोगे, फिर पत्नी-बच्चों का क्या होगा? और ध्यान तो सिर्फ अहंकार की मृत्यु है, तुम्हारी तो नहीं। तुम तो रहोगे, तुम तो और भी सघन होकर रहोगे, तुम तो और भी गहन होकर रहोगे। हां, ध्यान में अहंकार चला जाएगा।
लेकिन क्या तुम सोचते हो, तुम्हारे अहंकार के कारण पत्नी-बच्चों को बहुत लाभ हो रहा है?

तुम्हारा अहंकार ही तो उनकी फांसी बना है! तुम्हारा अहंकार चला जाए
तो तुम्हारी पत्नी और बच्चे आह्लादित होंगे--बड़े आह्लादित होंगे। पत्नी की गर्दन दबा रहे हो तुम। बच्चों की भी छाती पर सवार हो। अहंकार ऐसा करेगा ही। क्योंकि अहंकार सभी का शोषण करना चाहता है। अहंकार महा शोषक है। और अहंकार सभी का उपयोग करना चाहता है। सभी को साधन बना लेना चाहता है। और जब भी कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को साधन बनाता है, तो हिंसा होती है। फिर चाहे पति पत्नी को साधन बनाए, चाहे पत्नी पति को साधन बनाए, दोनों हालत में हिंसा होती है। क्योंकि जब भी किसी व्यक्ति को हम साधन बनाते हैं, तो हम उसकी गरिमा छीन लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, साधन नहीं। तुम्हारी पत्नी आत्मवान है, वस्तु नहीं कि तुम उसका उपयोग करो।
लेकिन लोगों ने पत्नियों को वस्तुएं बना लिया है। इस देश में तो लोग कहते ही हैंः स्त्री-संपत्ति। तुम जरा सोचते हो कि कैसे अपमानजनक शब्दों का उपयोग चल रहा है? पुरुष-संपत्ति कोई नहीं कहता। स्त्री-संपत्ति! और तुम्हारे बड़े-बड़े महात्मा भी यह दोहराते हैं। कन्यादान! पुत्रदान कोई नहीं कहता। जैसे लड़की न हुई, चीज-वस्तु हुई; दान कर दी--कन्यादान। और लोग सोचते हैं, महाकार्य कर रहे हैं, कन्यादान कर रहे हैं।
दान? आत्माओं के दान हो सकते हैं? स्त्री को संपदा कहते हो? स्त्री आत्मवान है उतनी ही, जितने तुम! लेकिन नहीं, सदियों-सदियों से पुरुष के अहंकार ने स्त्री की गर्दन में फांसी लगा रखी है। और इसका बदला स्त्री ने भी लिया है--छोड़ तो नहीं देगी। स्त्री के ढंग से लिया है। स्त्री के अपने ढंग हैं। उसके ढंग परोक्ष हैं, सूक्ष्म हैं।
अगर पुरुष को क्रोध आ जाए तो वह पत्नी को पीटता है, अगर पत्नी को क्रोध
आ जाए तो वह खुद को पीटती है। मगर ख्याल रखना, खुद को पीट कर वह तुम्हें इस बुरी तरह पीट देती है जितना कि तुम उसको पीट कर नहीं पीट पाते। पत्नी को क्रोध आ जाए तो रोती है। लेकिन उसके आंसू ज्यादा बड़े घाव करते हैं। वह तुम्हें गालियां दे देती तो शायद तुम सह लेते। उसके परोक्ष रास्ते हैं, स्त्रैण रास्ते हैं। वह बड़ी तरकीबों से तुम्हें बंधन में डालती है। स्वाभाविक, तुम बंधन में उसे डालोगे, तो वह तुम्हें बंधन में डालेगी। बंधन हमेशा पारस्परिक होता है।

मुसलमान सूफी फकीर जुन्नैद अपने शिष्यों के साथ एक गांव से गुजर रहा था। उसकी यह आदत थी--यह सूफियों का ढंग है--कि हर स्थिति में से कुछ शिक्षण निकाल लेना। एक आदमी गाय को बांध कर ले जा रहा था। जुन्नैद ने कहा, भाई, जरा रुक, मेरे शिष्यों को कुछ समझा लेने दे!
वह आदमी रुक गया। उसने सोचा कि हमको भी कुछ समझने मिलेगा। शिष्यों ने घेर लिया गाय को, उस आदमी को। जुन्नैद ने कहा कि देखो, शिष्यो, सुनो! इनमें कौन मालिक है और कौन गुलाम है? यह आदमी जो गाय के गले में रस्सी बांधे है, यह मालिक है? या यह गाय जिसके गले में रस्सी बंधी है, यह मालिक है? शिष्यों ने कहा, यह भी आप खूब पूछते हैं! यह तो बात सीधी-साफ है। अंधे
को भी दिखाई पड़ जाए। मालिक यह आदमी है। इसके हाथ में रस्सी है और गाय के गले में फंदा है।
जुन्नैद ने कहा, तो तुम पक्का कहते हो कि मालिक यह आदमी है?
उन्होंने कहा, हम पक्का कहते हैं।
तो जुन्नैद ने कहा, देखो! उसने कैंची निकाली, जो वह अपने झोले में रखे था, रस्सी काट दी। गाय भागी और मालिक गाय के पीछे भागा। तो उसने कहा, अब कौन मालिक है? अगर गाय गुलाम है तो आदमी के पीछे जाती। आदमी गुलाम है, इसलिए गाय के पीछे जा रहा है। रस्सी सिर्फ धोखा थी। मैंने रस्सी काट कर धोखा तोड़ दिया।
तुम सोचते हो तुमने किसी को गुलाम बना लिया। हो सकता है रस्सी तुम्हारे हाथ में हो। मगर कोई जुन्नैद अगर मिल जाए और रस्सी काट दे, तब तुम्हें पता चलेगा कि कौन किसके पीछे भागता है! तब पता चलेगा कि यह मालकियत एकतरफा नहीं थी, दोतरफा थी; यह गुलामी थी एकतरफा नहीं थी, दोतरफा थी। यह तलवार दुधारी है।

तुम बड़े परेशान हो रहे हो कि ध्यान करूंगा तो डर लगता है, पत्नी- बच्चों का क्या होगा?
लाभ ही लाभ होगा! अगर लाभ से तुम्हें डर लग रहा हो... तुम अगर शांत हो जाओगे तो कोई हानि होने वाली है पत्नी-बच्चों की? तुम जो शोरगुल मचाए रखते हो घर में, सोचते हो उससे बड़ा लाभ हो रहा है?
पत्नियां डरती हैं रविवार के दिन से। पति भी घर, बच्चे भी घर... बड़ा उपद्रव! और बच्चों को तो किसी तरह सम्हाल भी लो, पति को कैसे सम्हालो? और घर में है तो कुछ न कुछ खटर-पटर करेगा ही। ठीक चलती घड़ी को खोल कर सुधारने लगेगा। कि ठीक चलती कार का बोनट उघाड़ कर बैठ जाएगा। कुछ न कुछ करेगा ही। खाली तो बैठ नहीं सकता। जिंदगी भर करने की आदत है। दफ्तर में रोब-दाब बांधता है, घर में बांधेगा। हर चीज में भूल-चूक निकालेगा।
पत्नियां बड़ी प्रसन्न होती हैं, पति दफ्तर गए, पत्नियां निश्चिंत हो जाती हैं। सारा सिरदर्द गया। सारा उपद्रव गया। बच्चे स्कूल गए, फिर तो कहना ही क्या!
और तुम सोचते हो, बच्चे बहुत प्रसन्न होते हैं तुम्हारे घर में मौजूद रहने से? जोर से बोलो मत, डैडी घर में हैं! खेलो मत, डैडी घर में हैं! नाचो मत, डैडी घर में हैं!
तुम अगर शांत हो जाओगे, हरिप्रसाद, तो कोई हानि नहीं होने वाली। पत्नी प्रसन्न होगी, कि यह अच्छा हुआ, कि बैठे हैं आंख बंद किए। ऐसे ही बैठे रहो! बड़े सुंदर लगते हो! और बच्चे भी कहेंगे, यह बड़ा अच्छा हुआ कि अब शोरगुल मचाओ या कुछ भी करो, डैडी तो साक्षी हो गए। वे अब न कर्ता, न भोक्ता। वे तो सिर्फ बैठे देखते हैं। जो भी हो। परमात्मा जो करवाए। अब परमात्मा अगर बच्चों से ऊधम करवा रहा है तो वे ऊधम कर रहे हैं। अब तो वे लीला मानते हैं संसार को।
तुम नाहक चिंतित हो रहे हो!
तुम कह रहे हो कि मेरे भय को हरें!
नहीं लेकिन, कुछ भय जरूर होगा। नहीं तो तुमने पूछा नहीं होता। भय यही होगा कि अब तक तुमने अपने अहंकार से जो एक तरह की व्यवस्था बना रखी होगी पत्नी-बच्चों पर, परिवार पर, ध्यान में अहंकार गल जाएगा, फिर से तुम्हें नई व्यवस्था बनानी पड़ेगी। एक नई शैली जीवन की रचनी होगी। नये संबंध बनाने होंगे फिर से अपने बेटे से, अपनी बेटी से, अपनी पत्नी से, अपने भाई से, अपने मित्र से। और नये से लोग डरते हैं। पुराने के तो आदी हो गए हैं, आश्वस्त हो गए हैं। पुराना बार-बार दोहराने से एक तरह की कुशलता आ गई है। नये से लोग डरते हैं कि पता नहीं, नया करेंगे तो क्या होगा! क्या परिणाम होंगे? घबड़ाओ मत! शांत होने से कभी दुष्परिणाम नहीं होते। कभी हुए नहीं। और अगर किसी को लगते हों दुष्परिणाम, तो वह जिम्मेवारी उसकी है, तुम्हें उसकी चिंता लेने की जरूरत नहीं है।
तुम्हारी हालत वैसी है जैसे एक आदमी बहुत दिन से बीमार पड़ा है। लकवा
लग गया, बिस्तर पर पड़ा है। जब एक आदमी को घर में लकवा लग जाए और बिस्तर पर पड़ जाए, तो उसके कारण पूरे घर की जीवन-व्यवस्था बदल जाती है, यह ख्याल रखना। वह सारे घर का केंद्र हो जाता है। सब उसकी तीमारदारी करते हैं। सब उससे सहानुभूति रखते हैं। कोई उस पर क्रोध नहीं करता। वह अगर क्रोध भी करे तो लोग पी जाते हैं। क्योंकि बीमार है, अब उससे क्या कहना! वह अगर धंधा न करे तो कोई यह नहीं कहता कि तुम काहिल हो, सुस्त हो, आलसी हो, तामसी हो। वह अगर बिस्तर पर पड़ा रहे तो कोई निंदा नहीं करता। वह अगर देर से सोकर उठे तो कोई नहीं कहता कि ब्रह्ममुहूर्त में उठो। उस पर सबकी दया, सहानुभूति, समानुभूति होती है। सब उसकी सेवा में तत्पर होते हैं।
अब अचानक, समझो कि हरिप्रसाद तुम्हीं, ऐसे लकवा लगे पड़े घर में। और मैंने देखा कि लकवा वगैरह कुछ नहीं है, सिर्फ तुम धोखा खा गए हो। और मैंने तुमसे कान में कहा कि लकवा वगैरह कुछ भी नहीं है, तुम उठ आओ, तुम खड़े हो सकते हो।
तुम भयभीत होओगे। क्योंकि सारी व्यवस्था जो तुम्हारे लकवे के आस-पास निर्मित हो गई है, एकदम टूट जाएगी। तुम्हारे खड़े होते ही तुम्हारे प्रति

जो सहानुभूति की धाराएं बह रही थीं, वे सब सूख जाएंगी। इतना ही नहीं, बल्कि लोग कहेंगे, अरे, तो इतने दिन तक तुम धोखा देते रहे? तो नाहक हमें परेशान किया? तो इतने दिन तक नाहक बिस्तर पर पड़े रहे? तो यह मानसिक बीमारी थी, असली बीमारी नहीं थी? और न मालूम कितनी दवाइयों के बिल सिर पर चढ़ गए! और दूसरे ही दिन पत्नी कहेगी कि अब बैठे घर में क्या कर रहे हो? अब कुछ करो- धरो! अब जाओ दुकान! और लोग तुम्हारी तरफ ऐसे देखेंगे जैसे तुम पागल हो। क्योंकि अब तक कैसे लकवे में पड़े रहे? इतनी भी बुद्धि नहीं है? झूठे ही लकवे में पड़े रहे?
तुम्हें डर लगेगा। और इतने दिनों के बाद अब फिर दुकान खोलना, फिर दुकान पर जाना, फिर वे झंझटें, फिर चिंताएं। मन करेगा कि यह आदमी कहां से मिल गया जो कहता है लकवा झूठ है? तुम तो चाहोगे कि कोई कहे कि यह लकवा बिल्कुल सच है और यह कभी छूटने वाला नहीं, यह सदा रहेगा। तुम शांति से यहीं विश्राम करो, बस ऐसे ही रहो!
मैं यही तुमसे कह रहा हूं कि तुम्हारे चित्त की हजार-हजार बीमारियां,
सब झूठ हैं। तुम्हारी कल्पित हैं। तुम्हारी निर्मित हैं। उनके कारण तुमने निश्चित ही एक खास तरह की जीवन-शैली, एक आचरण निर्मित कर लिया है। और आज अगर तुम उसे बदलोगे, तो जरूर थोड़ी अड़चन आने वाली है। मगर वह अड़चन उठाने जैसी है। बीमार पड़े रहना शुभ नहीं है। और झूठे बीमार!
मन बीमारी है, ध्यान स्वास्थ्य है। मन से बाहर जाओगे तो निश्चित बहुत चीजें बदलेंगी, यह बात पक्की है।
कल सांझ ही एक दंपति आस्ट्रेलिया से मुझे मिलने आया। दोनों संन्यासी हैं। दोनों जैसे-जैसे ध्यान में गहरे गए, मुश्किलें आईं। वही मुश्किलें जो हरिप्रसाद बता रहे हैं। और बड़ी मुश्किल जो आई वह यह आई कि दोनों का रस कामवासना में समाप्त हो गया। अब पति-पत्नी का संबंध, वह तो है ही कामवासना के लिए। असली आधार ही टूट गया। अब दोनों का रस ही नहीं है। दोनों मुझसे बोले, अब हम क्या करें? यह क्या हुआ? यह आपने क्या किया? यह आपने पहले क्यों नहीं बताया? अब हमें कामवासना में कोई रस ही नहीं है। तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम एक-दूसरे से ऊब गए हैं? न तो कोई खुशियों के बड़े पहाड़ आते, ऊंचाइयां आतीं, न दुखों की कोई घाटियां आतीं--कुछ भी नहीं आता। एकदम समतल जमीन, बिल्कुल सुपर हाईवे पर चल रहे हैं! कोई झगड़ा नहीं, कोई झांसा नहीं। ख्याल रखना, जब झगड़ा-झांसा होता है, तो सुख भी आता है। क्योंकि जब झगड़ा-झांसा मिटता है, तो थोड़ी राहत मिलती है। अक्सर ऐसा हो जाता है, सांझ को पति-पत्नी लड़ेंगे, ताकि रात को प्रेम कर सकें। उलटा लगेगा तुम्हें। मगर जरा भी उलटा नहीं है, मनोविज्ञान इसके पूरे के पूरे समर्थन में है कि यही रास्ता है। पहले लड़ेंगे, जूझेंगे, बकवास करेंगे, एक-दूसरे की निंदा करेंगे, खंडन-मंडन करेंगे, नाराज होंगे, रूठेंगे। ये सब प्रक्रियाएं हैं। फिर इस सबका अंतिम फल यह होगा कि एक-दूसरे को प्रेम करेंगे, पश्चात्तापस्वरूप कि अब बहुत हो गया। अब थोड़ा, एक-दूसरे को थोड़ा फुसलाना जरूरी है, क्योंकि कल फिर जिंदगी जीनी है। सुबह से चाय की जरूरत पड़ेगी। और अगर पत्नी नाराज ही सो गई, तो सुबह चाय का पता नहीं चलेगा। सुबह से ही जूते खोजोगे अपने कि बाथरूम जाना है, स्लीपर। स्लीपर मिलेंगे ही नहीं। सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। सुबह के पहले समझौता हो जाना जरूरी है। तुम देखते हो न, जब युद्ध होता है, तो युद्ध के बाद शांति आती है। हर दो युद्धों के बीच में शांति होती है। ऐसे ही हर दो कलह के बीच में प्रेम होता है। पति- पत्नी लड़ते ही रहते हैं और प्रेम भी करते रहते हैं।
इन दोनों की मुसीबत तुम समझो, हरिप्रसाद! न झगड़ा होता, और न ही कोई प्रेम की ऊंचाइयां उठतीं। कुछ होता ही नहीं है। घर में सन्नाटा हो गया है। दोनों ही ध्यानी हो गए। जब मौका मिलता है, दोनों ध्यान करते हैं। तो अब करना क्या है? बेचैन थे, परेशान थे। और भी परेशान थे, क्योंकि पश्चिम से आए हैं। पूरब में तो हमारी धारणाएं हजारों-हजारों सालों में बहुत गहराइयों तक गईं। आज भला हम भूल गए हों, आज हमें याद भी न रहा हो, लेकिन हमने बड़ी गहराइयां छुई हैं। इस देश के ऋषि-मुनि, जब कभी कोई नववधू, नवविवाहित युवक-युवती आशीर्वाद लेने आते थे, तो तुम्हें पता है क्या आशीर्वाद देते थे?

आशीर्वाद देते थे नववधू को कि तेरे दस बेटे हों और ग्यारहवां बेटा अंततः तेरा पति हो जाए। अनूठा आशीर्वाद है! दुनिया में कहीं नहीं दिया गया। दिया भी नहीं जा सकता था, क्योंकि इतनी गहराई तक किसी ने खोज ही नहीं की। कि जिस दिन पति भी बेटे जैसा हो जाता है, उसी दिन समझना कि प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा। अपनी परम शुद्धि पर पहुंचा।
आस्ट्रेलिया से आए हुए युवक-युवती की तकलीफ तो समझ में आ सकती है। जब मैंने उन्हें कहा कि यह शुभ हुआ है; तुम अब भाई-बहन हो गए, पति-पत्नी नहीं रहे; तो उनके आनंद की सीमा न रही। एक-दूसरे से आलिंगनबद्ध हो गए। दोनों की आंख से आंसू बहने लगे। वे आंसू अपूर्व थे। यह उन्होंने सोचा भी नहीं था कि यह भी हो सकता है।
जैन पुराणों में महत्वपूर्ण कथा है कि सबसे पहले, शुरू-शुरू में, आदिकाल में मां के गर्भ से लड़का और लड़की साथ ही साथ पैदा होते थे। जोड़ा पैदा होता था। लड़का पति बन जाएगा बाद में, लड़की पत्नी बन जाएगी बाद में। भाई-बहन, जुड़वें, एक साथ पैदा होते थे। इसलिए भगिनी--भगिनी का अर्थ होता है बहन--अब तक भी पत्नी के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। भगिनी का अर्थ तो बहन होता है। लेकिन अब भगिनी का अर्थ पत्नी होता है। जिन लोगों ने ये पुराण, यह कहानी, यह कल्पना गढ़ी होगी... यह कल्पना ही है, लेकिन इसमें बड़ा माधुर्य है; इसमें अर्थ है, बड़ा सत्य है।
असल में पति-पत्नी वे ही लोग हो सकते हैं, जिनके बीच भाई और बहन जैसा तारतम्य हो। जिनके बीच भाई और बहन जैसी लयबद्धता हो, वे ही लोग पति-पत्नी हो सकते हैं। शुरू से ही, किसी दिन अगर मनुष्य ने जीवन को फिर से वैज्ञानिक आधार दिए, तो हम इस बात की फिक्र करेंगेः वे ही लोग विवाहित हों, जिनके बीच भाई-बहन जैसा तारतम्य हो, जिनके बीच भाई-बहन जैसी संगीतबद्धता हो, लयबद्धता हो। तो प्रथम भी उन्हें भाई-बहन होना चाहिए और अंततः तो भाई-बहन हो ही जाना चाहिए। तो ही समझना कि दांपत्य पराकाष्ठा पर पहुंचा।
तो इस तरह की अड़चनें तो, हरिप्रसाद, निश्चित आएंगी। तुम ध्यान करोगे
तो पत्नी धीरे-धीरे पत्नी की जगह बहन होने लगेगी। और अगर पत्नी ने भी ध्यान न किया तो झंझट भारी होने वाली है!
अक्सर ऐसा होता है, रोज मेरे अनुभव में यह आता है, हजारों लोगों पर प्रयोग करने के बाद मैं ऐसा कह रहा हूं कि अक्सर स्त्रियां पति को पशु की भांति समझती हैं, क्योंकि वह कामुक है, कामातुर है। स्त्रियां मुझसे आकर शिकायत करती हैं कि पति हमारे पीछे ही पड़े रहते हैं। हमें बिल्कुल रस नहीं है अब कामवासना में। मगर क्या करें, पति की मांग है! पत्नियां ऐसे दिखाती हैं जैसे बड़ी पवित्र हैं। जैसे उनकी कोई मांग नहीं है। और शायद चेतन मन में उनके कोई मांग हो भी न। क्योंकि चेतन मन में सदियों से हमने स्त्रियों को समझाया है--पवित्रता, कुंआरापन। और स्त्रियां बहुत ही संवेदनशील हैं। सम्मोहित होने की उनकी क्षमता गहरी है। इसलिए सदियों से दोहराया है तो उनके मन में यह बात बैठ गई है कि कामवासना तो पशुता है।
तो हर स्त्री अपने पति को तो पशु मानती है। कहती भला हो कि हे पति परमात्मा, भीतर कुछ और जानती है कि तुम और परमात्मा! इसलिए पत्नी किसी ऐरे- गैरे-नत्थू-खैरे के पैर छू सकती है जाकर; कोई साधु-संन्यासी, कोई भी आ जाए आबा-बाबा, उसके पैर छू सकती है, मगर पति के पैर छूते वक्त वह जानती है कि यह मैं क्या कर रही हूं, एक औपचारिकता! क्योंकि इसकी पशुता का उसको पता है। लेकिन एक मजे की घटना रोज-रोज यहां घटती है। जब पति ध्यान करने लगता
है और धीरे-धीरे कामवासना में उसकी उत्सुकता नहीं रह जाती, तो पत्नियां एकदम कामातुर हो जाती हैं। वे ही पत्नियां, जो एकदम पवित्र होने का दंभ भर रही थीं, वे ही पत्नियां कामातुर हो जाती हैं। उनके ही पति आकर हमसे कहते हैं, अब हम बड़ी मुसीबत में पड़ गए हैं। पत्नी की मांग बहुत बढ़ गई है। पहले कभी नहीं थी। यह क्या हुआ? जब हमारी मांग थी, उसकी नहीं थी। अब हमारी कोई मांग नहीं है, उसकी मांग है।
यह मामला सीधा-साफ है। गणित का है, सौदे का है। पहले तुम्हारी मांग थी,
तो पत्नी ऐसा टुकड़ा-टुकड़ा तुमको देती थी। हिलाओ पूंछ काफी, तो थोड़ा सा टुकड़ा देती थी। इसमें मालकियत थी उसकी। वह जानती थीः मैं तुमसे ऊपर, तुम

नीचे। हिलाओ पूंछ काफी। कभी कहेगी, सिरदर्द है; कभी कहेगी, आज बहुत थक गई हूं; कभी कहेगी, आज बच्चे के दांत निकल रहे हैं, दिन भर में परेशान हो गई हूं--कभी कुछ, कभी कुछ। लेकिन जैसे ही पति की उत्सुकता कम होती है, वैसे ही उसे घबड़ाहट होती है--यह तो मेरी मालकियत जा रही है! वही तो उसकी मालकियत थी। वही तो उसका बल था। वही तो उसका आधिपत्य था। वही उसकी राजनीति थी। पति उत्सुक नहीं रहा अब, घबड़ाहट पैदा हो जाती है। तो कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि पति अब बिल्कुल ही अनुत्सुक हो जाए। अब पति पूंछ नहीं हिलाता, तो अब उसे डर लगता है। अब उसे घबड़ाहट होती है कि कहीं संबंध... अब तक जैसा था, मैं ऊपर, पति नीचे... यह तो बात बदली जा रही है--पति ऊपर। वह पति को ऊपर नहीं रहने देगी।
और फिर घबड़ाहट लगती है कि कहीं यह वैराग्य बढ़ते-बढ़ते कहीं पूर्ण वैराग्य न हो जाए। तो फिर मेरी साड़ियां और मेरे गहने और मेरे सारे आभूषणों का क्या होगा? वे तो वही पूंछ हिलाने वाले पति से ही मिल सकते थे। अब तो इसका कामवासना का रूप क्षीण होने लगा, तो उसी पर तो मेरा सारा दारोमदार था। स्त्रियां एकदम दीवानी हो जाती हैं। एकदम पागल की तरह पीछे पड़ जाती हैं।
और स्त्रियां अगर पीछे पड़ जाएं तो अड़चन तो होगी। जब तुम्हारा रस न रह जाए, तब स्त्रियां पीछे पड़ें, तो अड़चन होगी।
तो हरिप्रसाद, तुम्हारे भय को मैं समझ सकता हूं। कुछ तो भय सच है। तुम ध्यान करोगे, मेरा सुझाव यह हैः अगर पत्नी को भी साथ में ध्यान में लगा सको तो अच्छा। अगर पत्नी को भी धीरे-धीरे ध्यान में उत्सुक करा सको तो अच्छा। तुम साथ-साथ बढ़ो तो अच्छा। तो अड़चन कम आएगी। और एक-दूसरे के सहयोगी बन जाओगे। और मैं तुमसे कहता हूं, जैसे घर-गृहस्थी की गाड़ी चलने में दो चाक चाहिए, अगर तुम्हारे ध्यान को भी दो चाक मिल सकें तो तुम्हारी गति बहुत होगी--अपूर्व होगी। इसलिए पत्नी को छोड़ कर ध्यान मत करो। पत्नी को समाहित कर लो।
और ध्यान जैसी बड़ी संपदा को लेने चले हो, अकेले ही जाओगे? जिसको प्रेम किया है, उसे साथ नहीं लोगे? अच्छा है उसे साथ ले लो। और मेरी अपनी अनुभूति यह है कि स्त्रियां ध्यान में सुगमता से उतर जाती हैं पुरुषों की बजाय। क्योंकि पुरुषों के अहंकार जरा ज्यादा मजबूत होते हैं। स्वभावतः, पुरुष का अहंकार। स्त्री कोमल होती है। स्त्री को समर्पण बहुत स्वाभाविक है। पुरुष को संघर्ष बहुत स्वाभाविक है। पुरुष लड़ने के लिए तैयार रहता है। बिना लड़े उसे लगता है मैं किसी काम का ही नहीं हूं। जिस दिन लड़ाई-झगड़ा न हो, वह चारों तरफ घूमता है, वह कहता है--आ बैल, मुझे सींग मार! वह किसी न किसी तरह की झंझट खड़ी करना चाहता है। वह किसी भी बात में से कुछ विवाद निकाल लेगा। लेकिन स्त्रियां सरलता से ध्यान में उतर सकती हैं।
जैविक शास्त्र के हिसाब से पुरुष में एक तरह का तिरछापन है; स्त्री में एक तरह की गोलाई है। स्त्री के भीतर जो परमाणु हैं, वे समतुल हैं। पुरुष के भीतर परमाणु समतुल नहीं हैं। ऐसा समझो कि चौबीस जीवाणु मां के पेट में पुरुष से आते हैं। और चौबीस जीवाणु मां के पेट से पुरुष के जीवाणुओं को मिलते हैं। अड़तालीस जीवाणुओं के मिलने से बच्ची पैदा होती है, लड़की पैदा होती है।
पुरुष के जीवाणु दो ढंग के होते हैं। एक जिनमें चौबीस कोश होते हैं और
एक जिनमें तेईस कोश होते हैं। अगर तेईस कोश वाला जीवाणु जाकर स्त्री के चौबीस कोश वाले जीवाणु से मिलता है तो पुरुष का जन्म होता है। तो पुरुष में सैंतालीस जीवाणु होते हैं। एक पलड़ा थोड़ा भारी होता है, एक पलड़ा थोड़ा कम भारी होता है। एक तरफ तेईस, एक तरफ चौबीस। यह पुरुष का जैविक आधार है तिरछे-तिरछे होने का। पुरुष तिरछा-तिरछा चलता है, अकड़-अकड़ कर चलता है। और यही कारण है स्त्री के सौंदर्य का; उसमें एक समतुलता है। यही कारण है कि स्त्रियों में एक तरह की शांति दिखाई पड़ती है। उनके चेहरे पर एक तरह की सौम्यता दिखाई पड़ती है।
और यह कुछ सीखी हुई बात नहीं है। मां के पेट में भी, अनुभवी मां को, जिसको दो-चार बच्चे हो गए हों, उसे गर्भ में भी पता चलना शुरू हो जाता है कि

लड़का है कि लड़की! क्योंकि लड़का टांगें मारेगा; सिर मारेगा... झंझटें शुरू करेगा! लड़की शांत पड़ी रहेगी।
छोटे बच्चे ही देखो! एक लड़की को बिठाल दो और एक लड़के को--एक ही उम्र के।
और लड़का कुछ न कुछ उपद्रव करेगा। बिना उपद्रव के नहीं रह सकता। लड़की अपनी गुड़िया सजाएगी, दुल्हन बनाएगी, दूल्हा बनाएगी, विवाह रचाएगी। लड़का बैठा है खोल कर अपनी मोटर खिलौने को--वही वह बाद में भी करेगा; अभी से अभ्यास शुरू कर रहा है।
लड़के-लड़कियों के खिलौने तुम देखते? लड़के उत्सुक होते हैं--बंदूक, साइकिल, मोटर साइकिल, कार। लड़कियां इनमें उत्सुक नहीं होतीं। बंदूक? लड़कियों को अर्थहीन मालूम होता है। दोनों के खिलौने भिन्न, दोनों का उठना- बैठना भिन्न। स्त्री ज्यादा सुगमता से ध्यान में उतर सकती है।
आंकड़े भी यही हैं पूरे इतिहास के। महावीर के चालीस हजार संन्यासी थे। उनमें तीस हजार स्त्रियां और दस हजार पुरुष। यही अनुपात बुद्ध के संन्यासियों का था--तीन स्त्रियां और एक पुरुष। यही अनुपात मेरे पास घट रहा है--तीन स्त्रियां, एक पुरुष। इसके पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक कारण हैं। स्त्री सुगमता से समर्पण कर सकती है, अहंकार को छोड़ सकती है।
तो अपनी स्त्री को भी, हरिप्रसाद, राजी करो। उसे भी लाओ। ऐसी संपदा को अकेले-अकेले ही पीओगे? जिसके साथ जीवन का गठबंधन बांधा है, उसे सब चीजों में भागीदार बनाओ। उसे अलग-थलग मत छोड़ दो!
मनुष्य-जाति धर्म से बहुत कुछ इसी कारण वंचित रह गई।
यहूदियों के सिनागॉग में स्त्रियां नहीं जा सकतीं। मस्जिदों में स्त्रियां नहीं जा सकतीं। सैकड़ों-हजारों साल से स्त्रियों के लिए वेद और उपनिषद पढ़ने की मनाही है। बुद्ध जैसा महाक्रांतिकारी भी, जब पहली दफा स्त्री उनसे दीक्षा लेने आई, तो बुद्ध ने कहा कि नहीं, स्त्रियों को मैं दीक्षा नहीं दूंगा। क्योंकि स्त्रियों के आने से उपद्रव शुरू होगा।
यह उपद्रव स्त्रियों के कारण शुरू होगा या बुद्ध को अपने भिक्षुओं पर संदेह है? सच्ची बात तो यह है कि भिक्षुओं पर संदेह है। बुद्ध को पता होगा कि ये भिक्षु सब बैठे हैं दबाए वासनाओं को। हैं सांड, बने बैठे हैं बैल। खतरा है! स्त्री क्या खतरा करने वाली थी?
लेकिन बुद्ध ने कहा कि नहीं, स्त्रियों को मैं संन्यास न दूंगा। बड़ी मुश्किल, बहुत बार, दस वर्षों तक निरंतर आवेदन करने पर बुद्ध ने स्त्रियों को संन्यास दिया। और जब संन्यास दिया तो अनुपात--तीन स्त्रियां और एक पुरुष। अनुपात वही हो गया फिर।
आज भी किसी मंदिर में जाकर देखो। संख्या तुम्हें तीन स्त्रियों की और
एक पुरुष की मिलेगी। और वह पुरुष भी हो सकता है स्त्रियों के कारण वहां चला गया हो! कोई राम जी से या कृष्ण जी से कुछ लेना-देना न हो। मोहल्ले की किसी स्त्री में उत्सुकता हो। या हो सकता है अपनी पत्नी के पीछे चला गया हो। पत्नी-पिछलग्गू हो, कि जहां पत्नी जाए वहीं जाता हो। पुरुष के वहां होने के कारण कई हो सकते हैं। उसका कुछ पक्का नहीं है। क्योंकि पुरुष के लिए समर्पण स्वाभाविक नहीं है।
लेकिन हरिप्रसाद, तुम्हें समर्पण का भाव उठा, तुम ध्यान में गहरा जाना चाहते हो, अपनी पत्नी को भी समेटो! अपने बच्चों को भी लाओ! क्योंकि बच्चे तो और भी जल्दी ध्यान में उतर सकते हैं। अभी तो उनके चित्त पर व्यर्थ की बातें नहीं पड़ीं। अभी कूड़ा-करकट इकट्ठा नहीं हुआ। अभी तो दर्पण कोरा है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं छोटे-छोटे बच्चों को क्यों संन्यास दे देता हूं?
इसीलिए क्योंकि उनको संन्यास देना सुगमतम है। इसीलिए क्योंकि उनको
तो अभी से अगर ध्यान में रस आ जाए तो तुम जिन परेशानियों से परेशान हो रहे हो, वे कभी परेशान न होंगे। बीमारी हो जाए, फिर उसका इलाज करने से बेहतर बीमारी को पहले ही रोक लेना है।
छोटे बच्चे अगर ध्यान में उत्सुक हो जाएं, तो बीमारी पहले ही रुक गई। बीमारी पैदा ही न होगी। तुम्हारी तो बहुत बीमारियां पैदा हो गई हैं। अब

उसमें ध्यान की एकाध बूंदाबांदी पड़ती भी है तो कहां खो जाती है, पता नहीं चलता--इतना कचरा तुमने इकट्ठा कर रखा है! छोटे बच्चे कोरी स्लेट हैं। अभी उनके ऊपर अगर परमात्मा की छाप पड़ जाए, शांति की भनक पड़ जाए, उत्सव का रस आ जाए, अगर थोड़ी प्रतीति उन्हें होने लगे अदृश्य की, तो जितनी जल्दी अभी हो सकती है इतनी जल्दी फिर कभी नहीं होगी। जितनी देर हो गई उतनी मुश्किल हो गई।
अपने बच्चों को भी, हरिप्रसाद, लाओ। अपनी पत्नी को भी लाओ। और धीरे- धीरे उनको भी डुबाओ। सब डूबो। इकट्ठे डूबो। पूरा परिवार डूबे।
और मैं तो संन्यास ऐसा नहीं चाहता कि तुम जंगल भाग जाओ। मैं तो संन्यास ऐसा चाहता हूं कि तुम डूबो, तुम्हारा परिवार डूबे, सब डूबें। और तुम जहां हो, जैसे हो, वैसे ही डूबो। हां, अगर मेरे ध्यान करने से तुम घर छोड़ कर भाग जाओगे तो अड़चन होगी।
बहुत अड़चन हुई। बुद्ध-महावीर के कारण कितने लोगों ने घर छोड़ दिया! कोई हिसाब लगाए उस पीड़ा का, जो उतने लोगों के घर छोड़ने से हुई होगी! कोई ने हिसाब नहीं लगाया। जैन भी नहीं लगाएंगे, बौद्ध भी नहीं लगाएंगे, क्योंकि वह हिसाब लगाना तो उनके खिलाफ पड़ेगा। कितनी स्त्रियां विधवा हो गईं--पति के जिंदा रहते! कितने बच्चे अनाथ हो गए--बाप के जिंदा रहते!
और तुम जरा हिसाब तो लगाओ, उन पत्नियों ने फिर कैसे जीवन बिताया? किसी
ने किसी के बर्तन मांजे होंगे। उन बच्चों ने क्या किया? कहीं भीख मांगी होगी। कौन जाने कितने भिक्षु जो हो गए, मुनि जो हो गए, उनकी स्त्रियां सिर्फ इसीलिए वेश्या हो गई होंगी कि उनके पास और कुछ उपाय न रहा होगा अपने जीवनयापन को चलाने का, जीवन अर्जन करने का!
तुमने भिक्षुओं का तो हिसाब रख लिया। लेकिन भिक्षुओं का जो परिणाम हुआ होगा!
एक आदमी भिक्षु हो तो कम से कम दस आदमी उससे प्रभावित होंगे। उसके पिता होंगे बूढ़े, उसकी मां होगी, हो सकता है विधवा बहन घर में हो, पत्नी हो, बच्चे हों, कम से कम एक आदमी से औसतन दस आदमी प्रभावित होंगे। और उन दस आदमियों की जिंदगी डांवाडोल हो जाएगी, अस्तव्यस्त हो जाएगी। उनका किसी ने कोई हिसाब नहीं लगाया। किसी न किसी दिन यह हिसाब लगाना होगा, ताकि इतिहास पूरा हो सके। उस दिन तुम थोड़े चिंता में पड़ोगे कि हम महावीर और बुद्ध को धन्यवाद दें या न दें? सोच-विचार करना पड़ेगा। माना कि कुछ लोगों के जीवन में उनके कारण ज्योति जली। मगर कितने लोगों के जीवन उनके कारण गहन अंधकार में पड़ गए!
इसलिए मेरा संन्यास तो बहुत भिन्न है। तुम्हें तोड़ता नहीं हूं, तुम्हें जोड़ता हूं। तुम्हारी पत्नी से तुम इतने कभी नहीं जुड़े थे, जितने तुम ध्यान से जुड़ोगे। क्योंकि वासना जोड़ थोड़े ही सकती है, वासना तो तोड़ती है। वासना तो शोषण है। ध्यान वासना को प्रेम बना देगा। और तब तुम जुड़ोगे। बच्चों से तुम्हारा संबंध क्या है? महत्वाकांक्षा का है। बच्चों के कंधों पर बंदूक रख कर तुम अपनी गोलियां चलाना चाहते हो। तुम मैट्रिक में फेल हो गए थे, अब तुम चाहते हो बच्चा मैट्रिक में प्रथम श्रेणी में प्रथम आ जाए। तुम उसके कंधे पर बंदूक रख कर चलाने का मजा लेना चाहते हो। कम से कम इतना तो कह सको कि मेरा बेटा, देखते हो, प्रथम आया! तुम शिक्षित नहीं हो पाए तो तुम चाहते हो, तुम्हारा बच्चा स्नातक हो जाए विश्वविद्यालय का। किसी बड़े ओहदे पर पहुंच जाए। तुम धन नहीं कमा पाए, तुम्हारा बेटा कमा ले। मगर यह तो महत्वाकांक्षा है, जो तुम्हारा रोग है। अधूरा रह गया, उसको तुम बच्चे पर थोप रहे हो।
और उसी बच्चे को तुम आज्ञाकारी कहते हो जो तुम्हारी बीमारी को सिर-आंखों पर ले लेता है। जो कहता है, लाओ, आपकी सब बीमारी मैं ढोऊंगा, बिल्कुल चिंता न करो। आप चले भी जाओगे तो कोई फिक्र न करो, आपकी लाश मैं ढोऊंगा।
आपकी अरथी, सड़ी हुई अरथी मैं लिए फिरूंगा। आप घबड़ाओ मत, आप निश्चिंत जाओ।
आपकी सब बीमारियां अक्षुण्ण रहेंगी। रत्ती भर हेर-फेर नहीं करूंगा। बढ़ती भला करूं, कमी नहीं होने दूंगा। उसको तुम आज्ञाकारी पुत्र कहते हो।

यह तो कोई संबंध नहीं है। ये तो झूठे संबंध हैं। संबंध तो एक ही होता है, प्रेम का। और प्रेम तब होता है जब अहंकार न हो। और प्रेम तब होता है जब ध्यान हो।
उतरो ध्यान में, हरिप्रसाद। कुछ अड़चनें भला हों, मगर अड़चनें कीमत की तरह हैं, चुकानी पड़ती हैं। चुनौती स्वीकार करो। मगर पूरे घर को डुबा लो! तुमसे मैं एक अंतिम बात कहूं। पश्चिम में नवीनतम मनोविज्ञान की शोधें
एक नतीजे पर पहुंची हैं कि जब भी घर में एक आदमी बीमार होता है, पागल होता है, विक्षिप्त होता है, तो उसका अकेला इलाज नहीं किया जा सकता। एक नई शोध है, वह कहती है कि अगर एक आदमी घर में पागल हो, तो उसका अकेला इलाज नहीं हो सकता। अगर उसका इलाज करना है तो उसके पूरे परिवार का इलाज करना होगा, तभी उसका इलाज हो सकता है। क्योंकि वह आदमी उस पूरे परिवार के संदर्भ में पागल हुआ है। पूरा परिवार ही विक्षिप्तता के कारण अपने भीतर लिए हुए है। वह जो आदमी एक पागल हो गया है, वह सबसे ज्यादा संवेदनशील था, कमजोर था, कोमल था। तो सारे घर का पागलपन उससे प्रकट हो गया है। वहां से बीमारी प्रकट हो गई। लेकिन उसकी बीमारी सीधी-सीधी ठीक नहीं की जा सकती। उसकी बीमारी अगर ठीक करनी है तो उसके पूरे परिवार की ही मनोचिकित्सा करनी जरूरी है।
इसलिए पश्चिम में अब पारिवारिक मनोचिकित्सा का जन्म हुआ है। एक आदमी बीमार, पूरे घर की चिकित्सा। और इसके परिणाम बड़े महत्वपूर्ण हुए हैं। मैं यहां वही प्रयोग किसी और गहरे तल पर कर रहा हूं। एक व्यक्ति संन्यस्त हो, तो मैं चाहूंगा पूरा परिवार संन्यस्त हो। एक व्यक्ति ध्यान में डूबे, तो मैं चाहूंगा पूरा परिवार ध्यान में डूबे। तो तुम सब सहयोगी हो जाओगे। एक-दूसरे की तरंगें, एक-दूसरे की धारा तुम्हें बल देगी। अकेले शायद तुम इतनी ऊंचाई न पा सको, जितनी तुम पूरे परिवार के साथ पा सकते हो। और फिर बच्चे-पत्नी के लिए ही कब तक सोचते रहोगे?
अवसाद सपनों पर करूं,
फरियाद अपनों पर करूं;
कितने दिनों के वास्ते?

विश्वास मैं अपना लिखूं,
उपहास मैं अपना लिखूं,
इतिहास मैं अपना लिखूं,
कितने दिनों के वास्ते?

अरमान मन की भूल है,
अभिमान मन की भूल है;
इस भूल को वरदान मैं
समझी, समझती ही रहूं!
कितने दिनों के वास्ते?

चार दिन की इस जिंदगी में इसे बहुत मूल्य मत दो। मूल्य तो उसे दो जो शाश्वत है। और शाश्वत से संबंध केवल ध्यान से ही हो सकता है।

प्राण रहते
चाहता हूं ओंठ पर नित गान रहते।

भाग्य का यह चक्र फिरता या न फिरता
नभ बरसता फूल अथवा गाज गिरता
जय-पराजय में अगर हम शीश उन्नत नष्ट शंका
वज्र पुष्प समान सहते!
प्राण रहते!
चाहता हूं ओंठ पर नित गान रहते।

कठिन क्षण में सहज गति होती हमारी

और धीरज मति नहीं खोती हमारी प्रलय-पारावार वीचि-विलास होता ढंग से पतवार चलती
जलधि-भर जलयान बहते!
प्राण रहते!
चाहता हूं ओंठ पर नित गान रहते। लोग देते साथ अथवा छोड़ देते
किंतु हम नाता प्रलय से जोड़ लेते
हाथ मानो पकड़ कर तूफान का हम
बढ़ रही हर लहर को सोपान कहते!
प्राण रहते!
चाहता हूं ओंठ पर नित गान रहते।

तूफान तो आएंगे, सीढ़ियां बना लेना। कठिनाइयां आएंगी, चुनौतियां और सौभाग्य समझना। पत्थर मिलेंगे राह पर, अड़चन मत बनाना, सीढ़ी बना लेना। जीवन तो यही है। इसी जीवन को कुछ लोग नरक में बदल लेते हैं--अगर उनका जीवन को देखने का ढंग नकारात्मक हो। और कुछ लोग स्वर्ग में बदल लेते हैं-- अगर उनके जीवन को देखने का ढंग विधायक हो। कुछ लोग गुलाब की झाड़ी में कांटे ही गिनते रहते हैं और जिंदगी बीत जाती है। और कुछ लोग फूल चुन लेते हैं। हरिप्रसाद, कांटे मत गिनो, फूल चुनो!
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
ग्यारहवां प्रवचन

प्रेम निर्धूम शिखा है

पहला प्रश्नः
तड़प ये दिन-रात की,
कसक ये बिन बात की,
भला ये रोग है कैसा?
सजन, अब तो बता दे!
अब तो बता दे, अब तो बता दे!
तड़प ये दिन-रात की...

वीणा! ईश्वर की जिज्ञासा करनी जीवन का सबसे बड़ा अभियान है। उसके पार फिर कोई और खोज नहीं। उससे बड़ी कोई और चुनौती नहीं। और स्वभावतः, जो इस अनंत की यात्रा पर निकलते हैं, उन्हें बहुत पीड़ा झेलनी पड़ती है। पीड़ा मधुर है। पर पीड़ा फिर भी पीड़ा है। कितनी ही मीठी कसक हो, जब प्रभु-प्रेम का तीर हृदय में चुभेगा तो पीड़ा तो होगी। और प्रभु-प्रेम का तीर लग जाए तो उसका फिर कोई इलाज नहीं है। उस बीमारी की फिर कोई दवा नहीं है। फिर तो बीमारी का बढ़ जाना ही दवा है। फिर तो बीमारी इतनी बढ़े, इतनी बढ़े कि बीमारी ही बचे और तू न बचे--तो दवा है।
ईश्वर की तड़प तुझमें उठी है; सब में उठनी चाहिए, क्योंकि जीवन ईश्वर
की खोज के बिना अर्थहीन है, रंगहीन है, गंधहीन है। ईश्वर के बिना आदमी है क्या? बांस की एक पोंगरी। ईश्वर से जुड़ जाए तो बांसुरी बने। ईश्वर से जुड़ जाए तो गीत जन्मे। लेकिन ईश्वर से जुड़ने की यात्रा अपने अहंकार को गलाने की यात्रा है। और अहंकार मिटना नहीं चाहता। अहंकार पैर जमा कर बैठा है। जन्मों-जन्मों से बैठा है। इतनी आसानी से कोई मालकियत छोड़ भी दे तो कैसे? इतनी पुरानी मालकियत, कोई छोड़ भी दे तो कैसे? अहंकार तो समझता है मैं मालिक हूं। और ईश्वर की खोज की पहली अनिवार्य शर्त है कि गलाओ अहंकार को। उसी से तड़प होती है। इतने-इतने जन्मों की जमी हुई जड़ें अहंकार की उखाड़ने में दर्द होता है, पीड़ा होती है। यह कोई कपड़े उतारने जैसी बात नहीं है, यह चमड़ी उतारने जैसी बात है।
तू पूछती हैः
तड़प ये दिन-रात की,
कसक ये बिन बात की,
ऐसा ही लगेगा। क्योंकि बाहर कुछ दिखाई तो नहीं पड़ता जिसको हम खोज रहे हैं। और कोई अगर पूछे कि क्या खोज रहे हो? तो हम बता भी तो न सकेंगे। भक्त तो गूंगा हो जाता है। उसे कुछ कहना भी हो तो आंखों से झरते हुए आंसुओं से कहना पड़ता है। शब्द छोटे पड़ जाते हैं, ओछे पड़ जाते हैं। शब्द खोटे पड़ जाते हैं। शब्दों के सिक्के प्रेम की दुनिया में नहीं चलते। तो किसी को कहना भी चाहे तो बता नहीं सकता। रोए तो लोग पागल समझें, हंसे तो लोग पागल समझें, चुप रहे तो लोग पागल समझें; और कुछ बोले तो अपना ही अंतःकरण कहे कि यह बोलना ठीक नहीं। क्योंकि अनबोले को कैसे बोला जाए? अनकहे को कैसे कहा जाए? यह तो अपना ही अंतःकरण कहे कि अपराध हो जाएगा। यहां शब्द मत लाना। निःशब्द के इस लोक में शब्द की गंदगी मत लाना। भाव के इस जगत में विचार का कूड़ा- करकट मत लाना। चुप ही सम्हालना इसे। तो और भी कसक होती है। किसी से कह भी लेते तो मन थोड़ा हलका हो जाता। कहने से मन हलका होता है।
मनोविज्ञान तो इस सत्य को बहुत गहराई से स्वीकार करता है। मनोविज्ञान
की तो पूरी प्रक्रिया यही है कि मरीज मनोवैज्ञानिक से सिर्फ अपने मन की व्यथा कहता है। मनोवैज्ञानिक उसका कोई इलाज नहीं करता। इलाज की जरूरत ही नहीं आती। यही इलाज हो जाता है। बीमार अपनी व्यथा कहता है, कहते-कहते व्यथा कम हो जाती है। कहते-कहते मन हलका हो जाता है। मनोचिकित्सक तो केवल सुनता है। मनोचिकित्सा का पूरा शास्त्र सुनने की कला है। मनोचिकित्सक चुपचाप सुनता है, ध्यानपूर्वक सुनता है, बड़ी लगन से। तुम्हारा कूड़ा-करकट

जिसमें कुछ भी सुनने योग्य नहीं है, उसे ऐसे सुनता है जैसे हीरे-जवाहरात बरसते हों। और जब तुम्हें कोई इतने भाव से सुनता है तो तुम अपना हृदय उंडेल देते हो। उसी उंडेलने में पीड़ा तिरोहित हो जाती है। मनोचिकित्सा को चिकित्सा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वहां औषधि तो है ही नहीं कुछ, न ही चिकित्सा की कोई विधि है, सिर्फ एक सीधा-सादा मनुष्य-जाति का हजारों साल का अनुभव है, निचोड़ है, कि दुख कहने से हलका हो जाता है।
सुख कहने से गहरा हो जाता है, दुख कहने से हलका हो जाता है। इसीलिए तो लोग एक-दूसरे से दुख की बातें करते हैं। अपनों के पास बैठ कर दो क्षण रो लेते हैं। तो बोझ कट जाता है।
लेकिन परमात्मा को जो खोजने चला है उसकी पीड़ा तो मनोवैज्ञानिक हल नहीं कर सकता। परमात्मा को जो खोजने चला है, वह तो सभी चिकित्साओं के पार है। उस बीमार का तो कोई इलाज नहीं, उसका कोई उपचार नहीं। एक तो कहा नहीं जा सकता; कहो तो कोई समझेगा नहीं; कहो कुछ, लोग कुछ और समझेंगे।
भक्तों को तो सदा-सदा लोगों ने विक्षिप्त समझा है। इसलिए भक्त को चुप
ही रह जाना पड़ता है। अपनी छाती में दबा लेना पड़ता है अपनी कसक को। और ऐसा ही लगेगा कि दिन-रात रहेगी यह कसक। यह भूले से न भूलेगी। उठते-बैठते, हजार काम करते यह कांटा भीतर चुभता ही रहेगा। यह कांटा समयातीत है, कालातीत है, इसलिए समय से कोई भेद नहीं पड़ता। जागो तो यह है, सोओ तो यह है। भक्त की आंखें नींद में भी गीली होती हैं आंसुओं से। नींद में भी भक्त सपने किसके देखता है? तुम किसके सपने देखते हो?
जो आदमी धन का दीवाना है, वह धन के सपने देखता है--कि मिल गई तिजोरी राह
के किनारे पड़ी हुई; कि गिनती करता है, रुपयों की गिनती करता रहता है। जो पद की तलाश करता है, वह सपने देखता है कि पद पर पहुंच गया, हो गया प्रधानमंत्री, हो गया राष्ट्रपति।
जो परमात्मा की खोज करता है, उसे तो उसकी बांसुरी की टेर भी सपने में गूंजती सुनाई पड़ती है। उसे तो उसकी ही छबि तिरती रहती है। उसे तो उसका ही भाव तिरता रहता है। उसे तो एक ही बात पकड़े रहती है, उसकी श्वास-श्वास को एक ही गीत पकड़े रहता है--बोले, न बोले; उठे, बैठे, काम करे, न करे; मंदिर जाए कि मस्जिद, कि दुकान पर बैठे कि बाजार में--मगर परमात्मा उसे छाया की तरह घेरे रहता है। उसके साथ ही होता है।
तो तू ठीक कहती हैः
तड़प ये दिन-रात की,
कसक ये बिन बात की,
बात की भी तो नहीं लगेगी यह कसक। किस बात की कसक है? परमात्मा पर मुट्ठी भी तो नहीं बंधती। परमात्मा पर मुट्ठी बंध भी नहीं सकती। परमात्मा तो उन्हें मिलता है जो मुट्ठी खोलना सीखने की कला सीख लेते हैं। उसका आंचल भी तो हाथ में नहीं आता। जरा सी भी पकड़ आ जाए तो भी यह लगे कि चलो, हम जिसकी खोज में चले हैं, वह कोई वास्तविक चीज है। नहीं, पकड़ में आता ही नहीं। बस आया, आया, ऐसा लगता है, लेकिन पकड़ में कभी आता नहीं। जब तक हम हैं तब तक वह नहीं। और जब तक हम हैं तभी तक पकड़ने की चेष्टा है। जब हम ही न रहे, पकड़ने वाला न रहा, फिर पकड़ कैसी? फिर परमात्मा उतर आता है। "मैं" के खोते ही परमात्मा की अनुभूति बरसती है। अभी तो कसक बिन बात की ही रहेगी। तेरा प्रश्न प्यारा है!
तड़प ये दिन-रात की,
कसक ये बिन बात की,
भला ये रोग है कैसा?
सजन, अब तो बता दे!
यह रोग अनूठा है। और यह रोग केवल सौभाग्यशालियों को लगता है। यह रोग स्वास्थ्यों का स्वास्थ्य है। यह रोग जीवन का सबसे बड़ा आशीर्वाद है।
मगर शुरू में तो रोग ही लगता है। विरह जलाता है, प्राण पुकारते हैं--पी कहां! पी कहां! और दूर-दूर तक, अनंत तक कहीं भी कोई प्रतिध्वनि नहीं होती, कोई उत्तर नहीं आता। आंखें आकाश में निहारती हैं और उसका कोई पता नहीं चलता, उसके चरण खोजे नहीं मिलते।

भक्त की पीड़ा को समझो! शायद इसीलिए बहुत लोगों ने तय कर रखा है कि परमात्मा से अपने को बचाएंगे। भक्त की पीड़ा को देख कर तय कर रखा है कि ऐसी झंझट में न पड़ेंगे। साधारण जीवन के प्रेम ही कितनी झंझट में डाल देते हैं, तो यह असाधारण प्रेम। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन! यह तो असाधारण प्रेम है। यह तो अज्ञात का प्रेम है। इसका तो कोई ओर-छोर नहीं है। इसका तो कोई किनारा नहीं है। यह तो सागर तटहीन है। इसमें तो जो उतरे वे डूबे। इसमें तो डूबना ही उबरना है। इसमें तो मिटना ही पाना है।

चांद?
मैं उसे अवश्य पकडूंगा!
प्रेम के पिंजड़े में पालूंगा,
हृदय की डाल पर सुलाऊंगा,
प्यार की पंखुड़ी
चाह की अंखड़ी
चांद--
उससे
स्वप्नों का नीड़ सजाऊंगा! तुम्हारा ही तो मुकुट है!

फूलों के मुख पर
तितली सा बैठ कर
वह सतरंगे पर फैलाएगा।
मैं उसे
इंद्रधनु की झूल में झुलाऊंगा, प्यार का माखन खिलाऊंगा! तुम्हारा ही तो मुख है!

चांद?
मैं उसे निश्चय चखूंगा,
फूल की हथेली पर रखूंगा,
तुम्हारा तो प्रकाश है।
भावों से संजोऊंगा,
आंसू से धोऊंगा!
तुम्हारी ही तो शोभा है।

पत्तों के अंतराल से
अलकों के जाल से
मैं चांद को
अवश्य पकडूंगा!

दृष्टि नीलिमा में,
रूप चांदनी में बखेरूंगा,
तुम्हारा ही तो बोध है!

जैसे चांद को पकड़े कोई, पकड़ना चाहे कोई। छोटे बच्चे चांद को पकड़ना चाहते हैं, हाथ फैलाते हैं चांद की तरफ।
कृष्ण के जीवन में कहानी है। जब वे छोटे थे तो चांद को पकड़ने के लिए आतुर हो गए। आकाश में ऊगा होगा पूर्णिमा का चांद, और कृष्ण रोने लगे, और रूठ गए। और यशोदा परेशान है, करे तो क्या करे? चांद को पकड़ाए तो कैसे पकड़ाए? फिर उसे सूझी, फिर उसे ख्याल आया, उसने गणित बिठाया। उसने एक कांसे की थाली में जल भरा, चांद की छाया पड़ी कांसे की थाली में, कृष्ण को कहा कि ले, अब तू पकड़ ले!

यह कहानी प्रीतिकर है। ऐसे ही जो रोए हैं परमात्मा को पाने के लिए, उनको समझाने के लिए मंदिरों में मूर्तियां बना दी गई हैं--कांसे की थाली में पानी में पड़ा हुआ चांद का प्रतिबिंब। मंदिरों की मूर्तियां बस धोखे हैं--बच्चों को समझाने के। झुका लो सिर, पकड़ लो पैर, चढ़ा दो फूल, धूप-दीप जलाओ, भर लो मन को कि मिल गया।
मगर ऐसे नहीं मिलता है, मिटने से मिलता है। मूर्ति नहीं बनानी है उसकी, अपनी मूर्ति विसर्जित करनी है, तब मिलता है। उसकी पत्थर की मूर्ति बनाने से क्या होगा? यह अपनी जो अहंकार की प्रतिमा है, इसे खंडित करो, इसे जाने दो, इसे आमूल चूल जाने दो। इसमें से रत्ती भर मत बचाना, अन्यथा कठिनाई रहेगी, अन्यथा मामला चांद को पकड़ने जैसा रहेगा। लगता है--यह रहा! वृक्षों की डालों के बीच में झूलता, पत्तों के पार झूलता--यह रहा! हाथ बढ़ाऊं तो पकड़ लूं! मगर चांद पकड़ में आता कहीं?
और चांद बहुत दूर नहीं है। शायद किसी दिन पकड़ में आ भी जाए। आखिर दूरी
है आदमी और चांद के बीच, मगर दूरी अनंत नहीं है। अहंकार और परमात्मा के बीच दूरी अनंत है। अहंकार मिटे तो परमात्मा, अहंकार रहे तो परमात्मा नहीं। इस समीकरण को खूब हृदय में गहरा बैठ जाने दो।

खामोशी का समां है और मैं हूं
दियारे-खुफ्तगां है और मैं हूं
कभी खुद को भी इन्सां काश समझे
ये सई-ए-रायगां है और मैं हूं
कहूं किससे कि इस जमहूरियत में हुजूमे-खुशरवां है और मैं हूं पड़ा हूं इक तरफ धूनी रमाए अताबे-रहरवां है और मैं हूं कहां हैं हमजबां अल्लाह जाने फकत मेरी जबां है और मैं हूं खामोशी है जमीं से आस्मां तक किसी की दास्तां है और मैं हूं कयामत है खुद अपने आशियां में तलाशे-आशियां है और मैं हूं जहां इक जुर्म है यादे-बहारां वो लाफानी खिजां है और मैं हूं तरसती हैं खरीदारों को आंखें जवाहिर की दुकां है और मैं हूं
नहीं आती अब आवाजे-जरस भी
गुबारे-कारवां है और मैं हूं
मआले-बंदगी ऐ "जोश" तौबा
खुदा-ए-मेहरबां है और मैं हूं

खामोशी का समां है और मैं हूं
सब तरफ चुप है, चुप्पी है, सब खामोश है, सन्नाटा है और मैं हूं। दियारे-खुफ्तगां है और मैं हूं
सोए हुओं का देश है और मैं हूं।
कभी खुद को भी इन्सां काश समझे
ये सई-ए-रायगां है और मैं हूं
अपने को समझे बिना सब व्यर्थ है।
कभी खुद को भी इन्सां काश समझे
अगर अपने को कोई समझ ले...
ये सई-ए-रायगां है और मैं हूं
तो दिखाई पड़ेगा कि जीवन सारा का सारा व्यर्थ है। जिसे हमने अब तक जीवन समझा था, जीवन नहीं है, जीवन कुछ और है।
कहूं किससे कि इस जमहूरियत में

हुजूमे-खुशरवां है और मैं हूं पड़ा हूं इक तरफ धूनी रमाए अताबे-रहरवां है और मैं हूं कहां हैं हमजबां अल्लाह जाने
फकत मेरी जबां है और मैं हूं
खामोशी है जमीं से आस्मां तक
किसी की दास्तां है और मैं हूं
कयामत है खुद अपने आशियां में
तलाशे-आशियां है और मैं हूं
यही इस जगत की सबसे अनहोनी घटना है कि अपने ही नीड़ में बैठे हैं और अपने ही नीड़ की तलाश चल रही है।
कयामत है खुद अपने आशियां में
तलाशे-आशियां है और मैं हूं
जिसे तुम खोज रहे हो, तुम्हारे भीतर बैठा है। मगर तुम बाहर खोजते हो। तुम अपने नीड़ में बैठे हो, तुम परमात्मा में विराजमान हो, मगर तुम्हारी मौजूदगी उसकी मौजूदगी को अनुभव नहीं होने देती। तुम्हारा शोरगुल उसकी शांत आवाज को प्रकट नहीं होने देता।
जहां इक जुर्म है यादे-बहारां
वो लाफानी खिजां है और मैं हूं
तरसती हैं खरीदारों को आंखें
जवाहिर की दुकां है और मैं हूं
बस इस दुनिया में ऐसी ही हालत है। जवाहिर ही जवाहिर पड़े हैं, हीरे- मोतियों के ढेर लगे हैं। मगर पारखी आंखें नहीं हैं--परख सकें जो, देख सकें जो।
कौन सी आंखें परख सकती हैं? कौन सी आंखें देख सकती हैं?
जिन आंखों में विचारों के जाल नहीं रहे। जिन आंखों में अहंकार के अंबार नहीं रहे। जिन आंखों में मैं-भाव समाप्त हो गया है। वे पारखी हो जाती हैं। उन्हें फिर हीरे ही हीरे दिखाई पड़ते हैं। फिर परमात्मा दूर नहीं है, पास है।
उपनिषद कहते हैंः परमात्मा दूर से भी दूर और पास से भी पास।
विरोधाभास मालूम होता है। गणित तो कहेगा, तर्क तो कहेगा, दूर है तो दूर और पास है तो पास। यह कैसा वक्तव्य हुआ कि दूर से भी दूर और पास से भी पास! लेकिन यह वक्तव्य सही है। गणित लाख कहे, तर्क लाख कहे, यहां तर्क और गणित की कोई गति नहीं है। परमात्मा दूर से भी दूर है, अगर तुम्हारी आंखों में अहंकार की धूल है। और परमात्मा पास से भी पास है, अगर तुम्हारी आंखें अहंकार से मुक्त हैं।
नहीं आती अब आवाजे-जरस भी
गुबारे-कारवां है और मैं हूं
मआले-बंदगी ऐ "जोश" तौबा
खुदा-ए-मेहरबां है और मैं हूं
घबड़ाओ मत। बंदगी किए जाओ, झुके जाओ, पूजा में गले जाओ, प्रार्थना में ढले जाओ, और इतना ही स्मरण रखो--
खुदा-ए-मेहरबां है और मैं हूं
परमात्मा की अनुकंपा अपार है। खोजोगे, मिलेगा। जिन्होंने खोजा है, पाया है। लेकिन जिन्होंने भी खोजा है, उन्होंने बड़ी पीड़ा से पाया है। पीड़ा कीमत है जो चुकानी पड़ती है, वीणा!
तू पूछती हैः
तड़प ये दिन-रात की,
कसक ये बिन बात की,
भला ये रोग है कैसा?
इस रोग का नाम ही प्रेम है। इस रोग का नाम ही भक्ति है। यह बिन बात की कसक है। कारण समझ में नहीं आता, फिर भी प्राणों को मथे डालती है यह कसक। तीर दिखाई नहीं पड़ता, और चुभे चला जाता है। कौन पुकार रहा है, दिखाई नहीं

पड़ता, और पुकार है कि खींचे लिए जाती है। कहां चल पड़े हैं, किसकी खोज में चल पड़े हैं, कुछ साफ-साफ नहीं, कुछ स्पष्ट नहीं, सब धुंधला-धुंधला है, जैसे सुबह का कुहासा घिरा हो, मगर पैर हैं कि रुकते नहीं, मगर है कोई चुनौती कि प्राणों के तारों को छेड़ गई है। जाना ही होगा। रुकने का उपाय नहीं है, वीणा। जिसके भीतर भी यह कसक पैदा हो गई, उसके रुकने की कोई संभावना नहीं है। दौड़ो, जितनी तीव्रता और त्वरा से दौड़ सको। मिटो, जितनी शीघ्रता से और गति से मिट सको। अपने को पोंछ ही डालो। फिर कसक में से ही आनंद का जन्म होता है, कांटे फूल बन जाते हैं, विरह मिलन बन जाता है।
और जब विरह मिलन बनता है तभी समझ में आएगा--
भला ये रोग है कैसा?
तड़प ये दिन-रात की,
कसक ये बिन बात की,
उसके पूर्व पता नहीं चल सकता। प्यासे को कैसे पता चले कि यह प्यास किस चीज की है? प्यास तो पता चलती है। लेकिन जिसने कभी जल न पीया हो, उसे कैसे पता चले कि यह प्यास किस बात की है? उसे तो जल पीने से ही पता चलेगा। हां, जल पीने से दो बातें साफ हो जाएंगी। जल, जल का अनुभव, जल की तृप्ति, परितोष; और साथ ही साथ यह भी कि प्यास किस बात की थी।
यह बड़ा उलटा गणित है। मिलने से पता चलता है कि हम किसे खोज रहे हैं। अनुभव से पता चलता है कि हम किसकी तलाश कर रहे हैं।
इसलिए भक्त एक बड़ी रहस्यमय खोज में संलग्न होता है। इसलिए भक्त को रहस्यवादी कहा है, दुस्साहसी कहा है। क्योंकि उसे खोजता है जिसका साफ-साफ न नक्शा है पास, न छवि है पास। मिल भी जाए तो उसे कैसे पहचानेंगे, इसका भी कुछ पक्का नहीं है। उसकी प्रत्यभिज्ञा कैसे करेंगे? उसे पहले कभी देखा नहीं है।
मगर यह भी अजूबों का अजूबा, कि परमात्मा को पहली दफा देखते ही एकदम पहचान हो जाती है, एकदम प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। इसलिए ज्ञानियों ने उसे स्वतःप्रमाण कहा है। उसकी प्रत्यभिज्ञा किसी और अतीत स्मृति के आधार पर नहीं होती, उसके अनुभव के आधार में ही हो जाती है। उसे जानते ही सब जान लिया जाता है। उसका अनुभव ऐसा प्रगाढ़ है, इतना विराट है, इतना गहन है, इतना ऊंचा है कि पोर-पोर में भिद जाता है, कि रोएं-रोएं को प्रतीति हो जाती है, कि श्वास-श्वास को प्रमाण मिल जाता है, कि हृदय की धड़कन-धड़कन बस उसी के नाच में तल्लीन हो जाती है।

दूसरा प्रश्नः क्या प्रेम पाप है?

योगेंद्र! प्रेम यदि पाप है तो फिर संसार में पुण्य कुछ होगा ही नहीं। प्रेम पाप है तो पुण्य असंभव है। क्योंकि पुण्य का सार प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।
लेकिन तुम्हारे प्रश्न को मैं समझा। तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्मा यही कहते रहे हैं कि प्रेम पाप है। और वे ऐसी व्यर्थ की बात कहते रहे हैं, लेकिन उन्होंने इतने दिनों से कही है, इतने लंबे अर्से से कही है कि तुम्हें उसकी व्यर्थता, उसका विरोधाभास दिखाई नहीं पड़ता।
प्रेम को तो वे पाप कहते हैं और प्रार्थना को पुण्य कहते हैं। और तुमने कभी गौर से नहीं देखा कि अगर प्रेम पाप है, तो प्रार्थना भी पाप हो जाएगी। क्योंकि प्रार्थना प्रेम का ही परिशुद्ध रूप है। माना कि प्रेम में कुछ अशुद्धियां हैं, लेकिन पाप नहीं है। सोना अगर अशुद्ध हो तो भी लोहा नहीं है। सोना अशुद्ध हो तो भी सोना है। अशुद्ध होकर भी सोना सोना है। रही शुद्ध करने की बात, सो शुद्ध कर लेंगे। कूड़े-करकट को जला देंगे, सोने को आग से गुजार लेंगे; जो व्यर्थ है, असार है, जल जाएगा आग में; जो सार है, जो शुद्ध है, बच जाएगा।
प्रेम और प्रार्थना में उतना ही फर्क है जितना अशुद्ध सोने और शुद्ध सोने में। मगर दोनों ही सोना हैं, यह मैं जोर देकर कहना चाहता हूं। इस पर मेरा बल है। यही आने वाले भविष्य के मनुष्य के धर्म की मूल भित्ति है।

अतीत ने प्रार्थना और प्रेम को अलग-अलग तोड़ दिया था। और उसका दुष्परिणाम हुआ। उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि प्रेम दूषित हो गया, कलुषित हो गया, निंदित हो गया। एक तरफ प्रेम को अपराध बना दिया हमने; तो जो प्रेम में थे, उनकी आत्मा का अपमान किया, उनके भीतर आत्मनिंदा पैदा कर दी। और इस जगत में इससे बड़ी कोई दुर्घटना नहीं है कि किसी व्यक्ति के भीतर आत्मनिंदा पैदा हो जाए। तो प्रेम के कारण हमने पापी पैदा कर दिया दुनिया में। प्रेम पाप है, तो जो भी प्रेम करते हैं, सब पापी हैं। और कौन है जो प्रेम नहीं करता? कोई पत्नी को करता है, कोई पति को, कोई बेटे को, कोई भाई को, कोई मित्र को। शिष्य भी तो गुरु को प्रेम करते हैं! गुरु भी तो शिष्यों को प्रेम करता है! यहां जितने संबंध हैं, वे सारे संबंध ही किसी न किसी अर्थ में प्रेम के संबंध हैं। संबंध मात्र प्रेम के हैं। तो हमने सभी को पापी कर दिया। सारा संसार हमने पाप से भर दिया, एक छोटी सी भूल करके कि प्रेम पाप है।
और दूसरा दुष्परिणाम हुआ कि जब प्रेम पाप हो गया, तो प्रार्थना हमारी थोथी हो गई, उसमें प्राण न रहे, औपचारिक हो गई। प्राण तो प्रेम से मिल सकते थे, तो प्रेम को तो हमने पाप कह दिया। जीवन तो प्रेम से मिलता प्रार्थना को, तो जीवन के तो हमने द्वार बंद कर दिए। प्रेम की ही भूमि से प्रार्थना रस पाती है, तो हमने भूमि को तो निंदित कर दिया और प्रार्थना के वृक्ष को भूमि से अलग कर लिया। भूमि वृक्षहीन हो गई और वृक्ष मुर्दा हो गया। ये दो दुर्घटनाएं घटीं। प्रेम पाप हो गया और प्रार्थना थोथी हो गई।
इसलिए तुम्हारा प्रश्न तो स्वाभाविक है। सदियों-सदियों से यही समझाया है, इसलिए मन में यह सवाल उठता हैः कहीं प्रेम पाप तो नहीं? लेकिन एक बुनियादी भूल हो गई। और उस बुनियादी भूल के कारण पृथ्वी धार्मिक होने से वंचित रह गई। उस भूल को सुधार लेना है। और जितनी जल्दी सुधर जाए उतना अच्छा है।
मैं तुमसे कहता हूं, यह घोषणा करता हूं कि प्रेम पुण्य है।
लेकिन मुझे गलत मत समझ लेना। जब मैं प्रेम को पुण्य कहता हूं तो मैं
यह नहीं कह रहा हूं कि बस प्रेम पर रुक जाना है। जब मैं प्रेम को पुण्य कह रहा हूं तो सिर्फ यही कह रहा हूं कि प्रेम में सोना छिपा है। कचरा भी है।
लेकिन जो कचरा है, वह प्रेम नहीं है। वह विजातीय है। वह सोना नहीं है। कूड़ा-करकट होगा, मिट्टी होगी, कुछ और होगा। विरह की अग्नि से गुजारो इसे। और तुम धीरे-धीरे पाओगे कि तुम्हारे हाथों में प्रार्थना का पक्षी लग गया है, जिसके पंख हैं, जो आकाश में उड़ सकता है। जो इतना हलका है! क्योंकि सारा बोझ कट गया, सारी व्यर्थता गिर गई। जिस दिन तुम प्रार्थना को अनुभव कर पाओगे, उस दिन तुम धन्यवाद दोगे अपने सारे प्रेम के संबंधों को, क्योंकि उनके बिना तुम प्रार्थना तक कभी नहीं आ सकते थे। तुम धन्यवाद दोगे प्रेम के सारे कष्टों को, सुखों को, मिठास के अनुभव और कडुवाहट के अनुभव; जहर और अमृत, प्रेम ने दोनों दिए, उन दोनों को तुम धन्यवाद दोगे। क्योंकि जहर ने भी तुम्हें निखारा और अमृत ने भी तुम्हें सम्हाला और यह घड़ी अंतिम आ सकी सौभाग्य की कि प्रेम प्रार्थना बना।
प्रेम जब प्रार्थना बनता है तो परमात्मा के द्वार खुलते हैं।
प्रेम पाप नहीं है। और किसी बुद्धपुरुष ने प्रेम को पाप नहीं कहा है। लेकिन लोग कुछ का कुछ समझे हैं। पंडित-पुजारियों ने कहा है। पंडित-पुजारियों की समझ ही क्या है? उनका अनुभव क्या है? तोतों की तरह शास्त्रों को रटे हुए बैठे हैं। हां, उनसे रामायण कहलवा लो, कि उनसे गीता दोहरवा लो, कि वे कुरान का पूरा पाठ कर दें। मगर बस तोतों की तरह, मशीनों की तरह। यह काम तो मशीनें कर सकती हैं। अब तो कंप्यूटर पैदा हो गए हैं, ये सारी बातें कंप्यूटर कर सकते हैं। और आदमी से ज्यादा शुद्ध, आदमी से ज्यादा भूलचूक-मुक्त। बुद्धों ने कुछ कहा, पंडित कुछ समझे। और यह स्वाभाविक है एक अर्थ में, क्योंकि बुद्ध अपनी ऊंचाई से बोलते हैं और पंडित-पुरोहित अपनी नीचाई से समझते हैं। बुद्ध पुकारते हैं पर्वत-शिखरों से और पंडित-पुरोहित अंधेरी घाटियों में सरक रहे हैं। और वहीं से उन्हें जो सुनाई पड़ता है,

उसका वे अर्थ बिठाते हैं, उसकी व्याख्या करते हैं। उन्होंने सब गुड़-गोबर कर दिया।
मुल्ला नसरुद्दीन पुलिस आफिस गया। पुलिस अफसर ने पूछा, बड़े मियां, तुम्हारे पास क्या सुबूत है कि तुम्हारी बीबी पागल हो गई है? कोई डाक्टर की रिपोर्ट, या...
मुल्ला नसरुद्दीन ने बात काटते हुए कहा, यह सब कुछ मैं नहीं जानता साहब, किंतु जो कुछ मैं कह रहा हूं वह सौ प्रतिशत सच है। आज शाम मैं आफिस से घर लौटा तो उसने मुस्कुरा कर मेरा स्वागत किया, बड़े प्यार से चाय की प्याली पेश की--हालांकि आज पहली तारीख नहीं है।
लोगों के अपने समझने के ढंग हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन होटल से बाहर निकल रहा है और होटल के बैरा ने कहा, बड़े मियां, टिप में सिर्फ एक अठन्नी! आप मेरा अपमान कर रहे हैं। कम से कम एक रुपया तो होना ही चाहिए।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, क्षमा करना भाई, एक अठन्नी और देकर मैं दुबारा तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता।
लोगों की अपनी समझ है, अपनी व्याख्या है। बुद्धपुरुष कुछ कहते हैं, बुद्धू कुछ समझते हैं। किसी बुद्धपुरुष ने नहीं कहा कि प्रेम पाप है। जीसस ने कहा हैः प्रेम परमात्मा है। बुद्ध ने कहा हैः प्रेम ध्यान की परिणति है। महावीर ने कहा हैः प्रेम समाधि की आत्यंतिक अनुभूति है। नारद से पूछो। शांडिल्य से पूछो। चैतन्य से पूछो। मीरा से पूछो। और क्या तुम सोचते हो, योगेंद्र, इनमें से कोई भी कहेगा प्रेम पाप है? असंभव। जिन्होंने प्रार्थना जानी, जिन्होंने ध्यान जाना, वे कह ही नहीं सकते कि प्रेम पाप है। लेकिन जिन्होंने न ध्यान जाना है, न प्रार्थना जानी है, जिन्होंने जिंदगी का कूड़ा-करकट ही इकट्ठा किया है, और जिन्होंने प्रेम भी नहीं जाना, प्रेम के नाम पर भी कुछ और ढोते रहे हैं; प्रेम के नाम पर भी, प्रेम का मुखौटा लगा कर भी कुछ और ही करते रहे हैं, वे जरूर कहेंगे कि प्रेम पाप है। उनका अनुभव।
अगर साधारण मनुष्य के प्रेम का तुम विचार करो तो बहुत चकित हो जाओगे! उसके प्रेम में इतनी कीचड़ मिली है, उसके सोने में इतना कचरा मिला है, कि सोना तो एक प्रतिशत होगा, निन्यानबे प्रतिशत कचरा है। प्रेम के नाम पर घृणा तक भीतर छिपी है।
तुमने यह बात गौर की? प्रेम को घृणा बनने में देर नहीं लगती। मित्र को दुश्मन बनने में देर कितनी लगती है? जिस स्त्री के लिए तुम जान देने को तैयार थे, उसी की जान लेने को भी तैयार हो जाते हो--इसमें देर कितनी लगती है?
प्रेम इतनी जल्दी घृणा बन जाता है? प्रेम घृणा बन सकता है? और अगर प्रेम घृणा बन सकता है तो कैसा प्रेम! प्रेम घृणा नहीं बन सकता। फिर जो घृणा बन जाता है, वह प्रेम था ही नहीं, कुछ और था, घृणा ही थी, प्रेम का मुखौटा लगा कर नाटक कर रही थी। प्रेम के नाम पर तुम शोषण कर रहे हो। प्रेम के नाम पर तुम एक-दूसरे का उपयोग कर रहे हो। प्रेम के नाम पर तुम एक-दूसरे की मालकियत कर रहे हो। प्रेम के नाम पर राजनीति है, कूटनीति है। प्रेम बड़ा लुभावना शब्द है, बड़ा प्यारा शब्द है, खूब उलझा लेता है। जिससे भी तुम कह देते होः मुझे आपसे बहुत प्रेम है, वही आपकी बातों में आ जाता है। तुम्हें खुद से भी प्रेम नहीं है, तुम्हें और किससे प्रेम होगा? तुम कहते हो, हमें अपने बच्चों से प्रेम है। अपने बच्चों से तुम्हें प्रेम नहीं है, अपने हैं, इसलिए प्रेम है। मेरे हैं, अहंकार का हिस्सा हैं तुम्हारे, इसलिए प्रेम है। और अगर तुम्हारा बेटा प्रधानमंत्री हो जाए, तो बहुत प्रेम पैदा हो जाएगा। और तुम्हारा बेटा अगर डाकू हो जाए और कारागृह में चला जाए, तो तुम जाकर अदालत में घोषणा कर दोगे कि मैं इनकार करता हूं कि यह मेरा बेटा है। प्रेम समाप्त हो जाएगा।
तुम्हारा प्रेम भी अहंकार है। तुम्हारा प्रेम भी उतने ही दूर तक है जहां तक तुम्हारे अहंकार को सहारा मिलता है, सत्कार मिलता है, सम्मान मिलता है। इस प्रेम के अनुभव के कारण लोगों को भी बात जंच जाती है कि प्रेम

पाप है। मगर यह तो प्रेम का अनुभव ही नहीं है। कंकड़-पत्थर बीनते रहे और कहने लगे कि हीरे पाप हैं! हीरों का तुम्हें अनुभव नहीं है।
प्रेम का थोड़ा अनुभव करो। प्रेम बड़ी अदभुत घटना है। साधारण नहीं है, अलौकिक है। इस पृथ्वी पर स्वर्ग की छोटी सी जो किरण उतरती है, उसी का नाम प्रेम है। इस अंधेरे में रोशनी की जो थोड़ी सी झलक उतर आती है, उसी का नाम प्रेम है। इस पथरीले हृदय में जो थोड़ी आर्द्रता आ जाती है, उसी का नाम प्रेम है।
प्रेम का अर्थ हैः मैं किसी के जीवन में आनंदित हूं; किसी के जीवन से आनंदित हूं; अकारण! प्रेम का कोई कारण नहीं होता। कारण हो, तो मोह। और अकारण हो, तो प्रेम। तुम किसी से कहो कि मैं इसलिए तुम्हें प्रेम करता हूं, तो यह मोह। और तुम अगर कोई भी कारण न खोज पाओ, खोजो और न खोज पाओ, लाख खोजो और न खोज पाओ, और तुम्हें यह कहना पड़े कि पता नहीं क्यों, पर प्रेम है, तो मोह नहीं। प्रेम जैसे आकाश से उतरता है, पृथ्वी में उसकी जड़ें ही नहीं होतीं। मोह की जड़ें पृथ्वी में होती हैं। और जिन्होंने प्रेम को पाप कहा है, वे भूल कर रहे हैं शब्दों की। वे मोह को पाप कहें तो ठीक है। क्योंकि मोह का अर्थ हैः मेरे का भाव, ममता। प्रेम में तो मोह होता ही नहीं। प्रेम तो बड़ा निर्मोही है।
तुम चौंकोगे मेरी बात सुन कर, लेकिन मैं तुमसे फिर दोहराता हूंः प्रेम अत्यंत निर्मोही है। प्रेम मोह को जानता ही नहीं। प्रेम दूसरे पर कब्जा करता ही नहीं। न तो कब्जा करता है और न अपने पर कब्जा करने देता है। प्रेम तो स्वतंत्रता है। प्रेम तो दो व्यक्तियों के बीच स्वतंत्रता का आदान-प्रदान है। न कोई किसी का मालिक है, न कोई किसी की दासी है। प्रेम एक-दूसरे के गले में फंदा नहीं डालता। प्रेम तो फंदे काटता है। अगर कभी तुम्हारे जीवन में प्रेम का अनुभव हो, तो तुम चकित होओगेः तुम भी मुक्त हुए और जिससे तुम्हारा प्रेम है वह भी मुक्त हुआ। प्रेम मुक्ति लाता है। प्रेम मुक्तिदायी है। और ऐसे प्रेम को ही जीसस ने ईश्वर कहा। बुद्ध ने ध्यान की अंतिम परिणति कहा। महावीर ने कैवल्य का स्वभाव कहा। इस प्रेम को पाप नहीं कहा जा सकता।
तुम्हें पंडितों-पुरोहितों की, संतों-महात्माओं की--तथाकथित संतों- महात्माओं की--बातें जंच गईं, क्योंकि तुम्हारे अनुभव के अनुकूल पड़ गईं। तुम्हारा अनुभव ही गलत है। तुम्हारा अनुभव कंकड़-पत्थरों का है। और जब संतों-महात्माओं ने कहा कि ये सब हीरे कंकड़-पत्थर हैं, तुम्हें भी बात जंची कि बात तो ठीक ही है। और तुम्हारी जिंदगी का प्रेम का जो अनुभव है, इतना दूषित है, इतना धुआं-धुआं है, ज्योति का तो पता ही नहीं चलता, बस धुआं ही धुआं है, कि जब पंडितों ने कहा कि आंखें खराब होती हैं धुएं से, और पीड़ा ही पीड़ा मिलती है, सुख मिलता कहां, तुमको भी बात जंची! क्योंकि यही तो तुम्हारा भी अनुभव है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम निर्धूम शिखा है। प्रेम से धुआं पैदा नहीं होता। हां, प्रेम में जो कचरा है, उसके जलने से धुआं पैदा होता है।
ऐसा समझो कि तुम लकड़ियां जलाते हो, कब धुआं पैदा होता है और कब धुआं पैदा नहीं होता, तुमने विचार किया? लकड़ियों के जलने से धुआं कभी पैदा नहीं होता--अगर लकड़ियां सूखी हों, अगर उनमें पानी न हो भीतर, अगर गीली न हों, तो लकड़ियों से कभी धुआं पैदा नहीं होता। अगर लकड़ी सच में ही सूखी हो, पूरी सूखी हो, उसमें रत्ती मात्र भी जल का अवशेष न रहा हो, तो जरा भी धुआं पैदा नहीं होगा। लकड़ी के जलने से धुआं पैदा नहीं होता। लेकिन लकड़ी गीली हो तो धुआं पैदा होता है। वह गीलापन लकड़ी नहीं है। विजातीय है।
तुम्हारे प्रेम से अगर तुम्हारी आंखें अंधी हो रही हैं और धुआं पैदा
हो रहा है और जिंदगी में कालिख आ रही है और जिंदगी उलझन में भरती जा रही है और क्रोध होता है, वैमनस्य होता है, ईर्ष्या है, जलन है, यह सब पैदा हो रहा है, तो समझ लेना कि तुम्हारे प्रेम में अभी कचरा बहुत है, विजातीयता बहुत है। इसको अगर कोई पाप कहे तो ठीक, लेकिन यह प्रेम को पाप कहना ठीक नहीं है।

प्रेम से तो कभी धुआं पैदा नहीं होता। अगर तुम्हारे प्रेम से धुआं पैदा होता है तो लकड़ियों को सुखाओ थोड़ा और, निर्मोह करो प्रेम को। मोह लकड़ी को गीला रखता है। निर्मोह करो प्रेम को, अनासक्त करो प्रेम को। प्रेम को घृणा से, ईर्ष्या से, जलन से मुक्त करो। और फिर तुम हैरान हो जाओगे कि प्रार्थना की जरूरत ही न रही, तुम्हारा प्रेम ही प्रार्थना बन गया।
और जीवन ने जो अवसर दिया है प्रेम का, इसे ऐसे ही मत गंवा देना। इसे लोग दो तरह से गंवाते हैं। एक तो वे लोग हैं जो प्रेम के नाम पर कुछ और करते रहते हैं और उसे प्रेम समझते हैं। उनको मैं भोगी कहता हूं, संसारी। वे जीवन गंवा देते हैं। और दूसरे वे हैं जो संसार से भाग जाते हैं, प्रेम के कूड़े-करकट से डर कर भाग जाते हैं। कुछ ने कूड़ा-करकट छाती से लगा लिया है, कुछ कूड़े-करकट से डर कर भाग गए। जिन्होंने कूड़ा-करकट छाती से लगाया है, वे भी सोने को न खोज पाएंगे। और जो कूड़े-करकट से डर कर भाग गए, वे सोने से भी भाग गए। क्योंकि सोना और कूड़ा-करकट, सब यहां मिला हुआ है। वे भी कभी प्रेम को न जान पाएंगे। जिनको तुम संन्यासी मानते रहे हो, वे भी प्रेम को नहीं जान पाते। जिनको तुम संसारी जानते हो, वे भी प्रेम को नहीं जानते। भोगी भी वंचित, योगी भी वंचित। अलग-अलग ढंग से वंचित, मगर दोनों वंचित। एक कूड़ा- करकट पकड़ने के कारण वंचित, एक कूड़ा-करकट छोड़ने के कारण वंचित। लेकिन दोनों नहीं देख पाते कि कूड़े-करकट में कुछ छिपा है। मिट्टी में कमल छिपा है, यह दोनों नहीं देख पाते। यही उनका अंधापन है।
मैं तुम्हें चाहूंगा कि तुम जीओ, भागना मत, त्यागना मत। जीवन को उसकी समग्रता में जीओ। जीवन के सारे रूपों में जीवन को जीओ। हां, इतना ही ख्याल रहे कि जो रूप तुम्हें कष्ट दे, जानना कि उसमें निखार करना है। छोड़ना नहीं, निखार करना है। त्यागना नहीं, उसमें कुछ गलत है, उस गलत को रूपांतरित करना है।

ये रात अपनी है, ये माहताब अपना है,
यहीं पे वक्त का सैले-रवां ठहर जाए।
हमें भी चलना है मंजिल तलक मगर ऐ काश,
जरा सी देर को ये कारवां ठहर जाए।

पिलाई आज जो रंगीं लबों के सागर से,
किसी ने ऐसी मये-तुंदो-तेज पी ही नहीं।
ये कहकशां, ये सितारे गवाह हैं ऐ दोस्त, तेरे अलावा मोहब्बत किसी से की ही नहीं।

गुनाह! जिंदगी बेरंग है बगैर गुनाह, हयात सहने-चमन मासियत है फस्ले-बहार।
शराबी ओंठों की मख्मूर अंखड़ियों की कसम, रिवाजो-रस्मे-जहां गर्के-बादा-ए-गुलनार।

तेरा शबाब, तेरा हुस्न, तेरी रानाई,
खिलें ये फूल तो सारा चमन महक उट्ठे।
तरब की आग को भड़का दे और भड़का दे,
कि जिंदगी की फिजा-ए-खुनक दहक उट्ठे।
ये रात अपनी है, ये माहताब अपना है,
यह सारा संसार अपना है। यह रात भी अपनी, ये दिन भी अपने। यह सूरज भी अपना, यह चांद भी अपना।
ये रात अपनी है, ये माहताब अपना है,
यह रात अपनी है, यह चांद अपना है।
यहीं पे वक्त का सैले-रवां ठहर जाए।
काश, ऐसा हो सकता कि रात के इस सौंदर्य में ही समय का कारवां ठहर जाता! काश, ऐसा हो सकता कि फिर कोई बदलाहट न होती!

ऐसा तो हो नहीं सकता। ऐसा चाहोगे तो मुश्किल में पड़ोगे। वक्त का कारवां जरूर ठहरता है, मगर रातों और दिनों में नहीं ठहरता। वक्त का कारवां सिर्फ ध्यान में ठहरता है, प्रार्थना में ठहरता है। समय रुक जाता है, समय भूल जाता है, विस्मृत हो जाता है। मगर यह आकांक्षा तो उठती है, कभी रात के सौंदर्य को देख कर कि बस अब सब यहीं रुक जाए। बस अब जैसा है, ऐसा ही रहे। यहीं से आसक्ति पैदा होती है। यहीं से प्रेम मोह बनना शुरू हो जाता है। ये रात अपनी है, ये माहताब अपना है,
यहीं पे वक्त का सैले-रवां ठहर जाए।
हमें भी चलना है मंजिल तलक मगर ऐ काश,
जरा सी देर को ये कारवां ठहर जाए।
पता तो हमें है कि मंजिल तक चलना है, कोई दूर, अज्ञात मंजिल राह देख रही है, मगर फिर भी मन मान लेना चाहता है कि थोड़ी देर को परिवर्तन न हो, यह नदी की धारा रुक जाए। और जब भी तुम्हारा मन चाहता है कि कुछ रुक जाए, धारा रुक जाए, परिवर्तन रुक जाए, तभी तुम बंधन में पड़ जाते हो। रोकने की आकांक्षा बंधन है। जब भी तुम चाहते हो कि चीजें बस ऐसी ही हो जाएं--इतनी सुखद है अभी यह बात, अभी इतना सुखद है यह क्षण, कि कहीं छिटक न जाए हाथ से, कहीं खो न जाए, कहीं यह नदी की धार बह न जाए, कहीं समय बदल न जाए--जहां तुम्हारे मन में ऐसी आकांक्षा जगती है, बस वहीं प्रेम की हत्या शुरू हो गई।
और ऐसी आकांक्षा हम सबके मन में जगती है। कौन नहीं चाहता कि सुख का क्षण सदा को ठहर जाए और दुख का क्षण कभी न आए? मगर न तो सुख के क्षण ठहरते हैं, न दुख के क्षण आने से रुकते हैं। समझदार वह है, जो सुख के क्षण में भी साक्षी होता है, दुख के क्षण में भी साक्षी होता है। और जो साक्षी होता है, उसके लिए समय ठहर जाता है।
पिलाई आज जो रंगीं लबों के सागर से,
किसी ने ऐसी मये-तुंदो-तेज पी ही नहीं।
प्रेमी कह रहा है कि प्रेयसी, तूने अपने रंगीन लबों की सुराही से जो शराब आज पिलाई है, ऐसी तेज शराब न तो कभी किसी ने पिलाई और न कभी किसी ने पी। हर प्रेमी ऐसा ही सोचता है। हर प्रेमी ऐसा ही सोचता हैः यह जो हो रहा है मेरे जीवन में, ऐसा कभी किसी को नहीं हुआ।
पिलाई आज जो रंगीं लबों के सागर से,
किसी ने ऐसी मये-तुंदो-तेज पी ही नहीं।
ये कहकशां, ये सितारे गवाह हैं ऐ दोस्त,
तेरे अलावा मोहब्बत किसी से की ही नहीं।
ऐसी भ्रांतियां हैं। तुमसे पहले भी हजारों लोगों ने प्रेम किया है,
आज भी हजारों लोग प्रेम कर रहे हैं, आगे भी हजारों लोग प्रेम करते रहेंगे। प्रेम कुछ अस्वाभाविक घटना नहीं है। लेकिन अहंकार ऐसा मान लेना चाहता है कि जैसा प्रेम मैंने किया, किसी ने नहीं किया। सब मजनू फीके, सब फरिहाद फीके। जैसा प्रेम मैंने किया वैसा किसी ने नहीं किया। अहंकार प्रेम पर कब्जा कर लेता है। और जहां अहंकार ने प्रेम पर कब्जा किया, वहीं प्रेम पाप हो जाता है। अहंकार यह भी मानना चाहता है कि बस, यही मेरा एकमात्र प्रेम है।
तेरे अलावा मोहब्बत किसी से की ही नहीं।
प्रेम कोई ऐसी बात नहीं है कि एक पर ठहर जाए। और जिसने प्रेम को एक पर ठहराना चाहा, उसका प्रेम जड़ हो जाता है। प्रेम तो बहता है, चारों तरफ बहता है। जैसे तुम कंकड़ फेंक दो झील में तो लहर उठती है, वर्तुलाकार लहर पर लहर उठती जाती है और चारों तरफ फैलती चली जाती है।
सच्चा प्रेम एक से नहीं होता। सच्चा प्रेम किसी से होता है, ऐसा कहना
ही ठीक नहीं। सच्चा प्रेम तो चित्त की एक दशा है; चैतन्य की एक दशा है। सच्चे प्रेम का अर्थ होता है, तुम्हारे भीतर प्रेम है। सच्चे प्रेम का अर्थ होता है, तुम जहां हो, वहां प्रेम की वर्षा होती है। तुम जिसके साथ हो, वहां प्रेम बरसता है। हमने प्रेम को गंदा कर लिया व्यक्तियों से बांध कर।
फिर हम एक-दूसरे पर पहरा देने लगे।

मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा था अदालत में। उसने अपनी पत्नी को गोली मार दी। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरुद्दीन और सब तो ठीक है, मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम घर आए, तुमने अपनी पत्नी को किसी की बांहों में देखा, तुम क्रोधित हो गए, तुमने पत्नी को गोली मार दी। यह तो मेरी भी समझ में आता है, मानवीय है। मैं भी शायद यही करता, अगर मेरे साथ ऐसी घटना घटती। मगर मैं तुमसे पूछता हूं, तुमने उस आदमी को गोली क्यों नहीं मारी? पत्नी को गोली क्यों मारी?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, हर सप्ताह एक नये आदमी को गोली मारने की बजाय पत्नी को गोली मारी। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।
प्रेम हत्या कर सकता है? ईर्ष्या हत्या कर सकती है। ईर्ष्या हत्या ही करती है। लेकिन जब प्रेम को तुम एक से बांध देते हो तो अनिवार्यतया ईर्ष्या पैदा होती है। जब तुम प्रेम को संबंध बना लेते हो, तभी तुम उसको गंदा बना लेते हो।
प्रेम तो एक भावदशा होनी चाहिए। प्रेम करो, ऐसा मैं नहीं कहता; मैं कहता हूं, प्रेम हो जाओ। और तुम पाओगे कि प्रेम बड़ा पवित्र है। प्रेम करोगे, तो पाप जैसा मालूम पड़ेगा। और प्रेम हो जाओगे, तो पुण्य हो जाएगा। गुनाह! जिंदगी बेरंग है बगैर गुनाह,
हयात सहने-चमन मासियत है फस्ले-बहार।
अगर जीवन एक बगीचा है, तो पाप उसमें वसंत है। और गुनाह के बिना तो जिंदगी बेरंग होगी।
गुनाह! जिंदगी बेरंग है बगैर गुनाह,
हयात सहने-चमन मासियत है फस्ले-बहार।
शराबी ओंठों की मख्मूर अंखड़ियों की कसम,
रिवाजो-रस्मे-जहां गर्के-बादा-ए-गुलनार।
और एक और आश्चर्य की बात तुमसे कहूं। तुम्हारे पंडित-पुरोहित गुहार मचाते रहे हैं; ऐसी गुहार जैसी बरसात के दिनों में मेंढक मचाते हैं। सदियों से एक गुहार मचाते रहे हैंः प्रेम पाप है। इसके दो परिणाम हुए। एक परिणाम तो यह हुआ कि कुछ लोगों ने प्रेम को पाप समझ कर अपने को निंदित माना, अपमानित माना, दीन माना, पापी माना। प्रेम तो जारी रखा--क्योंकि प्रेम स्वाभाविक है, सिर्फ पाप मान लेने से कुछ होता नहीं। हां, लेकिन एक दुर्घटना घट गई, उनका प्रेम विषाक्त हो गया।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने यह उल्लेख किया है। फ्रेड्रिक नीत्शे के पास बड़ी अनूठी दृष्टि है। काश, यह आदमी भारत में पैदा हुआ होता तो बुद्ध होता। जर्मनी में पैदा हुआ, इसलिए पागल हो गया। इसके पास अनूठी आंखें थीं। अगर इसको ध्यान का मार्ग मिल जाता तो इसकी अंतर्दृष्टि बड़े हीरे बरसा जाती दुनिया में। यद्यपि इसको ध्यान जैसी किसी बात की कोई प्रतीति नहीं थी, फिर भी कभी-कभी झरोखे उसके जरूर खुलते रहे होंगे। उसे कुछ बातें दिखाई पड़ती रहीं। उन बातों में उसने एक बात यह भी कही है कि पंडित-पुरोहित प्रेम को नष्ट तो नहीं कर पाए, लेकिन उसे विषाक्त करने में जरूर सफल हो गए।
तो एक तो यह दुष्परिणाम हुआ कि लाखों-करोड़ों लोगों का जीवन विषाक्त
हो गया। प्रेम पाप है--और करना है प्रेम! तो मां अपने बेटे को प्रेम कर रही है और जान भी रही है कि प्रेम पाप है। यह कैसा प्रेम होगा? यह प्रेम अधूरा हो जाएगा, आधा-आधा हो जाएगा, अपंग हो जाएगा, लंगड़ा हो जाएगा, लूला हो जाएगा। पति पत्नी को प्रेम कर रहा है और जान रहा है कि प्रेम पाप है। पति और पत्नी के बीच में महात्मा खड़े हैं और वे कह रहे हैंः प्रेम पाप है, सावधान! तुम कहीं चले जाओ, कितने ही एकांत में पत्नी को लेकर, दूर पहाड़ों में, इससे क्या होता है? महात्मा पीछा करेंगे, बीच में खड़े होंगे और कहेंगेः प्रेम पाप है। प्रेम करते क्षण में भी कोई तुम्हारे भीतर कहे चला जाता हैः प्रेम पाप है। तो तुम प्रेम पूरा नहीं कर पाते। और जो अनुभव पूरा नहीं होता, उससे मुक्ति नहीं हो सकती। अधूरे अनुभव कभी मुक्ति नहीं लाते। क्योंकि मन कहता है, पता नहीं, अभी कुछ और बाकी हो। अभी पूरा तो जाना नहीं। शायद और कुछ शेष हो। और शायद जो शेष है, वही सुखद हो। इसलिए चले चलो। और पीछे पाप का भाव है, इसलिए वह पूरा कभी होने नहीं देगा।

तो एक तो उपद्रव यह हुआ कि कुछ लोगों के जीवन में प्रेम विषाक्त हो गया। और उनके जीवन में प्रार्थना की तो संभावना दूर, प्रेम की संभावना भी न रही। और दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि कुछ लोगों को, प्रेम पाप है, इसकी गुहार सुन कर प्रेम में एक रुग्ण उत्सुकता जग गई। वह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। अगर किसी चीज को करने से इनकार किया जाए, तो करने की आकांक्षा पैदा होती है। किसी दरवाजे पर लिख दोः यहां झांकना मना है। लोग वहां झांकने लगेंगे। जो कभी नहीं झांकते थे, जो वैसे निकल जाते थे हजार दफा उसी दरवाजे के सामने से, वहां लिखा है झांकना मना है, कि जरूर झांकेंगे। तुमने देखा नहीं, कोई रास्ते से बुरका ओढ़े हुए औरत निकल जाए, तो हर आदमी देखना चाहता हैः बुरके के भीतर चेहरा कैसा है? चाहे बुरके के भीतर मुल्ला नसरुद्दीन हों! मगर लोग झांक-झांक कर देखना चाहते हैं। जहां निषेध है, वहां आकर्षण पैदा हो जाता है।
यही तो बुनियादी भूल ईसाइयों की कहानी में परमात्मा ने प्रथम दिन कर दी। अदम को कह दिया कि तू इस वृक्ष के फल मत खाना; इस वृक्ष के फल, इस ज्ञान के वृक्ष के फल वर्जित हैं।
अब तुम जरा सोचो! जरा किसी बच्चे को कहना कि फ्रिज के पास मत जाना, आज वहां रसमलाई रखी है, कि रसगुल्ले रखे हैं। न कहते तो शायद उसे ख्याल भी न होता। न कहते तो शायद वह फ्रिज के पास जाता भी नहीं। अब तुमने कह दिया कि रसगुल्ले, रसमलाई, फ्रिज के पास मत जाना! देखो तुम्हारे पैर कहीं फ्रिज के पास न पड़ें, नहीं तो टांग तोड़ दी जाएगी! अब इस बच्चे को चौबीस घंटे एक ही धुन रहेगी कि कब मौका मिल जाए, कब मां पड़ोस में जाए, कि पिता दफ्तर जाएं, कि कब मौका मिल जाए कि वह फ्रिज के पास पहुंचे। अब इसका खेल में मन न लगेगा। अब गिल्ली-डंडे में मन नहीं लगेगा। अब पतंग उड़ाने में मन नहीं लगेगा। वह रसमलाई खींचती ही रहेगी। उसका रस गहरा हो गया। और निषेध जहां है, वहां रस पैदा हो जाता है, बहुत रस पैदा हो जाता है।
किसी फिल्म में लिखा होता हैः सिर्फ वयस्कों के लिए। वहां छोटे-छोटे बच्चे पहुंच जाते हैं। मैंने तो एक बच्चे को पकड़ा, वह मूंछ लगा कर पहुंच गया था। दो आने की मूंछ खरीद ली होगी बाजार से, उसको लगा कर पहुंच गया। रास्ते में ही जा रहा था तो मुझे दिखाई पड़ा। मैंने कहा कि इस लड़के को मैं जानता हूं, इसको एकदम से मूंछ कैसे ऊग आई? बच कर भागना चाहा, मैंने रोका, पूछाः तू जा कहां रहा है? उसने कहा, आप मुझे बाधा न डालें, जल्दी मुझे छोड़ें, मुझे जाना है, देर हो जाएगी। मैंने कहा, बात क्या है? उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना, मेटिनी-शो में जा रहा हूं। और वयस्कों के लिए है, तो मैंने यह मूंछ लगा ली है।
अगर वयस्कों के लिए न लिखा होता, तो शायद इस बच्चे को रस भी पैदा न होता।
छोटे-छोटे बच्चों को तुम कहते हो, सिगरेट मत पीना!
अभी उन्होंने पी ही नहीं है। अब तुम उन पर बड़ी कृपा करके उनको संदेश
दे रहे हो कि पीओ! तुम रास्ता बता रहे हो। तुम यह कह रहे हो कि सिगरेट पीने में जरूर कोई मजा होगा। तुम बच्चे से कह रहे हो, सिगरेट मत पीना। अब यह पीएगा।
परमात्मा ने जो पहली भूल की थी--परमात्मा को लोग पिता कहते हैं, ठीक ही कहते हैं, क्योंकि ऐसी भूलें पिता ही कर सकते हैं--जो भूल परमात्मा ने की थी, अदम को चखना ही पड़ा फल। वही भूल सारे पिता करते हैं। ऐसा मत करना, वैसा मत करना। बच्चों को अभी पता ही नहीं कि झूठ बोलना क्या होता है। उनको समझाते हैंः झूठ मत बोलना। जितना निषेध बढ़ता जाता है उतना आकर्षण बढ़ता जाता है। जिस चीज में भी निषेध होता है, लगता है जरूर कुछ होगा! नहीं तो निषेध क्यों किया जाता? जरूर कुछ बात होगी! जब इतनी गुहार मचाई जा रही है कि प्रेम पाप है, तो कुछ लोग हैं जिनको प्रेम में पाप के कारण ही रस पैदा हुआ। पाप न कहा जाता तो शायद उन्हें इतना रस पैदा भी न होता। जो चीज भी पाप करार दे दी जाएगी, उसमें रस पैदा हो जाता है।
जैसे समझो! अगर शराब पीना पाप है, तो ज्यादा लोग शराब पीने लगते हैं। जहां-जहां, जिस-जिस देश में शराबबंदी होती है, वहां-वहां लोग ज्यादा शराब

पीने लगते हैं। घर-घर शराब बनने लगती है--ग्रामोद्योग खुल जाते हैं। अब मोरारजी देसाई इस देश में भी ग्रामोद्योग खुलवाने की कोशिश कर रहे हैं। घर-घर में शराब बनेगी, घर-घर में भट्टी होगी। और सैकड़ों लोग मरेंगे गलत तरह की शराब पीकर। शराब नहीं मिलेगी तो लोग स्प्रिट पीएंगे। स्प्रिट नहीं मिलेगी तो न मालूम क्या करेंगे--पेट्रोल पीएंगे या क्या पीएंगे, मगर कुछ भी पीएंगे। और तुम रोज अखबारों में पढ़ते हो कि सैकड़ों लोग मर जाते हैं। फिर भी एक अंधापन है, शराबबंदी होनी ही चाहिए।
मोरारजी देसाई को न पीना हो तो कौन कह रहा है कि पीओ? लेकिन बंद करके तुम उन लोगों को पिलवा दोगे जिन्होंने शायद कभी न पी होती। और जिनको पीना है वे तो पीएंगे। कोई कानून इतनी आसानी से नहीं रोक सकता किसी को। सदियों- सदियों में कितने उपदेशक हुए जो कहते रहे, शराब न पीओ--और शराब जारी रही। जिन-जिन देशों में नियम बनाए गए, शराब न पीने के लिए कानून लगाए गए, उन-उन देशों में शराब की खपत बढ़ गई। और चूंकि लोग घर-घर शराब बनाने लगे इसलिए उस शराब का कोई भरोसा भी नहीं कि वह ठीक है, कि जहर है, कि क्या है। और शराब नहीं मिलेगी तो कुछ लोग दूसरे परिपूरक खोजते हैं। कमला टॉनिक! न मालूम क्या-क्या रास्ते निकालेंगे। निकालने ही पड़ेंगे। और जब शराब बंद की जाती है तो एक जुगुप्सा पैदा होती है, एक रुग्ण रस पैदा होता है।
गुनाह! जिंदगी बेरंग है बगैर गुनाह,
तो अगर तुम कहते हो प्रेम पाप है, तो कुछ लोग मिल जाएंगे जो कहेंगेः गुनाह, पाप?
गुनाह! जिंदगी बेरंग है बगैर गुनाह,
अगर पाप है प्रेम, तो बिल्कुल ठीक है, क्योंकि बिना पाप के जिंदगी में मजा ही क्या? पाप ही न हो तो जिंदगी में रस ही क्या? जिस चीज को भी रसपूर्ण बनाना हो, उसको पाप बना दो, पहले उसको पाप की घोषणा दे दो।
समझ लो कि कोकाकोला पाप। तब तुम देखना कि लोग किस मजे से पीते हैं! फिर इतने जल्दी नहीं गटकेंगे। चुस्की ले-ले कर पीएंगे! पाप जैसी चीज कोई एकदम गटकता है? छिप-छिप कर पीएंगे। पीने में ज्यादा मजा आएगा। पाप की घोषणा कर दो और तुमने मजा बढ़ा दिया। जिस चीज की भी पाप की घोषणा कर दो, उसमें मजा बढ़ जाता है।
अमरीका में कुछ दो-तीन वर्ष पहले अमरीकी सरकार ने तय किया कि हर सिगरेट के पैकेट पर लिखा होगा कि यह स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। सिगरेट बनाने वाले उद्योगपति बहुत चिंतित थे कि फिर सिगरेटें खरीदेगा कौन? जब लाल अक्षरों में साफ वार्निंग, चेतावनी दी हुई होगीः सावधान! सिगरेट पीना खतरनाक है, स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, तो कौन सिगरेट खरीदेगा? उन्होंने बड़ी जद्दोजहद की, लेकिन सरकार ने नियम बना ही दिया। और तब एक बहुत हैरानी का अनुभव हुआ। दो-तीन महीने तक तो सिगरेट की बिक्री में थोड़ी सी कमी हुई। और उसके बाद एकदम बढ़ती हुई। उससे भी ज्यादा बढ़ कर सिगरेट बिकने लगी जितनी नियम बनने के पहले बिकती थी।
मनोवैज्ञानिक चकित हुए कि बात क्या हुई? खोज-बीन की गई तो पता यह चला
कि इससे और लोगों को रस आ गया है। लोग कहते हैं, कौन फिक्र करता है! कोई हम कायर हैं? अरे, न जीए अस्सी साल, अठहत्तर साल सही। दो साल जीकर भी और क्या कर लेते? और न शराब पीओ, और न सिगरेट पीओ, और न प्रेम करो, तो जीकर भी क्या करोगे?
मैंने सुना, एक आदमी मरा। बड़ा साधु आदमी था। जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा तो दरियाफ्त की जाती है, जो नियम से की गई दरियाफ्त, कि तुमने कोई भाई पाप तो नहीं किए?
उसने कहा, पाप! मैं सदा दूर रहा।
द्वारपाल ने पूछा, कभी प्रेम में तो पड़े होओगे?
उसने कहा, कभी नहीं।
सिगरेट पी?
नहीं।
शराब पी?
नहीं।

जुआ खेला?
नहीं।
रेसकोर्स?
नहीं।
द्वारपाल भी थोड़ा चौंका और उसने कहा, तो फिर इतनी देर वहां करते क्या रहे? इतनी देर जीए कैसे?
लोग अगर किसी चीज को पाप समझ लें, तो उस पाप के समझने में ही रस बढ़ जाता है। कुछ लोग जीवन में विषाक्त हो जाएंगे और कुछ लोग पाप के कारण बहुत आतुर हो जाएंगे।
गुनाह! जिंदगी बेरंग है बगैर गुनाह,
हयात सहने-चमन मासियत है फस्ले-बहार।
अगर जिंदगी कोई बगीचा है, तो पाप वसंत है--ऐसा कुछ लोग समझेंगे।
शराबी ओंठों की मख्मूर अंखड़ियों की कसम,
रिवाजो-रस्मे-जहां गर्के-बादा-ए-गुलनार।
तेरा शबाब...
तेरी जवानी!
... तेरा हुस्न, तेरी रानाई,
तेरा सौंदर्य!
तेरा शबाब, तेरा हुस्न, तेरी रानाई,
खिलें ये फूल तो सारा चमन महक उट्ठे।
फिर कुछ लोग इस तरह के ख्वाबों में खो जाते हैं। तेरा शबाब, तेरा हुस्न, तेरी रानाई,
खिलें ये फूल तो सारा चमन महक उट्ठे।
तरब की आग को भड़का दे और भड़का दे,
यह जो भोग की आग है--
तरब की आग को भड़का दे और भड़का दे,
कि जिंदगी की फिजा-ए-खुनक दहक उट्ठे।
कि जिंदगी की सर्द, ठंडी हवाएं थोड़ी उत्तप्त हो जाएं। थोड़ी गरमाहट आ जाए। पाप कुछ लोगों की जिंदगी को विषाक्त कर देता है, कुछ लोगों की जिंदगी में गरमाहट दे देता है।
जिन्होंने प्रेम को पाप कहा है, उन्होंने मनुष्य-जाति का बड़ा भयंकर अपमान ही नहीं किया, उसकी हानि भी की है। दो तरह से हानि की है।
मैं प्रेम को पुण्य कहता हूं। लेकिन तुम्हारे प्रेम को नहीं। तुम्हें
तो प्रेम का अभी पता ही नहीं। तुमने तो प्रेम का जो कचरा है, उसको सोना समझ रखा है। जरा इस कचरे में टटोलो। इसी कचरे में कहीं हीरा दबा है।
प्रेम का अर्थ क्या होता है? प्रेम का अर्थ होता हैः दान। प्रेम का अर्थ होता हैः जीवन का बांटना। प्रेम का अर्थ होता हैः खुशियां बिखेरना। प्रेम का अर्थ होता हैः लोगों के जीवन में थोड़े से फूल खिल जाएं, इसके लिए सतत चेष्टारत रहना। प्रेम का अर्थ होता हैः बुझे दीयों को जलाना।
प्रेम धर्म है।

तीसरा प्रश्नः आपका जीवन-दर्शन इतना सरल, सहज और सत्य है, फिर भी भीड़ आपको गालियां क्यों दिए जाती है?

धीरेंद्र! भीड़ भीड़ है, इसलिए। भीड़ तो भेड़ों की होती है, सिंहों की नहीं होती। भीड़ तो अंधों की होती है, आंख वालों की नहीं होती। आंख वाले तो अकेले चलने में समर्थ होते हैं। भीड़ एक-दूसरे को पकड़ कर चलती है। भीड़ कायरों की होती है, वीरों की नहीं होती।
सिंहों के नहीं लेहड़े। सिंहों की कोई भीड़ नहीं होती।
क्यों? भेड़ें क्यों भीड़ में चलती हैं? क्योंकि भीड़ में एक सुरक्षा है। इतनी हैं, इसलिए कोई खतरा कम रहेगा। इतना संग-साथ है, इसलिए खतरा नहीं होगा।

भीड़ तो अंधी होती है। भीड़ की चाल को मैं भेड़-चाल कहता हूं। भीड़ की बातों का कोई मूल्य नहीं है। अगर भीड़ समझ ही सकती होती तो भीड़ न होती, व्यक्तित्व का जन्म हो जाता। जिस आदमी के भीतर भी थोड़ी प्रज्ञा पैदा होती है वह व्यक्ति बन जाता है, भीड़ का हिस्सा नहीं रह जाता। भीड़ में भी हो तो भी अकेला होता है। बाजार में भी हो तो भी अकेला होता है। उसके पास एक निजता होती है। हिंदू नहीं होता वह। क्योंकि हिंदू तो एक भीड़ का नाम है। मुसलमान नहीं होता वह। क्योंकि मुसलमान तो दूसरी भीड़ का नाम है। ऐसी बहुत भीड़ें हैं जमीन पर। जिसके भीतर थोड़ी सी भी ज्ञान की ज्योति है, जिसके भीतर थोड़ी भी बौद्धिक क्षमता है, निखार है, जो सोच सकता, विचार सकता, जो देख सकता, जिसके पास थोड़ी दृष्टि है, वह किसी भीड़ का हिस्सा नहीं होता। वह अपने पैर खड़ा होता है। उसके मित्र होते हैं, लेकिन भीड़ नहीं होती। उसके संगी-साथी होते हैं, लेकिन भीड़ नहीं होती। उसके साथ समान अनुभव और समान विचार रखने वालों के नाते होते हैं, लेकिन भीड़ नहीं होती। वह चलता तो अपने ही निज बोध से है। वह अपनी ही रोशनी में अपने पैर बढ़ाता है। उसको सुरक्षा की चिंता नहीं होती।
तुम पूछते हो कि आपका जीवन-दर्शन इतना सरल, सहज और सत्य है, फिर भी भीड़ आपको गालियां क्यों दिए जाती है?
इसीलिए कि इतना सहज, इतना सरल और इतना सत्य जीवन-दर्शन भीड़ को डराता है, घबड़ाता है। भीड़ चाहती है कृत्रिम जीवन-दर्शन। क्योंकि जितना कृत्रिम जीवन-दर्शन हो, उतनी ही निजता से छुटकारा रहता है। और जितना सहज, स्वाभाविक जीवन-दर्शन हो, उतनी ही निजता प्रगाढ़ होने लगती है, प्रकट होने लगती है। जितने तुम झूठे हो उतने ही तुम आसानी से भीड़ के हिस्से हो सकते हो। जितने तुम सच्चे हो उतना ही भीड़ तुम्हें बरदाश्त नहीं करेगी।
नहीं तो सुकरात को जहर पिलाती भीड़? सच्चा आदमी। सीधा-साफ। जैसा है वैसा कहेगा। दांव-पेंच नहीं। लीपा-पोती नहीं। दो और दो चार होते हैं तो दो और दो चार ही कहेगा, चाहे परिणाम कुछ भी हो। और जो भीड़ सदा से मानती रही है कि दो और दो पांच होते हैं, वह कैसे बरदाश्त करे? अगर भीड़ सुकरात से राजी हो तो उसका अर्थ हुआ कि अब तक के सारे लोग गलत थे, भीड़ गलत थी, हजारों- हजारों साल से चली आने वाली परंपरा गलत थी। भीड़ यह बरदाश्त नहीं कर सकती। इससे बेहतर यह एक आदमी गलत हो। और इस गलत आदमी को जिंदा रखना ठीक नहीं है। क्योंकि सहज और सत्य की एक खूबी है कि उसकी मौजूदगी झूठ को मिटाने लगती है। झूठ लोगों को बांधे हुए है। हजार तरह के झूठों में लोग जी रहे हैं। बहुत-बहुत दिनों के संबंध होने के कारण झूठ प्यारे भी हो गए हैं। और चूंकि सभी एक जैसे हैं, इसलिए कोई अड़चन पैदा नहीं होती।
एक बार एक इत्र बेचने वाला किसी गांव में इत्र बेचने आया। दो ग्रामीण उसे खेत में मिले। इत्र वाले ने उन्हें एक-एक फाहा देकर अपने इत्र की तारीफ की। एक ग्रामीण ने तपाक से फाहा लेकर अपने मुंह में रख लिया। दूसरे ग्रामीण ने उसे पागल बतलाते हुए कहा, तू पागल है, यार। इत्र की कदर भी नहीं जानता? यहीं खा गया? मैं तो घर जाकर रोटी के साथ खाऊंगा।
इत्र के लिए थोड़ी परख तो चाहिए। और फिर जिन्होंने बदबू को ही जीवन समझ लिया हो, वे सुगंध को नहीं परख पाते।
खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कहानी है कि एक मछली बेचने वाली औरत गांव
से शहर मछली बेचने आई। मछलियां बेच कर जब लौटती थी तो अचानक बाजार में उसे बचपन की एक सहेली मिल गई। वह सहेली अब मालिन हो गई थी। उस मालिन ने कहा, आज रात मेरे घर रुको! कल सुबह होते ही चले जाना। कितने वर्षों बाद मिले, कितनी-कितनी बातें करने को हैं!
मछली बेचने वाली औरत मालिन के घर रुकी। मालिन का घर बगिया से घिरा हुआ। फिर पुरानी सहेली की सेवा मालिन ने खूब दिल भर कर की। और जब सोने का समय आया और मालिन सोई, तो इसके पहले कि वह सोती, बगिया में गई, चांद निकला था, बेले के फूल खिले थे, उसने बेलों की झोली भर ली और बेलों का ढेर अपनी सहेली उस मछली बेचने वाली औरत के पास आकर लगा दिया, कि रात भर बेलों की सुगंध! लेकिन थोड़ी देर बाद मालिन परेशान हुई, क्योंकि मछली बेचने वाली औरत सो ही नहीं रही, करवट बदलती है बार-बार। पूछा कि क्या नींद नहीं आ रही है?

उसने कहा, क्षमा करो, ये फूल यहां से हटा दो। और मेरी टोकरी, जिसमें मैं मछलियां लाई थी, उस पर जरा पानी छिड़क कर मेरे पास रख दो।
मालिन ने कहा, तू पागल हो गई है?
उसने कहा, मैं पागल नहीं हो गई। मैं तो एक ही सुगंध जानती हूंः मछलियों की। और बाकी सब दुर्गंध है।
भीड़ मछलियों की गंध को जानती है। उससे परिचित है। शास्त्रों के पिटे- पिटाए शब्द दोहराए जाएं तो भीड़ उनसे राजी होती है, क्योंकि बाप-दादों से वही सुने हैं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी वही सुने हैं। सुनते-सुनते उनके कान भी पक गए हैं। वे ठीक लगते हैं।
मैं उनसे वह कह रहा हूं जो मेरी प्रतीति है, मेरा अनुभव है। और मजा यह
है कि मैं उनसे वह कह रहा हूं जो कि शास्त्रों की अंतर्निहित आत्मा है। मगर शास्त्रों के शब्द मैं उपयोग नहीं कर रहा हूं। शब्द तो पुराने पड़ गए। शब्द तो बदल दिए जाने चाहिए। अब तो हमें नये शब्द खोजने होंगे। हर सदी को अपने शब्द खोजने होते हैं। हर सदी को अपने धर्म के लिए पुनः-पुनः अवतार देना होता है। हर सदी को अपनी अभिव्यक्ति खोजनी होती है।
तो मैं वही कह रहा हूं जो बुद्ध ने कहा, कृष्ण ने कहा, मोहम्मद ने कहा, जीसस ने कहा; लेकिन अपने ढंग से कह रहा हूं। मैं बीसवीं सदी का आदमी हूं। मैं चाहूं भी तो कृष्ण की भाषा नहीं बोल सकता। कृष्ण की भाषा अब किसी अर्थ की भी नहीं है। सार्थक थी उस दिन जिस दिन अर्जुन से कृष्ण बोले थे। आज न तो अर्जुन है, न कुरुक्षेत्र है, न महाभारत हो रहा है। आज कृष्ण की गीता पर अगर कुछ कहना भी हो तो बीसवीं सदी की भाषा में कहना होगा। और तुम्हारी आदत शब्दों को पकड़ने की है, आत्मा को पहचानने की नहीं।
तो भीड़ मेरे नये शब्दों से परेशान है, मेरी नई दृष्टि से परेशान है।
जो समझ सकते हैं, वे तो तत्क्षण पहचान लेते हैं कि मैं वही कह रहा हूं जो सदा कहा गया है। भाषा भिन्न है, भाव भिन्न नहीं है। अभिव्यंजना भिन्न है। शायद मेरा वाद्य भिन्न है, मगर जो गीत मैं गा रहा हूं वह शाश्वत का गीत है, सनातन गीत है। उसके अतिरिक्त कोई गीत ही नहीं है। मैं तो हूं भी नहीं, परमात्मा जो गा रहा है उसे ही बिना बाधा डाले तुम तक पहुंच जाने दे रहा हूं।
मगर भीड़ की अपनी आदतें हैं। मैंने सुना हैः

जेबकतरों के अखिल भारतीय संगठन ने
करवाया अभूतपूर्व कवि-सम्मेलन
जब बड़ी देर तक बजी नहीं ताली
हर कविता जाने लगी खाली-खाली
तब हमने सम्मेलन के संचालक से पूछा
कि बात क्या है?
हमारे हर कविगण
अच्छी कविता दांव पर लगा रहे हैं किंतु श्रोता ताली नहीं बजा रहे हैं! वे बोले, "श्रीमान,
बात तो आपको बुरी लगेगी
किंतु साफ बात यह है कि
यहां ताली नहीं बजेगी
क्योंकि हमारे हर श्रोतागण के हाथ
बगल वाले की जेब टटोल रहे हैं
हम अब अपने सम्मेलन का
रहस्य खोल रहे हैं।"
अब जेबकतरों ने अगर कवि-सम्मेलन बुलाया हो तो ताली बजे कैसे? हाथ खाली नहीं हैं, सब एक-दूसरे की जेब में पड़े हुए हैं। ताली बजाए तो कौन बजाए!
भीड़ वही समझ सकती है जो भीड़ के भेड़पन को सहारा देता हो। और मैं तो निजता की घोषणा कर रहा हूं। मैं तो कह रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने निज जीवन में जीना चाहिए। किसी का अनुकरण नहीं, किसी का अनुसरण नहीं।

सीखो सबसे, समझो सबसे, मगर जीना सदा अपनी रोशनी में, अपने अनुभव में! अपना अपमान मत करना। अपनी आत्मा को मत बेचना। सौदे मत करना आत्मा के, समझौते मत करना!
तो भीड़ की भी कठिनाई है। और जब भीड़ को कुछ समझ में नहीं आता, तो भीड़ कुछ
तो करेगी! अगर तालियां नहीं बजा सकती तो गालियां तो दे ही सकती है। हाथ उलझे होंगे, जबानें तो मुक्त हैं। भीड़ उन्हीं बातों के लिए मुझे गालियां दे रही है, जिन बातों के लिए उसे मुझे धन्यवाद देना चाहिए। मगर, उनकी तकलीफ भी मेरी समझ में आती है। उनकी मान्यताओं के विपरीत हैं वे बातें। और उनकी मान्यताएं टूटें, तो ही उनके जीवन में थोड़ा प्रकाश आए। मैं भी मजबूर हूं। मैं उनकी मान्यता तोड़ने में लगा ही रहूंगा। वे गालियां देते रहें, मैं उनकी जंजीरें काटता रहूंगा। और निश्चित ही, जिसके पैरों में जंजीरें बहुत दिन तक रही हों, तुम उसकी अचानक जंजीर काटने लगो, वह नाराज होगा!
मैंने सुना है, एक पहाड़ी सराय में एक कवि मेहमान हुआ। उस सराय में द्वार पर ही लटका एक तोता था। उस तोते की एक ही रटंत थीः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! उस सराय का मालिक स्वतंत्रता के आंदोलन में सिपाही रह चुका था और उसने अपने तोते को भी स्वतंत्रता का पाठ सिखा दिया था। उस सराय का मालिक स्वतंत्रता के आंदोलन में जेलघरों में रहा था, कारागृहों में रहा था। कारागृह में उसके भीतर एक ही आवाज उठती थी प्राणों मेंः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! उसने अपने तोते को भी यह सिखा दिया था।
यह बड़े मजे की बात है। हालांकि तोते को बंद किया था पिंजड़े में, मगर यह सिखा दिया था। तो जैसे कोई तोता राम-राम, राम-राम जपता, वह तोता स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता जपता था। न तो मालिक को ख्याल था कि मैं यह क्या कर रहा हूं? कि अगर स्वतंत्रता से ही मुझे प्रेम है, तो खोलो द्वार, तोते को उड़ जाने दो! पहाड़ उसके हैं, वन-प्रांतर उसके हैं, झीलें उसकी हैं, वृक्ष उसके हैं, चांद-तारे उसके हैं, आकाश उसका है--छोड़ो, मुक्त करो! मगर नहीं, सिर्फ स्वतंत्रता का पाठ!
ऐसे ही लोग मोक्ष का पाठ पढ़ रहे हैं। मरना कोई नहीं चाहता, मुक्त कोई नहीं होना चाहता। अगर किसी से कहो कि सच में जाना है मोक्ष? भेज दूं? तो एकदम नाराज हो जाएगा--कि आप समझे क्या हैं? आप मोक्ष भेजना चाहते हैं मुझे? अभी नहीं। जाऊंगा कभी। यह तो अंत की तैयारी कर रहा हूं।
लोग राम-राम, राम-राम जप रहे हैं, लेकिन राम से किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। ऐसा ही तोता था। लेकिन कवि तो कवि। कवि ने कहा कि बेचारा तोता, स्वतंत्रता के लिए कितना आग्रह कर रहा है, कोई सुन नहीं रहा! दिन में तो उसने कहा कि ठीक नहीं है, क्योंकि सराय का मालिक शायद नाराज हो, उसका तोता छोड़ दो तो। रात! तोता फिर भी बोले जा रहा था। चांद निकला था पूरा और तोता बार-बार रात के सन्नाटे में, उस पहाड़ के सन्नाटे में उसकी गूंज उठती थीः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! कवि तो कवि। वह उठा और उसने जाकर तोते का दरवाजा खोला और कहा, प्यारे, उड़ जाओ! मगर तोता नहीं उड़ा। बल्कि तोते ने क्रोध से उस कवि को देखाः यह कौन है जो उसका दरवाजा खोल रहा है?
कवि तो कवि, तोते को उड़ते नहीं देखा तो हाथ डाल कर तोते को बाहर निकालना चाहा। तोते ने चोंचें मारीं! मगर कवि तो कवि, तोता चोंचें मारता रहा, पैरों से जोर से उसने सींकचे पकड़ लिए, मगर कवि तो कवि, उसने खींच कर तोते को उड़ा ही दिया। उसके हाथ लहूलुहान हो गए, लेकिन फिर भी वह प्रसन्न था कि एक आत्मा मुक्त तो हुई! बड़ी निश्चिंतता से सोया।
सुबह जब आंख खुली तो हैरान हुआ। तोता पिंजड़े में बैठा था--दरवाजा अभी
भी पिंजड़े का खुला था--और चिल्ला रहा थाः स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!
जो कारागृहों में रहने के आदी हो गए हैं, उन्हें मुक्त करना आसान नहीं। जो अंधविश्वासों में जीने के आदी हो गए हैं, उनको उनके बाहर लाना आसान नहीं। जिन्होंने कुछ पक्षपात निर्मित कर लिए हैं, पक्षपात ही जिनके प्राण बन गए हैं, उनसे उनके पक्षपात छीनना आसान नहीं। मेरे हाथ लहूलुहान

होंगे। मगर कवि तो कवि! गालियां दो, पत्थर मारो, मुकदमे चलाओ, सारा सरकारी यंत्र पीछे लगाओ--मगर कवि तो कवि!

चमन वालों में इदराके-नमू बढ़ता ही जाता है,
मुबारिक हो रिवाजे-रंगो-बू बढ़ता ही जाता है।
सलासिल भी हैं, जिंदां भी हैं दीवानों की राहों में,
मगर ऐ दोस्त शोरे-हाए-हू बढ़ता ही जाता है।
ये मंजिल की कशिश है या शऊरे-जादापैमाई?
बहरमुश्किल मजाके-जुस्तजू बढ़ता ही जाता है।
हुजूरे-मोहतसिब रिंदों की बेबाकी कोई देखे,
जवाबन हलका-ए-जामो-सुबू बढ़ता ही जाता है।
खुमारे-हसरते-दोशीना कैसा आज तो "ताबां"
बहरजुरअ सुरूरे-आरजू बढ़ता ही जाता है।
मेरी बादापरस्ती मूर्दे-इलजाम है साकी,
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी।

चमन वालों में इदराके-नमू बढ़ता ही जाता है,
बगीचे में खबर पहुंचने लगी, ज्ञान की खबर पहुंचने लगी।
मुबारिक हो रिवाजे-रंगो-बू बढ़ता ही जाता है।
कुछ रंग भी आने लगा, कुछ गंध भी आने लगी।
मुबारिक हो रिवाजे-रंगो-बू बढ़ता ही जाता है।
सलासिल भी हैं, जिंदां भी हैं दीवानों की राहों में
एक बात ख्याल रखना, जो दीवाने हैं--और मैं दीवाना हूं और मेरे साथ जो हैं वे दीवाने हैं--जो दीवाने हैं, उनके रास्ते में जंजीरें भी आएंगी, कारागृह भी आएंगे।
सलासिल भी हैं, जिंदां भी हैं दीवानों की राहों में
मगर ऐ दोस्त शोरे-हाए-हू बढ़ता ही जाता है।
मगर बड़ी खुशी की बात है, न जंजीरों की फिक्र है, न कारागृह की फिक्र है,
जो गीत हमें गाना है, हम गाए जा रहे; जो आवाज हमें लगानी है, हम लगाए जा रहे; जो शोर हमें मचाना है, हम मचाए जा रहे।
ये मंजिल की कशिश है या शऊरे-जादापैमाई?
यह परमात्मा की मंजिल का आकर्षण है या अज्ञात राहों में जाने का आनंद,
जो भी हो--
ये मंजिल की कशिश है या शऊरे-जादापैमाई?
बहरमुश्किल मजाके-जुस्तजू बढ़ता ही जाता है।
कठिनाइयां बढ़ रही हैं, लेकिन हर कठिनाई के साथ-साथ तलाश का आनंद, खोज
का आनंद, जिज्ञासा का आनंद भी बढ़ रहा है। जो मेरे साथ खड़े हैं उन्हें गालियां पड़ेंगी, जो मेरे साथ खड़े हैं उन पर पत्थर पड़ेंगे, जो मेरे साथ खड़े हैं उनके रास्ते में--
सलासिल भी हैं, जिंदां भी हैं दीवानों की राहों में
मगर ऐ दोस्त शोरे-हाए-हू बढ़ता ही जाता है।
बढ़ती ही जाती है दीवानों की यह महफिल। इस मधुशाला में पीने वालों की संख्या बढ़ती ही जाती है। न गालियां रोक पाएंगी, न जंजीरें रोक पाएंगी, न कारागृह रोक पाएंगे।
ये मंजिल की कशिश है या शऊरे-जादापैमाई?
बहरमुश्किल मजाके-जुस्तजू बढ़ता ही जाता है।
और आती हैं कठिनाइयां। रोज-रोज आती हैं, रोज-रोज बढ़ती जाती हैं। लेकिन जितनी ही कठिनाइयां बढ़ती हैं, उतना ही परमात्मा की खोज का आनंद, यह जुस्तजू, यह तलाश भी उतनी ही गहरी होती जाती है।
हुजूरे-मोहतसिब रिंदों की बेबाकी कोई देखे,
जरा पियक्कड़ों की हिम्मत भी तो देखो!
हुजूरे-मोहतसिब रिंदों की बेबाकी कोई देखे,
जवाबन हलका-ए-जामो-सुबू बढ़ता ही जाता है।

जितनी गालियां बढ़ती हैं, जितनी जंजीरें बढ़ती हैं, जितने कारागृह खड़े होते हैं, उतनी ही यहां सुराही और ढलती है, प्याले और चलते हैं। यहां पीने वाले और पीते हैं, और पीए जाते हैं।
जवाबन हलका-ए-जामो-सुबू बढ़ता ही जाता है।
पियक्कड़ों की यह महफिल रोज-रोज बड़ी होती जाती है। यह हमारा जवाब है गालियों के लिए। और हमारे पास कोई जवाब नहीं है। गालियां बढ़ेंगी, हमारा जवाब एक ही है कि हम पियक्कड़ों को बढ़ाएंगे, हम दीवानों को बढ़ाएंगे।
खुमारे-हसरते-दोशीना कैसा आज तो "ताबां"
बहरजुरअ सुरूरे-आरजू बढ़ता ही जाता है।
कल की रात की खुमार की तो क्या बात कहें!
बहरजुरअ सुरूरे-आरजू बढ़ता ही जाता है।
हर बूंद के साथ मस्ती गहन हो रही है, खुमार बढ़ रहा है और आकांक्षा का नशा गहन हो रहा है।
मेरी बादापरस्ती मूर्दे-इलजाम है साकी,
मेरी शराब की पूजा--मैं सत्य को तो शराब कहता हूं; मैं तो परमात्मा को शराब कहता हूं; क्योंकि जो इनको पी लेता है, फिर कभी होश में नहीं आता। मेरी बादापरस्ती...
मेरी शराब की पूजा!
... मूर्दे-इलजाम है साकी,
आकांक्षा का नशा है, अभीप्सा का नशा है।
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी।
लेकिन तथाकथित बुद्धि में जो उलझे हैं, विचार में जो उलझे हैं, उनके बीच तो सदा से ही प्रेमियों का, पागलों का ऐसा ही सम्मान हुआ है गालियों से, ऐसा ही स्वागत हुआ है गालियों से।
मेरी बादापरस्ती मूर्दे-इलजाम है साकी,
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी।
यह तो पुरानी बात है, कि यह पागलपन भक्तों का...
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी।
यह तो सदा से बदनाम रहा है। मीरा बदनाम थी। ऐसी बदनाम थी कि घर के लोगों ने ही जहर का प्याला भेजा कि पी ले और मर जाए तो घर की तो बदनामी न हो, कम से कम वंश की बदनामी तो बचे। और मीरा है कि कहती हैः सब लोक-लाज खोई। नाचने लगी गांव-गांव।
जीसस बदनाम थे। बदनाम न होते तो सूली लगती? सूली तुम उन्हें देते हो जिन्हें तुम सम्मान देते हो? उनको तो तुम कहते हो--पद्मभूषण, पद्मविभूषण, भारतरत्न।
ब्लिट्ज का सुझाव मैंने कल देखा, वह मुझे पसंद आया। मोरारजी देसाई ने
ये पदवियां तो अलग कर दीं, तो ब्लिट्ज ने सुझाव दिया है कि अब नई पदवियां शुरू करो--मूत्ररत्न; मूत्रभूषण; मूत्रविभूषण; महामूत्ररत्न। मूत्ररत्न वह जो चुपचाप पीएं और किसी को कहें न। मूत्रभूषण वह जो खुलेआम पीएं। मूत्रविभूषण वह जो न खुद पीएं बल्कि दूसरों को भी पिलवाएं। और महामूत्रभूषण वह जो अपनी ही न पीएं, दूसरों की भी पीएं।
जीसस को कोई सम्मान तो दिया नहीं किसी ने, सूली दी। लेकिन जीसस जैसे व्यक्ति को सूली भी सिंहासन हो जाती है। तुम जीसस जैसे व्यक्ति को सूली दे ही नहीं सकते। तुम सूली भी दो तो सिंहासन हो जाता है। यही तो जीसस के साथ जुड़ी हुई कहानी का अर्थ है कि जीसस को सूली दी गई और तीन दिन बाद वे पुनरुज्जीवित हो उठे।
कुछ तो ऐसे लोग हैं इस दुनिया में जो मर कर जी जाते हैं और करोड़ों- करोड़ों ऐसे लोग हैं इस दुनिया में जो जी रहे हैं और मरे हुए हैं; जिन्हें जीवन का कुछ पता नहीं है। जीवन का तो पता ही उन्हें चलता है, जो प्रेम का घूंट पीते हैं, जो प्रार्थना का घूंट पीते हैं, जो प्रभु के पागलपन में डूबते हैं।
मेरी बादापरस्ती मूर्दे-इलजाम है साकी,
खिरद वालों की महफिल में जुनूं बदनाम है साकी।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
बारहवां प्रवचन

जगत की सबसे बड़ी चुनौतीः ईश्वर की खोज

पहला प्रश्नः संन्यास का जन्म इस देश में हुआ, उसे गौरीशंकर जैसी गरिमा मिली। पर आज उसका सम्मान बस ऊपरी रह गया है। भीतर से व्यक्ति और समाज, सभी उससे भयभीत हैं। संन्यास और संन्यासी की अर्थवत्ता क्यों कर खो गई, कृपा करके समझाएं।

नरेन्द्र! संन्यास निश्चित ही जीवन की सर्वाधिक ऊंची अनुभूति है। वह गौरीशंकर का शिखर है।
लेकिन शिखरों के साथ एक खतरा है। उनसे गिरे तो बचना मुश्किल हो जाता है। उनसे गिरे तो बहुत गहरे खाई-खड्डों में गिरोगे। समतल जमीन पर कोई गिरे तो खतरा नहीं है। लेकिन गौरीशंकर से गिरेगा तो खतरा ही खतरा है। ऊंचाइयों पर जो उड़ते हैं, वे खतरा मोल लेते हैं। इसलिए भारत जैसा पतित हुआ वैसा दुनिया में कोई देश पतित नहीं हुआ। और कारण? क्योंकि भारत ने ऊंचाई पर उड़ने की चुनौती स्वीकार की! अदभुत ऊंचाइयां पाने का अभियान किया! संन्यास का अर्थ हैः इस जगत में पदार्थ की तरह नहीं, आत्मा की तरह जीना। संन्यास का अर्थ हैः दृश्य में ही उलझे न रह जाना, अदृश्य को खोज लेना। रूप पर ही पकड़ न रहे, अरूप के साथ प्राणों का संबंध जुड़ जाए। जो समय की धारा में क्षणभंगुर बबूले उठते हैं जीवन के, उतना ही जीवन नहीं है, इसकी उदघोषणा संन्यास है। जीवन शाश्वत है, जन्म और मृत्यु के बीच आबद्ध नहीं है; जन्म के भी पूर्व है, मृत्यु के भी पश्चात है; हजारों जन्म, हजारों मृत्युएं घटती हैं, लेकिन जीवन की धारा अनवरत, अविच्छिन्न बहती रहती है। उस अविच्छिन्न, शाश्वत, कालातीत को जान लेने का नाम संन्यास है। इससे ऊपर और कुछ हो नहीं सकता। इसके ऊपर होने का उपाय ही नहीं है। जहां न काल है, न क्षेत्र है; जहां न गुण हैं, न रूप है; जहां सारे द्वंद्व पीछे टूट गए और मनुष्य ने अद्वैत का स्वाद चखा, वहां संन्यास है। मगर इतनी ऊंचाइयों पर जो उड़ेगा, खतरा मोल लेता है।
इसलिए भारत ने अदभुत साहस किया। पंख फैलाए, चांद-तारों को छूने की चेष्टा की। और कुछ सौभाग्यशाली पक्षी चांद-तारों को छू भी लिए--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कबीर, कोई नानक, कोई फरीद। लेकिन जो नहीं छू पाए, जो अधूरे- अधूरे मन से गए, जो उड़े भी और पृथ्वी से बंधे भी रहे; जो उड़े भी और उड़े भी नहीं; जिनकी उड़ान केवल बौद्धिक रही, वास्तविक न हुई, अस्तित्वगत न हुई, वे बुरी तरह गिरे। उनकी हड्डियां चकनाचूर हो गईं।
इसलिए संन्यास का इतिहास एक अपूर्व चुनौती को स्वीकार करने का इतिहास
भी है और साथ ही साथ एक दुर्भाग्य का इतिहास भी है।
दुनिया में कोई देश इस तरह पतित नहीं हुआ--हो नहीं सकता, क्योंकि इतनी ऊंची आकांक्षा ही नहीं की। हमारे पास एक शब्द हैः योगभ्रष्ट। तुमने कभी इसके समतुल दूसरा शब्द सुनाः भोगभ्रष्ट? भोगभ्रष्ट जैसा कोई शब्द ही नहीं है। इसका क्या अर्थ हुआ कि भोगी भ्रष्ट नहीं होता? भोगी भ्रष्ट हो कैसे, समतल भूमि पर चलता है। योगी ही भ्रष्ट हो सकता है; क्योंकि योगी ही पहुंच सकता है। जो पहुंच सकता है, वही भटक सकता है। जो चलता ही नहीं, पहुंचेगा भी नहीं, भटकेगा भी नहीं। जो अपने घर के द्वार से ही कभी बाहर नहीं निकला, उसका मार्गच्युत हो जाना असंभव है।
इसलिए दुनिया में बहुत से लोग चुनौतियों को स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि चुनौतियों को स्वीकार न करने में एक सुविधा है--तुम कभी गिरोगे नहीं, तुम कभी भटकोगे नहीं, तुमसे कभी कोई भूल नहीं होगी। कायर हैं ऐसे लोग, नपुंसक हैं ऐसे लोग, जो इस डर से कि कहीं कोई भूल न हो जाए, कुछ करते ही नहीं। कुछ करोगे तो भूल की संभावना है। स्वाभाविक है। कुछ करोगे तो शुरू में तो भूलें होंगी ही। भूल कर-कर के ही तो कोई सीखता है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः खूब भूलें करो! बस, एक ही भूल दुबारा मत करना! क्योंकि जो दुबारा करता है, उसने सीखा नहीं। और गिरने से मत डरना!

गिरना और उठना। जो गिरता है, उठ सकता है। गिर-गिर कर उठने की क्षमता है तुम्हारे भीतर।। गिरने के डर से बैठे ही मत रह जाना, नहीं तो पंगु हो जाओगे, अपंग हो जाओगे। अगर कोई पक्षी उड़े ही न इस डर से कि कहीं आकाश में खो न जाए, तो बस फिर अपने घोंसले में ही बंद रह जाएगा।
भारत ने चुनौती स्वीकार की--इस जगत की सबसे बड़ी चुनौती--ईश्वर को खोजने की चुनौती। भारत की अंतरात्मा ईश्वर की खोज से ही निर्मित हुई है। भारत के प्राणों में एक ही पुकार है कि उस परम सत्ता को, उस परम सत्य को हम कैसे जान लें? लेकिन साथ ही आता है खतरा--बड़ी चुनौती के साथ बड़ा खतरा। कुछ तो उड़े और पहुंचे। लेकिन बहुतों ने क्या किया? वे उड़े ही नहीं। उन्होंने केवल उड़ने की बातें सीख लीं। उड़ने की बातों में ही मजा लेने लगे। उड़ने की बातें सस्ती हैं। प्रज्ञावान तो थोड़े से हुए, पंडित बहुत हो गए।
भारत का दुर्भाग्य भारत के पंडित हैं। पंडित यानी तोते। पंडित यानी
जो आकाश की बातें करते हैं। आकाश का जिन्हें कोई अनुभव नहीं है। आकाश का जिन्हें कोई स्वाद नहीं मिला। जिन्होंने कभी पंख ही नहीं फैलाए, जिन्होंने कभी छलांग ही नहीं ली, अज्ञात में जो कभी उतरे ही नहीं। हां, उनके पास नक्शे हैं। उन नक्शों में स्वर्ग और नरक का सब वर्णन है। मगर न उन्हें स्वर्ग का कुछ पता है, न नरक का कोई पता है। हां, उनके पास शब्द हैं, प्यारे शब्द हैं, कुशल शब्द हैं, सदियों-सदियों में निखारे गए शब्द हैं। अनेक-अनेक लोगों ने अपने खून से उन शब्दों को धोया है। उन शब्दों की व्याख्या है उनके पास। बारीक व्याख्या है। बाल की खाल निकाल सकें, ऐसी उनके पास तर्क-प्रक्रिया है। मगर, अपने-अपने घोंसलों में बंद। उड़ते नहीं। उनके शब्द उनको खुद ही प्रभावित नहीं करते। भारत में संन्यास का पतन हुआ पांडित्य के कारण।
तो पहला पतन का कारण हैः पांडित्य। जीवन अनुभव से निखरता है, सुघड़ता है। बातचीत में भटक जाता है। बातचीत में तुम तो कहीं जाते ही नहीं, जहां बैठे हो वहीं बैठे रहते हो; तुम तो जैसे हो वैसे ही रहते हो। तुम्हारी बातों से थोड़े ही तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाएगी!
संन्यास की महिमा केवल वे ही लोग थिर रख सकते हैं जो स्मरण रखें कि शब्दों में भटक नहीं जाना है, शून्य को शब्दों में अटक नहीं जाने देना है; शून्य को रखना है खाली, क्योंकि उस खाली में ही परमात्मा उतरता है। तुम्हारे हृदय की शून्यता मांगता है परमात्मा। क्योंकि वही शून्यता उसका सिंहासन है। और तुम्हारे हृदय में शास्त्र भरे पड़े हैं। राम को जगह नहीं है, रामायण इतनी भरी है। कृष्ण को स्थान नहीं है, तोतों की तरह गीता रटे जा रहे हो। ईश्वर आए तो आए कैसे? तुम्हारे भीतर कुरान का शोर मचा हुआ है, कि बाइबिल का शोर मचा हुआ है, कि वेदों का उच्चार हो रहा है।
ईश्वर तो आता है जब सब सन्नाटा होता है। ऐसा सन्नाटा कि एक जरा सी भी तरंग तुम्हारे भीतर शब्द की, स्वर की, ध्वनि की नहीं रह जाती। जिस दिन तुम्हारे भीतर शून्य का संगीत बजता है, उस दिन वह प्यारा आता है। आना ही पड़ता है उसे! उस संगीत को सुन कर जीवन की परम गहराइयां तुम्हारी तरफ दौड़ पड़ती हैं। उस परम संगीत में ऐसा आकर्षण है, ऐसा गुरुत्वाकर्षण है! जैसे संगीत को सुन कर सांप नाचने लगता है, बीनवादक बजाता है बीन और सांप मस्त हो जाता है, ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर शून्य का वादन होता है तो परमात्मा भी तुम्हारे चारों तरफ नाचने लगता है।
वैज्ञानिक तो पहले-पहले बहुत हैरान हुए सांपों को बीन का स्वर सुन कर नाचते देख कर। क्यों? क्योंकि वैज्ञानिक चकित थे, सांप के पास कान तो होते ही नहीं! यह जान कर तुम हैरान होओगे कि सांप के पास कान होते ही नहीं। इसलिए बीन को सांप सुनता कैसे है? तो बहुत से सिद्धांत खोजे गए कि शायद बीनवादक को हिलता देख कर सांप भी हिलने लगता है। शायद हिलता देख कर। बीनवादक बीन बजाता है, तुमने देखा होगा, तो बीन के साथ खुद भी डोलता है। तो वैज्ञानिकों ने सोचा कि शायद उसके डोलने को देख कर सांप डोलता है, क्योंकि सांप के पास कान तो हैं नहीं, बीन तो वह सुन नहीं सकता। लेकिन तब बीनवादकों को बिना डोले बीन बजाने को कहा गया, तब भी सांप नाचा। बीनवादकों को बिना बीन के सिर्फ डोलने को कहा गया, तब सांप नहीं नाचा।

बहुत खोज के बाद एक अनूठी बात पता चली कि सांप के पास कान तो नहीं हैं, लेकिन उसका रोआं-रोआं सुनता है, उसका कण-कण सुनता है, उसकी पूरी देह सुनती है। उसकी पूरी देह संगीत की स्वर-लहरियों से कंपित होती है। उसका कान उसकी पूरी देह पर फैला हुआ है, इसलिए हम कान को नहीं खोज पाते थे। उसकी पूरी देह ही कान है।
जिस दिन तुम्हारे भीतर शून्य का संगीत बजेगा, यह पूरा अस्तित्व कान
हो जाता है। वृक्ष सुनेंगे, चांद-तारे सुनेंगे, पहाड़-पर्वत सुनेंगे। यह सारा अस्तित्व तुम्हारे आस-पास डोलने लगेगा। रोआं-रोआं, कण-कण अस्तित्व का तुम्हारे पास नाचने लगेगा। जरा सोचो उस अदभुत क्षण को, जब सारा अस्तित्व तुम्हारे पास नाचे! तुम्हारे पास रास होने लगे! तुम्हारे ऊपर अमृत बरसे और परमात्मा तुम्हारे शून्य में विराजमान हो जाए! उस घड़ी का नाम संन्यास है।
संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ देना नहीं है; संन्यास का अर्थ परमात्मा को पा लेना है। इस मेरी बुनियादी व्याख्या के भेद को समझ लेना। जो लोग छोड़ने से चलते हैं, संकुचित हो जाते हैं। निषेध में जीना खतरनाक है, नकार में जीना घातक है, आत्मघातक है। "नहीं" में कोई भी नहीं जी सकता। जो नहीं, नहीं, नहीं, में जीएगा, वह धीरे-धीरे पाएगा उसका जीवन सिकुड़ता गया, सिकुड़ता गया--हर नहीं जीवन को सिकोड़ देती है। यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं; नेति-नेति, न यह, न वह। तुम सिकुड़ते जाओगे। यह त्याग की तो परिभाषा है, लेकिन संन्यास की नहीं। संन्यास को तो मैं कहता हूंः इति-इति। यह भी, यह भी। हां में जीओ। जीवन के स्वीकार में जीओ।
तो पहला तो खतरा हुआ पांडित्य से। पंडितों ने संन्यास की गरिमा को नष्ट कर दिया। संन्यास का कोरा, क्वांरा सूनापन थोथे शब्दों के जाल और सिद्धांतों और शास्त्रों से भर गया।
हर दावा-ए-इर्तिका को माना मैंने
हर गोशा-ए-कायनात को छाना मैंने
सब कुछ जान चुका तो ऐ हरीफे-दमसाज
मैं कुछ नहीं जानता, ये जाना मैंने
संन्यास तो उनके जीवन में उतरता है जो यह कहने की हिम्मत कर सकते हैं
कि मैं अज्ञानी हूं, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
मैं कुछ नहीं जानता, ये जाना मैंने
यह परम ज्ञान है। जब तक तुम कुछ जानते हो, तब तक क्षुद्र ज्ञान। तब तक सांसारिक ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो स्कूलों में, कालेजों और विश्वविद्यालयों में मिलता है। जिस दिन तुम कह सकते हो, मैं कुछ भी नहीं जानता, उस दिन परम ज्ञान। क्योंकि तुम हुए परम निर्दोष। ज्ञान का बोझ गया, शब्द की भीड़ गई, मन का कोलाहल गया, भीतर आया क्वांरा सन्नाटा, शून्य। शून्य की छाया है संन्यास! शून्य का अतिथि है संन्यास!
तो पहले तो पंडित ने मारा। फिर दूसरी जो दुर्घटना घटी, वह थी नकार की; इनकार।
ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः विस्तार। तो संन्यास का अर्थ इनकार नहीं हो सकता। क्योंकि संन्यास ब्रह्म की तलाश है। जरा सोचो! विस्तार शब्द उसी धातु से बना है जिससे ब्रह्म। हमारे पास अनूठा शब्द है ब्रह्म। हमने आज से कोई दस हजार साल पहले अस्तित्व की मूल सत्ता को ब्रह्म कहा। और अस्तित्व को ब्रह्मांड कहा। ब्रह्म का अर्थ होता हैः जो फैलता ही चला गया है; जिसके फैलाव का कहीं ओर-छोर नहीं; न कोई आदि है, न कोई अंत; जिसकी कोई सीमा नहीं, जो असीम है। और ब्रह्मांड का अर्थ होता हैः उसी फैले हुए का प्रकट रूप। ब्रह्म है अप्रकट, ब्रह्मांड है प्रकट, मगर दोनों ही फैलते चले गए हैं। विज्ञान को तो दस हजार साल लग गए इस सत्य को खोजने में। जो रहस्यवादी संतों ने अपने ध्यान में अनुभव किया था, उस बात की घोषणा करने में दस हजार साल लगे विज्ञान को।
अलबर्ट आइंस्टीन ने आकर घोषणा की। घोषणा बहुत महत्वपूर्ण है। अब तक
उस पर ठीक-ठीक विचार नहीं किया गया कि संतों की घोषणा से हम उसकी तुलना करें, मिलान करें। अलबर्ट आइंस्टीन ने एक बहुत अनूठी बात कही, कि

वैज्ञानिक चौंके। पहले तो कोई राजी नहीं हुआ मानने को। अलबर्ट आइंस्टीन ने कहा कि यह जो विश्व है, यह उतना का ही उतना नहीं रहता, यह रोज बढ़ रहा है, फैल रहा है। एक्सपैंडिंग यूनिवर्स। इसके पहले तक विज्ञान की यह धारणा थी कि ब्रह्म, ब्रह्मांड, विश्व उतना ही है जितना है। आइंस्टीन ने एक नई धारणा दी कि फैल रहा है। यह ऐसे फैल रहा है जैसे कोई छोटा बच्चा अपने फुग्गे में हवा भर रहा हो और फुग्गा बड़ा होता जा रहा हो, और बड़ा होता जा रहा हो, और बड़ा होता जा रहा हो। यह अस्तित्व बड़ी तीव्र गति से बड़ा हो रहा है, फैलता ही जा रहा है।
जो फिजिक्स ने आज कहा है, वह अध्यात्म ने बहुत पहले कहा था। इसलिए हमने नाम ही परमात्मा को ब्रह्म का दिया था। ऐसा नाम दुनिया में किसी और जाति ने नहीं दिया। परमात्मा को बहुत नाम दिए गए हैं। सूफियों के पास सौ नाम हैं। प्यारे नाम हैं, एक से एक सुंदर गुण हैं उनमें। रहीम है वह, अर्थात करुणावान; रहमान है वह, अर्थात दयावान। लेकिन उन सौ नामों में एक भी नाम ब्रह्म के मुकाबले नहीं है। ब्रह्म का अर्थ हैः विस्तारवान है वह। उसका विस्तीर्ण होना रुकता ही नहीं। उसका विस्तीर्ण होना उसका स्वभाव है। वह बढ़ता ही जा रहा है, बढ़ता ही जा रहा है।
अगर ब्रह्म बढ़ता ही जा रहा है, तो संन्यास सिकुड़ना नहीं हो सकता।
ब्रह्म से संबंध जोड़ना है तो कुछ तो ब्रह्म जैसे होना पड़ेगा! तुम भी फैलो।
लेकिन इस देश के दुर्भाग्य की कथा यह है कि संन्यास सिकुड़ने लगा।
संन्यास की धारणा यह बन गई कि कितना छोड़ते हो, उतने बड़े संन्यासी हो! नहीं कि कितना पाते हो। हम संन्यासियों की प्रशंसा करने लगे--इतना धन छोड़ा, इतने घोड़े छोड़े, इतने हाथी छोड़े, इतने राजमहल छोड़े, इतनी अशर्फियां छोड़ीं। यह तो गलत सोच हो गया। क्या पाया? कितना ध्यान पाया? कितना धन छोड़ा, यह नहीं; कितना ध्यान पाया, यह होनी चाहिए तौल। कितना पद छोड़ा, यह नहीं; कितना प्रेम पाया, यह। कितना संसार छोड़ा, यह नहीं; कितना परमात्मा पाया, यह।
तो दूसरी बुनियादी भूल हो गईः संन्यास के गले में नकार की फांसी लग गई। संन्यास का अर्थ ही हो गया--छोड़ना, छोड़ना, छोड़ना।
और ध्यान रखना, यह मैं नहीं कह रहा हूं कि संन्यास में चीजें नहीं छूटती हैं। मेरी बातों को जरा गौर से समझना। छोड़नी नहीं पड़ती हैं। छूटती तो बहुत चीजें हैं। छूटता तो बहुत कुछ है, लेकिन छोड़ने की दृष्टि नहीं होती, छोड़ने का आग्रह नहीं होता। हाथ में तुम एक पत्थर लिए चलते थे और सोचते थे हीरा है। फिर एक दिन पता चला, किसी पारखी से मिलना हो गया, कहीं सत्संग बैठ गया, कहीं जौहरी मिल गए और उन्होंने कहा, पागल, यह हीरा नहीं है, पत्थर है! और तुमने भी परखा और तुमने भी पहचाना और तुम्हारी भी समझ में बात उतर गई, गहरी उतर गई। तो क्या उसे छोड़ना पड़ेगा? छूट जाएगा! क्या तुम शोरगुल मचाओगे, बैंडबाजे बजाओगे, शोभायात्रा निकलवाओगे, कि देखो मैं आज हीरा छोड़ रहा हूं?
अगर तुमने यह शोभायात्रा निकलवाई कि मैं हीरा छोड़ रहा हूं, तो एक बात पक्की है कि हीरा तुम्हें अब भी हीरा दिखाई पड़ रहा है। अभी भी हीरा तुम्हें पत्थर नहीं दिखाई पड़ रहा है। और जब तक हीरा हीरा दिखाई पड़ रहा है तब तक कैसा छोड़ना? छोड़ कर भी चले जाओगे तो तुम्हारे सपनों में हीरा तैरेगा। तुम्हारे अहंकार का हीरा हिस्सा रहेगा। पहले तुम्हारी तिजोड़ी में था, तब तुम दावा करते थे कि मेरे पास हीरा है। अब तुम दावा करोगे कि मैंने हीरे को लात मार दी। और यह दूसरा दावा पहले दावे से ज्यादा खतरनाक है, ज्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि ज्यादा अहंकारपूर्ण है।
नहीं, संन्यास में चीजें छूटती हैं, छोड़ी नहीं जातीं। जैसे तुमने दीया जलाया, तो अंधेरा छोड़ना थोड़े ही पड़ता है, अंधेरा बस छूट जाता है। ऐसे ही ध्यान की ज्योति जगती है तो जो-जो व्यर्थ है तुम्हारे जीवन में, उस पर पकड़ छूट जाती है, हाथ ढीले हो जाते हैं, अपने से हो जाते हैं, सहज हो जाते हैं। लेकिन मेरा जोर ध्यान को पाने के लिए है, धन को छोड़ने के लिए नहीं। इसलिए कभी ऐसा भी हुआ कि ध्यान मिल गया और जनक राजमहल में थे, राजमहल में ही रहे। सिंहासन पर थे, सिंहासन पर ही रहे। क्या तुम सोचते हो जनक ने सिंहासन नहीं छोड़ा, सिर्फ महावीर ने सिंहासन छोड़ा? तो तुम अंधे हो।

तुम्हारे पास आंखें नहीं हैं फिर। जनक ने भी सिंहासन छोड़ा। लेकिन छोड़ने की घोषणा करने से क्या प्रयोजन? देख लिया, जान लिया कि व्यर्थ है, बात खत्म हो गई। भागना कहां है? जाना कहां है? जहां थे वहीं रहे, जैसे थे वही रहे। भ्रम टूट गए, आसक्ति टूट गई, मोह टूट गया, पकड़ टूट गई; महल अपनी जगह था, अपनी जगह रहा; सिंहासन अपनी जगह था, अपनी जगह रहा; तिजोड़ी अपनी जगह थी, अपनी जगह रही; राज्य अपनी जगह चलता था, चलता रहा; जनक जल में कमलवत हो गए। सब जैसा था वैसा ही रहा, सेतु टूट गए, बीच के लगाव टूट गए, आसक्तियां टूट गईं।
जनक ने सिंहासन उतना ही छोड़ा जितना महावीर ने। महावीर ने स्थूल रूप
से छोड़ा, जनक ने सूक्ष्म रूप से छोड़ा। और मैं तुमसे कहूंगाः महावीर के अनुसरण में चल कर संन्यास अपनी गरिमा खो दिया। काश, इसने जनक को आधारशिला बनाया होता, तो संन्यास की गरिमा आज भी होती, अब भी होती। संन्यास छोड़ना बन गया।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि महावीर ने गलती की। महावीर के लिए यह स्वाभाविक था। जो उनके लिए स्वाभाविक था, उन्होंने किया। लेकिन जिन्होंने महावीर के आधार पर अनुकरण करके--जो उनके लिए स्वाभाविक नहीं था, न उनके बोध का हिस्सा था--महावीर के पीछे चल पड़े, बुद्ध के पीछे चल पड़े, उन्होंने संन्यास को भ्रष्ट कर दिया।
तो दूसरी बातः नकार। और नकार का अर्थ होता हैः जीवन-विरोधी। और जो भी चीज जीवन-विरोधी होती है, वह मृत्यु की पक्षपाती हो जाती है। तो संन्यास अपने आप ही अपना आत्मघात कर लिया, अपनी आत्महत्या कर लिया।
धरती से बढ़ कर और नहीं धन कोई।
जिंदगी यहीं पर उगी, फली, रस-धोई।
नक्षत्र, चांद, सूरज में घूम थकी जब,
ईश्वर की काया पाषाणों में सोई।
इस पृथ्वी से भाग नहीं जाना है, यह पृथ्वी बड़ी प्यारी है, इस पृथ्वी के पत्थर-पत्थर में परमात्मा सोया है।
नक्षत्र, चांद, सूरज में घूम थकी जब,
ईश्वर की काया पाषाणों में सोई।
इस प्यारी पृथ्वी की निंदा करना, उस पृथ्वी की निंदा करना जिससे हम रस लेते हैं, जीवन लेते हैं, उस धरती की निंदा करना जो हमारी मां है; तो फिर हम उन वृक्षों जैसे हो जाएंगे जिनकी जड़ें जमीन से उखाड़ ली गईं। और अगर जमीन से उखाड़े गए वृक्ष मर जाएं तो आश्चर्य क्या?

संन्यास ने यही चेष्टा की कि बिना जड़ों के जी लेगा, पृथ्वी से जड़ें उखाड़ कर जी लेगा। यह असंभव चेष्टा थी। पृथ्वी का कुछ भी न बिगड़ा--वृक्ष के जड़ें उखाड़ने से पृथ्वी का क्या बिगड़ता है--लेकिन वृक्ष मर गया। संन्यास ऐसा होना चाहिए जो पृथ्वी में पैर जमा कर खड़ा हो सके और फिर भी अपने सिर को उठाए और आकाश से गुफ्तगू करे। पैर जमीन में गड़े हों और पंख आकाश में उड़े हों, तब संन्यास पूरा-पूरा होता है, समग्र होता है, अखंड होता है। यह पृथ्वी भी उसकी है, यह आकाश भी उसका है। ये दोनों उसके हैं।
ये दोनों हमारे भी हैं। पृथ्वी का निषेध नहीं। आकाश के विधेय के लिए पृथ्वी के निषेध की आवश्यकता नहीं। पृथ्वी और आकाश दो नहीं हैं, एक साथ हैं, संयुक्त हैं; एक ही गीत की दो कड़ियां हैं; एक ही सितार के दो तार हैं; इनमें से एक भी टूट जाएगा तो जीवन अधूरा हो जाता है।
संन्यासी ने यह भूल की। पृथ्वी से अपने को तोड़ने की कोशिश की। पृथ्वी
की निंदा की। पृथ्वी को गर्हित कहा। पृथ्वी को पाप कहा। और पृथ्वी को पाप कहने में अपने ही हाथों अपनी जड़ें काट लीं। तब हाथ में रह गए केवल अंधविश्वास। जिन जीवन-सिद्धांतों में पृथ्वी का रस नहीं बहता, उनमें फूल नहीं खिलते। उनमें अगर फूल खिलते दिखाई पड़ें तो समझना कि भ्रम हो रहा है, कि आंखें धोखा खा रही हैं, कि तुम कोई सपना देख रहे हो।
इक उम्र तसव्वुफ ने मुझे चकराया
इस बहर में एक भी न मोती पाया
हर मर्तबा जब कि जाल खैंचा मैंने

तो इक न इक वहम अटक कर आया
तो असली रहस्यवाद तो खो गया और एक झूठा रहस्यवाद जगत में प्रचलित हुआ। और ऐसा अक्सर होता है। जहां असली सिक्के चलते हैं, वहां नकली सिक्के जल्दी चल जाते हैं। जहां भी असली सिक्के होंगे, वहां नकली सिक्के पैदा होंगे ही। क्योंकि आदमी बेईमान है।
और एक मजे की बात है, अर्थशास्त्र का एक नियम है--जो बहुत महत्वपूर्ण नियम है, जो जीवन के बहुत-बहुत आयामों में काम का है--अर्थशास्त्र का एक नियम है कि झूठे सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। सीधा- साफ सिद्धांत है; कुछ गूढ़ नहीं। अगर तुम्हारी जेब में एक नकली दस रुपये का नोट है और एक असली दस रुपये का नोट है, तो तुम पहले किसे चलाओगे? पहले तुम नकली दस रुपये के नोट को चलाने की हर कोशिश करोगे। स्वभावतः। कि इससे जितनी जल्दी छुटकारा हो जाए, उतना अच्छा। और यह जितनी जल्दी चल जाए, उतना अच्छा। असली तो कभी भी चल जाएगा। तो तुम पान वाले की दुकान पर चलाओगे, मिठाई वाले की दुकान पर चलाओगे, तुम हर चेष्टा करोगे नकली को चलाने की। इसका मतलब क्या हुआ? जिन-जिन के पास नकली नोट हैं, वे सभी नकली नोट चलाएंगे और असली को बचाएंगे।
तो सिद्धांत कहता है कि नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। नकली तो चलने लगते हैं, असली तिजोड़ियों में बंद हो जाते हैं। और यह जीवन के सब पहलुओं पर लागू होता है। क्योंकि नकली सिक्के सस्ते होते हैं, घर में ही उनकी टकसाल होती है, नकली ही हैं, बनाने में अड़चन नहीं होती; अपना ही छापाखाना है, खुद ही छाप लिए। असली सिक्के श्रम से कमाने होते हैं।
असली संन्यास तो तपश्चर्या है। असली संन्यास तो साधना है। असली संन्यास तो ऊर्ध्वगमन है। असली संन्यास तो जीवन के आमूल रूपांतरण का नाम है, काम को राम बनाना है, क्रोध को करुणा बनाना है। यह महत कार्य है। पहाड़ों की चढ़ाइयां चढ़नी हैं। बहुत ऊंचे जाना है। रसायन सीखना होगा। क्योंकि रसायन से ही ये परिवर्तन होंगे। यह एक क्षण में नहीं हो जाएगा। वर्षों लगेंगे। जनम-जनम भी लग सकते हैं। असली सिक्के तो मुश्किल से मिलते हैं। नकली सिक्के आसान। नकली संन्यास आसान। किसी की पत्नी मर गई, चित्त उदास है, संन्यासी हो गए। किसी का दिवाला निकल गया, संन्यासी हो गए। किसी को नौकरी न मिली, चाकरी न मिली, संन्यासी हो गए।
इस देश में कोई पचास लाख संन्यासी हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत
इस तरह के लोग हैं--काहिल, सुस्त, निकम्मे। जिनको कभी कचरे के ढेर पर फेंक दिया जाना चाहिए था। लेकिन वे परम-पूज्य होकर बैठे हैं। और तुम उनको पूजते हो, क्योंकि तुम्हारी पूजा की धारणा भी उन्होंने ही तय करवाई है। उन्होंने ही तय करवाया हैः कौन कितना उपवास करता है, उसकी पूजा करो। कौन नग्न खड़ा है धूप में, उसकी पूजा करो।
अब धूप में नग्न खड़ा होना कोई गुणवत्ता नहीं है। क्योंकि इससे कुछ सृजन ही नहीं होता, तुम कितने ही धूप में नग्न खड़े रहो। यह तो बिल्कुल ही गैर-सृजनात्मक बात हुई। धूप में नंगा खड़ा होने के लिए कोई बुद्धि चाहिए? कोई भी बुद्धू कर सकता है। बुद्धू ही करेंगे! बुद्धिमान क्यों धूप में नंगा खड़ा होगा? बुद्धिमत्ता तो कहेगी, धूप ज्यादा है, छाया में बैठो। और जब छाया बहुत हो जाए और सर्दी लगने लगे, धूप में आ जाओ। और बुद्धू कहेगा कि जब ठंड लगे तो सर्दी में बैठना, और जब गर्मी लगे तो धूप में खड़े हो जाना। बुद्धू उलटा चलेगा।
मगर उलटों की तुम पूजा करते हो। उलटी खोपड़ियां बड़ी समादृत हैं। उलटी खोपड़ियां महात्माओं की खोपड़ियां समझी जाती हैं।
भूख लगे तो भोजन करना, यह बुद्धिमत्ता का लक्षण है; और प्यास लगे तो पानी पीना। लेकिन प्यास लगे तो पानी मत पीना, और तुम्हें लोग मिल जाएंगे चरण छूने वाले। और भूख लगे तो भोजन मत करना, और तुम्हारा आदर करने वाले न मालूम कितने अंधे इकट्ठे हो जाएंगे!
असली रहस्यवाद तो खो गया, नकली उसकी जगह आ गया।
इक उम्र तसव्वुफ ने मुझे चकराया

इस बहर में एक भी न मोती पाया
इस तथाकथित रहस्यवाद में मैंने पूरी उम्र गंवा दी, इधर से उधर चक्कर काटता रहा, लेकिन इस तथाकथित रहस्यवाद के सागर में एक भी मोती न मिला।
हर मर्तबा जब कि जाल खैंचा मैंने
तो इक न इक वहम अटक कर आया
और जब भी जाल खींचा, तो कोई अंधविश्वास, कोई वहम, कोई भ्रांति, कोई भ्रम... और कितने भ्रम हैं? कितनी भ्रांतियां हैं--हिंदुओं की, और मुसलमानों की, और ईसाइयों की, और जैनों की! और भ्रमों पर भ्रम हैं। एक के ऊपर एक लदे, एक के ऊपर एक चढ़े, ढेर लग गए हैं भ्रमों के। और तुम उनके नीचे दबे पड़े हो!
संन्यास मरा, संन्यास हारा, संन्यास पराजित हुआ, संन्यास धूल-धूसरित हुआ, क्योंकि इसने प्रामाणिकता से संबंध तोड़ दिया, इसने व्यक्ति की निजता से संबंध तोड़ दिया और दूसरों के अनुकरण पर बल दिया।
पहली बातः संन्यास पांडित्य के कारण मरा।
दूसरी बातः संन्यास निषेध के कारण मरा।
तीसरी बातः संन्यास अनुकरण के कारण मरा।
संन्यास तो निजता की घोषणा है। मेरा संन्यास मेरा होगा, तुम्हारा संन्यास तुम्हारा होगा। इस जगत में दो व्यक्ति एक जैसे न पैदा हुए हैं, न कभी होंगे। परमात्मा पुनरुक्ति करता ही नहीं। परमात्मा कार्बन-कापी बनाता ही नहीं, परमात्मा की दुनिया में कार्बन होता ही नहीं। परमात्मा तो प्रत्येक को अनूठा बनाता है, अद्वितीय बनाता है, अतुलनीय बनाता है। एक व्यक्ति बस एक ही जैसा बनाता है। तुम जैसा व्यक्ति सदियां-सदियां बीत गईं तब से नहीं हुआ। और सदियां बीतेंगी, तब भी नहीं होगा। अनंतकाल में तुम बिल्कुल अकेले हो। जैसे तुम्हारे अंगूठे की छाप बस तुम्हारी है और दुनिया में किसी की भी नहीं, ऐसे ही तुम्हारी आत्मा की छाप भी बस तुम्हारी है। अंगूठा तक जब तुम्हारा अलग है तो आत्मा का तो कहना ही क्या!
तो तीसरी बातः संन्यास मरा अनुकरण से।
अनुकरण का अर्थ होता हैः जैसा दूसरा कर रहा है, वैसा करो। चाहे तुम्हारी आत्मा को रुचे, चाहे न रुचे। चाहे तुम्हारी आत्मा गवाही दे, चाहे न गवाही दे। और यह हो सकता है कि दूसरा जो कर रहा है, ठीक कर रहा हो, अपने लिए।
महावीर नग्न खड़े हुए, कृष्ण तो नग्न खड़े नहीं हुए। इसीलिए जैन कृष्ण
को भगवान मानने को राजी नहीं हैं। भगवान मानना तो दूर, जैन शास्त्रों ने कृष्ण को नरक में डाल दिया है। क्योंकि महावीर से अगर तौलोगे तो बात अड़चन की हो ही जाएगी। अगर महावीर ही तुम्हारे मापदंड हैं, तो कृष्ण को नरक में डालना ही पड़ेगा। करोगे भी क्या? सीधा गणित का हिसाब हो गया। महावीर ने सब छोड़ा और कृष्ण ने कुछ भी नहीं छोड़ा। महावीर नग्न खड़े हो गए और कृष्ण हैं कि रेशमी पीतांबर वस्त्र पहने हुए और मोरमुकुट बांधे खड़े हैं। और महावीर सब छोड़ कर चले गए और कृष्ण के आस-पास सोलह हजार पत्नियां! महावीर सब छोड़ कर चले गए और कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं और स्त्रियां नाच रही हैं, रास चल रहा है, पूर्णिमा की रात और यमुना का तट। कैसे तालमेल बिठाओगे?
महावीर ने कहा है, पैर भी फूंक-फूंक कर रखना कि चींटी न मर जाए, पानी भी छान-छान कर पीना कि कोई सूक्ष्म कीटाणु न मर जाए, रात चलना मत, अंधेरे में उठना-बैठना मत। और एक कृष्ण हैं कि अर्जुन को कहते हैं कि डर मत, युद्ध में जूझ जा! क्योंकि सब कुछ करने वाला परमात्मा है, वही मारता है, वही जिलाता है। हम तो निमित्त मात्र हैं। तू बेधड़क काट। न हन्यते हन्यमाने शरीरे! शरीरों के काटने से कोई आत्मा नहीं मरती।
जरा फर्क देखो! एक महावीर, कि चींटी पर भी कहीं चोट न लग जाए, तो पैर फूंक कर रखो, सम्हल कर चलो; किसी की हत्या, हिंसा न हो जाए, क्योंकि हिंसा पाप है। और दूसरी तरफ कृष्ण, जो कहते हैंः जूझ जा! अर्जुन तो जैन होने की तैयारी कर रहा था। अर्जुन तो महावीर की तलाश में लगता। अर्जुन तो कह रहा था, इस पाप में कहां उलझा रहे हो? अपनों को मारना, काटना, पीटना! इस राज्य को पाकर मैं क्या करूंगा? इतनी हिंसा, इतने खून के बाद मेरे हाथों पर लहू

के निशान धोए न धुलेंगे। मुझे जाने दो। उसके हाथ से गांडीव छूट गया था। वह उदास, हताशमना अपने रथ में बैठ गया था। और एक कृष्ण हैं, जो उससे कहते हैंः तू जूझ! अरे कायर, यह तुझे शोभा नहीं देता। क्या तू क्लीव हुआ जा रहा है? यह वीरों की शोभा नहीं है। तू क्षत्रिय है, क्षत्रिय होना तेरा स्वभाव है। स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने स्वभाव में मर भी जाना श्रेयस्कर है। परधर्मो भयावहः। यह तू संन्यास इत्यादि की जो बातें कर रहा है, तुझे रुचती नहीं, ये तेरे स्वभाव के प्रतिकूल हैं।
तुम यह मत समझना कि जब कृष्ण ने कहाः स्वधर्मे निधनं श्रेयः, तो उनका मतलब हिंदू धर्म में पैदा हुए तो हिंदू धर्म में मरना। तब तो कोई हिंदू, मुसलमान, ईसाई का सवाल ही नहीं था। तब तो एक ही धर्म था। कृष्ण के जमाने तक तो जैन भी हिंदुओं से अलग नहीं हुए थे; अभी हिंदुओं का ही एक अंग थे। बुद्ध का तो अभी जन्म ही नहीं हुआ था। और ईसा को तो और बहुत देर थी। और मोहम्मद का तो कोई पता ही नहीं था। इसलिए यह तो कृष्ण कह ही नहीं सकते--स्वधर्मे निधनं श्रेयः--कि अपने ही धर्म में मरना, उसका अर्थ हिंदू होगा।
सच तो यह है कि हिंदू शब्द भी नहीं था। हिंदू शब्द तो मुसलमानों की ईजाद है। हिंदू शब्द तो हिंदुओं की ईजाद नहीं है। हिंदू शब्द तो बहुत बाद में आया। हिंदू शब्द तो इस देश के रहने वालों ने खुद ने नहीं खोजा है। यह तो परायों ने दे दिया है। पराए अक्सर दे देते हैं। जापानी अपने देश को जापान नहीं कहते। सारी दुनिया जापान कहती है। जर्मन अपने देश को जर्मनी नहीं कहते, सारी दुनिया जर्मनी कहती है। ऐसे ही हिंदू धर्म और हिंदू शब्द का जन्म हुआ।
जब पहली दफा पारसी भारत आए, तो उनकी भाषा में "स" का उच्चारण "ह" होता है, उससे अड़चन हो गई। सिंधु नदी को उन्होंने हिंदू नदी कहा। और जब हिंदू नदी कहा, तो सिंधु नदी के पास जो लोग बसते थे, उनको उन्होंने हिंदू कहा। फिर हिंदू से बड़ी कहानी लंबी हुई। हिंदू शब्द चला। फिर किन्हीं भाषाओं में हिंदू "ह" के लिए कोई शब्द नहीं था, "ह" "इ" की तरह उच्चारण होता था, तो इंदू हो गया। फिर इंडस हो गया, फिर इंडिया हो गया। और ये सब एक भूल से कि पारसियों के पास "स" के लिए कोई शब्द नहीं था। जो निकटतम शब्द था "स" के लिए, वह "ह" था। "स" के लिए कोई शब्द नहीं था।
तो तब तक तो कोई हिंदू शब्द भी नहीं था, हिंदू जाति भी नहीं थी, हिंदू धर्म भी नहीं था। फिर कृष्ण किस धर्म की बात कर रहे हैं? कृष्ण कह रहे हैं, तुम्हारी निजता का धर्म। वे अर्जुन से कह रहे हैं, अर्जुन, तुझे मैं जानता हूं। तू क्षत्रिय है, तू पोर-पोर क्षत्रिय है, रोआं-रोआं क्षत्रिय है, कण-कण क्षत्रिय है। तेरी आत्मा तलवार जैसी है, तेरे भीतर एक धार है। युद्धों के लिए ही तू पैदा हुआ है, युद्धों में ही तेरा निखार है, युद्धों में ही तू अपनी परिपूर्णता को पाएगा। युद्ध की भूमिका में ही तू पूरी तरह निखरेगा, तेरा फूल खिलेगा। भगोड़ा मत बन! यह तेरे काम की बात नहीं है।
जैन नाराज हैं। यह महाभारत अर्जुन ने तो नहीं किया होता। यह कृष्ण की
ही जालसाजी है। यह कृष्ण ने ही समझा दिया इस अर्जुन को। अर्जुन ने बहुत जद्दोजहद भी की, जल्दी मान भी नहीं गया। नहीं तो इतनी बड़ी गीता कैसे पैदा हो? पूछता ही जाता है, संदेह करता जाता है। मगर किसी न किसी तरह, मार-ठोंक कर, यहां से वहां से समझा कर कृष्ण ने उसे राजी कर लिया युद्ध को। तो जैनों ने कृष्ण को नरक में डाल दिया है। सातवें नरक में। आखिरी नरक में। और जल्दी छुटकारा भी नहीं माना है उन्होंने। अगले कल्प में छुटकारा होगा। कल्प का अर्थ होता हैः एक सृष्टि और एक प्रलय के बीच जो समय बीतता है, उसे कल्प कहते हैं। जब यह सृष्टि नष्ट होगी और नई सृष्टि का प्रारंभ होगा, तब कृष्ण छूट पाएंगे। और इधर हिंदू हैं जो कृष्ण को पूर्ण अवतार कहते हैं। और तुम्हें पता है कि हिंदुओं ने महावीर का अपने शास्त्रों में उल्लेख भी नहीं किया! इस योग्य भी नहीं माना कि उल्लेख करें। अगर जैनों के शास्त्र न होते तो शायद महावीर का कोई उल्लेख भी न मिलता। जैन शास्त्रों में उल्लेख है और कहीं-कहीं बौद्ध शास्त्रों में उल्लेख है। जैन शास्त्रों में उल्लेख है प्रशंसा के लिए और बौद्ध शास्त्रों में उल्लेख है निंदा के लिए। लेकिन हिंदू शास्त्रों ने तो बिल्कुल ही उपेक्षा कर दी।

जिन्होंने कृष्ण को पूर्णावतार कहा, उनको यह नग्न महावीर इस योग्य भी मालूम नहीं हुआ कि इसका शास्त्रों में उल्लेख करें।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, कृष्ण भी भगवत्ता को उपलब्ध हुए हैं और महावीर भी। न तो महावीर उपेक्षा योग्य हैं और न कृष्ण नरक में डालने योग्य। लेकिन हम एक बुनियादी बात नहीं समझ पाए अब तक, कि महावीर महावीर हैं, कृष्ण कृष्ण हैं, उनकी अपनी-अपनी निजता है। कमल कमल की तरह खिलेगा, गुलाब गुलाब की तरह खिलेगा। और अगर तुमने यह नियम बना लिया कि जो कमल की तरह खिलता है, वही खिला, तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर गुलाब खिला ही नहीं। फिर चमेली खिली ही नहीं। फिर जुही खिली ही नहीं। फिर केतकी खिली ही नहीं। फिर चंपा खिली ही नहीं। और जिन्होंने तय कर लिया कि जो चंपा की तरह खिलता है फूल, बस वही खिलना है, उनके लिए कमल नहीं खिलेगा। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, यह जगत अत्यंत वैविध्यपूर्ण है। और प्यारा है, क्योंकि वैविध्यपूर्ण है। और यहां प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजता है।
संन्यास मरा, क्योंकि हमने निजता को पोंछ डालने की कोशिश की। हमने संन्यास के नाम पर सिपाही पैदा किए, संन्यासी नहीं। हमने संन्यास के नाम पर झूठे, अनुकरण करने वाले, पीछे चलने वाले लोग पैदा किए, भेड़ें पैदा कीं, सिंह पैदा नहीं किए। और संन्यास तो सिंह का ही हो सकता है; क्योंकि संन्यास तो सिंहनाद है। यह तो निजता की घोषणा है। यह तो निजता की, स्वतंत्रता की परम घोषणा है।
तो नरेन्द्र, ठीक तुम पूछते हो कि संन्यास का जन्म इस देश में हुआ। निश्चित ही, इस देश ने अगर दुनिया को कोई देन दी है, तो वह संन्यास है। इसने एक अपूर्व भेंट दी है दुनिया को; मनुष्य-जाति की चेतना के विकास में इस देश ने सबसे बहुमूल्य फूल भेंट में चढ़ाया है, वह संन्यास है।
तुम पूछते होः "संन्यास का जन्म इस देश में हुआ, उसे गौरीशंकर जैसी महिमा मिली।"
निश्चित। हमने बुद्धों को, महावीरों को, कृष्णों को अपूर्व ऊंचाई पर रखा। रखना ही पड़ा। मजबूरी थी, विवशता थी। हम चाहते भी कि न रखें, तो भी यह नहीं हो सकता था। रखना ही पड़ा। हमें श्रद्धा से उनके चरणों में झुकना ही पड़ा। वे चरण ऐसे थे! वह आभा ऐसी थी! वह जादू ऐसा था!
और तुम पूछते होः "पर आज उसका सम्मान बस ऊपरी रह गया है।"
यह भी सच है। आज संन्यास के नाम पर थोथे लोगों की भीड़ है, झूठे लोगों
की भीड़ है, अनुकरण करने वाली कार्बन कापियां हैं। आखिर तुम कैसे इन्हें सम्मान दो वही? देते हो, क्योंकि परंपरागत आदत तुम्हारी हो गई है सम्मान देने की। देते हो, क्योंकि बाप-दादों से दिया जाता रहा। संन्यासी आ जाए, तुम्हें पता ही नहीं चलता, तुम मूर्च्छित खड़े हो जाते हो। संन्यासी आ जाए, तो तुम्हें पता ही नहीं चलता कब तुम उसके पैरों में झुक गए। यह तुम बोधपूर्वक नहीं करते हो, यह यांत्रिक आदत हो गई है। इस यांत्रिक आदत के कारण दो काम हो रहे हैं। एक, सम्मान भी दे रहे हो; और दूसरा, भीतर सम्मान है भी नहीं। अच्छा हो तुम सम्मान देना बंद कर दो। क्योंकि तुम्हारे सम्मान बंद कर देने से तुम्हारे सौ संन्यासियों में से निन्यानबे तो तत्क्षण संन्यास से विदा हो जाएंगे। वे तुम्हारे सम्मान के कारण ही टिके हैं। झूठा ही सही, मिलता तो है। और इस जगत में आदमी की इच्छा, सम्मान पाने से बड़ी और कोई इच्छा नहीं है। और मुफ्त मिल जाता है!
अगर पश्चिम में किसी को सम्मान चाहिए, तो उसे चित्रकार होना पड़े, पिकासो की हैसियत पानी पड़े; कि मूर्तिकार होना पड़े, कि रोडिन की हैसियत पानी पड़े; कि संगीतज्ञ होना पड़े, कि बीथोवन की हैसियत पानी पड़े--उसे कुछ ऊंचाई पानी पड़े सृजनात्मकता की, तो पश्चिम में सम्मान मिलेगा।
पूरब में सम्मान चाहिए, तो तुम बीथोवन हो जाओ, कोई फिक्र न करेगा; कालिदास हो जाओ, कोई फिक्र न करेगा। ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि जब कोई राजनेता गांव में आए तो कालिदास से कहा जाए कि भाई, जरा इनकी प्रशंसा में एक गीत लिख देना! टुटपुंजिए राजनेता की प्रशंसा में कालिदास गीत लिखेंगे, और क्या करेंगे? और यह आज ही नहीं हो रहा है, जब कालिदास थे तब उनसे भी यही काम लिया गया है--राजाओं की प्रशंसा और प्रशस्तियां।

तुमने कवियों से काम लिया क्या है? दो कौड़ी के राजनीतिज्ञों की प्रशंसाएं करवाई हैं, स्तुतियां करवाई हैं। तुमने चित्रकारों से बनवाया क्या है? राजनेताओं के पोर्ट्रेट बनवाए हैं। तुमने सृजनात्मक लोगों को सम्मान ही नहीं दिया।
दुनिया के किसी भी कोने में सम्मान मिलता है तो सृजन से मिलता है। कुछ निर्माण करो। कुछ नया इस जगत में लाओ, जो नहीं था। फिर चाहे विज्ञान के द्वारा लाओ, चाहे संगीत के द्वारा, चाहे काव्य के द्वारा, मगर कुछ इस जगत को सुंदर करो। इस जगत में कुछ एक नया फूल जोड़ो, एक नया गीत गुनगुनाओ, इस जगत के सौंदर्य को थोड़ा बढ़ाओ, एक लहर उठाओ आनंद की, तो सम्मान मिलेगा।
भारत में इस तरह के लोगों को सम्मान नहीं मिलता। उपवास करो! भूखे मरो! नंगे खड़े हो जाओ! शरीर को सुखा लो! धूप में खड़े रहो! बाल नोच डालो! तो सम्मान मिलेगा।
एक गांव से मैं गुजर रहा था, बड़ी भीड़ थी चौराहे पर, कि घंटे भर मुझे रुके ही रहना पड़ा; गाड़ी निकल ही नहीं सकती थी। मैंने पूछा, मामला क्या है? तो पता चला कि एक दिगंबर जैन मुनि केश-लुंच कर रहे हैं। केश-लुंच! अब किसी आदमी को अपने बाल उखाड़ने हैं तो उखाड़ने दो, मगर भीड़-भाड़ किसलिए लगाए हुए हो? मगर बड़ी भीड़! और लोगों की आंखों से आंसू बह रहे हैं। कैसा महात्याग हो रहा है!
एक आदमी अपने बाल उखाड़ रहा है--एक तो वह पागल। अक्सर पागलों की एक जाति होती है जो बाल उखाड़ती है। और तुम्हें भी पता होगा, जब तुम्हारी पत्नी पगला जाती है तो बाल नोचती है। हम कहते ही हैं अक्सर कि वह अपने बाल नोचने लगी। एकदम बाल खींचने लगी। एक आदमी बाल नोच रहा है। और हो सकता है कि पागल भी न हो; इसको अच्छा लगता हो, यह इसका स्वधर्म हो, यह जन्मजात नाई हो, इसको पैदाइशी यह गुणवत्ता हो कि बाल नोचेगा, यह इसकी नियति हो। नोचने दो! मगर यह भीड़ किसलिए लगाई है? और मैं तुमसे कहता हूं, अगर यह भीड़ लगना बंद हो जाए तो यह आदमी बाल भी न नोचे। कोई पागल है? फायदा क्या? नाहक कष्ट क्यों उठाए? दो पैसे में जाकर किसी भी नाई से मुंड़वा ले।
लेकिन तुम्हारी भीड़ इसको मजबूर कर रही है। लोग फूल चढ़ा रहे हैं, पैरों में सिर झुका रहे हैं। लोग कह रहे हैं, अहा! आंखों से आंसू झर रहे हैं! स्त्रियां तो धाड़ मार कर रो रही हैं! इस आदमी को मजा आ रहा है। इस आदमी को तुम खूब तृप्ति दे रहे हो! और तृप्ति एक थोथी चीज के लिए दे रहे हो, जिससे किसी का कोई लाभ नहीं। यह बाल उखाड़े तो, यह बाल न उखाड़े तो, देश में न तो सौंदर्य बढ़ेगा, न समृद्धि बढ़ेगी, न सुख बढ़ेगा; देश तो जैसा है वैसा का वैसा रहेगा। हां, इसकी मूढ़ता के कारण और कुछ मूढ़ों के द्वारा इसको सम्मान मिलने के कारण, कुछ दूसरे मूढ़ भी बाल नोचने को राजी हो जाएंगे। आदमी अहंकार की तृप्ति पाने के लिए कुछ भी कर सकता है--कुछ भी! बाल नुचवा लो, भूखा मरवा लो, सिर के बल खड़ा करवा लो।
एक गांव से मैं गुजरा। मित्रों ने कहा कि यहां एक परम साधु हैं, आप दोनों की मुलाकात होगी तो बहुत आनंद होगा। मैंने कहा, उनकी साधुता क्या है? बताया कि वे दस साल से खड़े हुए हैं। उनका नाम ही हो गया हैः खड़ेश्री बाबा। अब दस साल से कोई आदमी खड़ा है तो खड़ा रहने दो! मैं यह भी नहीं कहता कि उसको बिठाओ। कि पुलिस के द्वारा उसको जबरदस्ती बिठवाने की कोशिश करो। किसी को खड़ा रहना है तो उसको हक है कि वह खड़ा रहे। मगर खड़ेश्री बाबा के आस-पास रुपयों के ढेर लग रहे हैं। पंडे-पुरोहित बैठ गए हैं। अब वे पंडे- पुरोहित, अगर खड़ेश्री बाबा बैठना भी चाहें, तो उनको नहीं बैठने दे सकते, क्योंकि धंधा! तो उनके दोनों हाथ बांध दिए हैं रस्सियों से, ताकि वे बैठना भी चाहें तो बैठ न सकें। और खुद भी उनको डर होगा कि कभी किसी कमजोर क्षण में बैठ जाएं! तो हाथ बंधे हैं, बैठ नहीं सकते। छप्पर से हाथ बांध दिए गए हैं, हाथों के नीचे बैसाखियां लगा दी गई हैं; उनके पैर हाथीपांव हो गए हैं, सारा खून पैरों में चला गया है!
अब यह आदमी रुग्ण-अवस्था में है। यह आदमी व्यर्थ का कष्ट झेल रहा है। लेकिन कष्ट में एक ही सुख है कि सम्मान मिल रहा है। दिन-रात कीर्तन चलता

है, भीड़ लगी है, धूनी रमी है, हजारों लोगों का भोजन चल रहा है, दान-दक्षिणा हो रही है, पंडित-पुरोहितों ने बड़ा बाजार लगा रखा है।
इस आदमी के खड़े होने से किसका क्या लाभ है? इसका खुद का क्या लाभ है?
इस आदमी की आंखें देखो तो तुम्हें इतनी निरीह आंखें, जिनसे सिर्फ मूढ़ता झलकती है, जिनसे कोई बुद्धिमत्ता का प्रमाण नहीं मिलता--क्योंकि ये बातें ही बुद्धिमत्ता की नहीं हैं। मगर इस तरह की बातों को सम्मान मिलने लगा। व्यर्थ की बातों को सम्मान मिलने लगा। तो लोग सम्मान देते भी हैं और भीतर उनकी आत्मा सम्मान देना भी नहीं चाहती। इसलिए एक पाखंड का विस्तार हो गया है।
ठीक से समझ लेना, संन्यास सृजनात्मकता है। और जिसको तुमने संन्यास मान रखा है अभी, वह एक तरह का विध्वंस है, वह अपने को ही नष्ट करना है-- आहिस्ता-आहिस्ता, शनैः-शनैः।

अब तो नूतन गीत पुराने से लगते हैं।

गीतों के स्वर नये-नये, पर छंद वही है।
छंदों में रागों का अंतर्द्वंद्व वही है।
चिंतन से अंकुरित विचारों की बगिया में,
नये-नये हैं फूल मगर मकरंद वही है।
जब आती कल्पना सत्य की तपोभूमि पर,
अपने ही सपने अनजाने से लगते हैं।

ध्वंस बहुत ही सहज, निर्माण कठिन है।
पतन बहुत आसान मगर उत्थान कठिन है।
समता और विषमता के कोलाहल में,
अपने और पराए की पहचान कठिन है।
दूर देश की पगडंडी पर मिलने वाले,
पूर्ण अपरिचित भी पहचाने से लगते हैं।

जो न समझ में आए, ऐसी बात नहीं हूं।
बातों में जो बीते, ऐसी रात नहीं हूं।
झंझा के झोंके मेरा क्या कर पाएंगे,
पर्वत सा हूं अडिग, कुसुम-अवदात नहीं हूं।
संदेहों के अंधकार से घिरी निशा में,
आश्वासन भी आज बहाने से लगते हैं।
अब तो नूतन गीत पुराने से लगते हैं!

इतना पिटा-पिटाया हो गया सब! समय है कि अब हम इससे छुटकारा पाएं।
ध्वंस बहुत ही सहज, निर्माण कठिन है।
पतन बहुत आसान मगर उत्थान कठिन है।
और तुम्हारा संन्यास पिटा-पिटाया, सड़ा-सड़ाया--चाहे बोतलें बदल जाती हों, मगर भीतर का जहर वही। और इस जहर की जो मौलिक बात समझ लेनी जरूरी है, मूलभूत, वह है ध्वंसात्मकता।
संन्यास को सृजन दो। संन्यास को काव्य दो, संगीत दो, कला दो। संन्यासी
से अपेक्षा करो कि कुछ सृजन करे, कुछ निर्माण करे, जगत को कुछ दान करे। संन्यासी से नकारात्मक अपेक्षा मत रखो, कुछ विधायक अपेक्षा रखो।
ऐसे ही नये संन्यास को मैं जन्म दे रहा हूं।
मेरे संन्यास में न तो निषेध है कि कुछ छोड़ कर जाओ, कि कहीं छोड़ कर भागो। बोध काफी है। भागते कायर हैं। जिनको बोध हो जाता है, वे जहां हैं वहीं रहते हैं और वहीं रहते मुक्त हो जाते हैं। मेरा संन्यास पांडित्य नहीं देना चाहता, ज्ञान नहीं देना चाहता, ध्यान देना चाहता है। ध्यान का अर्थ हैः शून्यता। ध्यान का अर्थ हैः मुझे कुछ भी पता नहीं। जीवन ऐसा परम रहस्य है कि कुछ इसके संबंध में पता हो भी नहीं सकता। और, मैं संन्यास को

एक नई भावभंगिमा देना चाहता हूं--सृजनात्मकता की। मैं उसे संन्यासी कहूंगा जिसने एक नया गीत गाया। मैं उसे संन्यासी कहूंगा और सम्मान दूंगा जिसने वीणा पर एक नया संगीत छेड़ा। मैं उसे संन्यासी कहूंगा और सम्मान दूंगा जिसने एक नया नृत्य नाचा, जिसने इस जगत को थोड़ा सुंदर बनाया, जिसने इस पृथ्वी पर थोड़ा सौभाग्य लाया।
फिर संन्यास गरिमा को पा सकता है।
और मैं चाहूंगा कि संन्यासी अनुकरण न करे। समझे, सुने, मनन करे, लेकिन जीए अपनी निजता से। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कोई आचरण के नियम नहीं दे रहा हूं, सिर्फ अंतस को जगाने की प्रक्रिया दे रहा हूं। फिर जागे हुए अंतस से तुम्हें जैसा ठीक लगे, तुम जीना। किसी को कृष्ण जैसे जीना हो तो कृष्ण जैसे जीना। और किसी को महावीर जैसे जीना हो तो महावीर जैसे जीना। और किसी को बुद्ध बनना हो तो बुद्ध बनना। लेकिन आए आवाज तुम्हारी अंतरात्मा से। मैं न कहूंगा। मैं कोई आदेश न दूंगा। मैं तो सिर्फ बोध दे सकता हूं!
मेरे पास जो लोग संन्यास के जगत में प्रवेश कर रहे हैं, उनकी सबसे बड़ी कठिनाई यही है। वे चाहते हैं कि मैं उन्हें आचरण दूं। ठीक-ठीक आज्ञाएं दूं--कब उठें, कब सोएं, क्या खाएं, क्या पीएं, कैसे चलें--वे चाहते हैं कि मैं उन्हें सारीशृंखला दे दूं।
उसशृंखला को देने के बाद वे संन्यासी नहीं होंगे, कैदी होंगे। मगर सदियों-सदियों से यही समझाया गया है कि गुरु वही जो तुम्हें आचरण दे। और आचरण का अर्थ होता हैः जो मेरा आचरण है, जो मेरा अनुभव है, वह मैं तुम पर थोप दूं। लेकिन यह हो सकता है कि मुझे रात तीन बजे उठ आना आनंदपूर्ण है और तुम्हें दुखपूर्ण हो। और तुम तीन बजे रात उठ आओ तो दिन भर उदास रहो; हारे- हारे, विषाद से भरे, थके-थके, आंखों में नींद झलकी-झलकी, तुम कुछ भी न कर पाओ, तुम्हारा सारा दिन खराब हो जाए।
तुम वैज्ञानिकों से पूछो! वैज्ञानिक कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के उठने का समय अलग-अलग है। वैज्ञानिक कहते हैं कि चौबीस घंटे में दो घंटे के लिए शरीर का तापमान नीचे गिरता है रात में, अलग-अलग समय पर। किसी का दो बजे से और चार बजे के बीच में गिरता है, किसी का तीन और पांच के बीच में गिरता है, किसी का पांच और सात के बीच में गिरता है। जब वे दो घंटे शरीर का तापमान नीचे गिरता है तब सबसे गहरी नींद के क्षण होते हैं। और जो आदमी उन दो घंटों में नहीं सो पाएगा, उसका पूरा दिन उदास हो जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें कैसे नियम दूं?
मुझसे लोग पूछते हैं कि हमें आप ठीक-ठीक कह दें, कब हम सुबह उठें?
मैं उनसे कहता हूं, तुम अपनी तलाश करो। थोड़े से दिन प्रयोग करो। तीन बजे उठ कर देखो, चार बजे उठ कर देखो, पांच बजे उठ कर देखो, छह बजे उठ कर देखो, सात बजे उठ कर देखो, आठ बजे उठ कर देखो। और जो तुम्हारे भीतर सर्वाधिक संगीतपूर्ण मालूम पड़े, सर्वाधिक लयबद्धता तुम्हें दे, वही तुम्हारा समय है, वही तुम्हारा ब्रह्ममुहूर्त है। ब्रह्ममुहूर्त कोई अडिग सिद्धांत नहीं है।
तुम जान कर यह हैरान होओगे कि वैज्ञानिकों की खोज यह कहती है कि स्त्रियां देर से उठनी चाहिए, पुरुष थोड़े जल्दी उठना चाहिए। इससे तो बड़ा उलटा हो जाएगा; भारतीय संस्कृति को तो बड़ा धक्का पहुंच जाएगा। क्योंकि स्त्रियों का तापमान थोड़ी देर से गिरता है। पुरुषों का तापमान अक्सर चार और छह के बीच गिरता है या तीन और पांच के बीच गिरता है। स्त्रियों का तापमान अक्सर पांच और सात के बीच गिरता है। तो सुबह की पहली चाय पति को तैयार करनी चाहिए, पत्नी को नहीं। और इसमें पति को कुछ अपमानित अनुभव नहीं करना चाहिए, गौरवान्वित अनुभव करना चाहिए।
मैं तुम्हें बंधे नियम नहीं दे सकता। मैं भोजन के संबंध में भी तुम्हें बंधे नियम नहीं दे सकता, क्योंकि भोजन की भी जरूरतें प्रत्येक की भिन्न-भिन्न हैं। हां, मैं तुम्हें बोध दे सकता हूं। ध्यान की प्रक्रियाएं दे सकता हूं, जिनसे तुम्हारा बोध निखर जाए। और उस बोध के आधार से तुम अपना चरित्र खोजना। उस बोध के आधार से खोजना कि कब जागना। उस बोध के

आधार से खोजना कि क्या भोजन करना, कितना भोजन करना। उस बोध के आधार से खोजना कि तुम्हारी जीवनचर्या क्या हो।
इसलिए मेरे प्रत्येक संन्यासी की जीवनचर्या में उसकी निजता होगी, एक बंधी-बंधाई लीकबद्ध व्यवस्था नहीं होगी। मैं सैनिक नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें कवायद नहीं कराना चाहता। हालांकि तुम यही चाहते हो कि मैं तुम्हें नियमबद्ध व्यवस्था दे दूं। क्योंकि तुम्हारी झंझट मिटे! तुम सोचना नहीं चाहते; तुम चबाना नहीं चाहते, तुम चाहते हो कोई चबा-चबाया तुम्हें दे दे। तुम जूठा निगल जाने को तैयार हो, मगर चबाने की झंझट लेने को तैयार नहीं हो।
जीवन इतने सस्ते नहीं मिलता। ऐसे तो जीवन खो जाता है।
जीवन को खोजना हो तो बस एक मौलिक शस्त्र तुम्हारे हाथ में चाहिए, एक गांडीव तुम्हारे हाथ में हो बस। उस गांडीव को मैं ध्यान कहता हूं, बोध कहता हूं, जागरूकता कहता हूं। उसके सहारे तुम सब खोज लोगे। उस ध्यान के दीये की रोशनी में तुम्हें दरवाजे मिल जाएंगे, कुर्सियों से न टकराओगे, दीवालों से सिर न तोड़ोगे। मैं तुम्हें क्यों बताऊं कि कहां दीवाल है और कहां दरवाजे हैं, जब मैं तुम्हें दीया दे सकता हूं? और फिर हरेक के घर में दरवाजे अलग स्थानों पर हैं और दीवालें अलग स्थानों पर हैं। घर-घर अलग है। व्यक्ति-व्यक्ति अलग है।
अगर यह हो सके... हो रहा है, हो सकेगा। एक लाख संन्यासी हैं आज पृथ्वी
पर मेरे। आने वाले पांच वर्षों में वे दस लाख हो जाएंगे। इन दस लाख में से अगर दस भी उस गौरवान्वित शिखर को पा सके जो बुद्धों को उपलब्ध होता है, तो मेरा श्रम सफल हो गया। फिर से गरिमा मिल सकती है संन्यास को। मिलनी ही चाहिए। उसी अथक प्रयास में मैं संलग्न हूं।

रात जंजीरे-कहकशां पहनाए,
सुबहे-नौ कैद हो नहीं सकती।
मौत सय्याद बन तो सकती है,
जिंदगी सैद हो नहीं सकती।
वक्त के तुंदो-तेज धारे को,
कौन हां कौन मोड़ सकता है?
रहरवे-शौक और मंजिल के,
रब्त को कौन तोड़ सकता है?

रात जंजीरे-कहकशां पहनाए,
चाहे रात आकाश-गंगा की जंजीरें ही पहना दे।
सुबहे-नौ कैद हो नहीं सकती।
नव-प्रभात, नई आने वाली सुबह को कोई कैद नहीं कर सकता। सुबह होकर रहेगी। रात तो जंजीरें पहनाने की पूरी कोशिश करेगी, रात तो जाल फैलाएगी सब, रात तो अंधेरे को और गहन करेगी। लेकिन ध्यान रखना--अंधेरा रात का जितना गहन हो जाता है, सुबह उतने करीब आ जाती है।
रात जंजीरे-कहकशां पहनाए,
सुबहे-नौ कैद हो नहीं सकती।
मौत सय्याद बन तो सकती है,
जिंदगी सैद हो नहीं सकती।
मौत चाहे तो शिकारी बन जाए, मगर जिंदगी का शिकार किया नहीं जा सकता। उभर-उभर कर जिंदगी लौट आती है। जीवन की ऊंचाइयां वापस फिर-फिर प्रकट हो जाती हैं। जिन शिखरों को हमने एक बार छू लिया है, वे शिखर हमारे अचेतन के गर्भ में छिपे हुए हमें पुकार देते ही रहते हैं।
वक्त के तुंदो-तेज धारे को,
कौन हां कौन मोड़ सकता है?
और अब समय भी आ गया है कि संन्यास की पुनः उदघोषणा हो। मनुष्य बच नहीं सकेगा बिना संन्यास की पुनरुदघोषणा के। क्योंकि मनुष्य बहुत दब गया है सांसारिक वस्तुओं, सांसारिक परिग्रहों, संसार की आपाधापी, उलझनों में।

संसार मनुष्य की छाती पर बहुत भारी रूप से सवार हो गया है। आदमी मरा जा रहा है, दबा जा रहा है। संन्यास की जरूरत है कि कोई आदमी के भार को छीन ले; उसकी छाती से पत्थरों को हटा दे।
वक्त के तुंदो-तेज धारे को,
कौन हां कौन मोड़ सकता है?
समय खुद भी पक गया है कि संन्यास की उदघोषणा होनी चाहिए, कि धर्म फिर पुनअर्वतरित होना चाहिए। और धर्म अब हिंदू नहीं होगा, अब ईसाई नहीं होगा, अब मुसलमान नहीं होगा। अब धर्म सिर्फ धार्मिकता होगा। गए वे पुराने विशेषण और उन विशेषणों के दिन। और उन विशेषणों ने हमारा इतना अहित किया है कि अब कोई भी समझदार आदमी उन विशेषणों के साथ अपने संबंध जोड़ कर नहीं रख सकता। गए मस्जिदों, मंदिरों, गिरजों के दिन। अब तो सब गिरजे हमारे हैं और सब मंदिर हमारे हैं। अब तो हम पूरी पृथ्वी को मंदिर बनाएंगे। अब तो हम जहां बैठ कर प्रार्थना करेंगे वहीं मंदिर बना लेंगे। गए दिन अब किताबों के, और किताबों के आधार पर लोगों के बंटने के--कि कोई कुरान को माने, कोई वेद को माने। वक्त आ गया कि हम पहचानेंः जो गीत वेद में है, वही कुरान में है--भाषा अलग होगी। और वक्त आ गया कि हम पहचानें कि जो गीत कुरान में है और वेद में है, वह हमारे प्राणों में भी छिपा है--अभिव्यक्ति अलग होगी। और जब तक हमारे प्राणों का गीत प्रकट न होगा, तब तक वेद भी बेपढ़े रह जाएंगे और कुरान भी अनसुनी रह जाएगी। जिसने स्वयं के भीतर सत्य को जाना है, वही वेद में पहचान पाएगा, वही कुरान में, वही धम्मपद में, वही बाइबिल में। अब किताबों के दिन गए। अब आत्मा की किताब खोलने का समय करीब आ गया है।
वक्त के तुंदो-तेज धारे को,
कौन हां कौन मोड़ सकता है?
रहरवे-शौक और मंजिल के,
रब्त को कौन तोड़ सकता है?
प्रेम-मार्ग के पथिक की जो मंजिल की तलाश है, उसे कोई भी तोड़ नहीं सकता।
संन्यास मेरे लिए परमात्मा के प्रेम का दूसरा नाम है। तुमने सुनी है परिभाषा कि संन्यास संसार को छोड़ने का नाम है। मैं कहता हूंः संन्यास परमात्मा के प्रेम में पड़ने के नाम है। क्या छोटी बातें करते हो, संसार का छोड़ना!
और बड़ा मजा है! तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी एक तरफ तो कहते हैं, संसार माया है, और दूसरी तरफ कहते हैं, छोड़ो! जो माया ही है, है ही नहीं, उसको क्या खाक छोड़ोगे! एक तरफ कहते हैं, संसार सपना है, और दूसरी तरफ कहते हैं, छोड़ो! एक तरफ कहते हैं, संसार झूठ। और फिर उसको छोड़ कर बड़े अकड़ते हैं कि हमने संसार को छोड़ दिया! झूठ को छोड़ कर कोई अकड़ने की बात है? आज तक तुमने दो और दो गलती से पांच जोड़े थे, आज तुम्हें पता चला कि दो और दो चार होते हैं, तो क्या तुम अकड़े फिरोगे कि सुनो जी, मैंने दो और दो पांच जोड़ना छोड़ दिया! अब मैं दो और दो चार जोड़ता हूं। तुम तो किसी से यह कहोगे ही नहीं। क्योंकि लोग क्या कहेंगे कि तुम दो और दो पांच जोड़ते थे? पागल थे? कितने दिन पागल रहे? तुम तो यह बात भुला ही दोगे, रफा-दफा कर दोगे। कोई याद भी दिलाएगा तो याद न करना चाहोगे।
लेकिन तुम्हारा तथाकथित साधु-महात्मा घोषणा करता हैः मैंने संसार छोड़ दिया। और कहता भी चला जाता है कि संसार माया है।
संसार अगर माया है तो उस पर इतना ध्यान मत दो। न पकड़ने में ध्यान दो, न छोड़ने में ध्यान दो। दोनों हालतों में तुम उसे बहुत ज्यादा मूल्य दे देते हो। मैं कहता हूं, मूल्य तो परमात्मा का है।
संन्यास मेरे लिए परमात्म-प्रेम का नाम है। और परमात्मा का प्रेम बन जाए संन्यास, तो फिर गौरीशंकर का शिखर उठे, फिर हम बादलों के ऊपर उठें, फिर हम चांद-तारों के पास पहुंचें। यह हो सकता है। इसके होने का समय है। यह होना ही चाहिए।
रहरवे-शौक और मंजिल के,
रब्त को कौन तोड़ सकता है?

प्रेमी के संबंध को कोई भी नहीं तोड़ सकता।
ईश्वर के रंग में रंगो, ईश्वर के रंग में बिको, मेरे संन्यास का यही अर्थ है।

तेरे रंग में रंग गए हम,
तेरे रूप बिकाए
दूध धुली शशि किरणों में
जब तेरे संग नहाए

नहीं मानते हैं ये लोचन,
बोलें तेरी बोली
जब से तुमने इनसे
छुप-छुप खेली आंखमिचौली

अंतर सुधि बिसराए
हृदय तेरा नाम पुकारे
दुलराया है जब से तुमने
बैठ सपन के द्वारे

जाने कैसा भरमा है
कवि गीत तुम्हारे रचता
कहता, तुम्हें छोड़ कर
जाएं और नहीं कुछ बचता

जब-जब इठलाती, मदमाती
पहन चुनरिया धानी
मौसम गा उठता अनगाई
कोई प्रेम कहानी

तेरे रंग में रंग गए हम
तेरे रूप बिकाए
दूध धुली शशि किरणों में
जब तेरे संग नहाए

दूसरा प्रश्नः मैं क्या करूं? मेरो मन बड़ो हरामी!

संत! तुम पुराने संतों जैसी ही बात कह रहे हो।
"मेरो मन बड़ो हरामी!"
मन को गाली न दो! मन का उपयोग करना सीखो। मन एक बहुमूल्य यंत्र है। इससे अदभुत कोई यंत्र नहीं। मन परमात्मा की परम भेंट है तुम्हें। इसी मन से तुम चाहो तो संसार में उलझ जाओ और इसी मन से तुम चाहो तो संसार से सुलझ जाओ। इसी मन से तुम चाहो तो नरक की सीढ़ियों में उतर जाओ और इसी मन से तुम चाहो तो स्वर्ग तुम्हारा है। इसको हरामी न कहो! मन तुम्हें नहीं भटकाता, तुम भटकना चाहते हो, मन संगी-साथी हो जाता है। मन तुम्हारा नौकर है, तुम्हारा चाकर है। तुम चोरी करो तो मन चोरी के उपाय बताने लगता है और तुम भजन गाओ तो मन भजन निर्माण करने लगता है। पूजा करो तो मन अर्चना बन जाता है, पाप करो तो मन पाप बन जाता है। लेकिन मनुष्य की एक बहुत आधारभूत आदत हैः दोष किसी पर डालना; दोष अपने पर नहीं लेना।
अब देखो संत, तुम कहते होः "मैं क्या करूं?"
तुमने अपने को अलग कर लिया।
"मेरो मन बड़ो हरामी!"
मन पर सब छोड़ दिया, कि मन है हरामी; मैं तो भला आदमी, मगर यह मन मुझे भटकाता है। तुमने मन से अपने को तोड़ लिया। तुमने मन पर दायित्व छोड़ दिया।

यह तो हमारी तरकीब है। और इन्हीं तरकीबों के कारण तो हम उठ नहीं पाते, जग नहीं पाते।
आदमी की आदत हैः किसी न किसी पर दोष दे दे। कोई कहता है, भाग्य ही ऐसा है, क्या करें? कोई कहता है, परमात्मा ने ऐसा बनाया, हम क्या करें? कोई कहता है, मनुष्य तो प्रकृति के अधिकार में बंधा है। कार्ल मार्क्स कहता है कि मनुष्य तो समाज की व्यवस्था में जकड़ा है, क्या कर सकता है? सिगमंड फ्रायड कहता है कि मनुष्य तो अचेतन वृत्तियों के जाल में उलझा है, क्या कर सकता है? लेकिन सबकी बात का अर्थ एक ही है कि तुम जैसे हो, बस ऐसे ही रहोगे, कुछ हो नहीं सकता। क्योंकि दोष तुम्हारा है ही नहीं, दोष किसी और का है। उसको तुम नाम कुछ भी दे दो--अ ब स, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूंः मन तुम्हें नहीं भटकाता; तुम भटकना चाहते हो तो मन तुम्हें साथ देता है। तुम न भटकना चाहो तो मन तुम्हें उसमें साथ देगा। मन तो बड़ा प्यारा सेवक है। तुम क्रोध करना चाहो, मन क्रोध करता है। तुम करुणा करना चाहो, मन करुणा करता है। मन तो तुम्हारे पीछे चलता है। तुम उलटी बातें कर रहे हो।
तुम कहते हो, मैं क्या करूं, यह छाया मुझे गलत जगह ले जाती है। छाया तुम्हारी है। तुम जहां जाते हो, वहां जाती है। लेकिन गाली तुम छाया को देते हो, कि मैं क्या करूं, यह छाया मुझे कल वेश्यागृह ले गई। माने ही न! बस एकदम वेश्यागृह की तरफ चलने लगी।
छाया तुम्हें वेश्यागृह ले जा सकती है? तुम गए वेश्यागृह, तो छाया को जाना पड़ा। तुम मंदिर गए होते, तो छाया मंदिर गई होती। मन तो तुम्हारी छाया है।
मैं तुम्हारी इस बात में सहयोग नहीं दे सकता। तुम अभी सोए हो, तुम अभी मूर्च्छित हो, इसलिए मन तुम्हें तुम्हारी मूर्च्छा में सहयोग देता है। तुम जरा जागो! मेरे पास भी मन है, मैं उसका उतना ही उपयोग कर रहा हूं जितना तुम--शायद उससे ज्यादा। बुद्ध के पास भी मन है। बुद्धत्व हो जाने के बाद, बयालीस साल तक निरंतर बुद्ध बोलते रहे। बिना मन के कैसे बोलेंगे? बिना मन के कौन बोलेगा? समझाते रहे; गांव-गांव, गली-गली, द्वारे-द्वारे दस्तक देते रहे। बिना मन के यह कौन करेगा? महावीर भी ज्ञानोपलब्धि के बाद चालीस वर्ष तक पहुंचाते रहे संदेश। बिना मन के कौन यह करेगा?
मन गालियां ही नहीं देता, गीत भी गाता है। अगर तुम गालियां ही दे रहे
हो तो मन को गाली मत दो। मन तो अवश है। मन तो विवश है। मन तो तुम्हारा है। लेकिन हम एक चालबाजी कर लेते हैं, हम अपने को अलग कर लेते हैं। हम कहते हैं, हम तो अलग, हम तो बिल्कुल दूध-धोए, और यह मन हरामी! यह कहता है ऐसा करो, तो करना पड़ता है।
बात ऐसी नहीं है। जरा होश में आओ! जरा गौर से देखो! तुम मालिक हो, मन गुलाम है। तुम चूंकि मालिक की तरह सोए हुए हो, इसलिए मन भी करे तो क्या करे, वह तुम्हारा मालिक बन बैठा है। तुमने उसे मालिक बना दिया है। तुमने ही सोए रह कर उसे मालिक बना दिया है। तुम नौकर पर इतने निर्भर हो गए हो कि तुम नौकर से ही पूछते हो कि कहां जाएं? क्या करें?
मुल्ला नसरुद्दीन कल मुझसे कह रहा थाः चंद्रलोक से उतरी एक अनोखी चीज मैंने आज शाम अपनी खिड़की से देखी। नीला और नारंगी रंग, धीमी चाल और उसके अंदर ढेरों छोटे-छोटे आदमी!
मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा कि बड़े मियां, सरे-शाम इतनी मत पी लिया करो। वह स्कूल के बच्चों की बस थी जिसे तुमने देखा है। वह कोई चांद से उतरी हुई चीज नहीं थी, कोई उड़नतश्तरी नहीं थी। और वे जो छोटे-छोटे आदमी तुमने देखे, वे स्कूल के बच्चे थे।
लेकिन आदमी नशे में हो तो कुछ का कुछ दिखाई पड़ता है। आदमी नशे में हो
तो वही नहीं दिखाई पड़ता जैसा है। और गाली तुम शराब को दोगे! या कि तुमने पी? शराब अपने आप तुम्हारे कंठ में नहीं उतर जाती। कोई जबरदस्ती शराब तुम्हारे कंठ में नहीं उतर जाती। शराब तुमसे कहती नहीं कि आओ और मुझे पीओ।
तुम पीते हो, तो बेहोश होते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात पीकर लौटा है। एक बिजली के खंभे के नीचे खड़े होकर खंभे को बजा रहा है। एक सिपाही देख रहा है। थोड़ी देर बाद उसे दया आई और उसने कहा कि बड़े मियां, यह क्या कर रहे हो?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, देखते नहीं क्या कर रहा हूं? अपने घर के दरवाजे पर दस्तक कर रहा हूं। पत्नी उठ आए, शायद सो गई हो, तो दरवाजा खोले। सिपाही हंसा, उसने कहा कि बड़े मियां, यह घर नहीं है, जरा गौर से तो देखो!
तो उसने कहा, तुम किसी और को बनाना। गौर से देख रहा हूं, अभी ऊपर मंजिल
का दीया जल रहा है। पत्नी सो भला गई हो, मगर अभी दीया जला हुआ है।
एक और रात घर लौटा, ज्यादा पीए हुए। चाबी ताले में डालना चाहता है, मगर हाथ कंप रहे हैं, चाबी ताले में जाती नहीं। राहगीर कोई देखा, पास आया और कहा, बड़े मियां, लाओ चाबी मुझे दो, मैं खोल दूं।
मुल्ला ने कहा कि चाबी तो मैं ही डाल दूंगा, तुम जरा इतना करो, यह कंपते हुए मकान को सम्हाल लो।
बेहोश आदमी की एक अलग दुनिया है। और हम सब बेहोश हैं तब तक जब तक ध्यान
का दीया न जले।
मन को गालियां मत दो, संत! मन वही कर रहा है जो तुम करवाना चाहते हो। मन
को गालियां देने में एक खतरा है, कि कहीं तुम मन को बदलने में न लग जाओ। गाली देने का वही मतलब होता है। अगर बहुत ज्यादा मन से परेशान हो गए, तो मन को बदलने में लग जाओगे। और जो मन को बदलेगा, एक तरफ से बदलेगा और पाएगा कि जो एक दरवाजा रोक दिया तो मन दूसरे दरवाजे से वही काम शुरू कर दिया है। सामने का दरवाजा बंद किया तो पीछे के दरवाजे से। इसी तरह पाखंड पैदा होता है। यह "मेरो मन बड़ो हरामी", इस तरह के लोगों ने ही कह-कह कर पाखंड पैदा करवा दिया है। मन को समझना है, गाली नहीं देनी है! और समझ सको, इस योग्य ध्यान को जगाना है। ताकि ध्यान की रोशनी में देख सको मन को--कि क्या हो रहा है? क्या किया जा रहा है? फिर तुम कभी मन को गाली न दोगे। बल्कि धन्यवाद दोगे परमात्मा को कि तेरी अपूर्व कृपा है कि तूने ऐसा अदभुत यंत्र दिया! अभी वैज्ञानिकों ने बड़े से बड़े कंप्यूटर बना लिए हैं, जो मन का सारा काम कर सकते हैं। मगर एक मनुष्य का मन जितना काम कर सकता है, उतना काम करने के लिए हजारों कंप्यूटर लगाने पड़ेंगे। फिर भी कंप्यूटर अभी इतने सूक्ष्म नहीं हैं, जितना मनुष्य का मन है। और हजारों कंप्यूटर बड़ी जगह घेरेंगे, और इस छोटे से सिर के भीतर इतनी अदभुत प्रक्रिया चल रही है!
वैज्ञानिक कहते हैं कि एक आदमी के मस्तिष्क में इतनी संभावना है कि सारे दुनिया के पुस्तकालय समा सकते हैं। जितनी सूचनाएं आज तक मनुष्य-जाति ने इकट्ठी की हैं, वे सारी सूचनाएं एक मनुष्य के मन में समा सकती हैं। इतना अदभुत यंत्र तुम्हारे पास है। इस छोटे से सिर के भीतर सात अरब सूक्ष्म तंतुओं वाला मस्तिष्क तुम्हारे पास है। वे तंतु इतने सूक्ष्म हैं कि अगर एक तंतु के ऊपर दूसरा तंतु, दूसरे के ऊपर तीसरा हम रखते चले जाएं, तो एक लाख तंतुओं की मोटाई तुम्हारे बाल के बराबर होगी। और एक-एक तंतु करोड़ों सूचनाएं अपने में समाहित कर सकता है।
मन को समझोगे तो विस्मयविमुग्ध हो जाओगे! कोई फूल इतना अदभुत नहीं।
इस जगत में कोई चीज इतनी अदभुत नहीं जितना मनुष्य का मस्तिष्क है, जितना मनुष्य का मन है।
मगर तुम्हारे पोंगापंथी गालियां दिए जाते हैं। और उनकी गालियां तुम्हें जंचती भी हैं, तर्कयुक्त भी मालूम होती हैं, क्योंकि तुम्हारा अनुभव भी यही कहता है। और तुम्हें इसमें सुरक्षा भी मालूम होती है, अपने अहंकार को बचा लिया, अलग कर लिया, कि मैं तो कुछ गड़बड़ करता नहीं, यह मन हरामी है, यह गड़बड़ करवाता है।
जरा सोचो तो तुम क्या कह रहे हो! यह तो ऐसे हुआ कि जैसे कोई कहे कि मैं क्या करूं, यह साइकिल का हैंडल बस मुड़ जाता है और ले जाता है जहां इसे मुझे ले जाना है। तो उतर पड़ो ऐसी साइकिल से। और कहीं साइकिल के हैंडल कहीं ले जाते हैं! और अगर साइकिल के हैंडल कहीं ले जाते भी हों, तो भी उनकी गहराई, खोजबीन करना, तुम्हारे मन में होगी।

सम्मोहनविद, जो मनुष्य के मन पर काफी खोजबीन किए हैं, उनका कहना है कि अक्सर ऐसा हो जाता है। तुमने अगर नई-नई साइकिल चलानी सीखी हो तो तुमको पता होगा। जब नया-नया आदमी साइकिल चलाता है तो बहुत डरता है। और जिन-जिन चीजों से डरता है, वही होती हैं। जैसे कि सड़क खाली है, साठ फीट चौड़ी सड़क, कोई नहीं है--सीखने वाला तो ऐसे वक्त जाता है जब वहां कोई न हो--सन्नाटा है। और वह मील का पत्थर लगा है दूर, और वह डरता है कि कहीं पत्थर से टकरा न जाऊं! हाथ-पैर हिलते हैं, हैंडल थरथराता है, कि कहीं पत्थर से टकरा न जाऊं! साठ फीट चौड़ा रास्ता, अगर अंधा आदमी भी साइकिल चलाए तो बहुत कम संभावना है कि पत्थर से टकराए। मगर यह आंख वाला आदमी पत्थर से टकराएगा। क्योंकि कहीं पत्थर से टकरा न जाऊं, इस भय के कारण और कुछ उसे दिखाई ही नहीं पड़ता, वह लाल पत्थर, हनुमान जी, एकदम दिखाई पड़ते हैं! और सब भूल जाता है, और सब भूल जाता है, बस उतना पत्थर, और डर! और जिस तरफ डर है उस तरफ खिंचाव है। जिस तरफ भय है उस तरफ आकर्षण है। चला! और जितना चला पत्थर की तरफ उतने प्राण कंपे, उतने हाथ-पैर हिले, उतना होश गंवाया उसने, और चला पत्थर की तरफ! और अब उसे लगता है कि बचना मुश्किल है! अब यह होकर ही रहेगा। और यह होकर रहने वाला है। लेकिन तुम यह मत सोचना कि पत्थर ने यह करवाया या साइकिल ने यह करवाया। यह तुम्हारे मन के भय ने, तुम्हारे भय ने, तुम्हारे अचेतन आकर्षण ने ही करवाया। तुम्हीं गए। कोई नहीं ले गया।
और जीवन में भी यह हो रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने तय किया कि बहुत कष्ट उठा चुका हूं, अब शराब नहीं पीऊंगा। कसम खा ली! कसमें वे ही लोग खाते हैं जो अपने से डरते हैं। जो अपने से नहीं डरता वह कभी कसम नहीं खाता और व्रत नहीं लेता, ध्यान रखना। सिर्फ भयभीत लोग व्रत लेते हैं। सिर्फ कायर लोग व्रत लेते हैं। तो उसने कसम खा ली, व्रत ले लिया कि अब शराब नहीं पीऊंगा चाहे कुछ भी हो जाए।
अब यह चाहे कुछ भी हो जाए, जरा इसमें गौर से देखो। वह जानता है कि खतरे
तो हैं। चाहे कुछ भी हो जाए! कसम ली ही इसीलिए है कि कसम के सहारे अपने को बचाएगा। मगर ऐसे कहीं कोई बचता है! निकला रास्ते से, आने लगा शराबघर करीब, हाथ-पैर कंपने लगे। मगर कसम खा ली, अणुव्रत ले लिया कि नहीं पीएंगे, चाहे कुछ भी हो जाए। जिद्द करके, देखा ही नहीं शराबघर की तरफ, आंख को बिल्कुल दूसरी तरफ रखा। मगर आंख कितनी ही दूसरी तरफ रखो, आंख के कोने से तो शराबघर दिखाई पड़ ही रहा है; आंख कितने ही दूर रखो, कान तो खुले ही हैं; प्यालियों की खनकार आ रही है, मस्तियों की आवाजें आ रही हैं; लोग पीकर मदमस्त हो रहे हैं, आवाजें कस रहे हैं, सारा राग-रंग हो रहा है, सब सुनाई पड़ रहा है। मगर जितना सुनाई पड़ रहा है उतना ही वह तेजी से भागा जा रहा है आगे की तरफ कि कहीं ऐसा न हो कि किसी कमजोर क्षण में लौट जाऊं!
सौ कदम आगे निकल गया, बड़ा खुश हुआ, अपनी पीठ ठोंकी और कहा कि नसरुद्दीन, मान गए! तू भी बहादुरों में एक बहादुर है! अब चल इस खुशी में तुझे पिलाएं! पहुंच गए वापस! और उस दिन और भी ज्यादा पी, क्योंकि एक महान कार्य कर गुजरे थे। उस खुशी में खुद भी पी, औरों को भी पिलाई। लोगों ने पूछा, नसरुद्दीन, आज बड़े दरियादिल!
उसने कहा, आज काम ही ऐसा किया है। सौ कदम तक चला गया; आंख भी नहीं उठाई; कानों में आवाजें आती रहीं, मैंने कहा, आने दो! एक दृढ़ संकल्प किया था; दिखा कर रहा आज कि अपना मालिक हूं।
मगर यह मालकियत! दूसरे दरवाजे से। पीठ ठोंक ली और कहा कि अब इस खुशी में क्या करना है? चल कर पीऊं और पिलवा दूं लोगों को! कहा कि आज जितने लोग हैं मधुशाला में, सब पीएं मेरी तरफ से, जी खोल कर पीएं। काम ही ऐसा किया है! तुम एक तरफ से मन को दबाओगे, मन दूसरी तरफ से रास्ते खोज लेगा। क्यों? क्योंकि तुम अभी बदले नहीं हो, मन को कैसे बदलोगे? तुम तो वही हो। तुम कसमें खाओ, व्रत लो, नियम लो, कुछ काम न आएंगे। मेरा जोर तुम्हारे आचरण बदलने पर नहीं है। मैं कहता हूं, फिक्र ही मत करो, अगर शराब पीते हो तो ठीक है, पीओ। जुआ खेलते हो, कोई फिक्र नहीं, खेलो। मैं कहता हूं, इसमें उलझो ही मत, नहीं तो जीवन खराब हो जाएगा। लेकिन ध्यान में डूबो! जुए से ध्यान में कोई बाधा नहीं पड़ती। और अक्सर तो ऐसा होता है कि जो आदमी जीवन को सरलता से

जीता है, न जुए से परेशान है, न शराब से परेशान है, न किसी चीज से परेशान है--जो चिंता ही नहीं लेता, जो इन सब चीजों को जीवन का सामान्य क्रम मान कर स्वीकार कर लेता है--वह बड़ी सरलता से ध्यान में उतर जाता है। ऐसा हजारों लोगों को ध्यान में उतारने के बाद मैं कह रहा हूं। यह मेरा अनुभव है कि व्रती और उपवासी ध्यान में नहीं उतर पाते। अब जिसने व्रत किया है, उपवास किया है, वह आंख बंद करके बैठता है तो रोटी ही रोटी याद आती है--भूखा बैठा है।
जर्मन कवि हेन ने लिखा है कि मैं जंगल में खो गया एक बार तीन दिन तक। तीसरे दिन थका-मांदा, भूखा-प्यासा, आशा छूटी जाती है; आकाश में पूरा चांद निकला। उसने लिखा हैः मैं बहुत हैरान हुआ! मैं कवि हूं और मैंने चांद पर बहुत कविताएं लिखी हैं, और हमेशा चांद में मैंने अपनी प्रेयसी का चेहरा देखा है। और आज मुझे एक डबलरोटी आकाश में तैरती हुई दिखाई पड़ी। मुझे तो भरोसा ही नहीं आया, आंखें मीड़ कर मैंने फिर देखा कि चांद को हो क्या गया है? डबलरोटी!
मगर तीन दिन के भूखे आदमी को चांद में डबलरोटी ही दिखाई पड़ सकती है। प्रेयसी के चेहरे का क्या करोगे? भूखे भजन न होहिं गोपाला। अभी प्रेयसी वगैरह याद नहीं आ सकती। अभी डबलरोटी ही याद आ सकती है। लार आ गई होगी मुंह में डबलरोटी को तैरते देख कर, सुगंध आ गई होगी डबलरोटी की, जैसे बेकरी के पास से निकलते हो तो गंध आ जाती है।
जो आदमी व्रत लिए बैठा है, वह तो ध्यान कर ही न पाएगा। मैं चाहता हूं, तुम बिल्कुल सामान्य और साधारण जीवन जीओ। जरा भी अड़चन न डालो जीवन में। जैसा है जीवन, उसको वैसा ही चलने दो और ध्यान में उतर जाओ। सुगमतम रास्ता है ध्यान में उतरने काः जीवन की साधारणता को बिल्कुल स्वीकार कर लो। यही है तुम्हारा जीवन। गालियां मत दो! जैसा है, ठीक है। जैसा है, वैसा ही हो सकता है अभी। अभी तुम्हारी उतनी ही क्षमता है, उतनी ही पात्रता है, उतनी ही तुम्हारी आत्मा है। मगर ध्यान में उतरो!
और जैसे-जैसे ध्यान में उतरोगे, तुम चमत्कृत होने लगोगे। ध्यान में उतरते ही क्रांतियां शुरू हो जाती हैं। ध्यान में उतरते ही मुश्किल हो जाएगा धूम्रपान करना। मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि धूम्रपान आदमी करता है अपने मानसिक तनाव को भुलाने के लिए। इसलिए जब भी तुम मानसिक तनाव से भरते हो, ज्यादा सिगरेट पीते हो। सिगरेट पीने में उलझ जाते हो, मन का तनाव थोड़ा सुलझता मालूम पड़ता है। सिगरेट से जाता हुआ निकोटीन तुम्हारे मन के तनाव को थोड़ा सा हलकापन दे देता है। तुम शराब पीते हो, क्योंकि तुम्हारी जिंदगी याद रखने योग्य नहीं है, भुलाने योग्य है। तुम शराब पीते हो, क्योंकि तुम विस्मरण करना चाहते हो।
एक शराबी ने मुझसे संन्यास लिया। वह तो मान ही न सका कि मैं उसे संन्यास दूंगा! वह तो आया था मुझसे कहने कि क्या आप मुझे स्वीकार करेंगे? उसने कहा, मैं पहले ही बता दूं कि मैं शराबी हूं। मैंने कहा कि ठीक, मुझे सभी स्वीकार हैं। जब परमात्मा को तुम स्वीकार हो और परमात्मा... तुम शराब कितने दिन से पी रहे हो? उसने कहा, आज बारह साल से शराब पी रहा हूं। तो मैंने कहा, जब परमात्मा बारह साल से तुम्हें जिंदा रखे है और मार नहीं डालता, तो मैं कौन हूं बाधा डालने वाला? मेरी कसौटियां कोई परमात्मा से बड़ी कसौटियां नहीं हो सकती हैं। तुम बेफिक्री से पीओ। मगर तुम ध्यान शुरू करो! उसने कहा, क्या शराबी ध्यान कर सकता है? मैंने कहा, सच तो यह है कि शराब पीने की आकांक्षा उनको ही पैदा होती है जिनके भीतर ध्यान की संभावना है। यह तुम हैरान होओगे सुन कर बात! शराब थोड़ी देर के लिए विस्मरण लाती है संसार का और ध्यान सदा के लिए मुक्ति लाता है। शराब क्षणभंगुर ध्यान है और ध्यान शाश्वत शराब है। शराब में जो लोग उत्सुक हो जाते हैं, वे वे ही लोग हैं जो किसी तरह जिंदगी की चिंताओं को भूलना चाहते हैं। और ध्यान में तो चिंताओं से मुक्ति हो जाती है, भूलने की जरूरत नहीं रह जाती। मैंने कहा, तुम ध्यान करो, शराब तुम पीते रहो।

कोई पांच-सात महीने बाद उसने आकर मुझे कहा, आपने मुझे बहुत धोखा दिया!
अब ध्यान में रस लगने लगा है, शराब छूट गई। अब मैं पीना भी चाहूं तो नहीं पी सकता।
मैंने कहा, मुझे कारण बताओ, क्यों नहीं पी सकते?
उसने जो बात कही, मौलिक है। उसने कहा कि मैं जिंदगी को भुलाने के लिए शराब पीता था, क्योंकि जिंदगी मेरी दुखपूर्ण थी। ध्यान ने मेरी जिंदगी में सुख की एक नई आभा दे दी है। सुबह उठता हूं, तो इतनी प्यारी सुबह मैंने कभी जानी न थी! पक्षियों के गीत पहले भी होते रहे होंगे, मैंने नहीं सुने थे। सूरज पहले भी निकलता था, मैंने नहीं देखा था। वृक्ष पहले भी हरे रहे होंगे, मेरी आंखें उनकी हरियाली से नहीं भरी थीं। फूल पहले भी नाचते रहे होंगे हवाओं में, लेकिन मैंने उन्हें पहचाना नहीं था। रात तारों से भर जाती है और मेरा हृदय इतना आनंदमग्न हो रहा है! पहले मैं दुखी था, शराब पीता था तो दुख भूल जाता था। अब शराब पीता हूं तो यह सुख भूल जाता है। और सुख को कौन भूलना चाहता है? इसलिए अब मैं शराब नहीं पी सकता। असंभव है। मैंने कहा, अब तुम जब समझ ही गए हो और बात हो ही गई है तो मैं तुमसे कह
ही दूं कि धोखा दिया। मुझे क्षमा करना!
संत, मन को गालियां मत दो! मन को समझो और जागो, ध्यान में लगो। और जैसे
हो वैसे ही ध्यान को उपलब्ध हो सकते हो। ध्यान बेशर्त है। कोई शर्त नहीं लगाता। ऐसी कोई शर्तें नहीं लगाता कि पहले सिगरेट छोड़ो, शराब छोड़ो, पत्नी छोड़ो, बच्चे छोड़ो, धन छोड़ो, तब ध्यान होगा। नहीं, नहीं, बिल्कुल उलटी बात है। पहले ध्यान हो, फिर जो-जो व्यर्थ है, अपने आप छूट जाएगा। और जो-जो सार्थक है, वह और भी गहराई से जुड़ जाएगा। ध्यान व्यर्थ को जला कर राख कर देता है और सार्थक को निखार देता है।
ध्यान अग्नि है। उससे गुजर कर स्वर्ण शुद्ध होता है, कुंदन बनता है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
तेरहवां प्रवचन

बीजरूप प्रेम से सुवासरूप प्रेम की ओर

पहला प्रश्नः यह भाव निरंतर उभर आता है कि हो न हो भगवान बुद्ध ने आप
ही के रूप में पुनरावतार लिया है। आप सभी को मित्र कहते हैं। और बुद्ध का भावी अवतार "मैत्रेय" कहा जाएगा। आप भी--जैसा कि उदघोषणा थी--कुर्सी पर बैठ कर बोध प्रदान करते हैं। मैंने शिकागो के म्यूजियम में इस प्रकार कुर्सी पर आसनस्थ बुद्ध की तिब्बती प्रतिमा देखी है। आप बुद्धक्षेत्र निर्मित कर रहे हैं। या कि आप लाओत्सु हैं, मैत्रेय भी नहीं? क्या इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

सत्य वेदांत! बुद्ध वापस नहीं लौटते हैं। बुद्धों का कोई अवतार नहीं होता है। वापस लौटना तो अज्ञान में ही संभव है। ज्ञान की वापसी नहीं होती। इसका यह अर्थ नहीं कि एक ही बार बुद्ध होते हैं। अनेक बुद्ध हुए हैं, अनेक बुद्ध होंगे, मगर कोई बुद्ध किसी दूसरे बुद्ध का अवतार नहीं है। यद्यपि प्रत्येक दो बुद्धों का स्वाद बिल्कुल एक जैसा होगा।
पिछले वर्ष भी वसंत आया था, इस वर्ष भी वसंत आएगा--वही वसंत नहीं।
यद्यपि फूल फिर खिलेंगे--वही फूल नहीं। और पक्षी फिर गीत गाएंगे। न तो वे ही पक्षी होंगे, न वे ही गीत होंगे। हर वर्ष वसंत आता रहेगा। लेकिन एक वसंत किसी दूसरे वसंत का पुनरागमन नहीं है। हर वसंत नया है। हर वसंत ताजा है। और फिर भी सभी वसंत एक जैसे हैं। और सभी वसंतों का रंग और ढंग एक है। और सभी वसंतों की अंतरात्मा को अगर तुम चखोगे, तो एक ही स्वाद पाओगे।
बुद्ध ने भी जो कहा है कि भविष्य में मैं मैत्रेय की तरह आऊंगा, उसका
और कुछ अर्थ नहीं है, उसका इतना ही अर्थ है कि भविष्य में जो बुद्ध होगा, उसका मौलिक गुण मैत्री होगा; वह मित्रता सिखाएगा, प्रेम सिखाएगा।
और यह बात सार्थक है। बहुत विचारणीय है। इस जगत में मैत्री खो गई है।
इस जगत में जो सबसे महत्वपूर्ण चीज खो गई है वह मैत्री है। प्रेम अब ऐसी छलांग नहीं लेता कि मैत्री बने; ऐसी उड़ान नहीं लेता कि मैत्री बने। अब तो मित्रता औपचारिक है। अब तो मित्रता कामचलाऊ है; मतलब की बात है। अब मित्रता में प्रार्थना का गुण नहीं है। मनुष्य मनुष्य से टूट गया है। बुद्ध की उदघोषणा का यही अर्थ है कि जल्दी वह घड़ी आएगी, जब मनुष्य मनुष्य से इतना टूट जाएगा कि किसी बुद्ध को मनुष्यता को मैत्री सिखानी पड़ेगी, प्रेम का पाठ सिखाना पड़ेगा। प्रेम तो होना चाहिए नैसर्गिक, सिखाने की जरूरत न हो। पर जब नैसर्गिक न रह जाए और मनुष्य विकृत हो, कृत्रिम हो, तो निसर्ग को भी सिखाना पड़ता है। मजबूरी है। फूल अगर खिलना भूल जाएं, तो उन्हें खिलने की देशना देनी होगी। पक्षी अगर उड़ना भूल जाएं, तो उन्हें उड़ने के पाठ देने होंगे।
ऐसा ही कुछ आदमी के साथ हुआ है। सदियों-सदियों मनुष्य को घृणा सिखाई
गई है, वैमनस्य सिखाया गया है, द्वेष सिखाया गया है, ईर्ष्या सिखाई गई है, जलन सिखाई गई है, प्रतिस्पर्धा सिखाई गई है। इन सबने मिल कर मैत्री की गर्दन घोंट दी। गला घोंट दिया, फांसी लगा दी।
बुद्ध ठीक कहते हैं कि आज से पच्चीस सौ साल बाद मैं मैत्रेय की तरह आऊंगा।
लेकिन यह प्रतीक बात है। इसका यह अर्थ नहीं है कि गौतम बुद्ध फिर वापस लौटेंगे। वापस लौटने वाला है कहां? गौतम बुद्ध तो उसी दिन विसर्जित हो गए जिस दिन बुद्ध हुए। उसी दिन मैं-भाव चला गया। मैं-भाव गया, तभी तो बुद्ध हुए। उसी दिन अस्मिता समाप्त हो गई। उसी दिन जान लिया कि मैं अस्तित्व के साथ एक हूं, पृथक नहीं। अब आना कैसा? अब जाना कैसा?
बुद्ध को ज्ञान हुआ, उस ज्ञान के बाद वे बयालीस साल जिंदा रहे। किसी
ने बुद्ध से पूछा कि आप तो विसर्जित हो गए हैं, फिर भी आप कैसे जिंदा हैं? तो उन्होंने कहा, शरीर ही जिंदा है, मैं अब कहां? ऐसा समझो कि तुम साइकिल चला रहे हो, और कई मील से साइकिल चलाते आ रहे हो, और फिर तुम पैडल मारने बंद

कर दो, तो भी साइकिल पुरानी गति के प्रवाह में हो सकता है दो-चार फर्लांग और चली जाए। तुम पैडल नहीं मारते, फिर भी साइकिल चल रही है--पुराना मोमेंटम है, मीलों चली है, चलने की गति पहियों को चलाए जा रही है। गति भी संगृहीत हो जाती है। ऐसा ही बुद्ध ने कहा कि सदियों-सदियों तक यह देह चली है, इसे चलने की आदत हो गई है। मैं तो अब नहीं हूं, पैडल मारने वाला अब नहीं है, लेकिन यह देह कुछ देर चलेगी।
बयालीस वर्ष चली! और जब अंतिम दिन आया बुद्ध का, तो भिक्षु उनके रोने लगे। आनंद ने कहा, आप जाते हैं, हमारा क्या होगा?
बुद्ध ने कहा, नासमझ आनंद, यह और तू क्या पूछता है? मैं तो जा चुका बयालीस वर्ष पूर्व! रोना था तो तब रो लेना था! अब तो जाने वाला कहां है? अब तो सिर्फ शरीर की जो गति थी, वह क्षीण होते-होते-होते ठहरने के करीब आ गई। तू किसके लिए रो रहा है? उसके लिए जो बहुत पहले मर चुका! बयालीस वर्ष पहले मर चुका!
अहंकार की मृत्यु हो, तभी तो बुद्धत्व का जन्म होता है। बुद्धत्व का अर्थ क्या है? अहंकार का अंधेरा गया, तो बुद्धत्व का दीया जलता है। या बुद्धत्व का दीया जला, तो अहंकार का अंधेरा गया। अहंकार यानी अंधकार। बौद्ध परिभाषा में पहली घटना को "निर्वाण" कहते हैं--जब अहंकार चला जाता, लेकिन देह चलती। और दूसरी घटना को, जब देह भी गिर जाती, "महापरिनिर्वाण" कहते हैं। महापरिनिर्वाण के बाद लौटना कैसा? असंभव।
तो फिर बुद्ध का कुछ और अर्थ है। बुद्ध प्रतीक में बोल रहे हैं। वे यह
कह रहे हैं कि मुझ जैसा, मैं नहीं, मुझ जैसा। ठीक मेरे जैसा, ठीक मैं ही--यही स्वाद, यही गीत, यही देशना, यही प्रकाश, यही उत्सव, यही रंग--यही वसंत फिर आएगा पच्चीस सौ वर्ष बाद। और तब इसका मौलिक लक्षण होगाः मैत्री, प्रेम। तब इसकी मौलिक उपदेशना होगी प्रेम की।
बुद्ध की मौलिक उपदेशना थी करुणा की। क्योंकि लोग उस सदी के बड़ी हिंसा से भरे थे। हिंसा लोगों की जीवनचर्या थी। साधारण रूप से ही लोग हिंसक नहीं थे, धार्मिक अर्थों में भी हिंसक थे। धर्म के नाम पर भी बलि दी जाती थी। आज हिंदू बहुत शोरगुल मचाते हैंः गौ-वध बंद होना चाहिए। लेकिन गौ की भी बलि देते थे हिंदू, गौमेध यज्ञ होते थे। अश्वमेध यज्ञ होते थे, जिनमें घोड़ों की बलि दी जाती थी। और चर्चा तो नरमेध यज्ञों की भी है। तो साधारण जीवन में ही हिंसा नहीं थी, धर्म के नाम पर भी खूब हिंसा चल रही थी। बुद्ध ने करुणा का उपदेश दिया।
बुद्ध तो वही बोलते हैं जो युग की जरूरत होती है। बीमार को वही औषधि
तो देनी होती है, जो उसकी बीमारी के काम आ जाए। तो गौतम बुद्ध ने करुणा में अपने सारे संदेश को ढाला। उन्होंने कहा, पच्चीस सौ साल बाद जो बुद्धत्व होगा, उसकी मूल उपदेशना मैत्री की होगी, क्योंकि लोगों के जीवन से प्रेम के नाते विच्छिन्न हो गए होंगे। सेतु टूट गए होंगे। लोग अलग-थलग हो गए होंगे। प्रत्येक व्यक्ति अपने अहंकार में जीने लगेगा। और प्रत्येक व्यक्ति अपने अतिरिक्त और किसी की चिंता न करेगा, सोच-विचार न करेगा। हर व्यक्ति गहन स्वार्थ में डूबा होगा। यह रोग होगा, इसलिए उपचार मैत्री होगी।
वेदांत, तुम्हारा प्रश्न महत्वपूर्ण है। मैं किसी बुद्ध का अवतार नहीं हूं। गौतम बुद्ध गौतम बुद्ध हैं, मैं मैं हूं। लेकिन स्वाद जो मेरा लेगा, उसे ऐसी प्रतीति हो तो आश्चर्य नहीं। वेदांत, तुम्हारा प्रेम बुद्ध से मालूम होता है। इसलिए तुम्हें मुझमें बुद्ध का स्वाद मिल जाएगा।
मेरे पास न मालूम कितने ईसाई आकर संन्यस्त हुए हैं। निरंतर वे मुझसे आकर कहते हैं कि हम तो सोचते थे, क्राइस्ट एक कल्पना है, मगर आपकी आंखों में हमें क्राइस्ट के दर्शन हो गए। उनका प्रेम क्राइस्ट से है, तो उन्हें क्राइस्ट का स्वाद मिल जाएगा। जिनकी जैसी भावना होगी। जिनका जैसा भीतर भाव होगा। मेरे प्रेम में पड़ेंगे, तो उन्हें वही स्वाद मिलेगा जिस स्वाद की उन्हें पहचान है।
लेकिन क्राइस्ट कहो, या कृष्ण कहो, या बुद्ध कहो, या लाओत्सु कहो, ये नाम ही भिन्न हैं। ये नदियां अलग-अलग होंगी, मगर इनमें जो जलधार बहती है वह

एक ही है। तुम गंगा से पीओ जल, कि यमुना से पीओ जल, कि नर्मदा से पीओ जल, कि गोदावरी से पीओ जल, कि वोल्गा से, कि अमेजान से, कोई फर्क न पड़ेगा--सभी जल तुम्हारी प्यास को बुझा जाएंगे।
बुद्ध ने कहा है, तुम मुझे कहीं से भी चखो, मेरे स्वाद को एक ही जैसा पाओगे। सुबह चखो, दोपहर चखो, सांझ चखो, रात चखो; आज, कल--मेरे स्वाद में तुम भेद न पाओगे।
इस बात को और भी बढ़ाया जा सकता है।
तुम अतीत के बुद्धों को चखो, कि वर्तमान के, भविष्य के, स्वाद में भेद नहीं पाओगे। तुम्हें स्वाद की पहचान आएगी, तो तुम्हें तत्क्षण ऐसा ही लगेगा कि फिर आगमन हुआ बुद्ध का, फिर आगमन हुआ महावीर का, फिर आगमन हुआ कृष्ण का, फिर आगमन हुआ क्राइस्ट का। यह तुम्हारी प्रेम की भाषा है। अन्यथा मैं मैं हूं; गंगा गंगा है और गोदावरी गोदावरी है। और हिमालय हिमालय और आल्प्स आल्प्स। हालांकि ऊंचाइयों पर चढ़ोगे तो ऊंचाइयों का अनुभव एक होगा।
कोई किसी का पुनरावतार नहीं है। और जिनको परम ज्ञान हो गया, उनके लौटने का उपाय नहीं है। नहीं लौट सकते हैं--चाहें तो भी नहीं लौट सकते हैं। बुद्धत्व के बाद अगर आवागमन हो सके तो फिर अज्ञानी में और बुद्धों में फर्क क्या होगा? अज्ञानी वही जिसका आवागमन होता है। जिसे आना पड़े, बार-बार आना पड़े। जिसे बार-बार गर्भ के अंधेरे में गिरना पड़े। जिसे संसार के गड्ढे में बार-बार लौट आना पड़े। तब तक आना होता रहता है, जब तक परम बुद्धत्व नहीं हो जाता। जिस क्षण परम बुद्धत्व हो गया कि खो गए तुम, लीन हो गए विराट में, एक हो गए विस्तीर्ण में, ब्रह्म के साथ तुम्हारा तादात्म्य हो गया। अब कौन बचा लौटने को? और कहां लौटोगे? और कैसे लौटोगे? लौटने के लिए कुछ वासना चाहिए।
सच तो यह है कि बुद्ध बयालीस वर्ष जिंदा रहे ज्ञान के बाद, उसमें भी थोड़ी सी वासना कहीं न कहीं चाहिए। करुणा ही चाहे, कि औरों को जगाना है। रामकृष्ण के जीवन में उल्लेख है, प्यारा उल्लेख है, बहुत महत्वपूर्ण उल्लेख है। रामकृष्ण के भक्त विवेकानंद इत्यादि बहुत चिंतित होते थे। अच्छा नहीं लगता था। शिष्यों को थोड़ी बेचैनी होती थी; थोड़ी शर्म भी आती थी। क्योंकि रामकृष्ण ब्रह्मचर्चा में से उठ जाते और चौके में पहुंच जाते, पूछतेः क्या बन रहा है? ब्रह्मचर्चा चल रही है, सत्संग हो रहा है, शिष्य बैठे हैं, बड़ी ऊंचाइयों की बातें हो रही हैं और बीच में ही रुक जाते, और कहतेः मालूम होता है भजिए बन रहे हैं!
अब यह तो अखरेगी बात। रामकृष्ण की पत्नी को भी बहुत पीड़ा होती थी यह बात जान कर।
आखिर एक दिन शारदा ने कहा कि हमें आपसे कुछ कहना नहीं चाहिए, आप शायद अपने भोलेपन में ही ऐसा करते होंगे, मगर बीच ब्रह्मचर्चा में आप ऐसी बात पूछ लेते हैं। नये-नये आए लोग क्या सोचेंगे? जो आपको जानते हैं, जो आपकी प्रीति में पड़े हैं, उन्हें तो कोई अंतर नहीं पड़ता। लेकिन नये-नये लोग आते हैं, वे क्या सोचेंगे? और आप बीच में चर्चा छोड़ कर चौके में आ जाते हैं, झांक कर देखते हैं, पूछते हैंः क्या बन रहा है?
थाली जब शारदा लेकर आती थी, तो वे एकदम उठ कर खड़े हो जाते थे। जल्दी थाली उघाड़ कर देखते--क्या-क्या बना है? इसकी चिंता ही नहीं करते थे कि लोग बैठे हैं।
रामकृष्ण ने कहा, तूने आज पूछा है तो कहता हूं। जिस दिन मैं भोजन में
रस न लूं, जिस दिन तू थाली लाए और मैं दूसरी तरफ मुंह कर लूं, समझ लेना कि बस तीन दिन और जमीन पर रहूंगा। किसी तरह इस किनारे पर अपनी खूंटी गाड़े हूं। नाव मेरी आ चुकी है, पाल खुल चुका है, अब छूटी तब छूटी। किसी तरह खूंटी गाड़े इस किनारे पर रुका हूं कि और थोड़ी देर, कि और थोड़ी देर। कि बुझे दीये थोड़े और जल जाएं। कि जिन पौधों को मैंने सम्हाला है उनमें फूल आ जाएं। जो बीज मैंने बोए हैं, उनकी फसल कट जाए। कि थोड़ी देर और तुम्हें छाया दे दूं। कि थोड़ी देर और तुम मुझे पी लो और मुझे पचा लो। इसलिए रुका पड़ा हूं। यह भोजन में रस मेरी खूंटी है।

उस दिन तो किसी ने इस बात को गंभीरता से न लिया। लेकिन वर्षों बाद ऐसा हुआ, एक दिन शारदा लेकर थाली आई, रामकृष्ण लेटे थे बिस्तर पर, करवट लेकर दूसरी तरफ मुंह कर लिया। तत्क्षण उसे याद आया--शारदा को याद आया--उसके हाथ से थाली छूट कर गिर पड़ी। ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हुई।
ज्ञान उपलब्ध हो जाने के बाद थोड़ी देर इस जमीन पर रहना भी खूंटियां गाड़ कर संभव होता है। नहीं तो ज्ञान के साथ ही मृत्यु घट सकती है। बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को, कि ध्यान के साथ-साथ करुणा को भी जगाए चलना। ताकि जब ध्यान का फूल खिले और प्राण-पखेरू उड़ने को होने लगें, तो करुणा तुम्हें रोक ले।
करुणा वासना का शुद्धतम रूप है।
वासना का अर्थ होता हैः मुझे सुख मिले; करुणा का अर्थ हैः दूसरे को सुख मिले। बात तो वही है, सिर्फ मेरे से दूसरे पर फेंक दी गई है। चादर तो वही है जो मैं ओढ़े बैठा था, अब दूसरे को उढ़ा दी है। वासना और करुणा का अंतरतम भिन्न-भिन्न नहीं है। वासना अपने लिए मांगती है, करुणा दूसरे के लिए मांगती है। वासना स्वार्थ है, करुणा परार्थ है। वासना हैः मेरे ऊपर सुख ही सुख बरसें। करुणा हैः सब पर सुख बरस जाए। मगर सुख बरसे।
यह भी खूंटी बन जाती है।
लेकिन एक बार शरीर छूट गया, ज्ञान के बाद, तो फिर शरीर में वापस लौटने
का कोई उपाय नहीं है। एक बार नाव छूटी सो छूटी, फिर लौटती नहीं--कभी नहीं लौटी।
हमारे पास जो प्रतीक-कथाएं हैं, उनको तुम बहुत लकीर के फकीर की तरह मत लेना। हम कहते हैंः राम और कृष्ण और बुद्ध, सब एक ही विष्णु के अवतार हैं। यह सिर्फ कहने की बात है। इसका अर्थ केवल इतना ही होता है कि एक ही सत्य सब में प्रकट हुआ है। एक ही अनुभूति सब में जगी है। एक ही ज्योति जन्मी है। उस ज्योति का नाम हमने विष्णु दे दिया।
लेकिन ऐसा मत सोचना कि एक ही व्यक्ति का अवतरण हो रहा है। व्यक्ति का ज्ञान के जगत में कोई स्थान नहीं है। सीमा ही नहीं बचती तो व्यक्ति कैसे बचेगा? व्याख्या नहीं बचती, तो व्यक्ति कैसे बचेगा?
इसलिए वेदांत, तुम्हारा प्रश्न तो सार्थक है, लेकिन ठीक से समझ लेना। मैं मैं हूं, यद्यपि मेरा स्वाद वही है। क्योंकि वह स्वाद मेरा नहीं, परमात्मा का है। चखोगे, अनुभव करोगे, तो बुद्ध को पाओगे, लाओत्सु को पाओगे, जरथुस्त्र को पाओगे। सबको पा लोगे। नहीं चखोगे, दूर-दूर खड़े रहोगे, द्वार-दरवाजे बंद किए रहोगे, तो किसी का भी अनुभव नहीं कर पाओगे। लेकिन मैं न तो बुद्ध हूं, न लाओत्सु, न महावीर, न जरथुस्त्र। कोई इस जगत में दुबारा नहीं आता। नानक नानक, कबीर कबीर, फरीद फरीद, मंसूर मंसूर।

दूसरा प्रश्नः मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं। ऐसा लगता है कि दुख मुझे भाता है। फिर भी चाहता हूं कि सुख मिले। सुख मिलता है तो भरोसा ही नहीं होता। सुख मिलता है तो लगता है कि सपना है। मेरी उलझन सुलझाएं!

रामकृष्ण! यह तुम्हारी ही उलझन नहीं, प्रत्येक मनुष्य की उलझन है। यह प्रश्न निजी नहीं, सार्वजनिक है। तुम्हें समझ में आ रहा है, औरों को समझ में नहीं आ रहा है। इस अर्थ में तुम सौभाग्यशाली हो! तुम्हें ध्यान की थोड़ी-थोड़ी झलक लगने लगी। इसलिए तुम्हें यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी कि मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं। इसे देखने के लिए आंखें चाहिए। यही हालत है लोगों की। कोई सुख को स्वीकार नहीं कर पाता है। लेकिन पता नहीं चलता कि मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं। लोग यही सोचते हैं कि सुख मुझे मिलता नहीं है। मिले तो मैं तो अंगीकार करने को तैयार हूं।
सचाई उलटी है। सुख मिलता है, तुम अंगीकार नहीं करते। सुख मिलता है, तुम सम्हालते नहीं। सुख मिलता है, तुम संवारते नहीं। सुख मिलता है, तुम पलक-पांवड़े नहीं बिछाते। सुख मिलता है, तुम द्वार खोल कर भीतर अंतस्तल में नहीं लेते। सुख मिलता है, तो तुम भयभीत हो जाते हो। सुख मिलता है, तो तुम सिकुड़ जाते हो। सुख मिलता है, तो तुम सोचते हो, यह हो नहीं सकता। यह मेरे

भाग्य में कहां! यह मुझ अभागे को कैसे हो सकता है! जरूर कहीं कुछ भूल-चूक हो रही है। जरूर मैं कल्पना कर रहा हूं।
यह घटना यहां रोज घटती है। जैसे ही किसी व्यक्ति को ध्यान में थोड़ी सीढ़ियां उतरने का अवसर मिलता है, सुख फूटता है। सुख के झरने फूटते हैं। सुख की फुलझड़ियां फूटती हैं। और बस, वह भागा हुआ मेरे पास आता है और कहता है कि भरोसा नहीं आता; यह जरूर मैं कल्पना कर रहा हूं। इतना सुख हो ही नहीं सकता।
उसकी बात भी मैं समझता हूं। क्योंकि जिसने दुख ही दुख जाना हो, अचानक, एकदम सुख की फुलझड़ियां फूटने लगें, कैसे भरोसा आए? भरोसा लाना भी चाहे तो कैसे लाए? जिसने कांटे ही कांटे अनुभव किए हों और अचानक कांटों में गुलाब का फूल खिल जाए, तो ऐसा ही लगेगा कि आंखें धोखा तो नहीं खा रही हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि बहुत दिन तक फूल की आकांक्षा की है, तो अब मैं फूल को देखने लगा हूं, जो है नहीं, दिवास्वप्न है, जो हो नहीं सकता। क्योंकि अनुभव तो सिर्फ कांटों का है। अनेक लोगों ने तुम्हें धोखा दिया। फिर एक दिन कोई आदमी अगर धोखा न दे, तो डर लगता है। यह तो मान ही नहीं सकते तुम कि यह धोखा न देगा। यही भय लगता है कि कहीं और भी बड़ा जाल न हो इसके पीछे।
मुल्ला नसरुद्दीन के पास उसका पड़ोसी रुपया मांगने आया कुछ उधार। सौ रुपये उधार मांगे। नसरुद्दीन देना तो नहीं चाहता था--कौन देना चाहता है उधार? मगर लोकलाज, प्रतिष्ठा... इनकार न कर सका। और चार लोग बैठे थे, इनके सामने इनकार करना सिर्फ सौ रुपये के लिए! मान कर कि ये सौ रुपये गए, किसी तरह जी को कड़ा करके, राम-राम करके दे दिए सौ रुपये। मान तो लिया मन में कि ये गए, हाथ से गए--मान ही लो--लौटने नहीं हैं। औरों को भी दिए हैं। कभी नहीं लौटे। रुपये तो दूर, जिनको रुपये दे दो, वे भी फिर कभी नहीं लौटते। जिनसे छुटकारा पाना हो, लोग कहते हैं, उनको रुपये उधार दे दो। फिर उनसे छुटकारा हो गया। फिर वे कभी तुम्हारे घर न आएंगे। रास्ते पर भी मिल जाएंगे तो रास्ता काट कर निकल जाएंगे। जिनसे बचना हो, उनको उधार दे दो।
दिल मसोस कर दे तो दिए। दिल कड़ा करके दे तो दिए। गाली देते हुए भीतर-भीतर कि कमबख्त, खूब आया! कि कमबख्त चार आदमियों के सामने आ गया! अकेले में आता तो इसको दिखलाता! लेकिन हैरान हुआ कि जैसा वह आदमी कह गया था कि तीसरे दिन वापस कर दूंगा, तीसरे दिन वह वापस आकर सौ रुपये दे गया। भरोसा नहीं आया। विश्वास ही नहीं आया! नसरुद्दीन उस आदमी से बोला कि मैं नहीं लूंगा ये रुपये! उसने कहा, क्यों? नसरुद्दीन ने कहा कि पहली बार तूने धोखा दिया! उसने कहा, कैसा धोखा? नसरुद्दीन ने कहा, पहली बार जब तू ले गया तो मैंने पक्का मान लिया था कि तू वापस नहीं लौटाएगा। और तू वापस लाया। यह धोखा। मेरी पहली धारणा तूने तोड़ी। और अब तू वापस लौटा रहा है, मैं नहीं लूंगा, क्योंकि इसके पीछे और कोई जाल होगा। तू ये रख ही ले, और मुझे झंझट में न डाल। क्योंकि तू सौ लौटा जाएगा, कल तू हजार मांगने आएगा--पक्का है! और फिर मैं हजार देने से इनकार न कर सकूंगा।
नसरुद्दीन ने उससे कहा कि तूने पुरानी कहानी सुनी है?
पुरानी सूफी कहानी है कि एक आदमी एक सेठ के घर से एक कड़ाही मांग कर ले गया। घर मेहमान आए थे। गरीब आदमी था, पूड़ी बनानी थी, हलवा बनाना था--कड़ाही नहीं थी। दूसरे दिन जब वापस आया तो कड़ाही लाया और उसके साथ एक छोटी कड़ाही और लाया। सेठ ने कहा, यह छोटी कड़ाही कहां से ले आया? तू ले तो एक ही गया था। उसने कहा, क्या करूं, रात आपकी कड़ाही ने बच्चा जन्मा। तो आपकी कड़ाही, बच्चा भी आपका। सेठ भी हैरान हुआ--कड़ाही बच्चा जन्मे! लेकिन जब यह मूर्ख दे ही रहा है, तो मना कौन करे? सेठ ने कहा, बिल्कुल ठीक, मुझे पता है कि कड़ाही गर्भवती थी। रख जा!
फिर कुछ दिनों बाद वह आदमी आया कि एक बड़ा तपेला चाहिए। फिर मेहमान आए हैं, खीर बनानी है। सेठ बड़ा खुश हुआ। सेठ ने कहा, जरा सम्हाल कर, तपेला... जरा गर्भ का ख्याल रखना, थोड़ा सम्हाल कर। और सेठ ने दूसरे दिन आशा रखी कि अपना तपेला भी आएगा और साथ में बच्चा इत्यादि भी आएगा। यह गरीब आदमी भी खूब है! लेकिन दो-तीन दिन आदमी लौटा ही नहीं। तो थोड़ी चिंता हुई; तो सेठ ने जाकर द्वार पर दस्तक दी और कहा कि मामला क्या है? तपेला भी नहीं लौटाया! और

तपेले का बच्चा? उसने कहा, क्षमा करें, मैं क्या करूं, तपेला आपका मर गया! सेठ ने कहा, तपेले कहीं मरते हैं? उसने कहा, जब बच्चे देते हों तो मर भी सकते हैं।
नसरुद्दीन ने कहा, भैया, तू ये सौ रुपये ले जा! मैं इन झंझटों में नहीं पड़ता। एक दफा धोखा खा गया, यह बहुत--कि मैंने कुछ माना और कुछ हुआ। अब दुबारा धोखा नहीं खा सकता।
ऐसी हालतें हैं। आदमी इतने धोखे खाता है कि भरोसा नहीं कर सकता कि कोई आदमी और धोखा न देगा। आदमी इतने दुख पाता है कि भरोसा नहीं कर सकता कि सुख मिलेगा।
जब ध्यान में पहली दफा सुख की झलक आनी शुरू होती है, तो मन जो पहला सवाल उठाता है वह यही कि शायद मैं किसी कल्पना-जाल में पड़ गया हूं। और अगर तुम दूसरों से भी कहोगे, तो वे कहेंगे, सम्मोहित हो गए हो। दुख अगर तुम किसी से कहोगे, तो कोई नहीं कहेगा कि सम्मोहित हो गए हो। यह मजा तुम देखना! अगर तुम किसी के सामने रोओ और अपने दुख की बात कहो, तो कोई नहीं कहेगा
कि तुम कल्पना कर रहे हो। लेकिन अगर तुम सुख का गीत गाओ और तुम्हारी आंखों में चमक हो और चेहरे पर रौनक हो और तुम किसी से कहो कि मैं परम सुखी हो रहा हूं, ध्यान में बड़ा आनंद आ रहा है, वह कहेगा कि तुम किसी और को बुद्धू बनाना! यह चमक इत्यादि सब कल्पना है। यह सिर्फ मनोभाव है। यह तुमने मान लिया है, यह मान्यता है।
दुख मान्यता नहीं है, दुख सत्य है। और सुख मान्यता है! कारण भी साफ है।
न उसने कभी सुख जाना है, न सुखी लोग जाने हैं। कैसे मान ले कि तुम्हें सुख हुआ है? इसीलिए तो बुद्धों पर हमें सदा संदेह होता है। इतना आनंद, इतना अमृत हो ही नहीं सकता, हम मानें कैसे? जहर हमारा एकमात्र अनुभव है। और ये बुद्ध कहते हैंः बरसे अमी! कि अमृत बरस रहा है! कि कमल खिल रहे हैं। ये कबीर कहते हैं कि हजार-हजार सूरज मेरे भीतर ऊगे हैं। और तुमने तो जब भी आंख बंद की तो सिवाय अंधेरे के कुछ भी नहीं पाया! और अंधेरे में अगर ज्यादा खोजो तो कुछ सांप-बिच्छू सरकते हुए भला मिल जाएं, लेकिन कोई ईश्वर इत्यादि के दर्शन तुम्हें भीतर होते नहीं! और लोग कहते हैं कि आंख बंद की और परम विभा देखी परमात्मा की। झूठ ही कहते होंगे! या कोई सपना देखते होंगे! या अफीम इत्यादि ले ली होगी! या भांग इत्यादि पी ली होगी! कुछ मामला गड़बड़ होगा।
तुम ठीक ही कहते हो, रामकृष्ण, यही सबकी स्थिति है।
तुम कहते होः "मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं।"
मगर इसे तुम समझ सके हो, यह बात महत्वपूर्ण है। यह एक बड़ा कदम है। यह सुख को अंगीकार करने की तरफ पहला कदम है--यह जानना कि मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं। लोगों को तो पता ही नहीं है कि वे सुख को स्वीकार नहीं करते हैं। उनसे तुम कहो तो वे तुमसे राजी नहीं होंगे। वे कहेंगे, क्या बातें कर रहे हो? सुख को स्वीकार न करूंगा? सुख की ही तो तलाश कर रहा हूं। तलाश जरूर लोग करते हैं, मगर अंगीकार नहीं करते। और मिल जाए तो पहचानते नहीं। तलाश करते-करते तलाश करना उनकी आदत हो जाती है। रवींद्रनाथ की कथा है। प्रीतिकर कहानी है। उस पर उन्होंने गीत लिखा है, कि मैं ईश्वर को खोजता था जन्मों-जन्मों से। कभी दूर किसी तारे के पास उसकी झलक मुझे दिखाई पड़ी और मैं भागा। लेकिन जब तक तारे तक पहुंचता तब तक ईश्वर आगे निकल चुका था। कभी दूर सूर्यों के पास उसका स्वर्ण-रथ चमकता हुआ दिखाई पड़ा, लेकिन जब तक मैं पहुंचूं तब तक वह दूर निकल चुका था। ऐसा बार-बार होता रहा और मैं चूकता रहा और चूकता रहा। और फिर एक दिन अनहोनी घटी। मैं उस दरवाजे पर पहुंच गया जहां तख्ती लगी थी कि यहां परमात्मा रहता है। मेरे आनंद की कल्पना करो! दौड़ कर सीढ़ियां चढ़ गया। कुंडी हाथ में लेकर बजाने ही जा रहा था, तभी एक ख्याल उठा, कि अगर सच में ही द्वार खुल गया और ईश्वर मुझे मिल गया, तो फिर मैं क्या करूंगा? खोज ही तो मेरी जिंदगी है। तलाश ही तो मेरा मजा है। इसी तरह तो मैं जन्मों-जन्मों जीया हूं--खोजता हुआ। अगर ईश्वर मिल ही गया और उसने गले लगा लिया, फिर? फिर करने को कुछ भी न बचेगा। और यह बात इतनी घबड़ाने वाली मालूम पड़ी--कि फिर करने को कुछ भी न

बचेगा, कुछ भी नहीं! क्योंकि ईश्वर को पा लेने के बाद और क्या पाने को बचता है? सब पा लिया, ईश्वर को पा लिया तो। और सब हो गया, ईश्वर मिल गया तो। फिर? प्रश्नचिह्न बड़ा हो गया। इतना बड़ा हो गया और घबड़ाहट इतनी बढ़ गई कि रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैंने सांकल धीमे से छोड़ी--कि कहीं बज ही न जाए! और जूते पैर से निकाल लिए--कि सीढ़ियों से उतरूंगा तो कहीं आवाज, जूतों की चरमराहट, और परमात्मा दरवाजा खोल ही न दे! फिर जूते हाथ में लेकर जो मैं भागा हूं वहां से, तो फिर मैंने पीछे लौट कर नहीं देखा! और अब मैं फिर ईश्वर को खोजता हूं। और मुझे अब पता है कि वह कहां रहता है। सिर्फ उस जगह को छोड़ कर खोजता हूं।
यह कविता महत्वपूर्ण है। ये कविताएं ऐसी ही कविताएं नहीं हैं। ये कविताएं मनुष्य के अंतर्लोक, मनुष्य के अंतर्विज्ञान की कविताएं हैं। इनमें बड़ी पैनी दृष्टि है। पारदर्शी हैं। रवींद्रनाथ ने बात पकड़ी, ठीक पकड़ी। यही हालत है। सुख को तुम खोजते हो, यह सच है; मगर सुख मिल जाए तो स्वीकार नहीं करोगे। सुख मिल जाए तो तुम बचोगे। तुम शायद सुख के स्थान को छोड़ कर सब जगह खोजने लगोगे। क्योंकि खोज तुम्हारी आदत, खोज में तुम्हारा अहंकार, खोज में तुम। और जब सुख बरसता है तो अहंकार गलता है। और कौन अपने अहंकार को गलाना चाहता है?
इसलिए लोग प्रेम से बचते हैं, सुख से बचते हैं, धर्म से बचते हैं, सत्य
से बचते हैं, ध्यान से बचते हैं, प्रार्थना से बचते हैं। और बचने की उन्होंने बहुत तरकीबें निकाल ली हैं। झूठी प्रार्थनाएं बना ली हैं, झूठे मंदिर बना लिए हैं, झूठे गिरजे बना लिए हैं, झूठे पंडित-पुरोहित खड़े कर लिए हैं; और औपचारिक रूप से मंदिर हो आते हैं। उस मंदिर नहीं जाते, जहां उससे मिलना हो जाए। उस मंदिर से बच कर निकलते हैं। उस मंदिर को गालियां देते हैं। उस मंदिर की निंदा करते हैं। क्योंकि निंदा न करेंगे तो कहीं किसी दिन चले ही न जाएं! तो निंदा का इतना बड़ा पहाड़ खड़ा कर लेते हैं कि जब तक उस निंदा के पहाड़ को न हटाएंगे, तब तक उस मंदिर तक जाना न हो सकेगा।
लोग प्रेम से बचते हैं। प्रेम के नाम पर उन्होंने झूठे प्रेम खड़े कर लिए हैं। विवाह इत्यादि की संस्थाएं खड़ी कर ली हैं, ताकि प्रेम से बचना हो सके। धर्म से बचते हैं; बचने के लिए जन्म से ही धर्म को तैयार कर लिया है। कोई ईसाई घर में पैदा हुआ, ईसाई हो गया। यह भी क्या मूढ़ता की बात हुई! कोई जैन घर में पैदा हुआ और जैन हो गया।
घरों में पैदा होने से धर्मों का कोई संबंध हो सकता है? फिर तो आज नहीं
कल कोई कम्युनिस्ट घर में पैदा होगा तो कम्युनिस्ट होना पड़ेगा उसको! और कांग्रेसी के घर में पैदा होगा तो कांग्रेसी होना पड़ेगा! और सोशलिस्ट के घर में पैदा होगा तो सोशलिस्ट! और जनसंघी के घर में पैदा होगा तो जनसंघी! क्योंकि बाप कहेगा कि मेरे खून का ख्याल रख! मैं जनसंघी, तू भी जनसंघी। मेरा बेटा है! मेरा खून, मेरी मांस-मज्जा तुझमें है! तू और कुछ हो कैसे सकता है?
अगर राजनीतिक विचारधारा जन्म से नहीं मिलती, तो धार्मिक विचारधारा कैसे जन्म से मिल सकती है? धर्म भी तो एक आंतरिक चुनाव है। व्यक्ति को स्वयं चुनना चाहिए।
लेकिन सब तरह के उपाय किए जाते हैं कि व्यक्ति अपने धर्म को न चुन सके। तो हम छोटे-छोटे बच्चों को धर्म पिलाते हैं! झूठा धर्म! क्योंकि जो उसने नहीं चुना है, वह झूठा होगा। जो स्वयं नहीं चुना गया है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। जो अपनी अंतरात्मा के आनंद से नहीं गृहीत किया गया है, वह कभी तुम्हारी आत्मा नहीं बन सकता है। ज्यादा से ज्यादा औपचारिक आचरण रहेगा।
बाप कहता है कि चल मंदिर, तो बेटा जाता है। जाना पड़ता है। बेटा मजबूर है। बेटा असहाय है। बेटा बाप पर निर्भर है। बाप जिस मंदिर में झुकाएगा, वहां झुकेगा। कुरान याद करवाएगा तो कुरान याद करेगा और गीता याद करवाएगा तो गीता याद करेगा। इसके पहले कि अपनी बुद्धि जगे, जहर भर दिया जाएगा। इसके पहले कि वह सोच-विचार करने में समर्थ हो, मुसलमान हो चुका होगा, ईसाई हो चुका होगा, जैन हो चुका होगा। फिर तो सोच-विचार करने का मौका नहीं रह

जाएगा। ये धारणाएं तो गहरी बैठ चुकी होंगी। ये धारणाएं अचेतन का अंग बन चुकी होंगी। यह धर्म से बचने का उपाय है।
और अभी भारतीय संसद में वे ला रहे हैं नया अधिनियम, कि कोई व्यक्ति आसानी से धर्म-परिवर्तन न कर सके। इससे ज्यादा अलोकतांत्रिक और कोई बात नहीं हो सकती।
सच तो यह है कि हमें संसद में एक ऐसा अधिनियम लाना चाहिए कि कोई मां- बाप अपने बच्चों पर अपना धर्म न थोप सकें। जैसे हम कहते हैं कि इक्कीस साल का बच्चा हो जाए तब वोट का अधिकारी होगा, ऐसे हमें तय करना चाहिए कि कम से कम बयालीस साल का जब आदमी हो जाए--दुगुना कह रहा हूं, क्योंकि राजनीति में अगर इक्कीस साल में आदमी प्रौढ़ समझा जाए, तो धर्म में कम से कम बयालीस साल में प्रौढ़ समझा जाना चाहिए। जब बयालीस साल का कोई आदमी हो जाए... तब तक उसे खोजना चाहिए। मंदिर में जाए, मस्जिद में जाए, गुरुद्वारे में जाए, गुरुग्रंथ पढ़े, कुरान पढ़े, वेद पढ़े; खोजे, तलाशे। बयालीस साल की उम्र में तय करे कि अब मेरा मंदिर कौन! तब इस दुनिया में धर्म होगा।
ऐसा कुछ अधिनियम लाओ कि मां-बाप जबरदस्ती अपने बच्चों को अपने धर्म में सम्मिलित न कर सकें। मां-बाप की ज्यादती को रोको। वह तो रोकने की तैयारी नहीं है। नियम लाया जा रहा है कि कोई हिंदू ईसाई न हो सके अगर होना चाहे।
कौन से हिंदू ईसाई होते हैं? कोई ब्राह्मण तो ईसाई होते नहीं। कोई समृद्ध हिंदू तो ईसाई होते नहीं। कौन ईसाई होते हैं? हिंदुओं ने जिनको सदियों-सदियों से पीड़ित किया है, वे लोग ईसाई होते हैं। अब उनको तुम यह भी मौका न दो कि कम से कम तुम्हारे जाल से छूट जाएं! तुम्हारे मंदिर में प्रवेश नहीं है उनके लिए। जरा मजा देखो! जिस शूद्र के लिए तुम्हारे मंदिर में प्रवेश नहीं है, तुम्हारे कुएं से पानी नहीं भर सकता, तुम्हारी बेटी से विवाह नहीं कर सकता, तुम्हारे साथ बैठ कर भोजन नहीं कर सकता, उस शूद्र को तुम यह भी हक नहीं दे सकते कि कम से कम तुम्हारे जेलखाने से मुक्त हो जाए! उसे ईसाई होना है, ईसाई हो जाए; सिक्ख होना है, सिक्ख हो जाए; बौद्ध होना है, बौद्ध हो जाए; और उसे सारे धर्मों से छुटकारा पा लेना है तो सारे धर्मों से छुटकारा पा ले। यह भी तुम छुटकारा नहीं देना चाहते? सताओगे भी! सता रहे हो सदियों से। अभी भी सता रहे हो। अभी भी रोज हरिजनों पर हमले किए जाते, झोपड़े जलाए जाते, उनके गांव के गांव बर्बाद किए जाते, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार किए जाते, उनके बच्चे, जिंदा बच्चे आग में भून कर जलाए जाते, उनकी बस्तियां उजाड़ दी जातीं। आज भी यह चल रहा है। और अगर वे बदलना चाहें अपने धर्म को, तो उसका भी हक नहीं हो सकता। और इस अधिनियम को नाम दिया हैः फ्रीडम ऑफ रिलीजन! इस देश में चमत्कार होते हैं! इसको धर्म-स्वतंत्रता का अधिनियम कहा जा रहा है। यह धर्म-परतंत्रता का अधिनियम है। और फिर तुम इतने क्यों घबड़ाते हो? अगर ईसाई कुछ लोगों को राजी कर लेते हैं ईसाई होने के लिए, तो तुम्हें कौन रोक रहा है? तुम कुछ ईसाइयों को हिंदू होने के लिए राजी क्यों नहीं कर पाते? तुम्हारे पंडित-पुरोहित और संन्यासी क्या कर रहे हैं? तुम्हारे साधु-महात्मा क्या कर रहे हैं? ये क्या बिल्कुल नपुंसक हैं? इनसे कुछ भी नहीं होता?
कारण हैं। इनसे कुछ हो नहीं सकता। क्योंकि तुमने लोगों को इतना सताया
है कि जो एक बार तुम्हारे जाल से छूट जाएगा, फिर तुम्हारे जाल में नहीं पड़ना चाहेगा। तुमने दिया क्या है? तुमने धर्म के नाम पर दिया क्या है उन्हें? न धर्म दिया है, न जीने की सुविधा दी है। धर्म के नाम पर तुमने शोषण किया है। धर्म के नाम पर तुम उनकी छाती पर बैठे हो। उतरना भी नहीं चाहते।
तो हमने झूठा धर्म पैदा कर लिया है--जबरदस्ती मां-बाप थोप देते हैं; कानून थोप देता है; चर्च-पादरी-पुरोहित थोप देते हैं। बच्चे के पीछे एकदम हम पड़ जाते हैं। सारी दुनिया के लोग इस कोशिश में रहते हैंः बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जाए। क्यों? डर है कि कहीं बच्चे जवान हो जाएं और फिर न सुनें!

और इस बात में सचाई भी है थोड़ी। अगर कोई बच्चा बचपन से ही बिगाड़ा न जाए, तो बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र का होकर तुम जब उसको कहोगे कि गणेश जी को पूजो! तो वह कहेगा, क्या मजाक करवा रहे हो? इन सज्जन को? सूंड़ वाले सज्जन को पूजें? कि अब जय गणेश, जय गणेश कहो! वह कहेगा, मुझमें कुछ अक्ल है कि नहीं है? अब गणेश-उत्सव मनाओ! तो वह हंसेगा। उसे यह बात बचकानी मालूम पड़ेगी। वह सोचेगा, विचारेगा। जिसे तुमने बचपन से धर्म की शिक्षा नहीं दी है, उससे तुम एकदम अचानक कहोगे--जब वह तीस वर्ष का हो चुका होगा, विश्वविद्यालय से लौटेगा, सारे धर्मों को समझ कर आएगा--उससे तुम कहोगे कि अब यज्ञ होगा, इसमें लाखों-करोड़ों रुपये का घी और अन्न फेंका जाएगा, तो तुम समझते हो वह तुमसे राजी होगा? तुम समझते हो तुम उसको मूढ़ बना पाओगे? तुम उससे यह कह पाओगे कि इस तरह अग्नि में गेहूं और घी डालने से विश्व-शांति होगी?
अभी तक नहीं हुई, कितने तुम यज्ञ कर चुके! विश्व-शांति की तो बात दूर,
वह जो पंडित यज्ञ कर रहा है, उसके घर में भी शांति नहीं है। न मालूम कितने यज्ञ करवा चुका है। घर की तो छोड़ दो, हर यज्ञ के बाद जो सौ-पचास पंडे- पुरोहित यज्ञ करवाते हैं, उनमें झगड़ा मचता है। क्योंकि कौन कितना लूटे? कौन कितना पाए? इसमें बड़ी मारामारी हो जाती है। इसमें मारपीटें हो गई हैं। इसमें पुलिस तक मामले पहुंच गए हैं। विश्व-शांति कर रहे हो!
और अजीब-अजीब बातें लोगों को तुम कहोगे। अगर तुमने उन्हें बचपन से ही नहीं बिगाड़ा है तो वे मानेंगे? तुम कहोगे कि इससे वर्षा होगी। तो वे कहेंगे, तुम किसको बुद्धू बना रहे हो? घी जलाने से वर्षा होने का क्या संबंध हो सकता है? अगर वर्षा करनी हो तो कुछ वैज्ञानिक उपाय करो। वर्षा हो सकती है। लेकिन रूस में वर्षा की जाती है, तो हवाई जहाज से वे बर्फ के छोटे- छोटे टुकड़े फेंक देते हैं बदली में; बर्फ की ठंडक से बदली में छिपा हुआ पानी प्रकट हो जाता है, वर्षा शुरू हो जाती है। लेकिन घी जलाओगे, गेहूं जलाओगे! वर्षा चाहिए इसलिए ताकि गेहूं पैदा हो, और गेहूं जला रहे हो! तुम्हारी मूढ़ता का कोई अंत है!
लेकिन बच्चों को ये मूढ़ताएं दिखाई नहीं पड़तीं, क्योंकि बचपन से उनकी आंखों पर यही चश्मे चढ़ा दिए जाते हैं।
तो धर्म झूठा तुम्हारा! तुम्हारा प्रेम झूठा! और तुम्हारे सुख झूठे! तुम्हें झूठे सुख सिखाए जा रहे हैं। हर बच्चे को कहा जा रहा है कि जब तू विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर लौटेगा, तब तुझे सुख मिलेगा। वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर, लेकर कागज का बंडल, सर्टिफिकेट घर आ जाता है और पूछता हैः सुख अभी तक नहीं मिला? तो फिर हम टालते हैं। हम कहते हैं, अभी कैसे मिलेगा? अभी तेरी शादी होगी, घोड़े पर चढ़ेगा, बैंडबाजा बजेगा, तब तुझे सुख मिलेगा। सोचता हैः चलो! घोड़े पर चढ़ता है, बैंडबाजा बजवाता है, फिर पत्नी को लेकर घर आ जाता है और पूछता हैः अभी तक सुख नहीं मिला? तो हम उससे कहते हैं, इतनी जल्दी कहीं मिलता है! जब तक बाल-बच्चा नहीं होगा, कहीं सुख मिला? जब तक बाल-बच्चा हो जाता है, तब भी वही पूछ रहा है वह, कि सुख कब मिलेगा? तो हम कहते हैं, जरा बच्चे बड़े होने दो, इनको शिक्षित होने दो, इनका विवाह होने दो। वह पूछना तभी बंद करता है जब उसके बच्चे उससे पूछने लगते हैं कि सुख कब मिलेगा? तब वह भी वही बातें दोहराने लगता है जो उसके बाप ने उससे दोहराई थीं, और बापों के बाप सदा से दोहराते रहे हैं।
एक झूठ को हम सरकाए चले जाते हैं। हम बच्चों से कहते हैंः जब तुम बड़े होओगे, तब तुम्हें सब समझ में आ जाएगा। और हम जानते हैं कहते वक्त कि हमें भी कुछ समझ में नहीं आया है और हम बच्चों से कह रहे हैं! मगर टाल रहे हैं, कम से कम अपनी लाज, अपनी शर्म तो, अपना चेहरा तो बच जाए! बड़ा होगा तब देखा जाएगा। बड़ा होगा तब तक खुद ही समझ जाएगा कि कहीं कुछ नहीं समझ में आता। बड़े होने से क्या समझ में आता है?
मेरे एक शिक्षक ने, जब मैं स्कूल में विद्यार्थी था, मुझसे कुछ कहा। इसी तरह की कुछ बात कही। ईश्वर के संबंध में मैंने कुछ पूछा, तो कहा, जब बड़े हो जाओगे तब समझ में आएगा। तो मैंने कहा, ठीक-ठीक उम्र बता दें। क्योंकि

बड़े का क्या मतलब? पक्की उम्र बता दें, ठीक उस उम्र में मैं फिर आपके घर हाजिर हो जाऊंगा।
वे थोड़े डरे। उन्होंने कहा, उम्र का इसमें क्या, जब बड़े हो जाओगे तब...
।
मैंने कहा, लेकिन मैं कब बड़ा हो जाऊंगा? कोई भी तारीख दे दें! अगर आप जीवित रहे, मैं जीवित रहा, तो उस दिन तय करेंगे।
वे थोड़े डरे! वे थोड़े घबड़ाए! सज्जन आदमी थे। उन्होंने कहा, भाई, मुझे माफ करो; यह कोई मैं झगड़ा-झांसा नहीं लेना चाहता।
मैंने कहा, आपको हो गया है?
उन्होंने कहा, अब क्या छिपाना! मुझसे भी यही कहा गया था कि बड़े हो जाओगे तब हो जाएगा। वही मैं तुमसे कह रहा हूं। न मुझे हुआ है--और अब दुबारा तुम यहां आना मत।
तुम बच्चों से कह रहे हो कि बड़े हो जाओगे तब तुम्हें सब मालूम हो जाएगा! इस तरह स्थगित कर रहे हो! धोखा दे रहे हो! बड़े होते-होते वे भी धोखा देने में निष्णात हो जाएंगे।
यहां हर कहानी सुख पर समाप्त होती है! तुम पढ़ते हो नः एक था राजा, एक थी रानी। हर कहानी ऐसे शुरू होती है। फिर शहनाई बजती है आखिर में। और दोनों का विवाह हो गया और विवाह के बाद दोनों सुख से रहने लगे। बस यहां कहानी समाप्त हो जाती है। हिंदी फिल्में भी यहीं समाप्त होती हैं आकर। पहले काफी मारधाड़, मुश्किलें, प्रेम के त्रिकोण, बड़ी झंझटें--और सबको पता है, हाल में जो बैठे हैं उनको पता है कि आखिर में सब ठीक हो जाएगा, कोई इतनी घबड़ाने की जरूरत नहीं है। अंत में सदा सब ठीक हो जाता है। और आखिर में कोई न कोई उपाय से सब ठीक हो जाता है, एकदम शहनाई बजने लगती है, दूल्हा-दुल्हन, फूल, गले में मालाएं डाल दी गईं और दि एंड!
सच तो यह है कि यहीं से अब असली कहानी शुरू होती है। मगर उस कहानी को कहा नहीं जाता। क्योंकि उसको कहो, तो कौन अपनी भद्द खोले? दोनों का विवाह हो गया और फिर दोनों सुख से रहने लगे! विवाह होने के बाद ही लोग दुख से रहते हैं। उसके पहले थोड़ा-बहुत सुख चाहे रहा भी हो।
एक युवती अपने प्रेमी से कह रही थी--उनका दोनों का विवाह होने वाला है--गले में हाथ डाल कर वह उस युवक से कह रही थी कि घबड़ाओ न, जब मैं तुम्हारे साथ रहूंगी, तुम्हारे सब दुखों को बांट लूंगी।
उस युवक ने कहा, लेकिन दुख मुझे कोई हैं ही नहीं।
उसने कहा, मैं अभी की बात नहीं कर रही हूं, विवाह के बाद की बात कर रही हूं।
तुम ठीक कहते, रामकृष्ण, कि मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं। मगर
यह एक महत्वपूर्ण अनुभूति है जो तुम्हें हुई। एक बोध, कीमती। इस बोध से द्वार खुलेगा।
तुम कहते होः "ऐसा लगता है कि दुख मुझे भाता है।"
बहुमूल्य प्रतीति। कीमती अनुभव। सबको दुख भाता है। मैं कहूंगा तो तुम चौंकोगे, तुम मुझसे राजी न हो सकोगे, लेकिन सबको दुख भाता है। इसीलिए तो दुनिया में इतना दुख है। अगर सुख भाता होता तो यह दुनिया कुछ और होती, हमने स्वर्ग बना लिया होता; मगर दुख भाता है।
लेकिन सीधा-सीधा नहीं। सीधा-सीधा तो कोई भी कहेगा कि दुख और मुझे भाए, कभी नहीं। मगर परोक्ष, घूम-फिर कर हम दुख को पैदा करते हैं। दुख में हमारे बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं। पत्नी दुखी होती है, बीमार होती है, तो पति उसके पास बैठता है, सिर पर हाथ रखता है, सिर दबाता है। और जब पत्नी स्वस्थ होती है, तो पति अखबार पढ़ता है, बिल्कुल पत्नी की चिंता ही नहीं लेता; कि रेडियो सुनता है। धीरे-धीरे पत्नी को साफ हो जाता है कि अगर पति का आकर्षण बनाए रखना है और पति का ध्यान अपनी तरफ लगाए रखना है और पति को अपनी सेवा में रत रखना है--और किसको अच्छा नहीं लगता कि कोई कभी सिर दबाए और पैर दबाए और समाचार पूछे कि कैसी तबीयत है, क्या है, क्या करूं--तो पत्नी एक बात समझ लेती है कि दुखी होना जरूरी है; बीमार होना जरूरी है; उदास होना जरूरी है। तभी सहानुभूति मिलती है। छोटे बच्चे भी यही समझ लेते हैं।

तुम जरा मनोवैज्ञानिकों से पूछो, मनोवैज्ञानिक क्या कह रहे हैं? मनोवैज्ञानिक यह कह रहे हैं कि दुनिया में सत्तर प्रतिशत बीमारियां लोग अपने से पैदा करते हैं। सत्तर प्रतिशत! यह कोई छोटा प्रतिशत नहीं है। सत्तर प्रतिशत बीमारियां लोग खुद पैदा करते हैं, क्योंकि उन बीमारियों में एक तरह का रुग्ण-रस पैदा हो गया है।
छोटे बच्चे की तुम चिंता कब करते हो? जब वह बीमार हो। तब सारा घर उसके आस-पास घूमता है, वह केंद्र हो जाता है। इसमें उसे मजा आता है। पड़ोस के लोग देखने आने लगते हैं, नाते-रिश्तेदार देखने आते हैं। सब पूछते हैं। खिलौने लोग भेंट देते हैं। जब बीमार होता है! और जब स्वस्थ होता है, तो सब तरफ से दुतकारा जाता है। क्योंकि स्वस्थ होगा तो झाड़ पर चढ़ेगा; स्वस्थ होगा तो छप्पर पर बैठ जाएगा; स्वस्थ होगा तो कुछ न कुछ करेगा। खेल-खिलौनों की टांगें तोड़ देगा। स्वस्थ होगा तो जो भी करेगा, वहीं डांटा जाएगा कि बंद करो यह काम! यह तुम क्या कर रहे हो? कि शोरगुल न करो! कि शांत बैठो! कि एक कोने में बैठो! कि कहां चले? बाहर कहां जा रहे हो? स्वस्थ होता है तो सिवाय अपमान के और उसे कुछ भी नहीं मिलता। डांट-डपट। और बीमार होता है तो सम्मान मिलता है, सत्कार मिलता है।
तुम सोच रहे हो तुम उसकी जिंदगी में कैसा जहर घोल रहे हो?
तुम उसे एक पाठ सिखा रहे हो कि अगर तुम बीमार रहो, अगर तुम रुग्ण रहो, अगर तुम दुखी रहो, तो तुम्हारे हित में है। यह अचेतन में बैठ जाएगी बात। और जब भी, बाद में भी इस बच्चे को जिंदगी में कठिनाई होगी, अड़चन होगी, यह तत्क्षण बीमार हो जाएगा। नहीं कि बन जाएगा बीमार, सच में ही बीमार हो जाएगा। इसके अचेतन से स्वर उठेगा और इसके चित्त को पकड़ लेगा। बाजार में बहुत अड़चन होगी, कि दुकान कठिनाई से चलती होगी, कि कर्ज बढ़ जाएगा, यह बीमार होकर बिस्तर से लग जाएगा। कम से कम एक बहाना तो है। कह तो सकता है लोगों से कि भाई, कर्ज चुकाएं तो कैसे चुकाएं? मैं बीमार पड़ा हूं!
स्वस्थ आदमी बाजार में जाए तो लोग पूछते हैंः कर्ज चुकाओ! बहुत दिन हो गए! और आदमी बीमार घर में पड़ जाए, तो कौन कर्ज मांगे? लोग दया करते हैं। लोग उधार देते हैं। आदमी बीमार घर में पड़ जाए, तो पत्नी नौकरी से लग जाती है, बच्चे काम में लग जाते हैं, वैसे आवारा घूमते थे। इस सब में मालूम हो रहा है कि एक तरह का रस पैदा हो जाएगा। न्यस्त स्वार्थ पैदा हो जाएगा।
सच है, रामकृष्ण, लोगों को दुख अच्छा लगता है। क्योंकि हमने यह दुनिया बड़े ही दुखपूर्ण आधार पर निर्मित की है। यह हमारा समाज, ये हमारे लोग, ये हमारी भीड़ें इतने अंधेरे में जी रही हैं और इस तरह के दुखपूर्ण आयोजन किए जा रहे हैं कि जिनका हिसाब नहीं! और फिर हम अपेक्षा करते हैं बहुत सुखों की। एक तरफ दुख को पकड़ते हैं और दूसरी तरफ सुख की अपेक्षा करते हैं। और सुख अगर कभी द्वार-दरवाजे आ भी जाए भूल-चूक से, तो अंगीकार करने की हमारी क्षमता नहीं। हमें हंसना ही नहीं आता कि हम सुख के साथ हंस सकें। हमें सिर्फ रोना आता है। हमें सिर्फ उदास होना आता है। हमें उत्सव आता ही नहीं।

सोचता हूं तेरी महफिल से चला जाऊं मैं।
रंगो-निकहत का गिरांबार कुचल डालेगा,
मेरी हस्सास तबीयत, मेरी खुद्दारी को,
ये शबिस्ताने-मसर्रत, तेरी उल्फत की कसम,
मेरी आवारा मिजाजी को न रास आएगा,
जिस तरह साज से गिरती हुई नगमों की फुहार और भी तश्नगी-ए-शौक बढ़ा जाती है,
तेरी ताबिंदा जवानी, तेरा रख्शिंदा शबाब, और जज्बात को गुमराह करेंगे ऐ दोस्त! जिंदगी काकुलो-रुखसार में खो जाएगी, नगमा-ओ-निकहती अनवार में खो जाएगी,
मेरा फन, मेरा तखय्युल, मेरे नाजुक अफकार, ऐश की सर्द फिजाओं में ठिठुर जाएंगे, गीत--तारों के, शरारों के, चमनजारों के,

जिनको पहनाना है अलफाज के मलबूस अभी,
तेरी आगोश में घुट-घुट के वो मर जाएंगे, साज ही साज है महफिल तेरी, आगोश तेरी,
जीस्त गर सोज नहीं कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं,
सोचता हूं तेरी महफिल से चला जाऊं मैं।

प्रेमी प्रेयसी से कह रहा है--
तेरी आगोश में घुट-घुट के वो मर जाएंगे,
साज ही साज है महफिल तेरी, आगोश तेरी,
तेरी गोद में तो मैं मिट जाऊंगा, क्योंकि तेरी गोद में तो खुशियां ही खुशियां हैं।
साज ही साज है महफिल तेरी, आगोश तेरी,
जीस्त गर सोज नहीं कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं,
जिंदगी तो अगर दुख न हो तो कुछ भी नहीं है।
सोचता हूं तेरी महफिल से चला जाऊं मैं।
रंगो-निकहत का गिरांबार कुचल डालेगा,
रंग और सुगंध का इतना बोझ मैं न झेल सकूंगा।
रंगो-निकहत का गिरांबार कुचल डालेगा,
मेरी हस्सास तबीयत, मेरी खुद्दारी को,
और मेरे अहंकार को भी मिटा डालेगा। यह रंग और सुगंध की जो बाढ़ आ रही है, यह प्रेम जो बरस रहा है, यह मेरी खुद्दारी को भी मिटा देगा।
इस बात को ख्याल रखना, दुख के बीच अहंकार मजे से जीता है। सुख में अहंकार पिघल जाता है। प्रेम में अहंकार को मरना होता है, घृणा में अहंकार को खूब बल मिलता है। नरक में अहंकार को जितनी सुविधा है उतनी और कहीं नहीं। स्वर्ग में अहंकार के लिए स्थान ही नहीं है।
सोचता हूं तेरी महफिल से चला जाऊं मैं।
रंगो-निकहत का गिरांबार कुचल डालेगा,
मेरी हस्सास तबीयत, मेरी खुद्दारी को,
ये शबिस्ताने-मसर्रत, तेरी उल्फत की कसम,
मेरी आवारा मिजाजी को न रास आएगा,
जिस तरह साज से गिरती हुई नगमों की फुहार और भी तश्नगी-ए-शौक बढ़ा जाती है,
तेरी ताबिंदा जवानी, तेरा रख्शिंदा शबाब, और जज्बात को गुमराह करेंगे ऐ दोस्त! जिंदगी काकुलो-रुखसार में खो जाएगी, नगमा-ओ-निकहती अनवार में खो जाएगी,
मेरा फन, मेरा तखय्युल, मेरे नाजुक अफकार, ऐश की सर्द फिजाओं में ठिठुर जाएंगे, गीत--तारों के, शरारों के, चमनजारों के,
जिनको पहनाना है अलफाज के मलबूस अभी,
तेरी आगोश में घुट-घुट के वो मर जाएंगे,
साज ही साज है महफिल तेरी, आगोश तेरी,
जीस्त गर सोज नहीं कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं,
सोचता हूं तेरी महफिल से चला जाऊं मैं।
लोग प्रेम से डरते हैं। लोग प्रेम से दूर-दूर रहते हैं। प्रेमी भी अपने बीच फासला रखते हैं। इतने निकट नहीं आते कि घुल-मिल जाएं। इतने निकट नहीं आते कि एक-दूसरे में पिघल जाएं। क्योंकि फिर अहंकार का क्या होगा? सुबह सूरज ऊगता है, तुम देखते ही नहीं। रात तारों से भर जाती है, तुम आंख नहीं उठाते। तुम डरे हुए हो कि कहीं से भी अगर सुख की वर्षा हुई और कहीं से भी अगर सौंदर्य का द्वार खुला, तो तुम्हारे अहंकार का क्या होगा? तुम्हारा अहंकार गलत चीजों पर जीता है। तुम्हारा अहंकार कूड़ा-करकट ही खाता है। तुम्हारा अहंकार मानसरोवर का हंस नहीं है; कीचड़ में जीता है।

इसलिए, रामकृष्ण, तुम ठीक कहते होः "मैं सुख को स्वीकार नहीं कर पाता हूं। ऐसा लगता है दुख मुझे भाता है। फिर भी चाहता हूं सुख मिले। मेरी उलझन सुलझाएं।"
उलझन को समझ लो, तो सुलझ गई उलझन। उलझन उलझन है, इतना स्पष्ट हो जाए, तो सुलझाना कठिन नहीं है। उसी स्पष्टता में सुलझ जाती है।
तीन बातें ख्याल रखो! दुख में जहां-जहां तुमने अपने न्यस्त स्वार्थ जोड़ दिए हैं, उनकी पहचान करो। दुख से जरा भी किसी तरह का स्वार्थ न साधो, नहीं तो सुख तुम्हें कभी न मिलेगा। दुख को जरा भी अपने जीवन में जगह मत दो-- किसी भी बहाने, किसी भी निमित्त। दुख के घास-पात को उखाड़ फेंको जीवन की बगिया से, तो ही गुलाब के फूल खिल सकेंगे।
और बहुत सजग होना होगा। क्योंकि सदियों-सदियों से दुख सिखाया जा रहा है। लोग कह रहे हैं कि जीवन दुख है। तुम्हारे साधु-महात्मा समझा रहे हैं कि जीवन दुख है। तुम्हारे पंडित-पुरोहित समझा रहे हैं कि पिछले जन्मों में किए थे पाप, उनका फल कौन भोगेगा? उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा। तरह-तरह की बातें तुम्हें समझाई जा रही हैं, सिर्फ एक बात के लिए कि तुम्हारा दुख स्वाभाविक है। होना ही है। होना ही चाहिए। तुम्हारे दुख को सहारे दिए जा रहे हैं। इन सब सहारों को हटा लो, दुख चारों खाने चित्त गिर पड़ता है। ये लकड़ियां जो तुमने टेक रखी हैं, टेक दे रखी है दुख को, इनको हटा लो। न तो तुम पिछले जन्मों के पापों का कर्मफल भोग रहे हो। क्योंकि इतनी देर प्रतीक्षा नहीं करनी होती फलों को भोगने के लिए! फल तत्क्षण होते हैं। जिन्होंने तुम्हें यह सिखाया है, चालबाज हैं, जालसाज हैं। अभी आग में हाथ डालोगे और वे कहते हैंः अगले जन्म में हाथ जलेगा।
थोड़ा सोचो भी तो! थोड़ा विचार भी तो जगाओ! अभी आग में हाथ डालोगे तो अभी हाथ जलेगा। तत्क्षण! अगले जन्म की प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। तुमने पिछले जन्म में जो पाप किए थे, उनके फल तुम पिछले जन्म में भोग चुके। और तुमने जो पुण्य किए थे, उनके फल भी तुम पिछले जन्म में भोग चुके। अगर किसी को दान दोगे, तो उस दान के देने में ही जो तुम्हारे हृदय में आनंद आता है, वही उसका परिणाम है, फल है। और अगर किसी पर क्रोध करोगे, तो उस क्रोध में ही तुम्हारे भीतर जो जहर फैल जाता है, वही उसका दंड है।
क्रोध करने वाला, तुम सोचते हो, तुम्हें जलाने के पहले अपने को नहीं जला लेता? तुम्हें जो घाव करेगा, उसे पहले अपनी छाती में घाव करने पड़ते हैं। इस जगत का यह परम नियम है कि जो तुम दूसरों के साथ करोगे, उनसे करने के पहले तुम्हें अपने साथ करना होता है। अगर तुम किसी को दुख देना चाहते हो, तो पहले तुम्हें अपने को दुख देना होगा। क्योंकि दुखी आदमी ही दुख दे सकता है। तुम वही तो दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। अगर तुम्हें दूसरे को सुख देना है तो तुम्हें अपने भीतर सुख पैदा करना होगा। तुम वही दे सकते हो जो तुम हो।
और ध्यान रहे, कृत्य में और परिणाम में फासले नहीं होते। कृत्य में ही परिणाम छिपा होता है, अंतर्निहित होता है। जहां तुमने किसी को सुख दिया, वहीं तुम सुख पाओगे--वहीं और तत्क्षण! और जहां तुमने किसी को दुख दिया, वहीं तुम दुख पा लोगे, उस देने में ही दुख पा लोगे। निपटारा वहीं हो जाता है। और इस जन्म में अगर तुम दुख भोग रहे हो, तो इसका कारण यह नहीं है कि पिछले जन्मों में पाप किए थे। और इस जन्म में अगर तुम्हें कोई सुख मिलता है, तो यह मत सोचना कि पिछले जन्मों के किसी पुण्य का फल है। ये झूठी बातें तुम्हारी जिंदगी को सुलझने नहीं देतीं।
फिर कुछ हैं जो कहते हैं कि परमात्मा ने जो तुम्हारी किस्मत में लिख दिया है वही होगा।
यह परमात्मा है कोई कि शैतान है, जो तुम्हारी किस्मत में ऐसी बातें लिखता है? कि तुम्हारी जिंदगी में दुख ही दुख। कि तुम्हारी जिंदगी में पीड़ा ही पीड़ा। इस परमात्मा को कुछ तुम्हें सताने में मजा आता है? लेकिन तुम्हारे महात्माओं की यही धारणा है कि परमात्मा को तुम्हें सताने में मजा आ रहा है। यह परमात्मा क्या वे छोटे बच्चे हैं, जो मेंढक को पत्थर मार रहे हैं? कि चींटे की टांग तोड़ रहे हैं? कि तितली के पंख उखाड़ रहे हैं? यह

परमात्मा कोई सैडिस्ट है? कोई दुख देने में इसे रस है? यह कोई परदुखवादी है? लेकिन तुम्हारे महात्मा यही समझा रहे हैं कि परमात्मा ने जो लिख दिया है किस्मत में, वही होगा। लेकिन यह परमात्मा इस तरह की किस्मत क्यों लिखेगा? इसको और कुछ लिखना नहीं आता?
और इस कारण कि चूंकि परमात्मा लोगों की किस्मत में दुख लिखता है, महात्माओं ने एक और निष्कर्ष निकाला है, एक और बड़े मजे का निष्कर्ष, कि अगर तुम परमात्मा के प्यारे होना चाहते हो तो अपने को दुख दो। भूखे मरो। शरीर को गलाओ, सड़ाओ। धूप में खड़े रहो। ठंड पड़ती हो तो बाहर रात में नदी में खड़े रहो। और दिल न माने इतने से, कि परमात्मा को और ही ज्यादा प्रसन्न करना है, तो जाकर नग्न हिमालय की बर्फीली चट्टानों पर बैठ जाओ। अगर दिल न माने इतने से तो रेगिस्तानों में चले जाओ, वहां तपती धूप में बैठो और जलो। तुम जितना अपने को सताओगे... सताने की नई-नई तरकीबें निकालो।
और तरकीबें निकाली गई हैं। कोई कांटों पर लेटे हैं। जैसे आदमी को कांटों पर लेटने के लिए बनाया गया है। कुछ लोग अपने जूतों में कीले ठोंक लेते हैं, ताकि कीले पैरों में चुभते रहें और घाव करते रहें। ये परमात्मा को सुख दे रहे हैं! और परमात्मा को प्रसन्न कर रहे हैं! इस तरह के विक्षिप्त लोग, जो अपने को दुख देकर सोचते हैं कि परमात्मा को प्रसन्न कर रहे हैं, हद दर्जे का तर्क दे रहे हैं! मगर तर्क इसी आधार पर है उनका कि जगत में इतना दुख परमात्मा ने दिया है, तो निश्चित ही परमात्मा दुख देने में प्रसन्न होता है। इसलिए हम अपने को दुख देंगे तो उसके प्यारे हो जाएंगे। जो जितना दुख देगा उतना प्यारा हो जाएगा।
और तुम भी इन दुखवादियों को बड़ा आदर देते हो। किसी मुनि महाराज ने सौ दिन का उपवास कर लिया, कि चले, शोभायात्रा निकाली।
किस बात की शोभायात्रा निकाल रहे हो? एक आदमी ने सौ दिन तक अपने को सताया, इसकी तुम शोभायात्रा निकाल रहे हो? फूलमालाएं पहना रहे हो? बैंडबाजे बजा रहे हो? इसके चरणों में गिर रहे हो? इस आदमी की मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। इसको बिजली के शॉक दिलवाओ। यह आदमी अप्राकृतिक हुआ जा रहा है। भूख स्वाभाविक है। स्वाभाविक भूख को भरना, पूरा करना नैसर्गिक है। मैं नहीं सोचता कि कोई मां इस बात से प्रसन्न होगी कि उसका बच्चा सौ दिन तक भूखा बैठा रहे। तो परमात्मा कैसे प्रसन्न होगा कि कोई सौ दिन तक भूखा बैठा रहे? इसको सौ दिन तक भूखा बैठा देख कर परमात्मा रोता होगा। अगर कहीं कोई परमात्मा है और कहीं कोई परमात्मा के पास हृदय है, तो रोता होगा। और जब तुम शोभायात्रा निकालते होओगे, तब वह अपनी छाती पीटता होगा--कि एक ही पागल नहीं है, पागलों की बड़ी जमात है। क्योंकि मुनि थोथूमल ने सौ दिन का उपवास किया, इसलिए गांव में जितने भी मूढ़ थे, सब इकट्ठे हो गए--जुलूस चला। ईसाइयों में ऐसा संप्रदाय रहा है फकीरों का, जो अपने को कोड़े मारते हैं, रोज सुबह, नियम से। वह उनकी प्रार्थना है--कोड़े मारना! और जो जितने कोड़े मारता है, वह उतना बड़ा फकीर। और लोग देखने भी आते हैं, सुबह से ही भीड़ लग जाती है। जो वैसे उठें भी न इतनी जल्दी, वे भी चले आते हैं। मुफ्त में ही सर्कस देखने मिलता हो... !
लोग कुछ रुग्ण-अवस्था में मालूम होते हैं! यह भी रुग्ण-अवस्था है कि तुम दूसरे को कोड़े मारते देखने जाओ। मगर हंसना मत। रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों, और तुम चले थे अपनी पत्नी की दवा लेने, दवा एकदम जरूरी थी, भूल-भाल जाते हो सब दवा-मवा, साइकिल टेक कर किनारे खड़े हो गए भीड़ में। दो आदमी लड़ रहे हैं, गरमा-गरमी हो रही है, गालियां वजनी होती जा रही हैं, और तुम्हारा दिल प्रफुल्लित होता है कि अब कुछ होने को है, अब कुछ होने को है! अब मारपीट हुई, अब मारपीट हुई! और अगर मारपीट न हो--समझ लो कि कोई समझ आ जाए दोनों में भीड़-भाड़ देख कर, कि ये सब लोग देखने इकट्ठे हुए हैं, इनको इतना मजा देना? इतना सुख देना--मुफ्त? थोड़ी समझ आ जाए और कहें कि भाई, कल मिलेंगे। और दोनों चले जाएं। तो तुम्हें कितना दुख होगा, पता है? तुम कितने उदास हो जाओगे, कि कुछ भी न हुआ! बेकार खड़े रहे। हालांकि मारपीट होने लगे तो तुम बचाने की कोशिश करोगे। तुम कहोगे कि भाई, लड़ो मत। ऊपर-ऊपर कहोगे, भाई, लड़ो मत। और भीतर-भीतर कहोगे, कुछ हो ही जाए तो ठीक!

फिल्में चलती हैं तभी, जब उनमें हत्या हो, चोरी हो, डकैती हो, लूट-पाट हो, बलात्कार हो। तब फिल्में चलती हैं। तुम जरा कोई एकाध ऐसी फिल्म बनाओ जिसमें कोई बलात्कार नहीं, कोई चोरी-चपाटी नहीं, कोई हत्या नहीं, कोई खून नहीं। उसको कोई देखने जाएगा? उसे कोई देखने नहीं जाएगा। लोग दुखवादी हैं, दुख देखना चाहते हैं।
तो ईसाई फकीर जो अपने को कोड़े मारते हैं, उनको देखने भीड़ इकट्ठी होती
है रोज सुबह। जैसे तुम, मुनि महाराज जब उपवास करते हैं, तो उनके दर्शन करने जाते हो। लहूलुहान कर लेते हैं अपने शरीर को। और प्रतियोगिता भी होती है फिर। क्योंकि कई फकीर। उसमें कौन आगे निकल जाता है? कौन कितना मारता है? फकीरों ने आंखें फोड़ ली हैं, जबानें काट दी हैं, जननेंद्रियां काट दी हैं। स्त्रियों ने अपने स्तन काट दिए हैं। और इसको देखने हजारों की भीड़ें इकट्ठी होती हैं! यह कैसी रुग्ण-अवस्था है? और ये जो लोग कर रहे हैं सब, इस आशा में कर रहे हैं कि परमात्मा प्रसन्न होता होगा।
तुम्हें समझना होगा। तुम्हें दुख में जितने भी तुम्हारे संबंध हैं,
उन सबकी परख करनी होगी, निरीक्षण करना होगा, सजग होना होगा। और दुख से अपने सारे नाते तोड़ लेने होंगे।
तुम एक दुखवादी समाज में जी रहे हो। तुम्हारी सारी संस्कृति दुखवादी है। पूरब हो कि पश्चिम, भेद मात्रा के हैं, गुण के नहीं हैं। तुम्हारी सारी जीवनचर्या दुखवादी है। दुख का बहुत सम्मान है। इस सबसे तुम्हें सजग होकर अपने संबंध तोड़ लेने होंगे। तब तुम सुख को अंगीकार कर सकोगे।
मेरी शिक्षा सुख की है। मैं तुम्हें महासुख सिखाना चाहता हूं। यह तुम्हारा अधिकार भी है। और परमात्मा प्रसन्न होगा, तुम जितने सुखी होओगे उतना। होना ही चाहिए। नहीं तो ऐसा परमात्मा परमात्मा नहीं है। तुम्हारा उत्सव देखेगा, तुम्हारा नृत्य देखेगा, तुम्हारे प्रेम के खिलते फूल देखेगा, तुम्हारे भीतर ध्यान की सुरभि उठते देखेगा, तो परमात्मा नाचेगा। तुम नाचोगे, तो परमात्मा नाचेगा। तुम हंसोगे, तो परमात्मा हंसेगा।
एक हसीद फकीर मर रहा था। उससे किसी ने पूछा... झुसिया उसका नाम था। बड़ा अदभुत और प्यारा आदमी रहा होगा। उससे किसी ने पूछा, झुसिया, तुमने सारी तपश्चर्याएं पूरी कर लीं? तुमने सारे व्रत-नियम पूरे कर लिए हैं? परमात्मा के सामने सिर उठा सकोगे? खड़े हो सकोगे?
झुसिया ने आंख खोलीं और उसने कहा कि परमात्मा क्या कोई दुष्ट है कि मुझसे पूछेगा कि कितने भूखे मरे? कि कितने दिन नंगे रहे? कि कितनी सर्दी- गर्मी सही? मैंने यह कोई तैयारी नहीं की है, क्योंकि मैं परमात्मा को पहचानता हूं।
तो फिर पूछा लोगों ने, तुमने क्या तैयारी की है?
उसने कहा कि मैंने कुछ बड़ी शानदार कहानियां याद कर रखी हैं। मैं परमात्मा को कुछ कहानियां कहूंगा, ऐसी कि हंसी से लोट-पोट हो जाए।
जिंदगी भर भी लोगों को वह हंसी से लोट-पोट करता रहा था। उसने कहा, मैं हंसना और हंसाना जानता हूं। बस यही! जरा मिले भर मुझे, ऐसी छंटी हुई, ऐसी चुनिंदी बातें, कि अगर न लोटने-पोटने लगे तो तुम मुझे कहना! उसे कहानियों से बहलाऊंगा। उसे कुछ लतीफे सुनाऊंगा। और गीत मैं जानता हूं कुछ, गीत गाऊंगा। और नाच भी सीखा है, तो नाचूंगा भी। और तुम देखना, मैं तुमसे कहता हूं कि वह मेरे साथ नाचेगा और मेरे साथ हंसेगा और मेरे साथ गीत गाएगा। ढोलक उसको सम्हाल दूंगा, कि तू ढोलक बजा, मैं नाचूं। कि तू खंजड़ी बजा, और मैं गीत गाऊं।
यह झुसिया मुझे प्यारा है। यह झुसिया मुझे लगता है कि परमात्मा को ज्यादा ठीक से पहचानता है। क्योंकि यह सारा अस्तित्व उत्सवमय है। इसमें तुम भी उत्सवमय बनो, तो तुम परमात्मा के प्यारे हो जाते हो। दुखों से नाता छोड़ो। चेतन-अचेतन से सारे संबंध दुखों से उखाड़ लो। और जैसे ही तुमने दुखों से नाता तोड़ा, तुम अचानक हैरान होओगे, सुख के झरने बहने लगे। सुख हमारा स्वभाव है।

तीसरा प्रश्नः मैं एक युवती के प्रेम में हूं। आप प्रेम के गीत गाते हैं, तो मन को अच्छा लगता है। हालांकि मैं जानता हूं कि आप किसी और ही प्रेम के गीत गा रहे हैं। फिर भी मैं उसे अपना ही प्रेम समझ कर प्रसन्न हो लेता हूं। मैं आपके भी प्रेम में हूं। अब मैं क्या करूं? सब छोड़-छाड़ कर संन्यास में डूबूं? या फिर आप जैसा कहें! मेरी उम्र अभी केवल छब्बीस वर्ष ही है।

सुरेंद्र! मैं जो कहता हूं, उसको तो तुम ठीक वैसा का वैसा तब समझ पाओगे
जब तुम ठीक उस चैतन्य की दशा को उपलब्ध हो जाओगे जहां मैं हूं। उसके पहले भूल-चूक स्वाभाविक है। मैं कहूंगा कुछ, तुम समझोगे कुछ। इसको बहुत बड़ी समस्या न बनाना। मैं पुकारूंगा पहाड़ों से, तुम सुनोगे अपनी घाटियों से! और पहाड़ से आती आवाज घाटियों तक पहुंचते-पहुंचते बहुत रूपांतरित हो जाती है। उसका बहुत अनुवाद हो जाता है। कई अनुवाद हो जाते हैं।
तो मैं जब प्रेम के गीत गाऊंगा तो स्वभावतः तुम जिसको प्रेम समझते हो... और तुम किसको प्रेम समझते हो? वह जो तुमने हिंदी फिल्मों में देखा है। तुम्हें और प्रेम का पता भी क्या है? और तो प्रेम की कहीं कोई शिक्षा मिलती नहीं। फिल्में देख आते हो, उन्हीं से तुम प्रेम की शिक्षा लेते हो। और मजा यह है कि फिल्मों में जो लोग प्रेम का अभिनय कर रहे हैं, उनको मैं भलीभांति जानता हूं, उनमें से बहुत यहां आते हैं, उनको प्रेम का कोई पता नहीं है। वे सिर्फ प्रेम का अभिनय जानते हैं। उनकी जिंदगी में खुद भी प्रेम नहीं घट रहा है। उनकी जिंदगी में प्रेम बड़ा मुश्किल है।
यह जान कर तुम चकित होओगे, सारी दुनिया के अभिनेता और अभिनेत्रियां प्रेम के संबंध में बड़े असफल लोग हैं। पश्चिम की एक बहुत प्रसिद्ध अभिनेत्री मर्लिन मनरो ने आत्महत्या की, भरी जवानी में! और कारण? कितने प्रेमी उसे उपलब्ध थे! ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरों से लेकर अमरीका का राष्ट्रपति कैनेडी तक, सब उसके प्रेमी! तो भी वह प्रेम से वंचित थी। प्रेमियों की भीड़ से थोड़े ही प्रेम मिल जाता है। प्रेम तो एक आत्मीयता का अनुभव है, एक अंतरंगता का अनुभव है। प्रेम तो बड़ी कोमल घटना है। मनरो के हजारों प्रेमी थे, लाखों पत्र लिखने वाले थे। और फिर भी मरी, आत्महत्या कर ली। और कारण जो दे गई आत्महत्या का, वह यह था कि मेरे जीवन में प्रेम नहीं है, मैं प्रेम नहीं पा सकी, जीकर भी क्या करूं?
इनसे तुम प्रेम सीखोगे। फिल्में तुम्हें प्रेम सिखा रही हैं। जहां प्रेम का कुछ भी नहीं है, जहां प्रेम का कोई अनुभव नहीं है। या तुम ऐसे कवियों के गीतों से प्रेम सीखते हो, जो प्रेम नहीं कर पाए और गीत गा-गा कर मन को समझा रहे हैं। जिनके जीवन में प्रेम तो नहीं घटा, तो किसी तरह गीत गा- गा कर सांत्वना ले रहे हैं। अक्सर ऐसा होता है, मनोवैज्ञानिक इस संबंध में राजी हैं, कि जो लोग बहुत ज्यादा प्रेम के गीत गाते हैं, ऐसे कवि, अक्सर वे ही लोग हैं जिनके जीवन में प्रेम नहीं घटता। प्रेम नहीं घटता तो उसकी कमी को कैसे पूरी करें? गीत गा-गा कर पूरी कर लेते हैं।
मैं प्रेम की बात करूंगा, तो मेरे प्रेम की बात कर रहा हूं। तुम प्रेम
की बात समझोगे, तो तुम्हारे प्रेम की बात समझोगे।
फिर अभी तुम्हारी उम्र भी क्या? और इस उम्र में मैं यह भी न कहूंगा कि तुम किसी युवती के प्रेम में हो तो कुछ गलती में हो। न होते तो कुछ गलती होती; क्योंकि वह अस्वाभाविक होता। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। स्वभाव का मेरे मन में अति सम्मान है। प्रकृति मेरे लिए बस परमात्मा से एक कदम नीचे है--बस एक कदम। और प्रकृति के ही ऊपर सवार होकर कोई परमात्मा तक पहुंच सकता है, और कोई उपाय नहीं है, क्योंकि प्रकृति सीढ़ी है, उसके मंदिर की सीढ़ी। तुम कहते होः "मैं एक युवती के प्रेम में हूं। आप प्रेम के गीत गाते हैं, तो मन को अच्छा लगता है। हालांकि मैं जानता हूं कि आप किसी और ही प्रेम के गीत गा रहे हैं। फिर भी मैं उसे अपना ही प्रेम समझ कर प्रसन्न हो लेता हूं।"
ऐसा न करो! ऐसा धोखा न दो! तुम्हारा प्रेम भी मुझे स्वीकार है। मगर तुम, जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं, उसको अपने प्रेम के साथ एक मत करो।

ताकि तुम्हें विकास का अवसर रहे। एक तारा रहे आकाश में जगमगाता। तुम्हारा प्रेम मुझे अंगीकार है। तुम्हारा प्रेम सुंदर है, शुभ है। लेकिन प्रेम की अभी और भी ऊंचाइयां हैं, और भी मंजिलें हैं; प्रेम के अभी और भी निखार हैं। मेरे प्रेम को और तुम्हारे प्रेम को अगर तुमने एक ही कर लिया, तो तुम्हारे जीवन में लक्ष्य खो जाएगा। फिर गति न हो सकेगी, विकास न हो सकेगा। मैं तो तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करता हूं--पहली सीढ़ी। मगर अभी मंदिर की बहुत सीढ़ियां हैं। और फिर मंदिर है, और मंदिर में विराजमान प्रेमरूपी परमात्मा है। वहां तक चलना है। तो वैसा धोखा अपने को मत देना। सांत्वना मत देना। आदमी अपने को धोखा देने में बहुत होशियार है। आदमी दूसरों को धोखा देने की बजाय अपने को धोखा देने में ज्यादा होशियार है। और कारण भी है। दूसरे को धोखा दोगे तो दूसरा बचने की कोशिश भी कर सकता है। अपने को ही धोखा दोगे, तब तो तुम बिल्कुल असहाय हो गए, बचने को तो कोई है ही नहीं वहां। धोखा ही दे रहे हो तुम खुद को तो कौन बचे? किससे बचे?
फित्ने की नदी में नाव खेता हूं मैं
धोखे की हवा में सांस लेता हूं मैं
इतने कोई दुश्मन को भी देता नहीं जुल
जितने खुद को फरेब देता हूं मैं
दुश्मनों को भी कोई इतने धोखे नहीं देता, जितना आदमी अपने को दे लेता है। आखिर दुश्मन तो सावधान होता है। दुश्मन अपनी सुरक्षा करता है। तुम तो बिल्कुल असुरक्षित हो। और अगर तुम खुद ही धोखा देने को तैयार हो, अगर तुम खुद ही अपनी जेब से पैसे चुरा रहे हो, तो कौन रोक सकेगा? कैसे रोक सकेगा? और यह चलता है। बड़ी तरकीब से चलता है। हम अपनी जीवन-अवस्था को सर्वांग सुंदर मान लेते हैं। फिर कुछ करने को नहीं बचता।
तुम जैसे हो, नैसर्गिक हो। मगर निसर्ग के भी और आयाम हैं। बीज नैसर्गिक है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि बीज अब बीज ही रह जाए। बीज को वृक्ष भी होना है। वृक्ष भी नैसर्गिक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वृक्ष वृक्ष ही रह जाए। वृक्ष को अभी फूल भी खिलाने हैं। फूल भी नैसर्गिक हैं। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि फूल फूल ही रह जाएं। फूल को सुगंध बन कर आकाश में उड़ना भी है। जब तक बीज, कंकड़-पत्थर जैसा दिखाई पड़ने वाला बीज, अदृश्य सुवास बन कर आकाश में न उड़ने लगे, तब तक तृप्त मत होना, तब तक सांत्वना मत खोजना।
तुम्हारा प्रेम बीज की तरह है। मेरा प्रेम, जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूं, सुवास की तरह है। तुम्हारे बीज से ही आएगी वह सुवास, इसलिए तुम्हारे बीज का निषेध नहीं है, विरोध नहीं है; अंगीकार है, स्वीकार है, स्वागत है। लेकिन उस पर समाप्ति भी नहीं है।
मेरे साथ दो भूलें हो सकती हैं। एक तो भूल यह कि तुम समझ लो कि तुम्हारा प्रेम ही बस अंत। कुछ लोग ऐसी भूल करेंगे, कर रहे हैं। और दूसरी भूल कि मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, उसमें तुम्हारे प्रेम को कोई जगह ही नहीं है; तुम्हारे प्रेम के विपरीत है मेरा प्रेम। वैसी भूल भी सदियों से होती रही है। वैसी भी भूल कुछ लोग कर रहे हैं।
मैं जो कह रहा हूं, वह दोनों से भिन्न बात है। तुम्हारा प्रेम मेरे प्रेम में समाहित है। तुम्हारा प्रेम मेरे प्रेम में एक अंग है। लेकिन तुम्हारा प्रेम और मेरा प्रेम एक ही नहीं है।
ऐसा समझो कि एक वर्तुल खींचो तुम बड़ा और उसमें एक छोटा वर्तुल खींचो। तुम्हारा प्रेम छोटे वर्तुल की भांति है। छोटा वर्तुल बड़े वर्तुल में है, लेकिन बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं है। ऐसी बात तुम्हें स्पष्ट रहे, तो भूल नहीं होगी, चूक नहीं होगी।
और कभी भी निंदा मत करना इस बात की। मेरे प्रेम में पड़े हो, इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम जिसके प्रेम में हो, उसे छोड़-छाड़ कर संन्यासी हो जाओ। मेरा संन्यास छोड़ने, भागने, पलायन का संन्यास नहीं है। और अगर तुम्हारे हृदय में किसी युवती के प्रति प्रेम है, तो बुरा नहीं है कुछ, होना ही चाहिए। परमात्मा ने ऐसा चाहा है, इसलिए हो रहा है। यह तुम्हारा कोई कृत्य नहीं है। यह तुम्हारी प्रकृति की सहज अभिव्यक्ति है।

इंसाफ! बुतों की चाह देने वाले
हुस्न उनको, मुझे निगाह देने वाले
किस मुंह से मुझे हश्र में देगा ताजीर
दिल को हविसे-गुनाह देने वाले
ठीक है। परमात्मा से कह देना अब जब मिलना हो कभी; हश्र के दिन, कयामत
के दिन जब परमात्मा से मिलना हो तो कह देनाः इंसाफ! न्याय करो!
इंसाफ! बुतों की चाह देने वाले
तुमने ही तो सुंदर मूर्तियों का प्रेम पैदा किया था।
इंसाफ! बुतों की चाह देने वाले
हुस्न उनको, मुझे निगाह देने वाले
और तुमने ही तो सुंदर लोग पैदा किए थे। सुंदर स्त्री, सुंदर पुरुष, सुंदर फूल, सुंदर पक्षी, सुंदर चांद-तारे, तुमने ही तो सौंदर्य पैदा किया था। और मेरे भीतर निगाह पैदा की थी, सौंदर्य को देखने की दृष्टि पैदा की थी। अब अगर मेरी निगाह सौंदर्य के प्रेम में पड़ गई और बंध गई, तो कसूर किसका है? इंसाफ चाहिए!
किस मुंह से मुझे हश्र में देगा ताजीर
दिल को हविसे-गुनाह देने वाले
और अगर वासना पाप है, तो भी देने वाला तू है। तू मुझे कैसे दंड देगा? क्योंकि तूने ही तो वासना दी। तूने ही सौंदर्य बनाया, तूने ही निगाह दी और तूने ही प्रेम में पड़ने की क्षमता दी।
घबड़ाओ मत! तुम्हारा प्रेम कोई पाप नहीं है। इसलिए छोड़ने का कोई सवाल नहीं है। हां, तुम्हारा प्रेम अंत भी नहीं है। तुम्हारे प्रेम से अभी बहुत ऊंचे जाना है। तुम्हारे प्रेम को अभी बहुत ऊंचे जाना है। कीचड़ से कमल तक की यात्रा करनी है तुम्हारे प्रेम को।
और मैं तुमसे न कहूंगा कि सब छोड़-छाड़ कर... तुम मुझसे पूछ रहे होः "अब मैं क्या करूं? सब छोड़-छाड़ कर संन्यास में डूबूं? या फिर जैसा आप कहें!" तुम अगर अभी संन्यास में डूब भी जाओ सब छोड़-छाड़ कर, तो डूब न सकोगे। संन्यास के लिए एक परिपक्वता चाहिए। उम्र का ही सवाल नहीं है। क्योंकि शंकराचार्य नौ वर्ष की उम्र में संन्यासी हो गए। लेकिन जन्मों-जन्मों की परिपक्वता पीछे होगी। बुद्ध उनतीस साल के थे, तब सब छोड़-छाड़ कर जंगल चले गए। जन्मों-जन्मों की परिपक्वता होगी। लेकिन साधारणतः जल्दी की कोई जरूरत नहीं है। अभी तुम संन्यास भी ले लोगे, तुम परमात्मा की भी याद करोगे, तो भी परमात्मा की याद में तुम्हारी प्रेयसी की याद झलक-झलक जाएगी। तुम प्रार्थना करोगे, लेकिन प्रार्थना में कहीं तुम्हारा हृदय, जो प्यासा रह गया है प्रेम का, वह रोएगा।

बड़ी भोर चुनने आती हो फूल श्वेत परिधान में
पारिजात दालान में

मिटता नहीं अंधेरा पूरा
पूरा हो पाता न उजेला
बीच रात के और सुबह के
जो होती हो ऐसी बेला
दिन शुभ जाता तुम्हें देख कर पहले पहल विहान में पारिजात दालान में

ठीक देहरी पर हो वय की
भीतर खड़ी न बाहर आई
अभी अभी कैशोर्य गया है
आई नहीं मगर तरुणाई
परिचय नहीं हुआ है अब तक रूप और अभिमान में पारिजात दालान में

नीरांजन सा दिप दिप करता
कर्पूरी कौमार्य तुम्हारा
प्यार और पूजा दोनों के
ठीक बीच वह भाव हमारा
मैं ईश्वर का ध्यान लगाता, तुम आती हो ध्यान में
पारिजात दालान में
अभी तुमसे कहूं, सुरेंद्र, छोड़-छाड़ कर सब आ जाओ, तो ऐसी अड़चन होगी--
मैं ईश्वर का ध्यान लगाता, तुम आती हो ध्यान में
पारिजात दालान में
जल्दी की जरूरत नहीं। और प्रेयसी परमात्मा के विपरीत नहीं है। प्रेयसी से द्वार जाता है परमात्मा तक। खूब प्रेम करो। प्रेम को परिशुद्ध करो--घृणा से, क्रोध से, ईर्ष्या से, वैमनस्य से। क्रोध को सब तरह से शुद्ध करो, तो करुणा बन जाए। और काम को सब तरह से शुद्ध करो, तो राम बन जाए। और तुम अगर अपने प्रेम को, जिसे तुम अभी प्रेम कहते हो, शुद्ध करते चले जाओ, तो एक न एक दिन, जिसे मैं प्रेम कहता हूं, वह प्रेम बन जाएगा। न तो कहीं छोड़ो, न कहीं भागो। परमात्मा जो अवसर दे, उसका उपयोग करो।
मैं जीवन का रूपांतरण सिखाता हूं, पलायन नहीं।

बहार आई, गुलअफशानियों के दिन आए।
उठाओ साज, गजलख्वानियों के दिन आए।
निगाहे-शौक की गुस्ताखियों का दौर आया,
दिले-खराब की नादानियों के दिन आए।
निगाहे-हुस्न खरीदारियों पे माइल है, मता-ए-शौक की अरजानियों के दिन आए।
मिजाजे-अक्ल की नासाजियों का मौसम है, जुनूं की सिलसिला जुबानियों के दिन आए।
सिरों ने दावते-आशुफ्तगी का कस्द किया, दिलों में दर्द की मेहमानियों के दिन आए।
चिरागे-लाला-ओ-गुल की टपक पड़ी हैं लवें, चमन में फिर शरर अफशानियों के दिन आए।
बहार बाइसे-जमीयते-चमन न हुई,
शमीमे-गुल की परेशानियों के दिन आए।
उधर चमन में जरे-गुल लुटा, इधर "ताबां"
हमारी बे-सरो-सामानियों के दिन आए।

तुम्हारी जिंदगी में प्रेम की घड़ी आई है।
बहार आई, गुलअफशानियों के दिन आए।
उठाओ साज, गजलख्वानियों के दिन आए।
भागो मत! बजाओ बांसुरी! कि बजाओ सितार! कि ले लो अलगोजा! गीत गाओ! जीवन के, जीवन के आनंद के! प्रेम करो! जी भर कर प्रेम करो! क्योंकि इसी प्रेम से परिपक्वता आएगी। इसी प्रेम से तुम्हें समझ आएगी कि एक और भी प्रेम है जो इसके पार है। इसी प्रेम को कर-कर के दिखाई पड़ेगा कि यह प्रेम तो क्षणभंगुर है। पानी के बबूले जैसा--अभी बना, अभी मिटा। इसी प्रेम से स्वाद लगेगा उस प्रेम का जो शाश्वत है। यही प्रेम धीरे-धीरे तुम्हें एक दिन परमात्मा की देहरी तक ले आएगा। निश्चित ले आता है। ऐसा ही बुद्धों का सदा का अनुभव है।
बहार आई, गुलअफशानियों के दिन आए।
उठाओ साज, गजलख्वानियों के दिन आए।
डरो मत! भयभीत न होओ! जीवन के किसी भी अनुभव से कभी भयभीत मत होना।
क्योंकि जो भी भयभीत हो जाता है, वह पक नहीं पाता, वह समृद्ध नहीं हो पाता।
जीवन के सब रंग भोगो। जीवन के सब ढंग जीओ। जीवन के सारे आयाम तुम्हारे परिचित होने चाहिए। बुरा भी जानो, भला भी जानो। रातें भी और दिन भी। बहार भी और पतझार भी। ऐसे ही पतझार और बहारों के बीच चुनौतियों को झेलते-झेलते

एक दिन तुम्हारे भीतर उस प्रेम का आविर्भाव होगा, जिसे परमात्म-प्रेम कहें।
और यही तो कठिनाई है कि इतने थपेड़े झेलने को लोग राजी नहीं। तो फिर वह परम अनुभूति भी हाथ नहीं आती। प्रेम-पंथ ऐसो कठिन! क्या कठिनाई है? यही कि तूफान झेलने पड़ते हैं, आंधियां झेलनी पड़ती हैं, अंधड़ झेलने पड़ते हैं। खड्डों में गिरना पड़ता है। बहुत-बहुत बार भूल-चूकें करनी होती हैं। बहुत-बहुत बार पछताना होता है। सारे पश्चात्ताप, भूलें, भ्रांतियां, इन सबकी अग्नि में गुजर कर ही तुम्हारा सोना कुंदन बनेगा।
सुरेंद्र!
बहार आई, गुलअफशानियों के दिन आए।
उठाओ साज, गजलख्वानियों के दिन आए।
निगाहे-शौक की गुस्ताखियों का दौर आया,
दिले-खराब की नादानियों के दिन आए।
निगाहे-हुस्न खरीदारियों पे माइल है, मता-ए-शौक की अरजानियों के दिन आए।
मिजाजे-अक्ल की नासाजियों का मौसम है, जुनूं की सिलसिला जुबानियों के दिन आए।
सिरों ने दावते-आशुफ्तगी का कस्द किया, दिलों में दर्द की मेहमानियों के दिन आए।
चिरागे-लाला-ओ-गुल की टपक पड़ी हैं लवें, चमन में फिर शरर अफशानियों के दिन आए।
बहार बाइसे-जमीयते-चमन न हुई,
शमीमे-गुल की परेशानियों के दिन आए।
उधर चमन में जरे-गुल लुटा, इधर "ताबां" हमारी बे-सरो-सामानियों के दिन आए।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
चौदहवां प्रवचन

शून्य हो जाने का साहस ही संन्यास है

पहला प्रश्नः क्या मेरे सूखे हृदय में भी उस परम प्यारे की अभीप्सा
का जन्म होगा?

कृष्णतीर्थ भारती! हृदय और सूखा? यह असंभव है। हृदय तो स्वरूपतः आर्द्र है, गीला है। हृदय का अर्थ ही है, गंगोत्री, जहां से प्रेम की गंगा का उदगम होता है। गंगोत्री और सूखी? हृदय कभी सूखा नहीं होता। और मस्तिष्क कभी भीगा नहीं होता।
तुम मस्तिष्क को ही हृदय समझ रहे हो। इससे प्रश्न उठ आया है। तुम विचार को भाव समझ रहे हो, इससे भ्रांति हो रही है। अधिक हैं जो इस भ्रांति में पड़े हैं। क्योंकि समाज में इस भ्रांति की प्रतिष्ठा है। समाज तुम्हें सिखाता है हृदय से बचना। समाज तुम्हें इस भ्रांति निर्मित करता है, संस्कारित करता है कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा हृदय को किनारे छोड़ कर सीधी मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाए। यह सबसे बड़ा शड्यंत्र है जो मनुष्य के साथ खेला जा रहा है, खेला जाता रहा है, सदियों-सदियों से।
इसके पीछे बड़े निहित स्वार्थ हैं।
और मनुष्य भी इस शड्यंत्र में सम्मिलित हो जाता है; क्योंकि बुद्धि
का उपयोग है, हृदय का उपयोग क्या? बाजार में, दुकान में, व्यवसाय में, व्यवहार में विचार की जरूरत पड़ेगी, गणित चाहिए होगा, तर्क चाहिए होगा। प्रेम का तो कोई उपयोग नहीं है। प्रेम तो गुलाब का फूल है। सौंदर्य तो उसमें बहुत है, उपयोगिता कोई भी नहीं। प्रेम तो पूर्णिमा का चांद है, गीत गाओ, नाचो, उत्सव मनाओ, पर बाजार में बेच थोड़े ही सकोगे! तिजोरी थोड़े ही भर सकोगे उससे!
समाज का सारा शिक्षण मस्तिष्क का है। और मस्तिष्क हृदय से ठीक उलटा छोर है। और जो लोग मस्तिष्क में ही अटके रह जाते हैं, उनके जीवन में निश्चय ही उस परम प्यारे की कोई झलक नहीं आती। उनके जीवन में परमात्मा की कोई छाया भी नहीं पड़ती। वे पड़ने ही नहीं दे सकते छाया। परमात्मा का होना ही उनके लिए अप्रामाणिक होगा। परमात्मा बुद्धि के लिए है ही नहीं। लाख प्रमाण जुटाओ, बुद्धि सब प्रमाणों का खंडन कर सकेगी।
परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है, अनुभव है। जिनको अनुभव है, वे प्रमाण नहीं देंगे। राह सुझाएंगे, हाथ हाथ में ले लेंगे, कहेंगे--चल पड़ो हमारे साथ। लेकिन बुद्धि कहती हैः पहले रुको! पहले प्रमाणित हो बात, पहले मुझे भरोसा आ जाए, तब मैं कदम बढ़ाऊं। ऐसी नासमझ नहीं हूं। मुझे पागल न समझो। अंधी नहीं हूं। नगद मेरे हाथ में रखो तो मैं आगे बढूं।
लेकिन परमात्मा कोई वस्तु तो नहीं है कि हाथ में रख दी जाए। और न ही परमात्मा कोई सिद्धांत है कि जिसे प्रमाणों से सिद्ध किया जाए। यह तो ऐसा ही है जैसे आंख कहे कि संगीत सुनने तो मैं तभी चलूंगी जब मुझे प्रमाण पहले मिल जाए कि संगीत होता है।
आंख को कैसे प्रमाण दो कि संगीत होता है? ज्यादा से ज्यादा आंख को तुम वीणा दिखा सकते हो। मगर वीणा थोड़े ही संगीत है! आंख पूछेगीः संगीत कहां है?
कान को तुम प्रकाश नहीं दिखा सकते। इंद्रधनुष आकाश में छाया हो, कान
को तुम उसकी प्रतीति नहीं करा सकते। कमल के फूल खिले हों, उनकी सुवास उड़ती हो, कान से तुम उस सुवास का संबंध नहीं जुड़वा सकते। और कान अगर जिद्द करके बैठ जाए कि जब तक मेरे पास प्रमाण न हो तब तक मैं कैसे मानूं कि सुगंध होती है, कि रंग होता है, कि गंध होती है, कि प्रकाश होता है? तो मुश्किल हो जाएगी।
ऐसी ही मुश्किल हुई है। हृदय अनुभव करता है, बुद्धि प्रमाण मांगती है। हृदय के पास कोई प्रमाण नहीं है, बुद्धि के पास कोई अनुभव नहीं है। इन दो में से तुम किसे चुनोगे?

उपयोगी तो बुद्धि को चुनना है। अगर तिजोरी में धन इकट्ठा करना हो, तो प्रेम से धन पैदा नहीं होता। प्रेम कोई धन को पैदा करने की टकसाल नहीं है। सच तो यह है कि पास हो तो शायद वह भी चला जाए। क्योंकि प्रेम में बांटने की क्षमता है। प्रेम में देने का मजा है। प्रेम लुटाना जानता है। प्रेम इतना दीवाना है कि लुटा सकता है और आनंदित हो सकता है। बुद्धि पकड़ती है, छोड़ती नहीं; झपटती है, छीनती है, आक्रामक है, सब तरह की चालबाजियां करती है। येन-केन-प्रकारेण बुद्धि धन इकट्ठा करेगी, पद लाएगी, प्रतिष्ठा लाएगी, महत्वाकांक्षाएं पूरी करेगी। इस जिंदगी में जिन चीजों को लोग सफलताएं कहते हैं, वे सब बुद्धि से मिलेंगी। इसलिए जो महत्वाकांक्षी है, वह प्रार्थना से रिक्त रह जाता है। जो सफलता, इस संसार की सफलता के पीछे दौड़ा हुआ है, उसका परमात्मा से कोई नाता नहीं जुड़ पाता। उसकी भांवर उस परम प्यारे से नहीं पड़ती।
कृष्णतीर्थ, तुम पूछते होः "क्या मेरे सूखे हृदय में भी... "
हृदय तो सूखा होता ही नहीं। यह तो बात ही संभव नहीं है। हृदय तो सदा ही गीला है। हां, तुम हृदय से बच कर निकल गए। तर्क सूखा है, तर्क बिल्कुल सूखा है, उसमें कोई आर्द्रता नहीं है।
लेकिन तुमने मस्तिष्क को ही हृदय समझ लिया है। लोग तो प्रेम भी करते हैं तो वे कहते हैं कि मैं विचार करता हूं कि मुझे प्रेम हो गया है। मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि मुझे विचार उठ रहा है कि मुझे प्रेम हो गया है। विचार और प्रेम! लोग तो अब विचार से भी प्रेम कर रहे हैं। विचार से कोई रास्ता ही प्रेम की तरफ नहीं जाता। विचार का अतिक्रमण करना होता है। विचार के कूड़े-करकट को एक तरफ सरका कर रख देना होता है। इसीलिए तो विचार प्रेम को अंधा कहता है, प्रेम को पागल कहता है।
अगर विचार की सुनोगे, होशियार रहोगे, तो जरूर उस परम प्यारे से चूक जाओगे। यह बात बड़ी विडंबना की है कि इस जगत में बुद्धि सफल होती है, प्रेम हारता है। उस जगत में प्रेम सफल होता है, बुद्धि हारती है।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है, खूब सम्हाल कर जितने गहरे ले जा सको अपने भीतर ले जाना।
जीसस ने कहा हैः जो इस जगत में प्रथम हैं, मेरे परमात्मा के राज्य में अंतिम होंगे; और जो यहां अंतिम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे।
अर्थ समझे? जो यहां सफल हैं, वहां असफल हैं। जो यहां असफल हैं, वहां सफल हैं। यह बिल्कुल अलग ही गणित है। ये दो अलग दुनियाएं हैं, ये अलग आयाम हैं।
मस्तिष्क से थोड़े नीचे उतरो, कृष्णतीर्थ! सोचो ही सोचो मत, कुछ भावो भी। विचार ही विचार न करो, कुछ गुनगुनाओ भी। तर्क ही तर्क न बिठाओ, कुछ नाचो भी। जब आकाश तारों से भर जाए तो नाचो। तारों के साथ नाचो। तारे नाच रहे हैं; सारा अस्तित्व नाच रहा है। यह अस्तित्व रास है! इस रास में सम्मिलित हो जाओ। और जब वीणा बजे, तो थिरकने दो पैरों को। और जब फूल खिलें, तो छोड़ो सब तर्कजाल, थोड़ी देर फूलों से गुफ्तगू करो, बातचीत करो, वार्तालाप करो।
बुद्धि तो कहेगी, क्या पागलपन है? फूलों से बातचीत!
लेकिन जो आदमी फूलों से बातचीत नहीं कर सकता, वह परमात्मा से भी बातचीत न कर सकेगा। फूल तो कम से कम प्रकट हैं, फूल तो कम से कम सामने हैं। और जिस आदमी की आंखों में सौंदर्य नहीं भरता और जिसके कानों में संगीत नहीं गूंजता और जिसके पैर कभी थिरक कर नाचने को आतुर नहीं हो जाते और जो कभी जगत के अपूर्व रहस्यमय इस विस्तार को देख कर विमुग्ध नहीं होता, रसलीन नहीं होता, अवाक नहीं होता; जिसे इस जगत का काव्य नहीं छूता है, वह अभागा है!
तुम इस जगत के काव्य को तुम्हें छूने दो। परमात्मा कुछ और नहीं है, इस जगत के भीतर छिपे हुए काव्य का ही दूसरा नाम है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, इस जगत के भीतर पोर-पोर समाए हुए सौंदर्य की अनुभूति है। परमात्मा मंदिरों और मस्जिदों में नहीं है, चांद-तारों में है, सागरों-

पहाड़ों में है, लोगों की आंखों में है, पक्षियों के पंखों में है, फूलों की पंखुरियों में है, उड़ती तितलियों में है।
अगर तुम मंदिर-मस्जिद के परमात्मा की बात कर रहे हो, तो तुम गलत आदमी
के पास आ गए! मैं तुम्हें मंदिर-मस्जिद का परमात्मा नहीं दे सकता। वह तो है ही मस्तिष्क का जाल। वह तो बुद्धि का ही खेल है। वह जो मंदिर-मंदिर में विराजमान है, वह तो बुद्धि का ही निर्माण है। और बुद्धि परमात्मा का निर्माण करे, तो परमात्मा झूठा होगा। परमात्मा तो वह है जिसने हमारा निर्माण किया है। और मजा देखते हो, हम उसका निर्माण कर रहे हैं! बना लिए गणेश जी, निकाल लिया जुलूस, करने लगे शोरगुल--बना भी लिए, फिर सिरा भी दिए। कैसे-कैसे खेल हैं!
छोटे बच्चे गुड्डे-गुड्डियों का विवाह कराते हैं और तुमने रामलीला रचा ली। राम-सीता का विवाह हो रहा है, सारा गांव सम्मिलित है। छोटे बच्चों के खेल में और तुम्हारे खेल में कोई गुणात्मक भेद नहीं है, मात्रा का भला हो। उनके गुड्डे-गुड्डियां छोटे हैं, तुम्हारे गुड्डे-गुड्डियां बड़े हैं, बस इतना ही फर्क है।
मंदिर-मस्जिद में मत जाना उसे खोजने! हां, तुम्हें वह परमात्मा और सब जगह दिखाई पड़ने लगे, तो मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं कि मंदिर-मस्जिद में दिखाई नहीं पड़ेगा। और सब जगह दिखाई पड़ने लगे, तो मंदिर-मस्जिद में भी दिखाई पड़ेगा। लेकिन इससे उलटा नहीं होगा कि मंदिर-मस्जिद में पहले दिखाई पड़े और फिर सब जगह दिखाई पड़े। वृक्ष में जिंदा है! मंदिर की मूर्ति तुम्हारा ही गढ़ा हुआ पत्थर है। वृक्ष में हरा है, अभी खिल रहा है, फूल बन रहा है। जीवंत से संपर्क जोड़ो, परमात्मा के सिद्धांत छोड़ो। न गीता में टटोलो, न कुरान में, न बाइबिल में। और मैं तुमसे यह नहीं कहता कि गीता, कुरान और बाइबिल में कुछ भी नहीं है। बहुत कुछ है! लेकिन पहले जिंदा परमात्मा से संबंधित हो जाओ तो गीता भी जिंदा हो जाएगी। और तब कुरान भी सिर्फ किताब न रह जाएगी, तुम्हारा अनुभव कुरान को भी जीवंत कर देगा। मगर तुम्हारा अनुभव प्राथमिक है।
और परमात्मा पर शर्तें मत लगाओ! ऐसा मत कहना कि तू पहले मुझे मिले, तब मैं तुझे अनुभव करूं; तू पहले सामने आए, तो मैं तुझे देखूं। परमात्मा पर शर्तें मत लगाना! परमात्मा की तरफ केवल वे ही लोग चल सकते हैं जो बेशर्त चल सकते हैं। परमात्मा तो है ही, मौजूद ही है। गैर-मौजूद कब था? गैर-मौजूद हो कैसे सकता है? जो गैर-मौजूद नहीं हो सकता, उसी का नाम परमात्मा है। उस पर शर्तें मत बांधो! अपने हृदय को खोलो, बेशर्त खोलो! उघाड़ो अपने को। और तुम चकित हो जाओगे! लेकिन हम शर्तें बांधते हैं।

तुम गाओ, तो मैं गीत रचूं,
छवि के, रस के मृदु गीत रचूं!
तुम गाओ, तो मैं गीत रचूं,
छवि के, रस के मृदु गीत रचूं!

बगिया के सुरभित कुसुमों के,
रस लेते फिरते भ्रमरों के, घन-पट कजरारे उलट-उलट,
मुस्काती, हंसती चपला के, सरिता की चंचल लहरों के,
मुख चुंबन करती किरणों के, सुमनों पर तुहिन-बिंदुओं में, नर्तन करती सी किरणों के! नैसर्गिक छवि के गीत रचूं, चिर-नूतन छवि के गीत रचूं! तुम गाओ, तो मैं गीत रचूं, छवि के, रस के मृदु गीत रचूं!

मानव के, जीवन के, जग के,
मन के, अंतर-व्यापारों के, गोचर के और अगोचर के,
नश्वर के और अनश्वर के,
वसुधा के नाना रूपों के,
त्रिभुवन के नाना भेदों के, आगत के, गत के, प्रस्तुत के, भव के, दुर्दांत पराभव के!
चिर सत्य, तत्व के भेदों के, बहुरंगी नूतन गीत रचूं!
तुम गाओ, तो मैं गीत रचूं,
छवि के, रस के मृदु गीत रचूं!

छवि मदिर अगोचर, गोचर जो, परिव्याप्त चतुर्दिक कण-कण में, बांधूं शब्दों में, छंदों में, रूपक, उपमा, उपमानों में!
मैं शब्द रचूं, तुम स्वर भर दो, जड़ शब्दों में जीवन भर दो, स्वर में प्राणों का रस भर दो, तुम मेरे गीत अमर कर दो!
तुम गाओ, तो मैं गीत रचूं,
नव रस के रसमय गीत रचूं!

यह रूखा-फीका जीवनक्रम,
विश्रांत, क्लांत यह जीवनक्रम, अविरत चलता रहता यह क्रम, दुःसाध्य-प्राय इसका व्यतिक्रम! संगीत, गीत के परिणय से,
शब्दों से स्वर के परिणय से,
हम नूतन छवि-संसार रचें,
नव रसमय रस-संसार रचें!
तुम गाओ, तो मैं गीत रचूं,
छवि के, रस के मृदु गीत रचूं!

ऐसी शर्त बांधी परमात्मा पर, कि तुम पहले गाओ तो मैं गीत रचूंगा, तो न
तो वह कभी गाएगा, न तुम कभी गीत रच सकोगे। तुम तो गीत रचो, वह सदा गाता है। तुम तो बांसुरी बनो, वह सदा गाता है। तुम तो हृदय की वीणा को सामने रखो और उसकी अंगुलियां तुम्हारे तारों को छेड़ जाएंगी--छेड़ ही जाती रही हैं, यह उसका सदा का नियम है।
मत कहो कि क्या मेरे सूखे हृदय में उस परम प्यारे की अभीप्सा का जन्म होगा? जन्म हो ही चुका है, इसीलिए तुमने प्रश्न पूछा है। उसे तुम परम प्यारा कह सक रहे हो, तो कहीं न कहीं बीज पड़ ही गया है। यह पूछना भी, क्या उसकी अभीप्सा पैदा होगी, अभीप्सा पैदा होने का लक्षण है। कहीं प्यास सुगबुगाने लगी है। शायद अचेतन में होगी अभी, भीतर गहरे में होगी अभी, मन की ऊपरी सतहों तक खबर न आई हो। खबर आने में समय लगता है। बीज जमीन में पड़ जाता है, टूट जाता है, फूट जाता है, अंकुरित होने लगता है, भूमि के ऊपर आते-आते समय लगता है।
तुम्हारे भीतर, कृष्णतीर्थ, उसे पाने की आकांक्षा तो पैदा हो ही गई। अन्यथा तुम यहां न होते; अन्यथा तुम संन्यासी न होते; अन्यथा यह प्रश्न न उठता। लेकिन कहीं तुम्हारे मन में एक भ्रांति है, वह भ्रांति छोड़ दो, मस्तिष्क हृदय नहीं है। सोच-विचार को ज्यादा महिमा न दो, ज्यादा मूल्य न दो। भाव को! और भाव बड़ी और बात है। सुबह सूरज निकले और तुम किसी से कहो,

अहा! कितनी सुंदर सुबह! कैसा प्यारा सूरज! पक्षियों के गीत! यह नई-नई सुबह उतरती हुई! ये आकाश में फैले हुए रंग! ये सूरज की किरणें, वृक्षों के पत्तों पर अटकी शबनम की बूंदों में चमकती! कैसी सुंदर सुबह है! कैसा प्यारा प्रभात! और अगर कोई कहेः सिद्ध करो, सौंदर्य क्या है? सौंदर्य की परिभाषा क्या है? तुम्हारा सुंदर कहने से प्रयोजन क्या है? तब तुम क्या करोगे? तुम एकदम हारे-हारे रह जाओगे।
ऐसे ही तो संत हारे-हारे रह गए हैं। जानते हैं, देखते हैं, पहचानते हैं, अनुभव करते हैं, पीते हैं, मगर गूंगे का गुड़! कह नहीं पाते। और तुम जो प्रश्न पूछते हो, बड़े सार्थक मालूम पड़ते हैं। सौंदर्य क्या? प्रश्न तो सार्थक मालूम पड़ता है, सार्थक है नहीं। अब तक कोई उत्तर नहीं दे सका कि सौंदर्य क्या? सौंदर्य का अनुभव किया, अनंत-अनंत लोगों ने किया। सौंदर्य के अनुभव से लोगों ने तूलिका उठा कर चित्र बनाए; सौंदर्य के अनुभव से लोगों ने शब्द जमाए, गीत उठाए; सौंदर्य के अनुभव से लोगों ने मृदंग बजाई, नाचे; मगर कह तो कोई भी न सका कि सौंदर्य की परिभाषा क्या है!
जब सौंदर्य की ही परिभाषा नहीं होती, तो उस परम सौंदर्य की क्या परिभाषा होगी?
तुम किसी युवती के प्रेम में पड़ गए, कि किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गए।
और कोई पूछे कि प्रेम क्या? तुम्हारा हृदय तो झर-झर बहा जा रहा है, तुम्हारे रोएं-रोएं में पुलक है, तुम्हारी आंखों में चमक है, तुम्हारे चेहरे पर भाव कुछ और, जो कभी भी न था; तुम नहाए-नहाए, एकदम ताजे हो; तुम्हारे जीवन में पहली दफा त्वरा है, गति है, आनंद है, उत्सव है। मगर कोई पूछता हैः प्रेम क्या? और तुम ठिठक जाओगे, और उत्तर न दे पाओगे।
जब प्रेम की ही परिभाषा नहीं होती तो उस परम प्रेम की कैसे परिभाषा होगी? और जब साधारण प्रेमियों के संबंध में हम कुछ नहीं कह पाते... तुमने जिस स्त्री को चाहा है, अगर कोई उसके संबंध में प्रश्न उठाने लगे, तुम कोई उत्तर न दे पाओगे। तुम लाख समझाओ कि सुंदर है, लेकिन अगर कोई कहेः नहीं, तो तुम क्या करोगे?
मजनू को उसके गांव के राजा ने बुला भेजा था। दया आ गई होगी; रोता फिरता
था गली-कूचे, गली-कूचे। दिन और रात चिल्लाता रहता थाः लैला! लैला! सारा गांव दया करने लगा था कि यह भी खूब पागल हुआ! राजा ने उसे बुला भेजा और कहा, तुझ पर मुझे दया आती है। और तेरा लैला का यह गुणगान सुनते-सुनते मेरे मन तक में वासना जगी कि देखूं, यह लैला जरूर सुंदर होगी, बहुत सुंदर होगी, तभी तो तू इतना पागल हुआ है! तो कल मैं तेरी लैला को देखने भी गया। और तू बिल्कुल पागल है, उस स्त्री में कुछ भी नहीं। साधारण सी औरत है। तुझ पर मुझे दया आती है, तेरे आंसुओं पर दया आती है। तो मैंने अपने राजमहल की बारह सुंदरियां बुलवाई हैं, इनमें से तू कोई भी चुन ले। और राजमहल में निश्चित ही उस देश की सबसे बड़ी सुंदरियां थीं। कतार लगवा दी उसने, बारह सुंदरतम स्त्रियां खड़ी करवा दीं और मजनू से कहा, चुन ले।
मजनू एक-एक के पास गया और इनकार करता गया। और जब बारह को ही इनकार कर दिया, तो उस राजा ने कहा, तू होश में है? इनसे सुंदर स्त्रियां तूने कहीं देखी हैं? और लैला में क्या रखा है इनके सामने?
मजनू हंसने लगा। उसने कहा, मालिक, आप न समझोगे। लैला को देखना हो, तो मेरी आंख चाहिए। मेरी बिना आंख के आप लैला को न देख सकोगे। और इनमें कोई भी लैला नहीं है। लैला तो दूर, लैला के चरणों की धूल भी कोई नहीं है।
मजनू सिद्ध नहीं कर सकता। इतना ही कह सकता है कि मेरी आंख से देखो।
मगर दूसरे की आंख से देखा कैसे जा सकता है? मैं अपनी आंख तुम्हें नहीं
दे सकता। दे भी दूं तो तुम तक पहुंचते-पहुंचते वे आंखें देखने में असमर्थ हो जाएंगी। तुम्हें बुला कर अपनी आंख से दिखला भी नहीं सकता। रोज तुम्हें बुलाता तो हूं कि मेरी आंख से देखो! यह जो तुमसे बोल रहा हूं, और क्या कर रहा हूं--कि मेरी आंख से देखो। मगर कोई उपाय नहीं।
हां, मेरे बोलने से इतना ही हो सकता है कि शायद तुम्हें मेरी तड़प समझ में आ जाए; शायद तुम्हें इतनी बात समझ में आ जाए कि यह आदमी रोज बोले जाता, रोज बोले जाता, कुछ न कुछ होगा, कुछ न कुछ बात होगी, कहीं न कहीं, कोई न कोई

अनुभव होगा; चलूं, मैं भी तलाशूं! और जाना कहीं और नहीं है, जाना अपने हृदय में है। उतरो सिर से और जहां हृदय की धड़कन है, वहां आओ; वहां तुम्हारे जीवन का वास्तविक केंद्र है।
आज भी जब तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है, तो तुम हृदय पर हाथ रखते हो, सिर पर हाथ नहीं रखते। अगर कोई आदमी कहे कि मेरा फलां से प्रेम हो गया है और सिर पर हाथ रखे, तो तुम कहोगेः प्रेम टूट गया या हो गया? मामला क्या है? सिर पर तो लोग हाथ तब रखते हैं जब टूट जाता है। प्रेम जब हो जाता है तो तुम हृदय पर हाथ रखते हो। और वह भी हृदय पर एक खास जगह हाथ रखते हो। वही जगह है जहां जीवन का केंद्र छिपा है, जहां प्राणों का प्राण स्पंदित हो रहा है। वहां गंगोत्री है। कितनी ही चट्टानों में दबी हो, चट्टानें हटाई जा सकती हैं। चट्टानें मस्तिष्क की हैं।
हटाओ चट्टानों को! परमात्मा पर शर्तें मत लगाओ! प्रमाण मत मांगो! उसका कोई प्रमाण नहीं है। यद्यपि वही मौजूद है। आंख खोलो, थोड़े भावप्रवण होओ, थोड़ी भावुकता लाओ, थोड़ी संवेदना जगाओ, वृक्षों को गले मिलो, फूलों को चूमो, तारों के साथ आंखें जोड़ो, आंखें मिलाओ--और धीरे-धीरे जीवन का काव्य तुम्हारे हृदय को तरंगित करेगा। और एक बार तुम्हारा हृदय तरंगित होना शुरू हो जाए, तो तुम जानोगे कि परमात्मा है और केवल परमात्मा है, उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

दूसरा प्रश्नः आप वर्षों से बोल रहे हैं। रोज बोलते हैं। सुबह बोलते हैं, सांझ बोलते हैं। फिर भी आप जो कहते हैं वह सदा नया लगता है। इसका राज क्या है?

मैं तो एक ही बात बोल रहा हूं। सुबह भी वही, सांझ भी वही। कल भी वही बोला था, आज भी वही बोल रहा हूं, कल भी वही बोलूंगा। लेकिन जो मैं बोल रहा हूं, वह मेरा निज अनुभव है, वह मेरी प्रतीति है, वह मेरी अनुभूति है। इसलिए लाख बार बोलूं तो भी बासी नहीं पड़ेगी। उसमें मेरी सांसें होंगी, उसमें मेरे हृदय की धड़कन होगी। और जो भी राजी हैं सुनने को, उन्हें उसमें रोज-रोज ताजगी मिलेगी। कल भी यही सूरज निकला था, और परसों भी यही सूरज निकला था, और आज भी यही सूरज निकला है। लेकिन जरा सुबह उठ कर देखा था--कितना ताजा था! कल भी यही वृक्ष थे, आज भी यही वृक्ष हैं, कल भी यही वृक्ष होंगे--कितने ताजे हैं! इनकी ताजगी का राज क्या है? इनके नयेपन का राज क्या है? इनके नयेपन का एक ही राज है कि ये जिंदा हैं।
तुम कुरान को रोज बैठ कर पढ़ोगे, आज नहीं कल बासी हो जाएगी। तुम्हारा अनुभव नहीं है। शब्द तोतों जैसे रट जाएंगे। एक आदमी बैठा राम-राम, राम-राम जपता रहता है, भीतर हजार विचार चलते रहते हैं। राम-राम यांत्रिक हो गया है। तुम उसका राम-राम, राम-राम सुनोगे तो नींद आएगी, ऊब आएगी, जम्हाई आएगी। मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने एक दिन पूछा कि नसरुद्दीन, तुम जम्हाई बड़ी गजब की लेते हो! बहुत जम्हाई लेने वाले देखे, मगर अगर कोई ओलंपिक हो जम्हाई का, तो तुम जीतोगे। यह तुमने कहां सीखी? उसने कहा, आप जानते हैं मेरी चार पत्नियां हैं, मैं मुसलमान हूं। मुंह खोलने का और कोई मौका ही नहीं मिलता। तो बस जम्हाई ही एक स्वतंत्रता बची।
तुम देखोगे, मंदिरों में, मस्जिदों में लोग सो रहे हैं, लोग नींद ले रहे हैं। न मालूम कितने चिकित्सक हैं जो अपने मरीजों को, जिनको नींद नहीं आती, उनको कहते हैं, धर्मसभाओं में जाओ, वहां आ जाएगी। वहां न आए तो फिर कोई शामक दवा काम नहीं कर सकती।
जहां-जहां तोतों की तरह, यंत्रवत कुछ बातें दोहराई जाएंगी, वहां ताजगी नहीं हो सकती। लेकिन जहां अनुभव सहज बह रहा हो, वहां ताजगी होगी। तुम गंगा की एक तस्वीर अपने घर में टांग लो, वह ताजी नहीं होगी; वह बासी होने लगी, रोज-रोज बासी होने लगेगी। लेकिन गंगा, जिसकी तुमने तस्वीर उतारी है, वह कभी बासी नहीं होती। गंगा रोज नई है। रोज नये ढंग, रोज नये भाव, रोज नई भंगिमा। तुम गंगा के किनारे रोज जाओ और तुम चकित होओगे--वही गंगा, फिर भी वही नहीं!

हेराक्लतु ने कहा हैः एक ही नदी में दुबारा न उतर सकोगे। क्योंकि नदी रोज भागी जा रही है। और मैं तो तुमसे कहता हूंः एक ही नदी में एक बार भी उतरना मुश्किल है। क्योंकि जितनी देर में तुम उतरे, उतनी देर में नदी भागी जा रही है। तुमने नदी में पैर डाला, पानी को पैर ने छुआ, तब नदी भागी जा रही है। जिस पानी को तुम्हारे पैर ने छुआ था, वह भाग गया, वह जा चुका सागर की तरफ। तुम्हारा पैर पानी में डूबा, दूसरा पानी भी भागा जा रहा है। और जरा नीचे डूबा, वह भी भागा जा रहा है। जब तक तुम नदी की तलहटी में पैर को टिकाओगे, तब तक कितना जल बह गया! प्रतिपल नई है। तस्वीरें नई नहीं होती। मोहम्मद जब बोलते होंगे तो हर रोज ताजा रहा होगा। कुरान ताजा नहीं हो सकता। कुरान तस्वीर है। कृष्ण ने जब बोला होगा अर्जुन से तो एक-एक शब्द ताजा रहा होगा, सुबह की ओस जैसा ताजा रहा होगा, रात के तारों जैसा ताजा रहा होगा। लेकिन गीता ताजी नहीं हो सकती। गीता तो तस्वीर है। तस्वीरें ताजी नहीं होतीं, तस्वीरें तो मुर्दा हैं। तस्वीरों में कहां जिंदगी? जिंदगी तो बढ़ती जाती है, बदलती जाती है। तस्वीरें वही की वही रह जाती हैं।
एक मां अपने बेटे को परिवार का एलबम दिखा रही थी। एक सुंदर जवान, सुंदर सूट-बूट, टाई, जुल्फें सम्हाले हुए तस्वीर में दिखाई पड़ा। उस बेटे ने पूछा, यह कौन है? उसकी मां ने कहा, अरे, पहचानते नहीं? ये तुम्हारे पापा हैं। उस बेटे ने कहा, ये मेरे पापा हैं? तो अपने घर में जो गंजा आदमी रहता है, वह कौन है?
तस्वीरें तो रुक जाती हैं, एक जगह ठहर जाती हैं। तस्वीरें गंजी नहीं होंगी। तस्वीरें जहां हैं वहां हैं। जिंदगी नहीं रुकती। जिंदगी बहती चली जाती हैं। जिंदगी गंगा है। जिंदगी गंगा की तस्वीर नहीं है।
मुझे पता नहीं मैंने तुमसे कल क्या कहा था और परसों क्या कहा था। मुझे
तो बस उतना ही पता है जो मैं तुमसे अभी कह रहा हूं। हालांकि वह एक ही होगा, क्योंकि मैं एक के ही गीत गा रहा हूं। अनेक की तो बात ही नहीं हो रही है। शायद नये पहलू होंगे, शायद नये कोण होंगे, शायद नये शब्द होंगे। मगर जो मैं कह रहा हूं, संदेश तो एक ही है।
तुम पूछते होः "आप वर्षों से बोल रहे हैं। रोज बोलते हैं। सुबह बोलते हैं, सांझ बोलते हैं। फिर भी आप जो कहते हैं वह सदा नया लगता है। इसका राज क्या है?"
राज कुछ भी नहीं है। सीधी-सादी बात है। मैं वही बोलता हूं जो मेरी प्रतीति है। मैं कोई पंडित नहीं हूं। पंडित तो पोपट होते हैं। पंडित तो तोते होते हैं। मैं कोई पंडित नहीं हूं। मैं तो सीधा-सादा उतना ही कह रहा हूं जितना मुझे दिखाई पड़ता है। उसे कितना ही कहूं, कह नहीं पाता हूं, इसीलिए रोज-रोज कहना पड़ता है। और जब तक जीऊंगा, कहता रहूंगा। कहना पड़ेगा। चुप भी रहूंगा तो भी उसी की तरफ इशारा होगा मेरी चुप्पी में। बोलूंगा तो उसी की तरफ इशारा होगा। ऐसा कहूं कि वैसा कहूं, अनेक विरोधाभास तुम्हें मेरे वक्तव्यों में मिलेंगे, लेकिन सब तरफ से मैं उसी तरफ इशारा कर रहा हूं। कभी उत्तर से, कभी पूरब से, कभी पश्चिम से, लेकिन मेरी अंगुली एक ही चांद की तरफ उठी हुई है।
राज कुछ भी नहीं! मैं कोई वक्ता नहीं हूं। मुझे बोलने की कोई कला नहीं आती। यह कोई बोलने की शैली नहीं है। यह भी कोई ढंग है बोलने का जैसा मैं बोलता हूं! बोलने का ढंग होता है राजनेताओं का।
सत्यप्रिया ने एक छोटा सा लतीफा भेजा है।
एक बार एक नये-नये नेता बुधसिंह जी चुनाव में खड़े हुए। उन्हें भाषणों
का अनुभव नहीं था। जब व्याख्यानों का दौर चला तो उनके हमनुमा, उनके साथी नेता ने कहा कि आप भी कुछ बोलें, जो भी हृदय में उठे। उन्होंने कहा, भाई, बोलना तो मुझे आता नहीं; कोई अनुभव नहीं है पुराना। मित्र बोले, नेता का बोलना तो बहुत सरल है। बस बात में से बात निकालते जाना है।
तो वे नये नेता जो बोले, वह यह है--
भाइयो और बहनो, न तो मैं स्पीकर हूं, न लाउडस्पीकर। स्पीकर हमारे मोहल्ले के कल्लन मियां हुआ करते थे, जो कि आजकल कब्र में हैं। उनकी कब्र पर दो तरह के फूल चढ़ाए गए। एक तो गेंदे का और एक गुलाब का। और जैसा कि आप

जानते हैं, गुलाब से गुलकंद बनता है। और गुलकंद ही सारी बीमारियों की जड़ है। और आपको यह मालूम ही होगा कि जड़ों में सबसे अधिक लंबी जड़ें खरबूजे की होती हैं। और यह भी सभी को मालूम है कि एक खरबूजे को देख कर दूसरा खरबूजा रंग बदलता है। और रंग जर्मनी के बहुत प्रसिद्ध हैं। और जर्मनी में ही हिटलर हुआ था, जिसने सेकेंड वर्ल्ड-वार लड़ा था। और वार कई तरह के होते हैं, जैसे सोमवार, मंगलवार, बुधवार। और मैं बुधसिंह हूं। अतः वोट मुझे ही दें। यह बात में से बात निकालने की कला!
वक्ता तो राजनेता होते हैं। राज तो उनके होते हैं बोलने के। मैं कोई वक्ता नहीं हूं, कोई राज नहीं है बोलने का। एक गीत जन्मा है भीतर, जो फैल जाना चाहता है। वैसे ही अपरिहार्य ढंग से जैसे तुम शांत झील में एक कंकड़ फेंक दो--और लहर उठे, और लहरें उठें, और चलें दूर-दूर किनारों को छूने के लिए, अपरिहार्य। वैसे ही जैसे पक्षी सुबह गीत गाते हैं, क्योंकि सूरज ऊगा-- उसके स्वागत का गान करना होता है। तुम उनसे राज पूछो, तो पक्षी बड़े चौंकेंगे। वैसे ही जैसे फूल खिलते हैं। और तुम उनसे राज पूछो कि खिलने का राज क्या है? तो फूल भी बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे, उत्तर न दे सकेंगे।
मेरा भी कोई राज नहीं है। न बोलने में मेरे कोई ढंग है, न कोई तुक है, न कोई शैली है। लेकिन जो मेरे हृदय में है, वह उंडेल देता हूं। और जो भी अपने हृदय में उसे झेलने को राजी हैं, वे उससे आंदोलित होंगे। उन्हें आंदोलित होना ही पड़ेगा। हां, जो बिल्कुल बंद बैठे हैं, दीवालें, लोहे की दीवालों के पीछे छिपे बैठे हैं--और तर्कों की दीवालें लोहे की दीवालों से भी ज्यादा मजबूत हैं। और जो अपने मस्तिष्क के कठघरे में बंद हैं, और जो अपनी धारणाओं को जरा सी देर के लिए भी हटा कर नहीं रख सकते, जो खिड़की खोल कर नहीं देख सकते कि सुबह हो गई या नहीं, जो पर्दा नहीं हटा सकते कि चांद निकल आया या नहीं, वे मेरी बात को समझ ही न सकेंगे, सुन ही न सकेंगे। कान उनके सुन लेंगे, लेकिन हृदय तक बात नहीं पहुंची तो सुनी नहीं गई। सुनता हृदय है। जब कान हृदय से जुड़ता है, तो श्रावक का जन्म होता है, सुनने वाले का जन्म होता है। और सम्यक श्रवण हो, तो मेरी बात तुम्हें रोज ताजी लगेगी। यद्यपि वह उतनी ही प्राचीन है जितना प्राचीन यह जगत। मैं वही कह रहा हूं जो वेद के ऋषियों ने कहा था। वही जो बाइबिल में है, और वही जो कुरान में है, और गीता में, और धम्मपद में। मेरी बात उतनी ही पुरानी है जितना यह अस्तित्व। और मेरी बात उतनी ही नई है जितनी आज की सुबह की ओस। यही परमात्मा का विरोधाभास है--सनातन और चिरनूतन!
लेकिन समझ तुम मेरी बात को तभी सकोगे जब समझ को एक तरफ रख दोगे। एक समझ
है जो समझ नहीं। और एक ऐसी नासमझी है जो समझ है।
पश्चिम के एक बहुत बड़े अदभुत फकीर तर्तूलियन का प्रसिद्ध वचन है कि दुनिया में एक ज्ञान है जो अज्ञान से बदतर। दुनिया में ऐसा ज्ञान है जो जानता ही नहीं, जान ही नहीं सकता। उसको ही मैं पंडित का ज्ञान कहता हूं। और तर्तूलियन ने यह भी कहा है, दुनिया में एक ऐसा अज्ञान भी है जो जानता है। एक ऐसा अज्ञान, जो सारे ज्ञानों से ऊपर है।
जब मैं हृदय की बात कह रहा हूं तो उसी अज्ञान की बात कह रहा हूं। जैसे छोटे बच्चे अज्ञानी होते हैं--निर्दोष, सरल, दर्पण की भांति कोरे; अभी कोई धूल नहीं जमी। ऐसे तुम मुझे समझोगे तो समझते-समझते ही रूपांतरित हो जाओगे, सुनते-सुनते ही क्रांति हो जाएगी। यहां मेरे पास बैठते-बैठते-बैठते तुम एक दिन अचानक पाओगेः तुम रंग गए हो किसी और ही रंग में, जिसकी तुमने कभी कल्पना भी नहीं की थी और जिसका तुमने कभी सपना भी नहीं देखा था।
लेकिन अगर तुम अपनी धारणाएं लेकर आते हो--अपनी समझदारियां, अपनी चालाकियां, अपने तर्क, अपने सिद्धांत, अपने शास्त्र--तो फिर बड़ा मुश्किल है! मैं तुम तक पहुंच ही नहीं पाता। लाख उपाय करता हूं, टटोलता हूं तुम्हारे हृदय तक जाने के लिए, मगर द्वार नहीं मिलता, मार्ग नहीं मिलता। फिर मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ समझोगे। और तुम जो समझोगे, जाकर बाहर प्रचार करोगे कि मैंने कहा है। वह तुम्हारी समझ है!

पति ने पत्नी को

पास बुलाया
प्यार करते हुए
प्यार का अर्थ समझाया--
"यूं तो प्यार
एक शोला है
आग है
धुआं है
चिनगारी है,
फिर भी प्यार की तड़प
कितनी मीठी है,
कितनी प्यारी है।"
पत्नी बोली--
"सीधी तरह क्यों नहीं कहते प्यार एक अंगीठी है।"

पति होंगे कवि। तो कवि कह रहा है-- पति ने पत्नी को
पास बुलाया
प्यार करते हुए
प्यार का अर्थ समझाया--
"यूं तो प्यार
एक शोला है
आग है
धुआं है
चिनगारी है,
फिर भी प्यार की तड़प
कितनी मीठी है।"
पत्नी बोली--
"सीधी तरह क्यों नहीं कहते
प्यार एक अंगीठी है।"
पत्नी की अपनी समझ है। जहां आग, शोला, धुआं, चिनगारी की बात चल रही हो, नाहक इतना लंबा बढ़ाना बात को, अंगीठी कह दो, बात खतम हो गई! तुम अगर अपनी ही धारणाओं से समझोगे, तो मैं कहूंगा शोला, मैं कहूंगा चिनगारी, मैं कहूंगा आग, तुम समझोगे अंगीठी। प्यार अंगीठी नहीं है। शोला जरूर है, चिनगारी भी है, धुआं भी है, लपट है, ज्वाला है, मगर अंगीठी नहीं है।
मैं जो कहता हूं, अगर तुम वही समझो, तो उसे तुम चिरातन, पुरातन, सदा से चला आया, शाश्वत, ऐसा भी पाओगे और ऐसा भी कि अभी-अभी जन्मा, नया-नया, ताजा, सद्यःस्नात। लेकिन तुमने अगर अपनी धारणाओं से सुना, तो कठिनाई हो जाएगी। तब तुम अपनी धारणाओं का या तो समर्थन पाओगे या विरोध पाओगे। दोनों हालत में चूक हो जाएगी। कुछ लोग सोचते हैं, मैंने जो कहा उससे उनकी धारणाओं का समर्थन हुआ। कभी-कभी हो जाता होगा। वे प्रसन्न जाते हैं, उनके अहंकार को तृप्ति मिली--कि हम जैसा मानते थे, वह ठीक है। ठीक तो उन्हें मालूम ही है। उन्होंने मेरा और सहारा ले लिया। उन्हें और थोड़े प्रमाण मिल गए अपने ठीक होने के। कुछ हैं, जिनको मेरी बात से चोट लग जाएगी, क्योंकि उनकी धारणा टूटेगी। वे नाराज जाएंगे। वे कहेंगे कि मैं गलत हूं। वे तो ठीक हैं ही। इसलिए अगर उनसे मैं मेल नहीं खाता तो मैं गलत हूं।
जो यह सोच कर गया कि मैं मेल खाया, इसलिए ठीक है, जो यह सोच कर गया कि मैं मेल नहीं खाया, इसलिए मैं गलत हूं, वे दोनों ही चूक गए। मेरे साथ गलत और ठीक का तालमेल बिठाओ ही मत। इतनी जल्दी क्या है? संगीत सुनते हो तब तुम यह थोड़े ही सोचते हो कि ठीक या गलत? अपने शास्त्र के अनुसार या नहीं? संगीत सुनते हो तो आनंदित होते हो; लयबद्ध हो जाते हो, डोलने लगते हो। मुझे ऐसे सुनो जैसे संगीत सुना जाता है--डोलो! उसी डोलने में मेरा हृदय और तुम्हारा हृदय एक सेतु में बंध जाएंगे। एक पतला सा प्रीति का धागा मेरे हृदय को और

तुम्हारे हृदय को बांध देगा। मेरा शून्य और तुम्हारा शून्य करीब-करीब आ जाएंगे। दो शून्यों के करीब आ जाने का नाम सत्संग है। और जहां सत्संग है, वहां प्रतिदिन लगेगा कि नया सूरज निकला, नये फूल खिले, नया वसंत आया। ऐसा जैसा कि कभी नहीं आया था। और ऐसा जैसा कि अब फिर कभी नहीं आएगा।
सत्संग सौभाग्य है।
लेकिन ऐसा सौभाग्य इस पृथ्वी पर रोज-रोज कम होता चला गया है। लोग सुनते हैं, श्रोता की तरह। सत्संग जरा और करीब आने की बात है। मस्तिष्क से सुना, श्रोता; हृदय से गुना, सत्संग। और मस्तिष्क में बड़ी दीवारें हैं--कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई कम्युनिस्ट है; कोई नास्तिक है, कोई आस्तिक है; कोई ऐसा मानता है, कोई वैसा मानता है। जानते तुम कुछ भी नहीं हो। जानते हो तो फिर मुझे कोई अड़चन नहीं है। तुम अगर जान ही लिए हो तो फिर कोई चिंता की बात नहीं। फिर मुझे सुनने की जरूरत भी नहीं है। फिर किसी को क्या सुनना है? जिसने जान लिया, जान लिया। बात समाप्त हो गई। वह अपने घर आ गया; यात्रा पूरी हो गई। तुम अगर जानते हो, तब तो कोई अड़चन ही नहीं है। मगर जानते नहीं हो और मानते हो कि जानते हो, तो दीवार खड़ी है।

दीवारें
आगे
पीछे
दाएं
बाएं
दीवारें
दीवारों के पीछे दीवारें
दीवारों के पीछे, पीछे, पीछे...
और, और, और...
दीवारें, दीवारें, दीवारें...
किसे पुकारें?
कब तक पुकारें? ?

बहुत बार ऐसा लगता है किसी व्यक्ति को देख कर--किसे पुकारें? कब तक पुकारें? और मैं तुम्हारी दीवालें नहीं हटा सकता। तुमने बनाई हैं, तुम्हीं को हटाना होंगी। तुम उनके मालिक हो। कोई हस्तक्षेप नहीं हो सकता। और तुम्हारी दीवालों को मैं तोड़ने वाला कौन? और तुम्हारी दीवालें अगर तुम्हें प्यारी हैं, तो मुबारक हों।
मगर दीवालों के भीतर तुम कैदी हो गए हो; तड़प रहे हो, निकलना चाहते हो, फड़फड़ा रहे हो; फिर भी निकलते नहीं, क्योंकि दीवालें तुमने बड़ी मेहनत से बनाई हैं, जन्मों-जन्मों में बनाई हैं। कई बार रास्ते पर आते-आते चूक जाते हो। कई बार चौराहे पर खड़े हो जाते हो और सोचते ही रहते हो कि कहां जाऊं? अवसर बीत जाता है यही सोचते-सोचते!

जिंदगी का आईना
चटख गया है,
आस्था का उजाला
भटक गया है!
जगूं, उठूं, चलूं, बढूं
दिल का तकाजा है,
आशा पूछती है निराशा से
अब किधर का इरादा है?

बस इरादे ही पूछे जाते रहते हैं--अब कहां चले? कहां जाना है? क्यों जाना है? इस दिशा को ही क्यों चुन रहे हो? और जो ऐसे ही सोच-विचार में पड़ा रहा, पड़ा रहा, वह जन्मों-जन्मों तक सोचता-विचारता रहेगा, इंच भर बढ़ेगा

नहीं, इंच भर बदलेगा नहीं। ऐसे ही तो बहुत से लोग पत्थर की तरह पड़े रह गए हैं। जो गुलाब के फूल हो सकते थे वे पत्थर की तरह पड़े रह गए हैं। जरा चौंको, जरा होश सम्हालो, जरा गौर से देखो--तुमने कहीं अपने हृदय को पत्थर की तरह ही तो छोड़ नहीं दिया है? इसमें बड़ी संभावनाएं हैं। इसमें परम संभावना है। इसमें परमात्मा प्रकट हो सकता है।

तीसरा प्रश्नः मैं संसार को रोशनी दिखाना चाहता हूं। और आपने कहा भी
है कि यही आपका संदेश है। मैं इस महत कार्य का प्रारंभ कैसे करूं?

जगदीश! रोशनी तुम्हें मिल गई? रोशन तुम हो गए?
अगर रोशन तुम हो गए, तो यह प्रश्न नहीं पूछोगे। क्योंकि जो रोशन हो जाता है, उसे पूछना नहीं पड़ता कि रोशनी कैसे दिखाऊं। उससे रोशनी झरने लगती है। दीया जल जाए तो दीया यह थोड़े ही पूछता है कि अब कमरे में रोशनी कैसे करूं? दीया जल गया कि रोशनी हो गई। दीया जल गया कि रोशनी पड़ने लगी लोगों के रास्तों पर। दीया जल गया कि दूर अंधेरों में भटके हुए लोगों की आंखों में भी दिखाई पड़ने लगेगा। दूर जंगल में जो भटक गया है, उसको भी किसी के झोपड़े का दीया दिखाई पड़ जाता है।
दीया जल गया तो रोशनी तो स्वभावतः झरती है। तुम यह पूछते ही नहीं।
दीया तो तुम्हारा जला नहीं है। हां, रोशनी दिखाने का मजा तुम लेना चाहते हो! और इस तरह की भ्रांति इसलिए पैदा होती है, क्योंकि तुम्हारे तथाकथित साधु-संत तुम्हें यही समझाते रहे हैंः सेवा करो! लोगों का कल्याण करो! परोपकार करो! और इतनी बार ये बातें कही गई हैं कि तुम यह भूल ही गए कि अभी अपना ही उपकार नहीं हो सका तो परोपकार कैसे होगा? अभी अपनी ही सेवा नहीं हो सकी तो किसकी सेवा करोगे? अभी खुद का दीया बुझा है, कैसे किसी दूसरे का दीया जलाओगे? मगर लोग तुम्हें यही समझाते रहे हैं।
मैं तुमसे यह नहीं कहता। मैं तुम्हें परम स्वार्थ सिखाता हूं।
स्वार्थ शब्द मुझे बहुत प्यारा है! उसकी व्युत्पत्ति भी बड़ी अदभुत है। स्वार्थ बनता हैः स्व अर्थ से। जो स्वयं के अर्थ को साध ले। जो स्वयं के अभिप्राय को पा ले। महावीर स्वार्थी हैं, बुद्ध स्वार्थी हैं, कृष्ण स्वार्थी हैं। और तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्मा तुम्हें बता रहे हैं कि परोपकारी हो जाओ! परार्थी हो जाओ! हां, बुद्ध से परार्थ हुआ, लेकिन वह गौण है बात। किया नहीं, हुआ। स्वार्थ साधा और परार्थ हुआ। अपना दीया जलाया, उससे दूसरों को रोशनी मिली।
जगदीश, जैसा तुमने मुझसे पूछा है, ऐसे ही एक दिन एक आदमी ने जाकर बुद्ध
से भी पूछा था। बहुत बड़ा धनी था, करोड़पति था। कहते हैं इतना उसके पास धन था, अकूत, कि बुद्ध को जिस बगीचे में उसने ठहराया था... बुद्ध को पसंद आ गया और उन्होंने कहा कि इस बगीचे को तो विहार बना दो! कि जब भी भिक्षु यहां से गुजरें तो ठहरें। तो उस धनपति ने कहा, लेकिन यह बगीचा मेरे एक मित्र का है; खरीदना पड़ेगा। मित्र से पूछा। मित्र भी जिद्दी था; बुद्ध-विरोधी था। दूसरे, उसने कहा कि अगर खरीदना ही है तो मुंहमांगे दाम देने होंगे। धनपति बुद्ध के चरणों में चढ़ाना चाहता था बगीचे को, तो उसने कहा कि मुंहमांगे दाम दूंगा; कितने दाम मांगते हो? जो दाम उसने मांगे, शायद किसी ने कभी नहीं मांगे होंगे। उसने कहा, स्वर्ण-अशर्फियों से जमीन को पाट दो। जितनी जमीन पट जाएगी, उतनी तुम्हारी। स्वर्ण-अशर्फियां बिछा दो, यह कीमत है। बड़ा बगीचा था। होगा कोई तीन-चार सौ एकड़ का बगीचा। लेकिन उस धनपति ने वह तीन-चार सौ एकड़ वाला बगीचा अशर्फियां बिछा कर खरीद लिया था। बुद्ध को दान दिया था। खूब था उसके पास, अकूत था उसके पास। बेटा भी नहीं, बच्चे भी नहीं।
उसने बुद्ध से पूछा कि मेरे पास धन बहुत है, मैं जगत के कल्याण में लगाऊं। क्या कल्याण करूं, आप आज्ञा दें। और कहते हैं, बुद्ध की आंखें गीली हो गईं और वे नीचे देखने लगे। उस आदमी ने पूछा कि आप उदास क्यों हो गए? और आपकी आंखों में आंसू क्यों देखता हूं? बुद्ध की आंखों में आंसू! और बुद्ध ने कहा कि तुम्हारे लिए हैं ये आंसू। क्योंकि अभी तुम अपना ही कोई कल्याण नहीं कर पाए, अपना ही कोई मंगल नहीं कर पाए, तुम कैसे किसी और का मंगल

करोगे? तुम जाओगे दीया जलाने, डर यही है कि किसी का जला हुआ दीया बुझा न देना।
और यही अक्सर मिशनरियों से हो जाता है। जले दीये बुझ जाते हैं। चले! ... मेरे पास कभी-कभी मिशनरी आ जाते हैं ईसाई मिलने, कि हम लोगों को ईसा के रास्ते पर लगाने आए हैं।
मैं उनसे पूछता हूं, तुम लगे हो ईसा के रास्ते पर? छाती पर हाथ रख कर, ईसा की कसम खा कर कहो!
डरते हैं, ईसा की कसम खा भी नहीं सकते। झूठी कसम खाएं, फिर ईसा पीछे कयामत के दिन... वह डर भी बैठा हुआ है, किताब में पढ़ा हुआ है कि कयामत के दिन ईसा छांटेंगे--अपनी भेड़ें एक तरफ कर लेंगे और जो अपनी भेड़े नहीं हैं, उनको डाल देंगे नरक में। तो कहीं झंझट न हो! मैं कह देता उनको, कयामत का याद रखना कि अगर ईसा की झूठी कसम खाई तो मुश्किल में पड़ोगे। और मैं भी मौजूद रहूंगा कयामत के दिन, गवाह रहूंगा कि यह आदमी कसम खाया था! तो वे कहते हैं कि नहीं, मुझे तो अभी अनुभव नहीं हुआ है। और तुम दूसरों को अनुभव कराने चले!
मैं बहुत वर्षों तक जबलपुर रहा। वहां भारत का एक बहुत विख्यात ईसाइयों का विद्यापीठ है, जहां वे मिशनरी तैयार करते हैं।
मिशनरी भी तैयार किए जा सकते हैं? इनका भी कोई स्कूल हो सकता है?
लेकिन हैं। ईसाइयों के स्कूल हैं सारी दुनिया में। यह जो जबलपुर में है, लियोनर्ड थियोलॉजिकल कालेज, सारे भारत से ईसाई वहां शिक्षा लेने आते हैं। छह वर्ष की शिक्षा के बाद वे योग्य हो जाते हैं कि अब दूसरों को ईसाई बनाएं! उस कालेज के प्रिंसिपल मुझे कालेज दिखाने ले गए। मैं देखा तो दंग हुआ। वहां हर चीज सिखाई जाती है। एक क्लास में सिखाया जा रहा था कि जब तुम बाइबिल का पाठ करो और लोगों को समझाओ, तो किस शब्द पर हाथ ऊपर उठाना, किस शब्द पर ठहर जाना, किस शब्द को जोर से कहना, किस शब्द को धीमे कहना; किस तरह की भावभंगिमा हो, आंखें कैसी हों, चेहरा कैसा हो।
मैंने उस कालेज के प्रिंसिपल को लौटते वक्त कहा कि आपको मैं एक लतीफा सुनाऊं?
उन्होंने कहा, लतीफा! क्यों?
मैंने कहा, आप सुनेंगे तो समझेंगे।
एक थियोलॉजिकल कालेज में अध्यापक समझा रहा था विद्यार्थियों को, जो
कि सब मिशनरी हो जाने वाले थे जल्दी ही। उनका दीक्षांत समारोह करीब आ रहा था। उनको समझा रहा था, आखिरी कुंजियां दे रहा था। तो उसने कहा कि देखो, जहां-जहां जीसस कहते हैंः ईश्वर का राज्य, वहां तुम्हारे चेहरे पर एकदम प्रसन्नता का भाव आ जाना चाहिए, आंखें एकदम ज्योति से भर जानी चाहिए, ओंठ मुस्कुराहट से; चेहरा एकदम फूल की तरह खिल जाए। ईश्वर का राज्य! तो उसकी झलक तुम्हारे चेहरे पर होनी चाहिए। एक विद्यार्थी ने खड़े होकर पूछा, और जब जीसस नरक की बात करते हैं, तब? तब उस पादरी ने कहा, तब तुम्हारा साधारण चेहरा ही काम दे जाएगा। कुछ करने की जरूरत नहीं।
साधारण चेहरा तो नरक की खबर दे रहा है। और वह जो स्वर्ग की झलक देगा,
वह झूठा होगा, अभिनय होगा।
ये तुम अभिनेता बना रहे हो, मैंने उनसे कहा। ये लोगों को ईसाइयत में दीक्षित करेंगे? ये खुद झूठे हैं, ये दूसरों को और बड़े झूठ के गर्त में ले जाएंगे। इनके जीवन में ईश्वर का कोई अनुभव करवाओ! ये थोथी बातें सिखा कर तुम कागजी फूल पैदा कर रहे हो, इनसे खुशबू नहीं आएगी। और ये कागजी फूल और कागजी फूल पैदा करेंगे, वे और भी गए-बीते होंगे। और ऐसा सिलसिला चलता है झूठों का।
बुद्ध ने ठीक उस आदमी से कहा कि मुझे बहुत दया आती है। धन तेरे पास बहुत है, मगर ध्यान कितना? और बिना ध्यान के तू धन दे तो देगा, बांट तो देगा, लेकिन तेरा अहंकार मजबूत होगा। तू कहेगा कि देख, हूं मैं भी कोई एक, हजारों में एक, लाखों में एक! है कोई ऐसा दानी!
बुद्ध ने कहा, मुझे भलीभांति याद है जब तूने यह बगीचा खरीदा था और तूने इस पर स्वर्ण-मुद्राएं बिछाई थीं; और उसके बाद तू आया था और तूने मेरे चरणों में इसे भेंट किया था। तब तेरे भीतर जो मैंने अहंकार देखा था, जो

भयंकर अहंकार की लपट देखी थी--कि है कोई और जो स्वर्ण-अशर्फियां बिछा कर जमीन खरीदे! उस क्षण मुझे लगा था कि मैंने गलती की जो तुझसे कहा कि यह बगीचा विहार बना दे! भूल हो गई। मैंने तेरा हित नहीं किया, अहित किया। तेरा अहंकार बहुत प्रज्वलित हो गया था। अब तू दुनिया की सेवा करना चाहता है। तू जानता है कि मौत आएगी, धन छिन जाएगा। बच्चे हैं नहीं तेरे। चलो, सेवा ही कर लो! यह धन तो छिन जाएगा, पुण्य का सिक्का साथ में लेकर जाएगा तो तू ईश्वर के सामने भी अकड़ कर खड़ा होगा।
नहीं, मैं तुझसे यह न कह सकूंगा, बुद्ध ने कहा, कि तू सेवा कर। पहले तो मैं तुझसे कहूंगा, ध्यान कर। पहले तू अपने भीतर की ज्योति जला!
यही मैं तुमसे भी कहता हूं, जगदीश!
तुम कहते होः "मैं संसार को रोशनी दिखाना चाहता हूं!"
क्यों? संसार ने कुछ तुम्हारा बिगाड़ा? अगर लोग अपने अंधेरे में मजे
से बैठे हैं, तो तुम क्यों रोशनी दिखाओगे? अगर लोग अपने अंधेरे में मस्त हैं, तो किसी की मस्ती खराब करनी है? तुम लोगों को शांति से अंधेरे में भी नहीं बैठने दोगे? अपना-अपना अंधेरा, अपनी-अपनी मौज। अगर कोई अंधेरे में रहना चाहता है, तो यह उसका हक है। यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह उसकी स्वतंत्रता है। तुम कौन हो रोशनी दिखाने वाले? यह तो ऐसा ही हुआ कि दो प्रेमी अंधेरे में बैठे हैं और तुम पहुंच गए टार्च लेकर, कि हम रोशनी दिखा रहे हैं! ऐसा मत करना। तुम कोई पुलिसवाले तो नहीं हो? कि कहीं भी कोई दिखा कि पहुंचे टार्च लेकर।
तुम अपनी रोशनी जगाने की आकांक्षा से नहीं भरते!
अक्सर ऐसा हो जाता है। मुझे सुनते हैं लोग। मैं उनको कहता हूं, बहुत-बहुत कहता हूं ध्यान के गीत, ध्यान की महिमा। तो उनके मन में ऐसा नहीं होता कि हम ध्यान करें; वे मेरे पास आ जाते हैं और कहते हैं कि हम ध्यान का प्रचार कैसे करें?
यह तो ऐसी बात हुई कि एक दिन ऐसा हुआ कि एक गांव में एक महाकंजूस था। उसने कभी किसी को दान नहीं दिया। कभी नहीं। किसी भिखमंगे को एक रोटी नहीं दी। वह इतना प्रसिद्ध था कि अगर कोई भिखमंगा उसके द्वार पर भीख मांगता, तो दूसरे भिखमंगे समझ जाते कि यह भिखमंगा नया मालूम होता है, किसी दूसरे गांव से आया है। उसके दरवाजे को तो लोग छोड़ कर ही निकल जाते थे। उससे तो कुछ मिल ही नहीं सकता था। लेकिन गांव में बाढ़ आ गई थी, कई मकान डूब गए थे, गरीबों के घर बनाने थे, तो जो लोग चंदा इकट्ठा कर रहे थे, उन्होंने कहा, एक कोशिश करके देख ली जाए, शायद दया आ जाए! कष्ट भी बड़ा है, लोगों के घर बह गए, किसी की पत्नी बह गई, किसी का जानवर बह गया, किसी का पति, किसी के बच्चे बह गए, और घर बैठ गए हैं--शायद दया आ जाए! कठोर भी यह पिघल जाए। पाषाण भी पिघल सकता है। चलो एक कोशिश कर लें, हर्ज क्या है, बहुत से बहुत इनकार करेगा।
तो वे गए तैयारी करके, कि कैसे समझाएं उसको। उन्होंने दान की बड़ी महिमा गाई। और वे धीरे-धीरे बड़े प्रसन्न भी हुए, क्योंकि सेठ उनकी महिमा को सुन-सुन कर बड़ा उत्सुक हो रहा था, बड़ा आतुर हो रहा था, प्रफुल्लित हो रहा था। उनको आशा बंधी कि अब कुछ मिलने ही वाला है। उसके चेहरे को देख कर आशा बंधी। और जब वे पूरी प्रशंसा का गीत गा चुके, तो वह सेठ उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि बात मुझे भी जंचती है। बिल्कुल ठीक है यह बात, दान की बड़ी महिमा है। तो उन्होंने कहा, फिर कुछ मिल जाए। उसने कहा, मिलने की क्या बात है? मैं तुम्हारे साथ चलता हूं, मैं भी दान मांगूंगा जैसे तुम दान मांगते हो। दान की महिमा मुझे जंच गई! मैं तुम्हारे साथ। तुम मुझे अपना समझो, अपने वाला समझो। जैसे तुम मांग रहे हो, वैसे मैं भी मांगूंगा। दान की महिमा इतनी बड़ी है कि मैं तैयार हूं; लोगों को समझाएंगे, लोगों से दान दिलवाएंगे।
जरा सोचते हो उन दान लेने वालों की क्या हालत हुई होगी? हवाइयां उड़ गई होंगी कि यह क्या हुआ! आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास। तो हम दान की महिमा इसलिए गा रहे थे कि यह दान दे और यह दान की महिमा से यह समझा कि हम भी दान मांगेंगे अब आज से! अगर दान इतनी बड़ी चीज है तो लोगों से दान करवाएंगे। तुम ध्यान की बात सुन-सुन कर ध्यान करोगे? या औरों को ध्यान करवाओगे?

जरूर चाहता हूं कि तुम प्रकाशित हो जाओ। मगर तुम पहले! मगर मजा इसमें
कम है, खुद प्रकाशित होने में। मजा इसमें ज्यादा आता है कि दूसरे को प्रकाशित कर दें। क्यों? क्योंकि दूसरे को सुधारने में एक तरह की हिंसा का रस है। इसे तुम समझना। यह थोड़ा सूक्ष्म है। दूसरे को सुधारने में तुम मालिक हो जाते हो, उसकी गर्दन तुम्हारे हाथ में है। इसीलिए तो लोग इतनी सलाहें देते हैं--जो मांगो तो, न मांगो तो। बिना मांगे सलाह देने वाले लोग घूम रहे हैं। सलाह ऐसी चीज है दुनिया में, सबसे ज्यादा दी जाती है और सबसे कम ली जाती है। मगर फिर भी लोग दिए जाते हैं। कौन लेता है सलाह किसकी? तुमने अपने पिता की ली थी? पिता मर गए सलाह दे-दे कर, तुमने ली कभी? और वही सलाहें तुम अपने बेटे को दे रहे हो और भलीभांति जानते हो कि वह भी नहीं लेगा--अपने बेटे को देगा! ये चीजें ली नहीं जातीं, ये सिर्फ दी जाती हैं। तुम भी भलीभांति जानते हो, न तुमने सुनी है, न तुम्हारा बेटा सुनेगा। लेकिन फिर भी दिए जा रहे हो। सलाह देने का एक मजा होता है।
क्या मजा होता है?
सलाह देने में तुम ऊपर और लेने वाला नीचे हो जाता है। तुम ज्ञानी और लेने वाला अज्ञानी। तुम समझदार, दूसरा नासमझ।
अब तुम कहते होः "मैं संसार को रोशनी दिखाना चाहता हूं।"
इसमें एक बात तो मान ही ली तुमने कि तुम्हें रोशनी हो गई; कि तुम्हारा दीया जल गया। वह तो तुमने मान ही लिया।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, अगर तुम्हारा दीया जल जाए, तो तुम यह प्रश्न पूछोगे ही नहीं। रोशनी मिलने ही लगेगी। जैसे फूल खिलता है, गंध उड़ने ही लगती है। बादल आते हैं, वर्षा हो ही जाती है। अब बादल आ-आ कर पूछते थोड़े ही हैं--कि बरसें? बरस जाएं? कि कर दें तृप्त किसी के सूखे खेत को? कि पड़ी है प्यासी धरती, प्रतीक्षा कर रही है, इसको कर दें आनंदमग्न? बादल पूछते नहीं, बरस जाते हैं। दीया पूछता नहीं है कि राहगीर भटक गया है, रोशनी दे दूं? रोशनी पड़ती है राह पर, कोई भटक गया हो तो राह देख लेता है। भटका हुआ आदमी दूर से दीये को देख कर चला आता है।
लेकिन अगर मैं तुमसे कह दूं, लोगों को रोशनी दिखाओ, तो खतरा है। तुम लोगों को तलाशने लगोगे। कोई फंस जाएगा तुम्हारे जाल में, तो तुम उसको उपदेश पिलाओगे। तुम उसको ज्ञान की बातें... वह लेना चाहे कि न लेना चाहे! और तुम इस तरह के लोगों से भलीभांति परिचित हो, कि रास्ते पर मिल जाते हैं तो तुम्हारी छाती धड़कने लगती है कि अब मरे! अब फंसे! यह ज्ञानी चला आ रहा है! अब कहां से निकलें, कहां से भागें? पास में कोई गली वगैरह हो तो निकल भागते हो। मगर ज्ञानी भी इतनी आसानी से नहीं छोड़ते। वे भी पीछा करेंगे, वे भी दौड़ कर पकड़ेंगे। क्योंकि अज्ञानियों को ऐसे छोड़ते जाओ तो बस, संसार अज्ञान में ही रह जाएगा।
ज्ञानी पीछा करते हैं। पकड़-पकड़ कर लोगों को समझाते हैं। मजा है एक समझाने का, दूसरे को जगाने का। मगर तुम कब जागोगे? अपने से शुरू करो!

गम के साए क्यों फैले हैं दाएं-बाएं, तुम ही बोलो?
जीवन को क्या लौ देंगी धुंधली आशाएं, तुम ही बोलो?
गए पुराने, नये मसीहा भी वैसी बातें करते हैं,
हम फिर से इतिहास दुखों का क्या दुहराएं, तुम ही बोलो?
अपनी-अपनी पीड़ाओं से चीख रहे हैं बस्ती वाले,
किसके घर की दीवारों से सिर टकराएं, तुम ही बोलो? भीड़ भरे बाजार छोड़ कर खामोशी को अपनाया था,
खामोशी के डसे हुए किसको अपनाएं, तुम ही बोलो?
तब भी समता की बातें थीं, अब भी समता की चर्चा है, समता के आश्वासन कब तक गले लगाएं, तुम ही बोलो? हम समझे थे हाथ तुम्हारे बिक कर तुम संग रह पाएंगे, गली-गली बिकने की गाथा किसे सुनाएं, तुम ही बोलो?

वही बातें चल रही हैं सदियों से।

तब भी समता की बातें थीं, अब भी समता की चर्चा है,
समता के आश्वासन कब तक गले लगाएं, तुम ही बोलो?
कितनी सदियों-सदियों से लोग एक-दूसरे को जगा रहे हैं, कोई जागता नहीं! सोए सोयों को जगाएं तो कोई जागे तो कैसे जागे? जागा सोए को जगा सकता है, सोया सोए को नहीं जगा सकता। सोया कैसे सोए को जगाएगा? हां, सपना देख सकता है कि मैं सोयों को जगा रहा हूं। मगर उसके सपने में जो सोए हैं, वह तो उसका ही सपना है। वस्तुतः जो सोए हैं, उसका तो उसे पता भी नहीं हो सकता। उसे तो अभी यह भी पता नहीं है कि मैं सोया हूं।
इस जगत में सबसे बड़ी भ्रांति यही है कि हमें पता नहीं कि हम सोए हुए हैं, कि हम सपना देख रहे हैं, कि हमें कुछ भी पता नहीं है। मैं कौन हूं, इस सीधे से प्रश्न का उत्तर हमारे पास नहीं है और हम हर प्रश्न का उत्तर देने को तैयार हैं।
कोई तुमसे पूछेः संसार को किसने बनाया? और तुम तैयार हो उत्तर देने को। जरा सोचो भी तो! जरा कुछ ईमान का भी तो स्मरण करो! परमात्मा के नाम पर भी झूठ बोले जा रहे हैं। हजारों लोगों का परमात्मा तो सिर्फ झूठ है, और कुछ भी नहीं। तुम्हें पता है ईश्वर ने दुनिया बनाई?
तुम्हारा छोटा सा बच्चा जब तुमसे पूछता है कि पिताजी, दुनिया किसने बनाई? अगर तुम में जरा भी ईमान हो, अगर तुम में जरा भी धार्मिकता हो, जरा भी श्रद्धा हो, अगर तुम में जरा भी सदभाव हो, तो तुम उससे कहोगेः मुझे पता नहीं। मैं भी तलाशता हूं, तू भी तलाश। और अगर तुझे पहले पता चल जाए, तो मुझे बता देना। अगर मुझे पहले पता चला, तो तुझे निवेदन कर दूंगा। लेकिन अभी मुझे पता नहीं है कि दुनिया किसने बनाई। बनाई भी किसी ने या नहीं। हो सकता है बिना बनाई हो। कभी न बनाई गई हो। मगर मुझे कुछ पता नहीं है। ये सब अनुमान हैं, जो मैंने सुने हैं। जो लोग कहते हैं वह मैं तुझे बताता हूं, लेकिन मेरा कोई अनुभव नहीं है, क्योंकि मैं मौजूद नहीं था। मुझे अपना होश अभी नहीं है, तो सदियों-सदियों पहले कब दुनिया बनी होगी, तब का मुझे होश कहां? मुझे कल की तो याद भूल गई, दस साल पहले क्या हुआ वह तो मुझे विस्मरण हो गया, पिछले जन्म में मैं था कि नहीं, यह भी मुझे याद नहीं है, तो दुनिया किसने बनाई, मैं कैसे कहूं!
काश, तुम अपने बच्चों से ईमानदारी के उत्तर दे सको, तो उनकी श्रद्धा कभी नष्ट न हो।
लोग मेरे पास आकर पूछते हैं कि बच्चों की श्रद्धा नष्ट क्यों हो रही है? मां-बाप के प्रति बच्चों का सम्मान क्यों कम हो रहा है?
तुम कारण हो। क्योंकि बच्चे आज नहीं कल, यह बात पता उनको चल ही जाएगी।
कब तक धोखा दोगे? कि तुम्हें पता नहीं है और फिर भी तुम दावा करते रहे कि तुम्हें पता है! उनकी श्रद्धा न टूटेगी तो क्या होगा? तुम्हारी बेईमानी तुम्हारी श्रद्धा को तुड़वा देती है!
जो बाप, जो मां, जो शिक्षक अपने बच्चों से ईमान से उतना ही कहेगा जितना जानता है, उसके प्रति श्रद्धा बच्चों की रोज-रोज बढ़ती जाएगी। बच्चे जब बड़े होंगे तो उनकी श्रद्धा का अंत नहीं होगा। क्योंकि वे समझेंगे कि किसी ईमानदार आदमी के साथ संग मिला, हम सौभाग्यशाली हैं!
लेकिन तुम कितने झूठ बोल रहे हो! ईश्वर ने दुनिया बनाई। नरक जाना पड़ेगा, बच्चों को कह रहे हो। तुम्हें नरक का कोई पता नहीं है। ऐसा करोगे तो स्वर्ग मिलेगा। तुम्हें स्वर्ग का कुछ पता नहीं है। बुरा करने वाले को बुरा ही फल मिलता है, अच्छा करने वाले को अच्छा ही मिलता है--ऐसा तुम कहते तो हो, लेकिन तुम्हारा कोई निश्चित अनुभव नहीं है। अनुभव तुम्हारा उलटा है।
अनुभव तुम्हारा यह है कि यहां जितना बुरा करने वाले लोग हैं, वे मजा लूट रहे हैं; और जितना भला करने वाले लोग हैं, भूखों मर रहे हैं। यहां बुरा करने वाले लोग छाती पर बैठ जाते हैं। यहां भला करने वाले लोग--कौन पूछता है उनको? नैतिकता से जीकर देखो, और अड़चनें ही अड़चनें हैं। अनैतिकता से जीओ, और सुविधाएं ही सुविधाएं हैं।

फिर कौन जानता है कि जो लोग यहां चालबाजी करके आगे निकल जाते हैं, वे स्वर्ग में भी चालबाजी नहीं करेंगे? जो यहां दिल्ली पहुंच जाते हैं, वे कुछ न कुछ दांव-पेंच स्वर्ग में भी लगा लेंगे, फिर क्या करोगे? और दांव-पेंच लगते ही होंगे। क्योंकि पहरेदार वहां भी होते होंगे, रिश्वत वहां भी चलती होगी। पहले न भी चलती रही हो, अब तो चलती ही होगी, क्योंकि इतने रिश्वत खाने वाले स्वर्गीय हो रहे हैं! दिल्ली में जो भी मरते हैं, सभी स्वर्गीय हो जाते हैं। इतने राजनेता पहुंच चुके हैं वहां, तुमसे पहले, उन्होंने अड्डे जमा लिए होंगे। बहुत संभावना तो यह है कि अगर तुम भले आदमी हो तो नरक में पड़ोगे। भले को घुसने कौन देगा स्वर्ग में? जरा भला आदमी दिल्ली में घुसने की कोशिश तो करे! तब उसे पता चलेगा कि यह असंभव है। तुम्हारे जीवन का अनुभव कुछ और है, तुम कहते कुछ और हो। जानते कुछ और हो, बताते कुछ और हो। तुम्हारे बच्चों की श्रद्धा न टूटेगी तो क्या होगा? अगर धर्म पर लोगों की श्रद्धा उखड़ रही है--उखड़ गई है--तो उसका कुल कारण इतना है कि धर्म ऐसे लोग प्रचारित कर रहे हैं जिनके जीवन में धर्म की कोई आभा नहीं, कोई छाया भी नहीं; कोई दूर-दूर का भी नाता नहीं।
नहीं, जगदीश, ऐसा मत पूछो कि मैं संसार को रोशनी दिखाना चाहता हूं! तो मैं इस महत कार्य को कैसे प्रारंभ करूं?

सबकी बिगड़ी को बनाने निकले।
यार हम-तुम भी दीवाने निकले।
धूल है, रेत है, सेहरा है यहां,
हम कहां प्यास बुझाने निकले।
इतनी रौनक है कि दिल डूबता है,
शहर में खाक उड़ाने निकले।
हर तरफ शोरे-कयामत है बर्पा, और हम गीत सुनाने निकले।
इन अंधेरों में किरन जब ढूंढ़ी,
सबके हंसने के बहाने निकले।
चांद को रात में मौत आई थी,
लाश हम दिन को उठाने निकले।
उम्र बरबाद यूं ही कर दी "हसन"
ख्वाब भी कितने सुहाने निकले।

उम्र को ऐसे ही सुंदर-सुंदर सपनों में खराब मत कर लेना।
एक बात महत्वपूर्ण है, सर्वाधिक महत्वपूर्णः तुम जागो! तुम इस प्रश्न
के उत्तर को खोजो कि मैं कौन हूं? और जब तक यह उत्तर तुम्हें न मिल जाए तब तक कोई और उत्तर तुम्हारा सही नहीं हो सकता। तब तक तुम ताश के घर मत बनाओ! हवा के झोंके गिरा देंगे। मैं कौन हूं, इसका उत्तर मिल जाए तो तुमने बुनियाद रखी पत्थरों की--अब मंदिर उठ सकता है। उस मंदिर में फिर जिसको भी प्यास लगी होगी, आएगा। जिसको अभीप्सा जगेगी, आएगा।
सच तो यह है, जागे हुए व्यक्ति को कहीं भी जाना नहीं पड़ता। लाओत्सु ने कहा है, वह अपने घर की दीवालों के बाहर भी नहीं जाता। लेकिन उसकी सुगंध मिलने लगती है दूर-दूर तक और लोग दूर-दूर से आने लगते हैं। उसकी खबर पहुंचने लगती है, जिनको भी प्यास है उन तक। तुम्हें कहीं जाना न पड़ेगा। तुम्हारा दीया जले, पास-पड़ोस के लोग, जिन्हें अपने दीये जलाने हैं, तुम्हारे पास आने लगेंगे। कहेंगे, हमारा दीया भी जला लेने दो।
लेकिन यह कोई महत कार्य का प्रारंभ नहीं करना है। महत कार्य के प्रारंभ का मतलब होता है, अहंकार मजा लेना चाहता है। नेता मत बन जाना। अगर सच में ही संन्यासी बनना हो, तो रास्ता बिल्कुल उलटा है। नेता बनने का रास्ता बिल्कुल उलटा है। नेता को जो पता नहीं, उनके उत्तर देता है। जो हो नहीं सकता, उनके आश्वासन देता है। नेता झूठ पर जीता है। झूठ उसका भोजन है। लेकिन संन्यासी तो प्रथम चरण ही सत्य की तरफ उठाता है।

सब लोग पूछते हैं वे वादे कहां गए? आकाश नापते से इरादे कहां गए?
जिनकी हरेक चाल पर मुद्दत से नाज था, घोड़े कहां गए, वे पियादे कहां गए? कहते थे फेंक देंगे इन्हें भी उतार कर,
बूढ़ी सियासतों के लबादे कहां गए?
ले-दे के एक आग थी जिस पर यकीन था,
वे रोशनी पसंद तगादे कहां गए?
जो लेके इंकलाब चले थे हवा के साथ,
कोई करीब आके बता दे, कहां गए?

राजनेता बड़ी ऊंची बातें करता है--महत कार्यों की बातें करता है। छोटे- मोटे हेर-फेर को क्रांतियां कहने लगता है, महाक्रांतियां कहने लगता है। राजनेता जीता है बड़े-बड़े नारों पर। किसी मोहल्ले में सम्मेलन होता है, वह अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन होता है। जहां दो-चार आदमियों की सभा हुई, उसको महासभा कहते हैं। नेता बड़े-बड़े शब्दों के गुब्बारे बनाता है।
ले-दे के एक आग थी जिस पर यकीन था,
वे रोशनी पसंद तगादे कहां गए?
जो लेके इंकलाब चले थे हवा के साथ,
कोई करीब आके बता दे, कहां गए?
रोज खो जाते हैं इस तरह के नेता। बड़े महत कार्यों की बातें करते हैं
और क्षुद्र कार्य भी नहीं हो पाते। आसमान बदल देना चाहते हैं, जमीन की हालत रोज बिगड़ती चली जाती है। बड़े-बड़े सपने देते हैं तुम्हें, बड़ी-बड़ी कल्पनाएं। और उन कल्पनाओं के जाल में तुम्हारी जंजीरें ढाली जाती हैं। जगदीश, तुम्हें राजनेता बनना हो, तो इस महत कार्य कार्य में लगो जगत
को रोशनी दिखाने के। अगर तुम्हें संन्यासी बनना है, तो खुद रोशन हो जाओ, इतना काफी है। शेष फिर अपने से होगा, तुम्हें करना नहीं पड़ेगा। तुम्हारी मौजूदगी करने लगेगी। तुम जहां उठोगे, जहां बैठोगे, वहां मंदिर बन जाएंगे। तुम जहां चलोगे वहां तीर्थ हो जाएंगे। तुम जिसे छुओगे वह सोना हो जाएगा। यह करना नहीं पड़ेगा, यह होगा। और जब होता है अपने से तो उसका मजा और, उसका सौंदर्य और!

कत्ल हों, और सलीबों को सजा कर देखें।
कुछ चराग अपने लहू से भी जला कर देखें।
शायद इस तरह कोई हादसा याद आ जाए,
उस गली से कोई पत्थर ही उठा कर देखें।
लोग कहते हैं कि ढूंढ़ो तो खुदा मिलता है,
आज हम भी किसी दरवाजे पे जाकर देखें।
जिस्म में कितनी ही किरचें सी चुभी जाती हैं, आज सोचा था कि आईना उठा कर देखें।
अक्स उस शोख का महफूज तो अब भी होगा,
गर्द आईने के चेहरे से हटा कर देखें।
अपना घर खाक हुआ, अपनी गली राख हुई,
आओ, अब और कहीं आग लगा कर देखें।
लेकिन पहले अपना घर खाक हो जाने दो।
लोग कहते हैं कि ढूंढ़ो तो खुदा मिलता है, आज हम भी किसी दरवाजे पे जाकर देखें। अपना घर खाक हुआ, अपनी गली राख हुई,
आओ, अब और कहीं आग लगा कर देखें।
कबीर ने कहा हैः
कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ, जो घर बारै आपना, चलै हमारे साथ।

लेकिन कबीर अपना घर जला कर खड़े हैं। जो अपने मन और अपने अहंकार को जला लेता है, उसके भीतर रोशनी हो जाती है। अहंकार की बाती बनाओ, अपनी आसक्तियों का तेल बनाओ, ध्यान की ज्योति जलाओ, तुम्हारा दीया जले। इस दीये के जलने में, इस ध्यान के जलने में अहंकार जल जाएगा। मोह, ममता, माया जल जाएगी। एक दिन रोशनी ही रोशनी रह जाएगी। फिर तुम अपने आप ही औरों के काम आ जाओगे। सेवा की नहीं जाती। और जो सेवा की जाती है, वह सिर्फ उपद्रव लाती है। सेवा होती है। वह जागे हुए व्यक्ति की सहज परिणति है। जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चलती है, ऐसे ही ध्यान के पीछे करुणा चलती है, सेवा चलती है।
जागो! पहले स्वयं जागो!

आखिरी प्रश्नः
सज्दों से अब तिश्नगी नहीं बुझती,
जज्ब हो जाऊं रजनीश तेरे आस्ताने में।

दिनेश भारती! कोई रोकता तो नहीं! जज्ब हो जाने में बाधा कौन डाल रहा है? सिवाय तुम्हारे और कोई बाधा नहीं डाल रहा है। मैं तो चाहता हूं कि तुम्हारी प्यास बुझे। मैं तो उंडेलने को तैयार हूं, अमृत-घट हाथ में लिए बैठा हूं। मगर तुम अंजुलि तक नहीं बनाते। अंजुलि बनानी तो दूर, तुम पीठ किए खड़े हो।
तुम कहते तो होः सज्दों से अब तिश्नगी नहीं बुझती...
किसकी कब बुझी? तुम्हारी कैसे बुझेगी? पैर छूने से कहीं प्यास बुझी है? पीओगे तो बुझेगी। हां, पैर छूना पीने की तरफ पहला प्रयास हो सकता है, मगर पैर छूना ही पीना नहीं है। पैर छूना पीने के लिए अनिवार्य चरण हो सकता है, अपरिहार्य हो सकता है, लेकिन पैर छू लेना ही प्यास का बुझ जाना नहीं हो सकता। मुझे पीओगे तो प्यास बुझेगी।
तुम ठीक कहते होः
सज्दों से अब तिश्नगी नहीं बुझती,
जज्ब हो जाऊं रजनीश तेरे आस्ताने में।
रोकता कौन है? द्वार खुले हैं। मैंने तुम्हें पुकार दी ही हुई है।
और दिनेश को बहुत बार आश्रम में जगह भी दे दी। मगर अपनी ही करतूतों से भाग जाते हैं! बहुत बार तुम्हें अपने पास ले लिया, बार-बार तुम्हारी गलतियों को क्षमा भी किया। क्योंकि गलतियों को मैं बहुत मूल्य नहीं देता। गलतियां स्वाभाविक हैं। मनुष्य है तो भूलें होंगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वही-वही भूलें बार-बार करो। एक भूल एक बार काफी। रोज नई भूल करो तो मैं क्षमा करने को तैयार हूं। कम से कम विकास तो होगा--नई भूल होगी! मगर भूल तक भी नई नहीं करते, ऐसे जड़ हो गए हो कि भूलें भी वही-वही दोहराते हो। तुम्हीं अपने को रोक रहे, दिनेश! मैं यहां तुम्हें रोक नहीं रहा हूं; न कोई और तुम्हें रोक रहा है।
इस दरवाजे से जो खाली जाएगा, वह ध्यान रखे, उत्तरदायित्व उसका है। वह सरोवर के पास आया, झुका नहीं; अंजुलि न बनाई। सरोवर छलांग लगा कर तुम्हारे कंठ में तो न उतर जाएगा! और सरोवर तुम्हारी स्वतंत्रता का इस तरह हनन करेगा भी नहीं।
मैं जबरदस्ती तो तुम्हें पकड़ कर दवा न पिला दूं! यह कोई जबरदस्ती पिलाई जाने वाली दवा भी नहीं है। यह तो तुम स्वेच्छा से, स्वतंत्रता से, अहोभाव से पीओगे...
और तुम्हारी पीने की आकांक्षा भी है, तुम पीना भी चाहते हो, मगर तुम्हारी पुरानी आदतें दिक्कतें दे रही हैं। तुम कुछ ऐसा करना चाहते हो कि जो यहां उपलब्ध है वह भी मिल जाए और जो तुम पकड़े रहे हो अब तक वह भी न छोड़ना पड़े। तुम दो नावों में सवार हो, यह तुम्हारी अड़चन है। एक नाव में सवार होना पड़ेगा। क्योंकि ये दोनों नावें दो अलग दिशाओं में जा रही हैं। तुम्हारी नाव और मेरी नाव विपरीत दिशाओं में यात्राएं कर रही हैं। तुम इन

दोनों पर सवार होओगे तो बड़ी अड़चन में पड़ जाओगे, टूट जाओगे, खंडित हो जाओगे, तुम्हारे भीतर बड़ा द्वंद्व हो जाएगा।
या तो तुम अपनी ही नाव पर सवार हो जाओ। अभी अपनी नाव को ही भोग लो! डर कुछ भी नहीं है। क्योंकि तुम्हारी नाव को तुम अगर भोग लो, तो तुम्हें मेरी नाव में आना ही होगा। लेकिन वह भी तुम आधा-आधा कर रहे हो, डर के मारे, क्योंकि मेरी नाव में भी एक पैर रखना है।
तुम शराब पीओ, तुम गांजा पीओ और मैं ध्यान करवाऊं! ये दोनों बातें साथ कैसे चल पाएं? क्योंकि गांजा और शराब तो बेहोश करे और ध्यान होश में जगाए। और चूंकि तुम जगना चाहते हो, इसलिए नशा भी ठीक से नहीं कर पाते। डरे-डरे करते हो, आधा-आधा करते हो। और चूंकि तुम नशा भी किए जाते हो, तुम जाग भी नहीं सकते, तुम होश में आ भी नहीं सकते। तुमने अड़चन अपने लिए खुद खड़ी कर ली है।
तुम्हें निर्णय करना होगा।
अगर पुरानी आदतें प्रीतिकर हैं, तो मैं आखिरी आदमी हूं जो तुम्हें उन आदतों को छोड़ने के लिए कहूं। मेरे मन में कोई निंदा नहीं है। मैं नहीं कहता कि तुम पापी हो। पुरानी आदतें पूरी कर लो। जाओ उनमें पूरे, मुझे भूल जाओ, मेरा विस्मरण कर दो, मैं हूं ही नहीं। क्योंकि मेरे कारण तुम्हें अड़चन होगी। और मेरी याद आएगी तो तुम पूरे-पूरे न डूब पाओगे। तुम जो भी करना चाहते हो, पूरा कर लो।
मैं इतने भरोसे से क्यों कहता हूं कि तुम जो भी करना चाहते हो, पूरा कर लो? कोई साधु-संत इस तरह की बात तुमसे नहीं कहेगा। मैं इसलिए भरोसे से कहता हूं कि तुम कितनी ही शराब पीओ, कितना ही गांजा पीओ, कितना ही जुआ खेलो, कितना ही कुछ करो, आज नहीं कल उससे ऊब जाओगे, क्योंकि वह व्यर्थ है। उसकी व्यर्थता मेरे लिए इतनी प्रमाणित है, इसलिए इतने आश्वासन से कहता हूंः जो भी करना हो, करो! पूरा कर लो। ऊबोगे। और जितने जल्दी पूरा कर लोगे, उतने जल्दी ऊब जाओगे। और ऊब जाओ तो फिर मैं हूं। तो फिर मेरी नाव में सवार हो सकोगे। तब पीछे की तरफ लौट कर नहीं देखोगे।
अभी तुम अड़चन में पड़े हो। अभी तुम दोनों सम्हाल लेना चाहते हो। और इस दोनों के सम्हालने में बड़ी कठिनाई है। दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम!

चंद खंडहर ही हैं अब दिल की राजधानी में,
तुम कहां जुड़ गए आकर मेरी कहानी में!
यहां ठहर न मुसाफिर! यहां से दूर ही चल,
मिला हुआ है जहर इस शहर के पानी में!
उम्र इंसान की मत नापिए तारीखों में,
इक लम्हा प्यार का काफी है जिंदगानी में! सारे अलफाज भी उतना न बयां कर सकते,
बयान जितने हैं नजरों की बेबयानी में!
उम्र भर चैन से इक रात भी हम सो न सके,
भूल कुछ हो गई ऐसी भरी जवानी में!
"आखिरी वक्त में क्या खाक होंगे संजीदा"
जिंदगी काट दी जब सारी लनतरानी में।

लोग जिंदगी भर गलत आदतों को निर्मित करते हैं। और फिर अंत में चाहते हैं कि उनसे एकदम छुटकारा हो जाए। वह नहीं हो सकेगा।
लेकिन तुम सौभाग्यशाली हो, दिनेश, अभी युवा हो और मेरे पास आ गए। अभी ऊर्जा है, शक्ति है, संकल्प है। अभी गलत कर सकते हो तो ठीक भी कर सकते हो। अभी अगर कांटों को बीन सकते हो तो फूल भी बीन सकते हो। मगर ये दोनों काम एक साथ न चलेंगे।
मैं नहीं रोक रहा हूं, तुम्हारी आदतें तुम्हें बाधा बन रही हैं। तुम निर्णय कर लो एक। एक निश्चय पर तुम्हें आना ही होगा! अगर पुरानी आदतें ऐसी हैं कि उनमें रस अभी शेष है, तो मुझे दो-चार साल के लिए भूल ही जाओ! मैं

प्रतीक्षा करूंगा! दो-चार साल पूरी तरह डूब जाओ उनमें। मैं जानता हूं तुम निकल आओगे बाहर। मुझे तुम्हारी बुद्धि पर भरोसा है, तुम्हारी समझदारी पर भरोसा है। मैं जानता हूं तुम्हारी क्षमता बड़ी है; तुम इन्हीं छोटे कामों को करके नष्ट नहीं हो जाओगे। तुम्हारा भविष्य मुझे दिखाई पड़ता है।
तुम्हारा कल बहुत सुंदर है। मगर आज तुम्हारा बीते कल से दबा हुआ है।
तो या तो यह निर्णय करो कि पुराना जो करना है, वह कर लें। आधा-आधा न हो।
आधा-आधा जो भी करोगे, उससे छुटकारा नहीं होता।
मेरे हिसाब में, जिस अनुभव को भी हम पूरा कर लें, उससे मुक्ति हो जाती है। इसलिए अगर किसी की कामवासना अधूरी रह गई है तो मुक्ति नहीं हो पाएगी। कामवासना पूरी कर लो तो मुक्त हो जाओगे। कामवासना की पूर्णता पर ब्रह्मचर्य का फूल खिलता है। अगर धन की दा.ैड अधूरी मन में रह गई है, तो उसे पूरी कर लो। धन की दौड़ पूरे होने पर ही पता चलता है कि धन से निर्धनता मिटती नहीं। धन से और निर्धनता प्रगाढ़ हो जाती है, प्रकट हो जाती है। धन की पृष्ठभूमि में निर्धनता भीतर बहुत खलने लगती है। और जब निर्धनता इतनी खलती है, इतनी कचोटती है, और धन उसे भरता नहीं, तब ध्यान की याद आती है। उसके पहले ध्यान की याद आ भी नहीं सकती।
नशा करना है, नशा कर लो। नशा आदमी करना क्यों चाहता है? इसीलिए कि जिंदगी दुख भरी है, भुलाना चाहता है। मगर कितनी ही बार भुलाओ, दुख लौट-लौट कर आ जाएगा, और घना होकर आ जाएगा। दुख भुलाने से मिटता नहीं है। भुलाना कोई मिटाने का उपाय नहीं है। धीरे-धीरे एक बात समझ में आ जाएगीः भुला-भुला कर तुम बढ़ा रहे हो, मिटा नहीं रहे हो।
मिटाने के रास्ते कुछ और हैं। मिटाने का रास्ता आत्म-विस्मरण नहीं है, मिटाने का रास्ता आत्म-स्मरण है, सेल्फ-रिमेंबरिंग है।
बुद्ध ने कहाः सम्मासति; महावीर ने कहाः विवेक; कृष्णमूर्ति जिसको कहते हैंः अवेयरनेस; या गुरजिएफ जिसको कहता थाः सेल्फ-रिमेंबरिंग; कबीर और नानक ने जिसको कहा हैः सुरति; आत्मस्मरण। मैं कौन हूं, इसका बोध ऐसा प्रगाढ़ हो जाए कि जैसे ज्योति जल रही हो तुम्हारे भीतर--निष्कंप, तो फिर तुम्हारे जीवन में कोई दुख न रह जाएगा। और न रहेगा दुख, न भुलाने की कोई बात होगी। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।
यह जीवन एक अपूर्व अवसर है--व्यर्थ को पहचानने का, सार्थक को जीने का; असार को असार की भांति देखने का, ताकि सार को सार की भांति जाना जा सके।

ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

जलन के त्योहार सी यह
जिंदगी मुझको मिली है,
दहकते अंगार पर ही
प्राण की कलिका खिली है,
रुद्र के आग्नेय दृग में स्वप्न सा मैं पल रहा। ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

मृत्तिका जड़ खंड होता
मैं पड़ा रहता अगोचर,
ज्योति कण की चेतना से
मैं हजारों में उजागर,
दीप्त लघु अस्तित्व मेरा आंधियों को खल रहा। ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

ऊर्ध्व लौ निष्कंप मेरी
आज रह-रह कांपती है,
शक्ति प्राणों की थकी सी
लड़खड़ाती, हांफती है,
छिपा ले ओट में मुझको ढूंढ वह अंचल रहा।

ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

गा रहे मधु गीत तारे
हाय, पत्थर तो नहीं मैं,
मधु निशा के वक्ष पर धर
शीश सो जाऊं कहीं मैं,
किंतु "सोना मौत है रे!" कह स्वयं को छल रहा। ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

चूम कर मेरी जलन को
जल मरी थी शलभ-बाला,
व्यर्थ उस उन्मादिनी ने
इस जलन से मोह पाला,
याद में उसकी अभागा दीप तिल-तिल गल रहा। ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

क्यों न मैं वरदान मानूं
ज्योति के इस शाप को ही?
तन-जलन की मंद लौ में
जा रहा बढ़ता बटोही,
और कितने पंथियों का मैं सदा संबल रहा। ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

उस महा-आलोक में लय
हो रही यह रात ढलती,
प्राण, तेरे स्नेह से ही
साधना की जोत जलती,
कालिमा के पंख में भी मैं सदा उज्ज्वल रहा।
ज्योति का अभिशाप लेकर दीप सा मैं जल रहा।

यह जीवन एक अवसर है, जहां चाहो तो अभिशाप ही अभिशाप मिलें, और जहां चाहो तो वरदान ही वरदान मिलें। वही ऊर्जा अभिशाप बन जाती है, वही ऊर्जा आशीष बन जाती है। सब तुम पर निर्भर है।
एक निर्णायक स्थिति, दिनेश, तुम्हें लानी होगी। यह बात मुझे तुम्हें बहुत पहले कहनी थी, नहीं कही, ठीक समय की प्रतीक्षा करता रहा हूं। आज कोई दस वर्षों से तुम मुझसे जुड़े हो। लेकिन इन दस वर्षों में यह बात मैंने तुमसे कभी नहीं कही। तुम जैसे हो वैसा मैंने तुम्हें स्वीकार किया है। तुम गलत हो, ऐसा भी कभी नहीं कहा। तुम्हें मौका दिया है कि तुम खुद ही समझो, खुद ही जानो। मैं तुम्हारे जीवन में जरा भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। मैं हूं कौन? तुम जो निर्णय करो, वही शुभ है। लेकिन अब घड़ी आ गई है कि कुछ निर्णय करो।
ऐसे आधे-आधे, बंटे-बंटे, तुम कहीं के न रह जाओगे। धोबी का गधा, घर का न घाट का। वैसी दशा न हो जाए। दस साल काफी लंबा समय है। तुम बार-बार यहां आते हो। फिर बार-बार जाते हो। न वहां रुक पाते हो, न यहां रुक पाते हो। वहां रहते हो तो मेरी याद आती है तुम्हें और यहां आते हो तो तुम्हारी पुरानी आदतें धीरे-धीरे फिर तुम्हें पकड़ लेती हैं।
तलवार की एक चोट से निर्णय करो। दो टुकड़े कर दो। या तो यह या वह। और मैं दोनों के लिए आशीर्वाद दूंगा। उतना ख्याल रखना।
यह मत सोचना कि तुम अगर निर्णय करो मुझसे टूट जाने का और अपनी पुरानी आदतों में ही जीने का, तो मैं नाराज होऊंगा। नहीं, जरा भी नहीं। मैं आशीर्वाद दूंगा कि तुम जो भी निर्णय करो, वही निर्णय तुम्हारे जीवन में शुभ लाए। तुम अगर दूर जाने का निर्णय करो, तो मैं तुम्हें उतने ही आनंद से दूर जाने दूंगा जितने आनंद से तुम्हें पास बुलाता हूं। क्योंकि मेरी एक

निष्ठा है। और वह निष्ठा यह है--वह निष्ठा मौलिक है, मूलभूत है--कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर परमात्मा ने इतना विवेक दिया है कि वह ज्यादा दिन भूल में नहीं रह सकता।
अभी वेदांत कुछ दस-पंद्रह दिन पहले ही अमरीका से भारत आए। वहां से बड़ा
पद छोड़ कर आए। सनफ्रांसिस्को में एशिया इंस्टीट्यूट के डीन थे। सब सुविधा, बड़ा पद, बड़ी नौकरी, बड़ी प्रतिष्ठा, शिक्षा जगत में नाम, दोहरी पीएचड़ी. हैं--सब छोड़ कर चले आए कि यहां मेरे पास रहना है। वहां थे तो मेरी ही मेरी याद आती थी उन्हें। यहां आए तो वहां की याद आने लगी। यहां आए तो सोच-विचार उठने लगा होगा--इतना सब छोड़ना, पद-प्रतिष्ठा, परिवार, व्यवस्था। और यहां मेरे फक्कड़ों में सम्मिलित होना, जिनका कोई ठिकाना नहीं, आज यहां, कल वहां चले। क्योंकि सरकार यहां न टिकने दे तो कहीं और। यह भी पक्का नहीं है कि इसी देश में टिकना पड़ेगा; किसी और देश में टिकना पड़े। कुछ कहा नहीं जा सकता। मेरे साथ तो सब असुरक्षा है। मेरे साथ जुड़ना खतरे से खाली नहीं है। सोच-विचार में पड़ गए--लौट जाना या क्या करना?
मुझे लिखा तो मैंने कहा कि बिल्कुल लौट जाओ! मेरे आशीर्वाद के साथ लौट जाओ। उसी खुशी से लौट जाओ जिस खुशी से आए थे।
तो वेदांत को भरोसा नहीं आया कि मैं इतनी जल्दी जाने दूंगा! लक्ष्मी
ने जब उन्हें खबर दी तो उन्हें भरोसा नहीं आया। उन्होंने कहा, ऐसा कहा ओशो ने कि लौट जाओ? बिल्कुल कह दिया लौट जाओ? इतनी जल्दी कह दिया?
वेदांत के मन में कहीं न कहीं भीतर छिपी हुई बात रही होगी कि मैं कहूंगा कि जाऊं, मगर वे क्या जाने देंगे? कहेंगे कि नहीं, रुको, कहां जाते हो? पागल हो! समझाएंगे, बुझाएंगे। ऐसी आशा रही होगी भीतर।
मगर मेरे काम करने के अपने ढंग हैं। अब तो वेदांत रुकना भी चाहें तो मैं रुकने नहीं दूंगा। एक बार तो उन्हें जाना ही होगा! क्योंकि अगर यह आधा- आधा मन रहा, तो मेरे पास होने का कोई अर्थ ही न होगा। डुबकी लग ही न पाएगी। एक बार तो जाना ही होगा अब! और अब दुबारा जब आना चाहेंगे तो इतनी आसानी से आने भी नहीं दूंगा, जितनी आसानी से इस बार आ जाने दिया था। अब तो साफ उन्हें मैंने संदेश दे दिया है कि सौ प्रतिशत आ सको तो ही आना। क्योंकि यह रास्ता दीवानों का है। हिसाब-किताब का नहीं है। कल का कोई पक्का नहीं है, कल का कुछ भरोसा नहीं है। मैं कोई सुरक्षा दे नहीं सकता। मेरे संन्यासी रहते बादशाहों की तरह हैं--क्योंकि जब रह ही रहे हैं तो बादशाहों की तरह ही रहना चाहिए! मगर सुरक्षा कुछ भी नहीं है, कल का कुछ पक्का नहीं है। आज है तो बादशाहत, कल फकीरी हो सकती है। आज है तो महल, कल सड़कों पर निवास हो सकता है। जिसकी इतनी तैयारी है, और सौ प्रतिशत, रत्ती भर कम नहीं, वही मेरे साथ जुड़ेगा तो रूपांतरित हो सकेगा।
दिनेश, वही मैं तुमसे कहता हूं। या तो चले जाओ पूरे, भूल-भाल जाओ मुझे। मैं भी कहां तुम्हारी जिंदगी में आ गया! कहां तुम्हारी जिंदगी में अड़चन आ गई! समझ कर कि एक भूल-चूक थी, मुझे क्षमा करना; जैसा तुम्हें जो करना हो करो। और मेरे पूरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। क्योंकि मेरी निष्ठा प्रत्येक मनुष्य के भीतर छिपी हुई उसकी बुद्धिमत्ता में है। प्रत्येक मनुष्य अपने भीतर बीज लेकर पैदा हुआ है परम संबोधि का। इसलिए आज नहीं कल, देर-अबेर हो सकती है, मगर होश आएगा। और जब होश आएगा, तभी मुझसे जुड़ सकोगे। तुम कहते होः
सज्दों से अब तिश्नगी नहीं बुझती,
जज्ब हो जाऊं रजनीश तेरे आस्ताने में।
मेरा द्वार खुला है। मगर जज्ब होने की हिम्मत! बूंद जब सागर में गिरती
है तो उसकी हिम्मत समझते हो? मिटने की हिम्मत, न हो जाने की हिम्मत, शून्य होने का साहस ही संन्यासी की आधारशिला है। शून्य होने का साहस ही संन्यास है।
आज इतना ही।

प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
पंद्रहवां प्रवचन

सांझ तक भी लौट आने वाला भूला नहीं कहाता

पहला प्रश्नः परमात्मा मुझे कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता है। मैं क्या करूं?

आनंद! आंखें खोलो। आंखें बंद किए देख रहे हो, कान बंद किए सुन रहे हो, हृदय के द्वार बंद हैं--तो परमात्मा दिखाई पड़ना असंभव है। आंख खुली हो तो रोशनी है। आंख के खुले होने में रोशनी है। और आंख बंद हो, तो एक नहीं हजार सूरज ऊग जाएं तो भी अंधेरा रहेगा, अमावस की रात रहेगी।
लेकिन यह तुम्हारी ही भूल नहीं है, यह करीब-करीब सभी की भूल है। परमात्मा दिखाई न पड़े, तो लोग सोचते हैं, परमात्मा होगा नहीं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। शायद ही कोई विरला कभी सोचता है कि हो सकता है मेरी आंख बंद हो, इसलिए परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। वैसे विरले एक न एक दिन परमात्मा को देखने में समर्थ हो जाते हैं।
इसलिए पहला सूत्र और अंतिम सूत्रः परमात्मा की तलाश छोड़ो, आंखें कैसे खुलें, इसकी कीमिया सीखो।
दो तरह से आंखें खुलती हैं। या तो ध्यान से आंख खुलती है... और बड़े मजे
की बात है कि ध्यानी आंख बंद करके बैठ जाता है, बाहर की आंख बंद कर लेता है। बाहर देखने वाली आंख परमात्मा को नहीं देख पाएगी, क्योंकि परमात्मा तो तुम्हारे अंतरतम में छिपा बैठा है। उसे देखना हो तो बाहर देखने वाली आंख बंद करनी होगी। बाहर देखने वाली आंख बंद होती है तो भीतर देखने वाली आंख खुलती है। वही रोशनी जो बाहर भटक जाती है, छिटक जाती है, भीतर संगृहीत हो जाती है। उसी रोशनी के सघनीभूत होने पर तुम्हें अपना अंतस्तल दिखाई पड़ता है।
परमात्मा कोई और नहीं है, तुम्हारे भीतर बैठा हुआ द्रष्टा परमात्मा है। तुम्हारे भीतर बैठा हुआ साक्षी परमात्मा है। हां, यह सच है कि जिसने भीतर परमात्मा को देख लिया, उसे फिर बाहर भी दिखाई पड़ने लगता है। जिसने अपने भीतर पहचान लिया, उसने सबके भीतर पहचान लिया। आदमियों की तो बात छोड़ दो, उसे पत्थरों और पहाड़ों में भी फिर उसके दर्शन होने लगते हैं। मगर पहला दर्शन स्वयं के भीतर घटना चाहिए। लेकिन अक्सर लोग परमात्मा की खोज में ऐसे उलझ जाते हैं कि आंख खोलने की याद ही नहीं उठती।
तो एक रास्ता है ध्यान, कि आंख खोल दे; और एक रास्ता है प्रेम, कि आंख खोल दे। या तो ध्यान में डूबो या प्रेम में डूबो। दो में से एक तुम्हारी निश्चित ही क्षमता है। ऐसा होता ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं कभी कि कोई व्यक्ति पैदा हो जिसमें इन दो में से एक क्षमता न हो। इस दुनिया में पचास प्रतिशत लोग ध्यान से उपलब्ध होंगे और पचास प्रतिशत लोग प्रेम से उपलब्ध होंगे। इस जगत में एक संतुलन है। जैसे पचास प्रतिशत स्त्रियां हैं और पचास प्रतिशत पुरुष हैं। जैसे रात है और दिन है, और जैसे जन्म है और मृत्यु है; जैसे हर चीज अपने विपरीत से तुली हुई है, विपरीत सम्हाले हुए है, कोई चीज अकेली नहीं है, ऐसे ही प्रेम और ध्यान है। प्रेम है स्त्रैण, ध्यान है पौरुषिक।
इससे यह मत समझ लेना कि जो शारीरिक रूप से पुरुष हैं, वे ध्यान से ही उपलब्ध होंगे। यह बात शारीरिक नहीं है। बहुत पुरुष प्रेम से उपलब्ध हुए हैं। यह बात आध्यात्मिक है। बहुत सी स्त्रियां ध्यान से उपलब्ध हुई हैं। जैविक, शारीरिक हिसाब की बात नहीं कर रहा हूं। तुम्हारी अंतरात्मा तक में यह भेद छाया हुआ है।
अपने को ठीक से समझने की कोशिश करो। दोनों प्रयोग करके देख लो! भजन में, भाव में डूबो; गीत में, गान में डूबो; नाचो प्रेम में मस्त होकर। और अगर धुन बंध जाए, सुर मिल जाए, रस बहने लगे, तो समझना कि यही तुम्हारा मार्ग है।

तुम नाचो और रस न बहे, तुम गीत गाओ और गीत ओंठों पर रह जाएं और प्राण उनसे संवादित न हों, संवेदित न हों, तो समझ लेना कि प्रेम तुम्हारा मार्ग नहीं है। फिर ध्यान में डूबो। फिर आंख बंद करो, फिर मात्र साक्षी रह जाओ। अपनी श्वास के ही साक्षी रह जाओ। आती-जाती श्वास को देखते रहो। सुगमतम ध्यान की प्रक्रिया है विपस्सना। श्वास भीतर आए, देखो--भीतर आई; श्वास बाहर जाए, देखो--बाहर गई। धीरे-धीरे, श्वास को देखते-देखते तुम्हें वह दिखाई पड़ने लगेगा जो देख रहा है। और जिस दिन द्रष्टा के दर्शन होंगे, उस दिन परमात्मा का अनुभव हो जाएगा।
प्रेम के जगत में नाचते-नाचते, गीत गाते-गाते जिस दिन तुम डूब जाओगे
और तुम्हारी अस्मिता खो जाएगी, तुम्हारा अहंकार भाव खो जाएगा; नृत्य तो बचेगा, नर्तक खो जाएगा, उस दिन तुम परमात्मा को जान लोगे।
हर कदम पे थी उसकी मंजिल लेक,
सर से सौदा-ए-जुस्तजू न गया।
वह तो जगह-जगह है, लेकिन तुम खोज की धुन में लगे हो। तुम इतनी तेजी से खोजने में लगे हो, आनंद, कि तुम्हारी खोजने की व्यस्तता ही तुम्हें देखने नहीं दे रही है। तुम्हारी खोज ही तुम्हें अंधा बनाए हुए है। तुम इतनी तेजी से दौड़ रहे हो कि उसके पास से गुजर जाते हो और नहीं देख पाते। तुम देखने के लिए ऐसे आतुर हो कि वह सामने खड़ा होता है, मगर तुम्हारी आतुरता ही तुम्हारे प्राणों पर छाई रहती है और तुम उसे नहीं देख पाते।
यक जा अटक के रहता है दिल हमारा वर्ना,
सबमें वही हकीकत दिखलाई दे रही है।
हम अटक गए हैं कहीं। कोई धन में अटक गया है, कोई पद में अटक गया है, कोई ज्ञान में अटक गया है, कोई त्याग में अटक गया है। हम कहीं अटक गए हैं। नहीं तो सभी में--पत्थरों से लेकर चांद-तारों तक--उस एक की ही हकीकत है। वह एक ही सत्य प्रकट हो रहा है।
गुल व बुलबुल बहार में देखा,
एक तुझको हजार में देखा।
देखना आ जाए तो फूल-फूल में वही है, पत्ते-पत्ते में वही है। पक्षियों
के गीत में वही है। सन्नाटे में वही है, संगीत में वही है। और एक उसकी झलक मिल जाए कि उसकी झलक में ही तुम रूपांतरित हो जाते हो; तुम वही नहीं रह जाते जो तुम थे; नहा जाते हो उसकी झलक में; झड़ जाती है धूल जन्मों-जन्मों की, बह जाता है कचरा जैसे बाढ़ में बह गया हो।
उसकी तर्जे-निगाह मत पूछो,
जी ही जाने है, आह मत पूछो।
और जिस दिन तुम देखोगे, तुम ही थोड़े ही देखोगे। तुम देखोगे, वह भी देखेगा। दो आंखें चार आंखें हो जाएंगी। अकेला आदमी ही थोड़े ही देखता है परमात्मा को! वह तो देख ही रहा है, तुम ही आंखें चुरा रहे हो। या कहीं उलझे हो, या कहीं अटके हो, या आंखें बंद हैं, या गहरी नींद में सोए हो, या सपनों में उलझे हो। वह तो तुम्हें देख ही रहा है।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने एक बहुत अदभुत बोधकथा लिखी है। एक पागल आदमी पहाड़ों से उतरा और बीच बाजार में आकर हाथ में जलती हुई कंदील लिए भर दोपहर कुछ खोजने लगा, दौड़ने लगा यहां-वहां। ढली हुई गाड़ियों के नीचे झांका, वृक्षों के पीछे देखा, लोगों के आस-पास झांका, जहां भीड़ थी बीच में घुस गया। लोगों ने पूछा, क्या खोज रहे हो? क्या खो गया? और भर दोपहरी में लालटेन!
वह आदमी पागल मालूम होता था। और उस पागल ने कहा कि मैं ईश्वर को खोज रहा हूं।
लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, बहुत ईश्वर को खोजने वाले देखे, यह भी तुमने खूब ढंग निकाला! किस ईश्वर को खोज रहे हो? क्या ईश्वर खो गया है? क्या ईश्वर कोई बच्चा है, जो मेले में अपने मां-बाप से बिछुड़ गया? किस ईश्वर की बातें कर रहे हो? उसकी पहचान क्या?

और उस पागल आदमी ने अपनी लालटेन जमीन पर पटक दी और उसने कहा, मालूम होता है तुम्हें अब तक खबर नहीं मिली। ईश्वर मर चुका है! मैं तुम्हें उसकी खबर देने आया हूं।
किसी ने मजाक में ही पूछा कि ईश्वर मर कैसे गया?
तो उस पागल आदमी ने कहा, यह भी तुम्हें पता नहीं है? तुम्हीं ने उसे मार डाला है और तुम्हें अभी तक उसकी खबर नहीं! शायद खबर आने में देर लगेगी--दूर की खबर है, आते-आते समय लगेगा। शायद मैं अपने समय के पहले आ गया हूं।
और तब भीड़ में से किसी ने पूछा, हमने उसे क्यों मार डाला?
तो उस पागल आदमी ने कहा, उसे तुमने इसलिए मार डाला कि वह तुम्हें सदा देखता था। और उसकी आंखें तुम पर गड़ी रहती थीं। और तुम बेचैन होते गए। और तुम अपने को उससे छिपा न पाते थे। वह तुम्हारा साक्षी था, गवाह था। तुम गवाह को बर्दाश्त न कर सके, तुम उस शाश्वत साक्षी को बर्दाश्त न कर सके, इसलिए तुमने उसकी हत्या कर दी।
यह बात नीत्शे ने बड़ी अदभुत कही--कि आदमी ने ईश्वर की हत्या कर दी है, क्योंकि ईश्वर आदमी का गवाह है। उसकी आंखें सदा तुम पर गड़ी हैं। अच्छा नहीं लगता कि कोई आंखें सदा तुम पर गड़ाए रहे। मगर हजार आंखें हैं उसकी, चारों तरफ से वह तुम्हें देख रहा है। वही झांक रहा है चारों तरफ से। शायद तुम उसे देखने से डरते हो; या इस बात से डरते हो कि कहीं वह तुम्हें देख न रहा हो, इसलिए तुम आंखें बंद किए खड़े हो।
आंखें खोलो! परमात्मा प्रतिपल मौजूद है। और एक बार जरा सी भी आंख खोल लोगे, जरा सी पलक, जरा सी झलक, कि फिर न रुक सकोगे। फिर पकड़े गए; फिर उसके प्रेम के जाल में पड़े।
मय में वो बात कहां जो तेरे दीदार में है,
जो गिरा फिर न कभी उसको सम्हलते देखा।
शराब में भी क्या रखा है, जो उसकी एक झलक में है! जो उसके दीदार में है,
जो उसके दृश्य में है, जो उसके दर्शन में है!
मय में वो बात कहां जो तेरे दीदार में है,
जो गिरा फिर न कभी उसको सम्हलते देखा।
जो एक बार गिरा सो गिरा, फिर कभी सम्हला नहीं। जो एक बार बेहोश हुआ सो हुआ, फिर कभी होश में न आया। और उसकी बेहोशी भी बड़ी अदभुत है, बड़ी विरोधाभासी है। क्योंकि जो उसके साथ बेहोश हो गया, वह इस जगत में इतने होश से भर जाता है जिसका हिसाब नहीं। और जिसने परमात्मा की बेहोशी नहीं जानी, वह इस जगत में बेहोश है। ऐसा समझो, इस जगत में जो बेहोश है, उसने अभी परमात्मा की बेहोशी नहीं जानी। और जिसने परमात्मा की बेहोशी जान ली, वह इस जगत में समग्र होश से भर जाता है।
अमिय, हलाहल, मदभरे, श्वेत, श्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।।
उसकी आंखों में अमृत भी है और जहर भी। जहर तुम्हें मार डालेगा, जैसे तुम हो; और अमृत तुम्हें जिला देगा, जैसे तुम होने चाहिए। तेरी इन श्वेत, श्याम, रतनारी आंखों में विष और अमृत, दोनों का विचित्र सम्मिश्रण हुआ है, क्योंकि जिसका एक बार भी इनसे संपर्क हो जाता है, ये आंखें जिसे एक बार देख लेती हैं, वह एक अर्थ में तो मर जाता है और एक अर्थ में सदा के लिए जी जाता है। अहंकार तो मर जाता है, शाश्वत जीवन अनुभव हो जाता है।
अमिय, हलाहल, मदभरे, श्वेत, श्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार।।
मगर वह तो तुम्हें देखने को कब से, कब से खड़ा है। तुम्हीं आंखें चुरा रहे हो। आनंद, यह मत पूछो कि परमात्मा मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ता। यही पूछो कि मैं आंख कैसे खोलूं? मेरी आंखें बंद कैसे हैं? किन कारणों से मेरी आंखें बंद हैं? मैंने कौन से पत्थर अपनी आंखों पर रख लिए हैं? मैंने कौन से पर्दे अपनी आंखों पर डाल रखे हैं? बस, इतना ही पूछो। और उन पर्दों को हटाने का ही यहां आयोजन है। संन्यास उन पर्दों को तोड़ने का ही नाम है। संन्यास उन पत्थरों को हटा देने की ही प्रक्रिया है। पत्थर हट जाएं, पर्दे उखड़

जाएं, तुम चकित हो जाओगे--जिसे तुम खोजते थे, उसे खोजने की जरूरत ही न थी, वह सदा तुम्हारा पीछा कर रहा था। तुम जहां गए, तुम्हारे साथ था। तुम्हारी छाया की तरह तुम्हारे साथ था। कभी-कभी छाया भी साथ छोड़ देती है--जब तुम छाया में होते हो, छाया साथ छोड़ देती है--मगर वह तुम्हारा कभी भी साथ नहीं छोड़ता। तुम नरक जाओ तो नरक में तुम्हारे साथ है। तुम पाप करो तो पाप में तुम्हारे साथ है। तुम पुण्य करो तो पुण्य में तुम्हारे साथ है। वह तुम्हारा साथ ही नहीं छोड़ सकता, क्योंकि वह तुम्हारा आंतरिक स्वभाव है। छोड़ेगा भी तो कैसे?
परमात्मा को प्रश्न मत बनाओ। अपनी आंख को, अपने देखने के ढंग को, अपने हृदय को उघाड़ने की प्रक्रिया को, इसे तुम अपनी समस्या बनाओ।
दरे-जानां पे अगर हसरते-सिज्दा है तुझे,
अर्श जिसके लिए झुक जाए वो सर पैदा कर।
अगर उस प्यारे की चौखट पर नतमस्तक होने की इच्छा है--
दरे-जानां पे अगर हसरते-सिज्दा है तुझे,
अर्श जिसके लिए झुक जाए वो सर पैदा कर।
अगर उस प्यारे की चौखट पर सिर झुकाना है तो एक ऐसा सिर पैदा करो कि जिसके सामने आकाश झुक जाए। अगर उसे देखने की इच्छा है तो ऐसी आंखें पैदा करो कि वह खुद तुम्हारे सामने आ जाए। अगर उसे अनुभव करना है तो ऐसी संवेदनशीलता जगाओ कि वह खुद लालायित हो उठे, तुम्हारे हृदय के साथ एक होने के लिए आंदोलित हो उठे।
दरे-जानां पे अगर हसरते-सिज्दा है तुझे,
अर्श जिसके लिए झुक जाए वो सर पैदा कर।
क्या हुआ गर तेरी रातें रहीं बेगानाए-ख्वाब,
हुस्न बेदार हो जिससे वो सहर पैदा कर।
फिकर न करें, चिंता न करें, कि अगर रातें स्वप्नरहित रहीं और तुम्हें कोई मधुर स्वप्न न आए--
क्या हुआ गर तेरी रातें रहीं बेगानाए-ख्वाब,
हुस्न बेदार हो जिससे वो सहर पैदा कर।
ऐसी सुबह पैदा करो कि सौंदर्य स्वयं तुम पर बरसने को आतुर हो उठे। फलके-इश्क के टूटे हुए तारों की कसम,
इक नई अंजुमने-शम्सो-कमर पैदा कर।
एक नया आकाश, नये सूर्य, नये तारे, नये नक्षत्र पैदा करने होंगे-- तुम्हारे भीतर! देखने की दृष्टि, अनुभव करने वाला हृदय, प्रेम से भरी आंखें, कि ध्यान में जगा हुआ बोध--ये तारे, ये नक्षत्र, ये सूरज तुम्हारे भीतर पैदा करने होंगे। फिर परमात्मा ही परमात्मा है। तुम बचना भी चाहो तो न बच सकोगे। तुम कितने ही भागो तो भाग न सकोगे। क्योंकि वही है, केवल वही है।
पर लोग अक्सर परमात्मा के संबंध में पूछते हैं, अपनी आंख के संबंध में नहीं पूछते। वहीं प्रश्न गलत हो जाता है। वहीं भ्रांति हो जाती है। अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में पूछे, बस भूल हो गई। अंधे आदमी को पूछना चाहिएः मेरी आंख का उपचार कैसे हो? मेरी आंख की जाली कैसे कटे? अंधा आदमी इंद्रधनुषों के संबंध में पूछे, बस मुश्किल में पड़ेगा। रंगों के संबंध में पूछेगा, मुश्किल में पड़ेगा। और तब अंधे आदमी के पास एक ही उपाय है सांत्वना का कि वह कह दे कि न कोई रंग होते हैं, न कोई प्रकाश होता है। ताकि झंझट मिटे; ताकि यह व्यर्थ का ऊहापोह मिटे।
इसलिए अनेक-अनेक लोगों ने इनकार कर दिया है कि ईश्वर है। क्योंकि अगर ईश्वर है, तो फिर आंख खोलने की झंझट लेनी पड़ेगी। अगर ईश्वर है, तो फिर हृदय के द्वार खोलने की तैयारी दिखानी पड़ेगी। उतना साहस नहीं है। नास्तिकता कायरता का आवरण है। नास्तिकता अपने भीतर की कायरता को छिपाने का बड़ा सुंदर उपाय है, बड़ा सुंदर तर्क है।
और ध्यान रखना, जब मैं नास्तिक को कायर कह रहा हूं, तो तुम यह मत समझ लेना कि तुम मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारा जाने वाले आस्तिक हो तो तुम कायर नहीं, बड़े बहादुर हो! तुम्हारी आस्तिकता भी कायरता है। तुम डर के कारण

आस्तिक हो। और कोई डर के कारण नास्तिक है। एक ने डर के कारण इनकार कर दिया है कि ईश्वर है ही नहीं। न होगा बांस न बजेगी बांसुरी, झंझट मिटी। अब न खोजने की बात रही, न तलाशने की बात रही। अब निश्चिंत होकर अपनी दुकान करें, धन कमाएं, पद कमाएं, इतनी सी जिंदगी है, खा लें, पी लें, मौज कर लें! यह ईश्वर की जो महत चिंता पकड़ती थी, उसको समाप्त कर दिया--एक सीधी सी बात से कि ईश्वर है ही नहीं।
और दूसरी तरफ तथाकथित आस्तिक हैं, उन्होंने चुपचाप ईश्वर को स्वीकार
कर लिया--बिना खोजे, बिना देखे। उन्होंने भी आंख नहीं खोली है; उन्हें भी पता नहीं है; उन्होंने कहा--होगा ही जी, कौन झंझट में पड़े! है तो ठीक, कभी मंदिर हो आएंगे, रविवार को चर्च हो आएंगे, कभी सिर पटक लेंगे किसी मूर्ति पर, दो फूल चढ़ा देंगे, झंझट मिटी!
आस्तिकों ने भी अपने ढंग से झंझट मिटा ली है और नास्तिकों ने अपने ढंग
से झंझट मिटा ली है--दोनों कायर हैं।
धार्मिक आदमी न आस्तिक होता, न नास्तिक होता। धार्मिक आदमी तो अपनी आंखों की तलाश में लगा हुआ, एक महायात्रा पर निकला हुआ यात्री होता है। मैं तुम्हें चाहता हूं कि तुम धार्मिक बनो--न आस्तिक, न नास्तिक। भय
के कारण न इनकार करना, न स्वीकार। जब तक जान न लो, तब तक कहना--मुझे पता नहीं, मैं अज्ञानी हूं। जब जान लो, तभी मानना। उसके पहले मानना ही मत। और जब मैं कहता हूं, मानना मत, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इनकार करना। क्योंकि इनकार करना भी मानना है। कोई मानता है ईश्वर है, कोई मानता है ईश्वर नहीं है। ये दोनों मान्यताएं हैं, ये दोनों विश्वास हैं। और दोनों अंधे आदमियों के हैं। जानने वाला न तो मानता है, विश्वास करता है, न अविश्वास करता है। जानने वाला तो जानता है। अब विश्वास कैसे करे? अब अविश्वास कैसे करे? जानने वाला तो पीता है, जीता है।
ईश्वर को जीया जा सकता है। और ईश्वर को जीया जाए तो ही जीवन में कुछ अर्थ है। पर उसकी तैयारी करनी होगी, पात्र को निखारना होगा।
मत पूछो कि परमात्मा कहां है! मत पूछो कि परमात्मा है या नहीं! इतना ही पूछो कि मेरी आंख कैसे खुलें?
और दो प्रयोग हैंः ध्यान का और प्रेम का--दोनों को कर गुजरो! जो रुच जाए, जो तुम्हारे हृदय में समा जाए, जिससे तुम्हारा तालमेल बैठ जाए, उसे चुन लो और सब दांव पर लगा दो। तुम निश्चित जानोगे। ऐसे ही जाना गया है। ऐसे ही जाना जाता रहा है। ऐसे ही जाना जा सकता है।

दूसरा प्रश्नः मैं संन्यास के लिए तैयार हूं। लेकिन यह कैसे जानूं कि परमात्मा ने मुझे पुकारा ही है? यह मेरा भ्रम भी तो हो सकता है!

हरिभजन! इस प्रश्न में छुपे अहंकार को देखोगे--कि परमात्मा तुम्हें
जब पुकारे तब तुम संन्यास लोगे! संन्यास तो परमात्मा को पुकारना है। तुम परमात्मा को पुकारो! या कि प्रतीक्षा कर रहे हो कि परमात्मा तुम्हें पुकारे? हालांकि मैंने कहा है कि तुम पुकारो, उसके पहले परमात्मा तुम्हें पुकारता है। परमात्मा तो पुकारता ही रहा है, अहर्निश। परमात्मा तो पुकार का ही एक नाम है। यह सारा अस्तित्व पुकार रहा है कि आओ, लौट आओ! अपने घर लौट आओ! कहां दूर निकल गए? कैसे भटक गए? वृक्ष तुमसे ज्यादा आनंदित हैं। पशु- पक्षी तुमसे ज्यादा आनंदित हैं। यह सारा अस्तित्व महोत्सव में लीन है। एक आदमी ही भटका, उदास, विषाद से भरा, चिंतित, संतापग्रस्त मालूम होता है। यह सारा अस्तित्व कह रहा हैः लौट आओ, वापस आ जाओ, यह उत्सव तुम्हारा भी है, ऐसे ही फूल तुम में भी खिलेंगे, ऐसी ही हरियाली तुम में भी होगी, ऐसा ही रस तुम में भी बहेगा। परमात्मा तो पुकार ही रहा है।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम पहले यह निश्चय कर लो कि परमात्मा
ने पुकारा है या नहीं, इसकी गारंटी हो जाए, तब तुम संन्यास लोगे! गारंटी कौन देगा?
और यह आकांक्षा क्या शुभ है? इतना ही काफी है कि तुम परमात्मा को पुकारो। या कि तुम चाहते हो परमात्मा तुम्हें पुकारे? अहंकार बड़े सूक्ष्म

रास्ते खोजता है। अहंकार कहता है, जब तक वह मुझे नहीं पुकारेगा, तब तक मैं कैसे संन्यास लूं?
मुझसे आकर लोग पूछते हैं कि हम संन्यास तो लें, आपने हमें पुकारा है? जिम्मेवारी मेरी होनी चाहिए। तुम संन्यास भी लोगे, तो भी समर्पण नहीं होगा। परमात्मा ने पुकारा है, इसलिए आए हैं। तुम परमात्मा से भी चाहते हो निमंत्रण-पत्र पहले मिल जाए, तो तुम जाओगे। बिना बुलाए तुम परमात्मा के द्वार पर भी नहीं जाओगे? ऐसा अहंकार! तो, हरिभजन, सदा ही चूकते रहोगे।

सच-सच बताना
तुमने दी मुझको आवाज
या कि
महज यह मेरा एक भ्रम था?

प्रवंचना के वन से गुजरती हवाएं
बहुत पास आकर
देती हैं
संकेती सीटियां,
चौकन्ने हो-हो कर भागने लग जाते हैं मृगछौने लंगड़ी इच्छाओं के--
कीलित पथ,
तन श्लथ
खंडहर आस्थाओं का ढोते
सलीब सा
बेचारे मृगछौने जाएं तो कहां जाएं कस्तूरी मृग को हमने देखा तो कभी नहीं जीते जरूर रहे।

नाम उसे कुछ भी दे लो
तलाश या भटकन;
शब्दों का बेमानी इंद्रजाल
रच डालो चाहो तो।
सच का हमें पता है
कि अपनी ही खोज हम न कर पाए जीवन भर। थके-थके
क्षण पर क्षण रीते गए
और
उस रीतने में
रीतने का नियम अधिक
मकसद बहुत कम था

किसी निर्जन पोखर की
काली चट्टानों पर
जमी हुई काई में
फिसल-फिसल बिखरती,
किनारे पर पहुंच कर
टूट-टूट जाती हुई
लगातार लहरों के अर्थहीन क्रम सा और कुछ भी नहीं,
लगता है,
अपना ही पराजित अहम था!
सच-सच बताना
कि तुमने दी मुझको आवाज
या कि

महज यह मेरा एक भ्रम था?

आदमी पक्का कर लेना चाहता है।
सच-सच बताना
तुमने दी मुझको आवाज
या कि
महज यह मेरा एक भ्रम था?
आवाज की जरूरत क्या है? तुम्हारे भीतर जानने की आकांक्षा नहीं जगती
कि जानें यह अस्तित्व क्या है? तुम्हारे भीतर जिज्ञासा नहीं उठती कि पहचानूं मैं कौन हूं? तुम्हारे भीतर ऊहापोह नहीं उठता कि कहां से हम आए, कहां हम जा रहे हैं? क्यों आखिर हम हैं? तुम्हारे भीतर जीवन का रहस्य छूता नहीं? तुम्हें विस्मयविमुग्ध नहीं करता? तुम्हें अवाक नहीं करता? तुम्हें आश्चर्यचकित नहीं करता?
परमात्मा पुकारे क्यों? तुम पुकारो! और तुम पुकारोगे तो मैं जरूर कहता हूं कि तुम तभी पुकारोगे जब उसने तुम्हें पुकारा है। अन्यथा तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर है कि तुम उसे पुकार सको।
तुम कहते होः "मैं संन्यास के लिए तैयार हूं। लेकिन मैं यह कैसे जानूं
कि परमात्मा ने मुझे पुकारा ही है?"
डूबो संन्यास में, और जानोगे। कुछ चीजें जीकर ही जानी जाती हैं। जैसे प्रेम। कोई करेगा तो जानेगा। ऐसे ही संन्यास है। संन्यास यानी परमात्मा से प्रेम। परम प्रेम। जीओगे, अनुभव करोगे, तो जानोगे। निश्चित एक दिन पाओगे कि उसने तुम्हें पुकारा था, तभी तो तुम चल पड़े थे उसकी ओर। मगर आज बिना चले कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता, कोई प्रमाणपत्र नहीं दिया जा सकता।
लेकिन, संन्यास की अगर तैयारी हो गई है, तुम कहते हो हरिभजन कि मैं संन्यास के लिए तैयार हूं, तो फिर इतनी भी शर्त क्या लगाते हो? शर्त लगानी उचित नहीं। परमात्मा पर शर्त नहीं लगानी चाहिए। उस तरफ तो बेशर्त चलना चाहिए। प्रार्थना बेशर्त ही हो सकती है। अगर शर्त है, तो सौदा है। और जहां सौदा है वहां प्रेम नहीं। हां, अगर तुम कूद पड़ोगे, छलांग लगा लोगे, तो हजार-हजार प्रमाण मिलेंगे--एक नहीं, हजार प्रमाण मिलेंगे।

कौन आया कि निगाहों में चमक जाग उठी
दिल के सोए हुए तारों में खनक जाग उठी

किसके आने की खबर ले के हवाएं आईं
जिस्म से फूल चटकने की सदाएं आईं
रूह खिलने लगी, सांसों में महक जाग उठी

किसने मेरी नजर देख के बांहें खोलीं
शोख जज्बात ने सीने में निगाहें खोलीं
ओंठ तपने लगे, जुल्फों में लचक जाग उठी

किसके हाथों ने मेरे हाथों से कुछ मांगा है
किसके ख्वाबों ने मेरे ख्वाबों से कुछ मांगा है
दिल मचलने लगा, आंचल में छनक जाग उठी

कौन आया कि निगाहों में चमक जाग उठी
दिल के सोए हुए तारों में खनक जाग उठी

साधारण प्रेम में यह हो जाता है। कोई किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गया, कोई किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गया, साधारण प्रेम में यह हो जाता है-- कौन आया कि निगाहों में चमक जाग उठी
दिल के सोए हुए तारों में खनक जाग उठी

तो उस परम प्यारे के साथ तुम संबंध जोड़ोगे तो तुम सोचते हो प्रमाण न मिलेंगे? हजार-हजार प्रमाण मिलेंगे। झनझना उठेंगे प्राणों के तार। गीत उभरने लगेंगे। नृत्य उठेगा। तुम्हारी आंखों से रोशनी झरने लगेगी। तुम्हारे प्राणों में एक अपूर्व शीतलता का जन्म होगा। तुम नये हो जाओगे। तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। तुम जीवन की शाश्वतता को देखोगे फिर। जन्म और मरण के बीच घिरे हुए इस छोटे से क्षणभंगुर जीवन से तुम्हारा संबंध टूट जाएगा। तुम उस जीवन को जानोगे जो जन्म के भी पहले है और मृत्यु के भी बाद है। हजारों होंगे प्रमाण--लेकिन छलांग लगे तो।
तैयारी है तो शर्त न लगाओ। शर्त लगाते हो तो तैयारी नहीं है। प्रेम में कोई शर्त कहता है? और परमात्मा तो चुप है। कौन उत्तर देगा? मौन उसकी भाषा है। तुम पूछते रहोगेः क्या तुमने मुझे पुकारा? आकाश शांत रहेगा, उत्तर न आएगा। तुम बैठे-बैठे ही मर जाओगे।
हृदय में भाव उठा है, छलांग लो। खोओगे क्या? तुम्हारे पास खोने को क्या है? पा सकते हो, खोने को तो कुछ भी नहीं है।
कम्युनिज्म के जन्मदाता कार्ल मार्क्स ने अपनी महत्वपूर्ण किताब "कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो" का अंत ऐसे किया है कि हे दुनिया के मजदूरो, इकट्ठे हो जाओ! क्योंकि तुम्हारे पास खोने को सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं, और पाने को सब कुछ है।
यह बात मजदूरों के संबंध में सच हो या न हो, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं
कि जिनको भी छलांग लेनी है संन्यास में, वे ले ही लें; क्योंकि तुम्हारे पास खोने को सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं है, और पाने को सब कुछ है--सब कुछ, जिसमें परमात्मा भी सम्मिलित है।

तीसरा प्रश्नः कल आपने प्रवचन में नसरुद्दीन की कहानी कही--कड़ाही के बच्चे होने वाली। मैंने संजय को तपेली दी थी। तपेली मर गई, और बाद में छोटी-मोटी तपेलियां भी मर गईं। और अब फिर दिख रहा है कि कड़ाहियों के बच्चे हो रहे हैं। अब यह खेल देखने की क्षमता आ रही है। सुख-दुख, धूप-छांव, दिन और रात की तरफ देखने की समझ आपसे मिली है। दो वर्ष पहले आपसे प्रश्न पूछा था, काफी दुख की छाया में था, आपने सूफी कहानी का संदेश दिया था--यह भी गुजर जाएगा। बिल्कुल वैसा ही हुआ है। अब यह सुख का समय भी जाएगा, इस नियम की भी समझ आई है। आपके अमूल्य सूत्र--वर्तमान में होने का और होश को जीवन में उतारने का प्रयत्न करता रहता हूं। प्रश्न कुछ भी नहीं है, फिर भी आपसे कुछ सुनने की प्यास जरूर है!

योग माणिक! यह सूत्र समझ में आ जाए कि जो भी आता है, जाता है, तो सब समझ में आ गया। न सुख टिकता है, न दुख। न जन्म टिकता है, न मृत्यु। कुछ टिकता ही नहीं। जगत प्रवाह है। जैसे गंगा भागी जा रही, ऐसे जीवन में घटनाओं की भाग-दौड़ है। मगर इन सारी घटनाओं के बीच एक है जो टिका हुआ हैः साक्षी, देखने वाला।
दो साल पहले तुम दुख में थे, तुमने दुख देखा था; अब तुम सुख में हो, अब तुम सुख देख रहे हो। दुख नहीं रहा, सुख भी नहीं रहेगा। मगर एक बचा हैः देखने वाला। उसने दुख भी देखा, सुख भी देखा। उसने बचपन देखा, जवानी देखी, बुढ़ापा देखेगा। उसने जन्म देखा, मृत्यु भी देखेगा। वह साक्षी शाश्वत है। बस वह साक्षी में ही हम धीरे-धीरे डूबते जाएं, डूबते जाएं, एक हो जाएं, लीन हो जाएं, तो सब पा लिया। इस जगत की सारी संपदा, सारा साम्राज्य व्यर्थ है। जिसने साक्षी को पा लिया, उसने परमात्मा का राज्य पा लिया। और उसे पाने के ही सूत्र हैंः वर्तमान में जीओ; होश से जीओ। साक्षी यानी होश।
और साक्षी तो केवल वर्तमान का ही हुआ जा सकता है। जो अब है ही नहीं, उसके साक्षी कैसे होओगे? वह तो गया। और जो अभी आया नहीं है, उसके भी साक्षी नहीं हो सकते, वह तो अभी आया नहीं है। साक्षी तो वर्तमान के ही हो सकते हो। ये तीनों चीजें संयुक्त हैं। साक्षी होने का अर्थ हैः होश से जीना। होश से जीने का अर्थ हैः वर्तमान में जीना। और जो होश और वर्तमान में है, उसका संबंध उससे जुड़ जाएगा जो कालातीत है, जो साक्षी है।

योग माणिक, तुम्हारे भीतर जो साक्षी बैठा है, वही परमात्मा है। वही परम आनंद है। वह न तो सुख है, न दुख। वह दुखातीत है, सुखातीत है, लेकिन सच्चिदानंद है। वही सत्य है, वही चैतन्य है, वही आनंद है। तुम्हारे हाथ सूत्र लग रहा है, चूक न जाए। क्योंकि जब दुख होता है तब तो हम चाहते हैं कि जाए; पकड़ते नहीं। कौन पकड़ता है दुख को? लेकिन जब सुख होता है, तब धीरे से मन में भीतर कहीं रस सरकता है कि रुका रहे, रुका रहे, न जाए। कौन सुख को नहीं रोक लेना चाहता? इसलिए दुख में जागना आसान है, सुख में जागना कठिन है। योग माणिक, तुम कहते हो, दो साल पहले मैं काफी दुख की छाया में था।
वह घड़ी उतनी खतरनाक नहीं थी। खतरनाक घड़ी अब है। तब मैंने तुमसे कहा थाः यह भी गुजर जाएगा। अब भी तुमसे यही कहता हूंः यह भी गुजर जाएगा। तब मेरी बात को सुन कर तुम्हें ढाढ़स बंधा होगा। अब मेरी बात को सुन कर तुम्हारी छाती थोड़ी कंप जाएगी। यह भी गुजर जाएगा। यहां सभी गुजर जाना है। यहां कुछ भी टिकने का नहीं है। यह जगत पानी का बबूला है। बना और मिटा। जैसे दुख गुजर गया था और तुम निश्चिंत बने रहे थे, ऐसे ही जब यह सुख भी गुजर जाए तो निश्चिंत बने रहना। आते रहेंगे सुख और दुख दिन और रात की तरह... दिन और रात के ताने-बाने से समय बना है। ऐसे ही सुख-दुख के ताने-बाने से जीवन की चादर बुनी गई है। लेकिन तुम चादर नहीं हो। कभी दुख ओढ़ते हो, कभी सुख ओढ़ते हो, मगर तुम ओढ़नी नहीं हो। तुम तो वह हो जो ओढ़ लेता है। कभी बीमारी ओढ़ते हो, कभी स्वास्थ्य; कभी सुंदर, कभी कुरूप; कभी प्रसन्न, कभी उदास। ये सब ओढ़नियां हैं। तुम इन सबसे पृथक हो, भिन्न हो, अन्य हो। तुम इनके साथ अपने को अभिन्न मत जानना, बस, तुम्हारे हाथ में स्वर्ण-सूत्र है। इस स्वर्ण-सूत्र से परमात्मा का द्वार खुल सकता है!

चौथा प्रश्नः मैं तो प्रकाश से अपरिचित हूं, बस अंधेरे को ही जानता हूं। फिर प्रकाश के नाम पर जो पाखंडों का जाल फैला है, उससे भी डरता हूं। मुझे मार्ग दें, दृष्टि दें, प्रकाश दें!

रामस्वरूप! यह स्वाभाविक है। सत्य के नाम पर इतना पाखंड फैला हुआ है, परमात्मा के नाम पर इतनी धोखाधड़ी है, प्रकाश के नाम पर शब्दों और शास्त्रों के इतने जाल फैले हुए हैं, कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि कोई ऊब जाए, कि कोई थक जाए, कि कोई सिर्फ ऊब में ही पीठ कर ले। मगर प्रकाश के संबंध में शब्दों और शास्त्रों का जाल कितना ही हो, प्रकाश की तलाश मत बंद कर देना! परमात्मा के संबंध में चाहे कितनी ही धोखाधड़ियां चल रही हों, और कितना ही बाजार खड़ा हो गया हो, और मंदिर और मस्जिद कितने ही लूट-खसोट कर रहे हों, परमात्मा के नाम पर कितनी ही बेईमानी चल रही हो, तो भी परमात्मा की तलाश मत छोड़ देना!
सच तो यह है, इतनी बेईमानी चल रही है इसीलिए कि परमात्मा होना चाहिए।
जब सच्चे सिक्के होते हैं, तभी तो झूठे सिक्के चल सकते हैं। अगर सच्चे सिक्के हों ही न, तो झूठे सिक्के कैसे चल सकते हैं? जरा सोचो, सरकार तय कर ले कि सब सिक्के रद्द; सब सिक्के टकसाल वापस लौटा लिए जाएं। तो झूठे सिक्कों की बड़ी मुसीबत हो जाएगी। असली तो टकसाल वापस चले जाएंगे, झूठे व्यर्थ हो जाएंगे। असली नोट है तो नकली नोट चल सकता है। नकली नोट सबूत देता है कि असली नोट कहीं होगा--नहीं तो चलेगा कैसे?
नकली को चलने के लिए असली का सहारा चाहिए। झूठ के पांव नहीं होते, झूठ लंगड़ा है। झूठ हमेशा सत्य के उधार पांव लेकर चलता है। इसलिए हर झूठ दावा करता है कि मैं सच हूं। और तभी तक चल सकता है जब तक तुम उसे सच मानो। जैसे ही तुमने झूठ माना कि तत्क्षण वहीं गिर जाएगा। झूठ जब तक ऐसी प्रतिष्ठा बनाए रखे कि मैं सच हूं, तब तक ही पूजा जा सकता है।
लेकिन एक बात तो तय है कि जब तुम झूठ की पूजा करते हो, तब भी तुम वस्तुतः सत्य की ही पूजा कर रहे हो। माना कि वहां सत्य नहीं है, लेकिन सत्य का दावा तो वहां निश्चित है। सत्य के दावेदार वहां हैं। इतना जाल धर्मों के नाम पर चलता रहा है। इतना जाल चला है कि धर्म को नष्ट हो जाना चाहिए था। इतनी बेईमानी हो चुकी है ईमान के नाम पर कि अभी तक ईमान की कभी की कब्र खुद

जानी चाहिए थी। मगर कुछ बात है, कुछ राज है, कि इतनी धोखाधड़ी, इतनी बेईमानी, इतना खून-खराबा, जमीन लाल हो गई, सुर्ख हो गई रक्त से! हिंदू-मुसलमान लड़ते रहे, ईसाई-मुसलमान लड़ते रहे, लड़ते ही रहे लोग। धर्म के नाम पर प्रेम की बातें होती रहीं और तलवारें चलती रहीं। धर्म के नाम पर परमात्मा की बातें होती रहीं और आदमी की हत्या होती रही। यह सब होता रहा, फिर भी धर्म नष्ट नहीं हुआ। कुछ बात है। कुछ राज है। निन्यानबे चीजें झूठ चल रही हों, तब भी कहीं एक कोई बात सच है जिसके आधार पर निन्यानबे झूठ चल रहे हैं।
तो तुम्हारा भाव स्वाभाविक है कि तुम थक गए, ऊब गए--पाखंडों का जाल फैला देख कर। कौन नहीं ऊब जाएगा? लेकिन पाखंडों का जाल अगर फैला है तो कहीं न कहीं सत्य छिपा होगा। उसे खोजो! मुसलमान चाहे सच न हों, मोहम्मद सच हैं; सिक्ख चाहे सच न हों, नानक सच हैं; और जैन चाहे सच न हों, महावीर सच हैं। हिंदू सच हों या न हों, कृष्ण तो सच हैं। फिर कृष्ण के नाम पर पंडे- पुरोहित इकट्ठे होंगे, स्वाभाविक है। जहां कृष्ण जैसा अदभुत व्यक्ति घटेगा और जहां कृष्ण जैसा व्यक्ति आकाश के सत्यों को जमीन पर उतार लाएगा, वहां जो चालबाज हैं, होशियार हैं, चालाक हैं, वे मौका नहीं चूकेंगे। वे अड्डा जमा लेंगे। वे कहेंगे, कृष्ण कितने दिन रहेंगे? आज नहीं कल विदा होंगे, फिर तो हमीं मालिक हैं।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय थे, लेकिन महावीर, जिन्होंने जैन धर्म को पुनरुज्जीवन दिया, खुद क्षत्रिय, उनके पहले के तेईस तीर्थंकर क्षत्रिय, लेकिन महावीर के सारे गणधर--उनके प्रमुख शिष्य--ब्राह्मण पंडित। यह बड़ी हैरानी की बात है। सब पंडित उनके प्रमुख शिष्य होकर बैठ गए।
पंडित यह मौका नहीं छोड़ेंगे। जहां भी सत्य का जन्म होगा, वहां पंडित जल्दी ही सबसे पहले पहुंच जाएगा। क्योंकि सत्य के आधार पर खूब शोषण हो सकता है।
एक पुरानी कहानी है। शैतान का एक शिष्य भागा हुआ आया और शैतान से बोला, आप बैठे यहां क्या खंजड़ी बजा रहे हैं? एक आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया है। मैं जमीन से आ रहा हूं। उसकी समाधि पूर्ण हो गई। उसने सत्य को पा लिया। और आप यहां बैठे खंजड़ी बजा रहे हैं! अपनी बरबादी हो जाएगी!
शैतान खंजड़ी बजाता रहा, हंसता रहा। उसने कहा, तू फिकर मत कर! तू नया- नया शिष्य है, तुझे अभी अनुभव नहीं। हमें तो यह धंधा करते सदियां बीत गईं। तू फिकर मत कर। हमने पंडित-पुजारियों को चला दिया है। जिसको सत्य मिला है, जल्दी ही उसको पंडित-पुजारी घेर लेंगे। जनता और उसके बीच में पंडित-पुजारी खड़े हो जाएंगे, बस काम खतम। हमने हत्या कर दी सत्य की। और ज्यादा करने की कोई जरूरत नहीं है। हमें सीधा जाने की जरूरत नहीं, हमने सेवक रख छोड़े हैं, पंडित-पुजारी रख छोड़े हैं, वे हमारा काम करते हैं।
यह कहानी बड़ी अदभुत है। इसका मतलब हुआ, मंदिर में चाहे मूर्ति तो भगवान की हो, मगर पुजारी शैतान का होता है। क्योंकि पुजारी तो मूर्ति का शोषण कर रहा है, मूर्ति के नाम पर शोषण कर रहा है। पुजारियों से सावधान रहना!
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम धर्म से पीठ फेर लो। झूठे सिक्कों
से सावधान रहना, इसका यह अर्थ नहीं है कि असली सिक्कों को फेंक देना। यह तो अंग्रेजी में जैसे कहावत है कि पानी के साथ, जिसमें बच्चे को नहलाया, बच्चे को भी फेंक दिया। पानी फेंका, बच्चे को भी फेंक दिया। यह तो बड़ी भूल हो जाएगी। पानी गंदा है, उसको फेंक दो, मगर बच्चे को तो बचाओ।
तुम्हारी बात तो स्वाभाविक है, रामस्वरूप!

रोशनी ने इस कदर छला
अंधेरों से प्यार हो गया।

एक किरण की लपेट में
बहुत दूर तक गया चला
बीहड़ों के सन्नाटों से

तानाकशियों के अंधे जंगल तक भिंची हुई मुट्ठियों में रेत के सिवा
कुछ नहीं...
... कुछ नहीं मिला।
रोशनी ने इस कदर छला
अंधेरों से प्यार हो गया

तनी हुई प्रत्यंचाएं देख लीं
गलत जगह निरर्थक टंकारते,
फटते-फटते ज्वालामुखियों के अंदर
जाने कब जा सोईं बर्फ की बेहिसाब सिल्लियों के बीच आग को कहां-कहां पुकारते?
रोशनी ने इस कदर छला
अंधेरों से प्यार हो गया।

आग की प्रवंचना से क्षुब्ध
क्या कहूं,
यही बहुत कि हूं...
और अब तो होना भी दर्द बो गया!
रोशनी ने इस कदर छला
अंधेरों से प्यार हो गया।

बहुत लोग पंडित-पुजारियों के पाखंडों के कारण, साधु-संतों, महात्माओं
की जालसाजियों के कारण अधार्मिक हो गए हैं। मेरे हिसाब में नास्तिकों के प्रभाव में लोग अधार्मिक नहीं हुए हैं, आस्तिकों की धोखाधड़ी ने लोगों को अधार्मिक बना दिया है। आस्तिकों ने इस बुरी तरह दुर्व्यवहार किया है धर्म के नाम पर कि जिनमें थोड़ी भी सोच-समझ थी, उन्होंने नाते तोड़ लिए हैं। रामस्वरूप, तुम ठीक कहते हो। लेकिन फिर भी मैं कहूंगाः नाता तोड़ ही मत लेना। पंडित-पुजारी से तोड़ना; शास्त्र से, सिद्धांत से, शब्द से तोड़ना; मगर सत्य की तलाश जारी रहे। और सत्य तुम्हारे भीतर है। कोई पंडित नहीं दे सकता, कोई पुजारी नहीं दे सकता, कोई मौलवी नहीं दे सकता। कोई तुम्हें सत्य नहीं दे सकता। पंडित-पुजारियों की तो बात छोड़ दो, बुद्ध-महावीर-कृष्ण कोई भी तुम्हें सत्य नहीं दे सकते। हां, सत्य की प्यास दे सकते हैं। इशारे कर सकते हैं, चलना तो तुम्हीं को पड़ेगा। पहुंचना भी तुम्हीं को पड़ेगा। सत्य के जगत में उधारी नहीं होती। सत्य तो नगद होता है। अपने ही अनुभव से होता है। निज का होता है। और निज का होता है तो ही मोक्षदायी होता है।
तो तुम कहते होः "मैं तो प्रकाश से अपरिचित हूं, बस अंधेरे को जानता हूं।"
अंधेरा भी कुछ बुरा नहीं है। आखिर प्रकाश अंधेरे से ही तो पैदा होता है। अंधेरी रात के ही गर्भ में ही तो सुबह का जन्म होता है। अंधेरी रात ही तो सुबह की मां है, जन्मदात्री है। और जैसे-जैसे रात अंधेरी होती है वैसे- वैसे सुबह करीब होती है। ठीक भोर होने के पहले रात सर्वाधिक अंधेरी हो जाती है। तो अंधेरे से कुछ दुश्मनी रखने की जरूरत नहीं है। अंधेरे को भी प्रेम करना सीखो। क्योंकि अंधेरा भी प्रकाश का ही एक रूप है।
इसीलिए तो उल्लू रात में भी देख सकता है। क्योंकि अंधेरा भी प्रकाश
का ही एक रूप है। हमारी आंखें उतनी तेज नहीं हैं कि हम अंधेरे में देख सकें। उल्लू की आंखें तुमसे ज्यादा तेज हैं, इसलिए उल्लू अंधेरे में देख लेता है। बहुत देशों में उल्लू को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। हमारे देश में तो नहीं माना जाता, यहां तो हम गाली देते हैं तो कहते हैंः उल्लू का पट्ठा। लेकिन पश्चिम में उल्लू को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। और मैं मानता हूं कि वे ठीक मानते हैं। जिसको अंधेरे में दिखाई पड़े, उसको

ज्ञानी न कहोगे तो और क्या कहोगे? जिसको अंधेरा भी रोशनी मालूम पड़े, वही तो प्रबुद्ध है, वही तो प्रज्ञा को उपलब्ध है।
प्राचीन समय में कभी भारत में भी एक परंपरा थी, जो उल्लू को ज्ञान का प्रतीक मानती थी। हमारे छह दर्शनों में एक दर्शन का नाम औलूक्य-दर्शन है। उल्लुओं का दर्शन! तो जरूर उस समय उल्लू प्रतिष्ठित रहा होगा। फिर कैसे इसकी दुर्दशा हुई, ये क्यों बेचारा इतना पतित हुआ, शायद उसका कारण यह है कि इसे दिन में दिखाई नहीं पड़ता। रात में दिखाई पड़ता है, इस पर अगर हम ध्यान दें, तब तो उल्लू अदभुत मालूम होता है। लेकिन दिन में दिखाई नहीं पड़ता। जिन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि उल्लू को दिन में दिखाई नहीं पड़ता, उन्होंने गाली गढ़ी होगीः उल्लू के पट्ठे! जिनको दिन में भी दिखाई न पड़े! जैसे कोई आदमी तुमसे टकरा जाए, भरी सड़क पर, भर दोपहरी में, तुम कहो--क्या उल्लू के पट्ठे! कुछ अकल है? दिखाई पड़ता है कि नहीं? अंधे हो?
उल्लू के पट्ठे हम अंधों को कहने लगे। उल्लू को दिन में नहीं दिखाई पड़ता, वह एक पहलू है। लेकिन उल्लू को रात में दिखाई पड़ता है, वह भी एक पहलू है। जिन्होंने उस पहलू पर जोर दिया, उन्होंने उसे ज्ञान का प्रतीक माना। लेकिन, वस्तुतः जो ज्ञान को उपलब्ध होता है, उसे रात में भी दिखाई पड़ता है, दिन में भी दिखाई पड़ता है। उसका साक्षी जग गया! उसे अंधेरे में भी रोशनी है। रोशनी में तो रोशनी होती ही है, अंधेरे में भी रोशनी होती है। क्योंकि अंधेरा भी रोशनी से भिन्न नहीं है। जैसे सर्दी-गर्मी एक ही चीज के दो रूप हैं, वैसे ही अंधेरा-उजाला एक ही चीज के दो रूप हैं।
अंधेरे को घृणा मत करना। अंधेरे में भी जीवन के परम अनुभव पैदा होते हैं--अंधेरे में ही। ये सारे जो बुद्ध हुए पृथ्वी पर, ये जीवन की अंधेरी रात में ही से पैदा हुए। ये तुम्हारे जैसे ही भटके और टकराए और भूले और चूके; ये तुम्हारे जैसे ही न मालूम कितने-कितने जन्मों तक पापों से गुजरे; इन्होंने भी वे सारी पीड़ाएं झेलीं जो तुम झेलते हो; इन्होंने भी संताप झेले, इन्होंने भी कंटकाकीर्ण रास्तों पर अपने पैरों को लहूलुहान किया। ये कुछ ऐसे ही अचानक बुद्ध नहीं हो गए। इनकी भी लंबी यात्रा है, जैसी तुम्हारी लंबी यात्रा है। लेकिन वह सारा अंधेरा जो इन्होंने जीया, एक दिन उसी अंधेरे में से सुबह का जन्म हुआ।

रात की गहराइयों में गान जागे।

स्वप्न मीठे, रात मीठी,
नींद की हर बात मीठी,
प्राण में मेरे मधुर आह्वान जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

मूंद कर दृग सो रहे खग,
सुप्त गहरी नींद में जग,
मौन इन अमराइयों में प्राण जागे, रात की गहराइयों में गान जागे।

जाग वीणा, जाग गायक,
जाग युग के मौन साधक,
रूप शत शत ले अमर अरमान जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

जाग ओ अनुरक्ति के पल,
जाग ओ अभिव्यक्ति के पल,
जाग मेरी साधना, वरदान जागे,
रात की गहराइयों में गान जागे।

रात की गहराई सुबह के करीब आने का लक्षण है।

तुम कहते होः "बस मैं अंधेरे को ही जानता हूं।"
घबड़ाओ न। अंधेरे को जानते हो, तो तुम्हारे हाथ में प्रकाश का आंचल लग गया। अंधेरे को जानते हो, तो अब प्रकाश को जानना ज्यादा दूर नहीं है। दो कदम और! या कौन जाने, बस एक कदम और! या कौन जाने, बस आंख का खोलना--इतना ही फासला हो!
पूछते होः "मुझे मार्ग दें, दृष्टि दें, प्रकाश दें!"
प्रकाश मैं नहीं दे सकता! दृष्टि भी मैं नहीं दे सकता! मार्ग दे सकता हूं। मार्ग से दृष्टि मिलेगी, दृष्टि से प्रकाश मिलेगा। मार्ग ही दे रहा हूं। संन्यास मार्ग है।
संन्यास का अर्थ हैः संसार में होशपूर्वक जीना। भागना नहीं, जागना। संन्यास का अर्थ हैः साक्षीभाव से जीना। जीवन को एक बड़ा मंच अभिनय का मानना। एक नाटक, जिसमें तुम एक अभिनय पूरा कर रहे हो। अभिनय के साथ अपना तादात्म्य नहीं जोड़ लेना। कि रामलीला में राम बन गए, तो अब घर भी ले आए, चले आए धनुषबाण लिए! और पत्नी लाख कहे कि अब धनुषबाण रखो, और तुम कहो कि कैसे रख सकते हैं, हम राम हैं! तो पागलखाने ले जाना पड़े फिर।
ऐसा कभी-कभी हो जाता है। कभी-कभी क्या, अक्सर हो जाता है। लोग अभिनय के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं। मैं कलकत्ते में एक घर में मेहमान होता था। कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश का घर था। उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि मेरे पति आपको इतना मानते हैं कि अगर आप उनको कुछ कहेंगे तो शायद सुनें; और तो किसी की सुनते नहीं!
मैंने कहा, तकलीफ क्या है? शिकायत क्या है?
उसने कहा, शिकायत भारी है। शिकायत यह है कि ये घर भी आ जाते हैं, मगर इनका ढंग वही होता है जो अदालत में न्यायाधीश का। ये रात बिस्तर पर भी मेरे साथ सोते हैं तो उसी अकड़ और न्यायाधीश... वह अकड़ नहीं जाती! बच्चे घर में डरते हैं इनके आने से। इनके आते ही सन्नाटा हो जाता है। सब चौकन्ने हो जाते हैं। क्योंकि इनका ढंग वही कानूनी। और हर बात में भूल-चूक निकालने की आदत। और खुद को सिंहासन पर विराजमान समझते हैं। वहां से नीचे उतरते ही नहीं! हम थक गए हैं। आप इनको इतना ही समझा दें कि अदालत में ठीक है, आप न्यायाधीश रहें, घर तो पति हैं तो पति, पिता हैं तो पिता।
अभिनय करने की कला का अर्थ होता हैः जो काम जहां करने को मिला है, उसे किया, लेकिन उसके साथ एक नहीं हो गए। फिर उसे उतार कर रखने की क्षमता होनी चाहिए। चौबीस घंटे में न मालूम कितने काम तुम्हें करने पड़ते हैं। चूंकि तुम उन सबके साथ अपना तादात्म्य कर लेते हो, तुम्हारे भीतर एक भीड़ इकट्ठी हो जाती है। किसी के तुम पति हो, किसी के पिता हो, किसी के भाई हो, किसी के नौकर हो, किसी के मालिक हो, और न मालूम कितने अभिनय तुम्हें करने पड़ रहे हैं, और इन सबकी भीड़ तुम्हारे भीतर हो गई है इकट्ठी, इस सबके जाल में तुम फंस जाते हो। इस जाल का नाम संसार है। दुकान का नहीं, बाजार का नहीं, इस जाल का, इस भीतरी जाल का नाम संसार है। इस जाल को जो तोड़ देता है, काम तो सब करता है, लेकिन अलिप्त, जल में कमलवत, वही संन्यासी है। राम का काम मिला तो राम का काम कर दिया। और कभी रावण बीमार पड़ गए और रामलीला में जरूरत पड़ी तो रावण का काम भी कर दिया। अब यह थोड़े ही करोगे कि हम राम बनते हैं, हम कभी रावण नहीं बन सकते। मैं कैसे रावण बन सकता हूं? मैं तो राम हूं! जो जरूरत पड़ी। और पर्दा उठता है तब राम बन कर खड़े हो गए, और जब पर्दा गिर जाता है तो कुर्सियां जमा रहे हैं और सामान हटा रहे हैं। यह नहीं कि हम तो राम हैं, हम तो सिर्फ धनुषबाण लिए खड़े रहेंगे--और सीतामैया पीछे खड़ी हैं, और लक्ष्मण जी उनके पीछे खड़े--इसके सिवाय हम कुछ काम कर नहीं सकते दूसरा! पर्दा गिरा कि सब बात खतम, पर्दा उठा कि बात शुरू। पर्दा गिरा कि राम और रावण पीछे बैठ कर चाय पी रहे हैं साथ-साथ, गपशप मार रहे हैं। और अभी पर्दे के सामने--जब पर्दा उठा था--तो एक-दूसरे की जान लेने को तैयार थे।
जीवन को एक खेल समझो, यह मार्ग है। एक विशाल नाटक का मंच, जिस पर तुम्हें कोई पार्ट अदा करना है। उसे अदा करो। पूरी तरह अदा करो। पति हो तो पूरी तरह, पत्नी हो तो पूरी तरह, पिता हो तो पूरी तरह। जो भी करना है, उसे पूरी तरह करो। और जानते हुए कि मैं कर्ता नहीं हूं, मैं साक्षी हूं। बस,

इतना बोध बना रहे, तो धीरे-धीरे यही बोध तुम्हारे भीतर प्रकाश बन जाएगा। अंधेरा जाएगा, सुबह आएगी। सुबह तुम्हारा हक है, तुम्हारा अधिकार है।

पांचवां प्रश्नः मैं बच्चा था तो एक तरह की इच्छाएं मन में थीं। जवान हुआ तो और ही तरह की इच्छाएं जन्मीं। अब बूढ़ा हो गया हूं, तो ईश्वर को पाने की इच्छा जन्मी है। कहीं यह भी तो बस समय का ही एक खेल नहीं है? इस इच्छा में और अन्य इच्छाओं में क्या भेद है?

भरतराम! प्रश्न महत्वपूर्ण है। बचपन में एक तरह की इच्छाएं होती हैं। बच्चे की इच्छाएं--खेल-खिलौनों की; कल्पनाएं, सपने भविष्य के। क्योंकि बच्चा भविष्य में जीता है। अभी सारा भविष्य पड़ा है। हर बच्चा बड़ी आशाएं बांधता है, बड़ी अपेक्षाएं बांधता है--ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा। जो कोई नहीं कर पाया वह करके दिखा दूंगा।
एक छोटा सा बच्चा फर्श पर कागज फैलाए, रंग की डिब्बी लिए चित्र बना रहा है। पादरी का बेटा है। पादरी चर्च जा रहा है, पास से गुजरा, एक क्षण उसने रुक कर देखा कि बच्चा क्या कर रहा है। बड़ी तेजी से रंग भर रहा है। पूछा, बेटा, तू क्या कर रहा है?
उस लड़के ने कहा कि मैं ईश्वर का चित्र बना रहा हूं।
पादरी हंसने लगा और उसने कहा, ईश्वर का चित्र! आज तक किसी ने ईश्वर को देखा ही नहीं, तो चित्र कैसे बनेगा?
उस बेटे ने कहा, आप घबड़ाएं मत, एक दफे मेरा चित्र पूरा हो जाने दें, फिर हरेक को अनुभव में आ जाएगा कि यह रहा ईश्वर का चित्र। एक दफे मेरा चित्र पूरा हो जाने दें। अभी तक किसी ने नहीं बनाया है, इसीलिए तो मैं बना रहा हूं।
बच्चों की आकांक्षाएं होती हैं, कि जो किसी ने नहीं किया, वह करके दिखा देंगे। आकाश में उड़ेंगे, चांद-तारों को तोड़ लाएंगे।
स्वभावतः बचपन के साथ वे सारी इच्छाएं भी तिरोहित हो जाती हैं। वे बचपन की कच्ची उम्र की इच्छाएं होती हैं। जवानी में और तरह की इच्छाएं होती हैं। ज्यादा स्थूल, ज्यादा भौतिक; उनमें सपने कम होते हैं, यथार्थ ज्यादा होता है। दूर की उड़ान कम होती है, भौतिकता ज्यादा होती है। वासनाएं--धन की, काम की, पद की। फिर जवानी बीतते-बीतते उन इच्छाओं की व्यर्थता भी पता चल जाती है। स्त्रियां भी भोग लीं, पुरुष भी भोग लिए, धन भी पा लिया, पद भी पा लिया, कुछ हाथ तो लगा नहीं। फिर बुढ़ापे में इच्छा जगती है--मोक्ष को पा लें, ईश्वर को पा लें।
इसलिए तुम्हारा प्रश्न तो महत्वपूर्ण है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि
यह भी बस बुढ़ापे की एक इच्छा है; जैसे बचपन की इच्छाएं थीं, जवानी की इच्छाएं थीं, यह भी एक बुढ़ापे की इच्छा है।
यह बुढ़ापे की इच्छा हो भी सकती है, न भी हो, सब तुम पर निर्भर है। अगर तुम सिर्फ जिंदगी की उदासी से, जिंदगी की परेशानी से, जिंदगी की असफलता से, जिंदगी की विफलता के कारण ईश्वर को खोजने लगे हो, तो यह बुढ़ापे की इच्छा है। इसका कोई मूल्य नहीं है। यह बुढ़ापे का खिलौना है। तो माला ले लो और राम-राम जपते रहो; कि राम-नाम चदरिया ओढ़ लो और बैठ जाओ एक कोने में। यह सिर्फ बुढ़ापे को व्यस्त रखने का एक उपाय है। इसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अगर जीवन भर के अनुभवों से तुम्हारे भीतर थोड़ी सी बोध की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ हो, थोड़ा होश पैदा होना शुरू हुआ हो, तुम्हें थोड़ा-थोड़ा अपने भीतर छिपी हुई आत्मा का अनुभव शुरू हुआ हो, साक्षी जगा हो-- अगर साक्षी के जगने में से यह इच्छा पैदा हो रही है, तब बुढ़ापे से इसका कोई संबंध नहीं है। क्योंकि साक्षी का कोई संबंध न जवानी से है, न बचपन से, न बुढ़ापे से। कुछ लोग बचपन में ही साक्षी हो गए।
जैसे शंकर की कहानी है--शंकराचार्य की; नौ वर्ष की उम्र में साक्षी हो गए। कहानी तुमने सुनी होगी, प्रीतिकर है, महत्वपूर्ण है। संन्यस्त होना चाहते थे। नौ वर्ष की उम्र, कौन मां आज्ञा देगी? नब्बे वर्ष के भी हो जाओ तब भी मां आज्ञा नहीं देती संन्यास की, तो नौ वर्ष! मां के लिए तो नब्बे

वर्ष का बेटा भी नौ ही वर्ष का होता है। कभी उम्र बढ़ती ही नहीं। नौ वर्ष का बच्चा और संन्यस्त होना चाहे! मां ने कहा, तू पागल है? ... और एक ही बेटा, और पति भी मर चुके हैं, यही सब सहारा, आंख का तारा, बुढ़ापे का सहारा; जो कुछ भी कहो, यही, और यह नौ वर्ष की उम्र में संन्यासी होना चाहता है! मां ने कहा, जब मैं मर जाऊं, तब तुझे जो करना हो वह करना। जब तक मैं जिंदा हूं, यह संन्यास नहीं होगा।
शंकर नदी पर स्नान करने गए हैं, कहानी कहती है, एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। भीड़ इकट्ठी हो गई किनारे पर। मां भी भागी हुई आ गई। शंकर ने कहा कि अब तू कह दे! अगर तू वचन देती हो कि मैं संन्यास ले सकता हूं, तो मुझे भरोसा है, यह मगर मुझे छोड़ देगा। भरोसा इसलिए है कि मैं संन्यास लेना चाह रहा हूं, तो परमात्मा इतनी तो मेरी सहायता करेगा। मुझे श्रद्धा है कि अगर तू आज्ञा देती हो संन्यास लेने की, तो परमात्मा मुझे बचाएगा, यह मगर मुझे छोड़ देगा। और अगर तू आज्ञा न देती हो, तो फिर बात गई। यह मगर मुझे घसीट रहा है। ज्यादा देर सोचने-विचारने का समय भी नहीं था। बेटा मरे, इससे तो बेहतर संन्यासी हो जाए--कम से कम जिंदा तो रहेगा, कभी-कभी देख तो लेंगे, कभी-कभी मिल तो आएंगे। तो मां ने घबड़ाहट में कह दिया कि ठीक है, ले लेना संन्यास, मगर किसी तरह बच जा।
और कहानी कहती है कि मगर ने पैर छोड़ दिया। शंकर बच गए। तब मां बहुत पछताई, मगर अब वचन दे चुकी थी, गांव वालों के सामने वचन दे चुकी थी।
कहानी सच हो या न हो। सच हो नहीं सकती, मगरमच्छ इतनी आसानी से नहीं छोड़ते। महात्मा नहीं छोड़ते, मगरमच्छ क्या छोड़ेंगे? मगर संकेत गहरा है। संकेत यह है कि मां ने आज्ञा तभी दी संन्यास की जब विकल्प मृत्यु और संन्यास हो गया। मां ने आज्ञा तभी दी संन्यास की, जब देखा कि या तो मृत्यु या संन्यास। जहां तक मेरी दृष्टि है, यह कहानी तो प्रतीक है, शंकर ने मां को समझाया होगा कि देख, कल मैं मर सकता हूं। आखिर पिता मर गए। देख, पड़ोस में फलां आदमी मर गया, फलां आदमी का बच्चा मर गया। मैं कल मर सकता हूं, फिर तू क्या करेगी? जब मृत्यु होने ही वाली है, तो कभी भी हो सकती है। शंकर ने मां को मृत्यु का ठीक-ठीक स्मरण दिलाया होगा। उस स्मरण के आधार पर ही मां राजी हुई होगी कि तो फिर ठीक है, तू संन्यस्त हो जा।
इस बात को ही इस छोटी सी कहानी में रूपांतरित किया गया है। यह कहानी बोधकथा है। ऐसी कोई ऐतिहासिक कहानियां नहीं होतीं।
मृत्यु का बोध अगर नौ वर्ष की उम्र में भी आ जाए तो ईश्वर को पाने की
जो कामना पैदा होती है, ईश्वर को पाने की जो इच्छा होती है, वह मौलिक रूप से भिन्न होती है। वह जीवन की किसी इच्छा के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। उसमें और जीवन की अन्य इच्छाओं में गुणात्मक भेद होता है। क्योंकि जीवन की सारी इच्छाएं अहंकार की दौड़ हैं; अहंकार के आक्रमण, अहंकार को भरने की इच्छाएं हैं। और ईश्वर को पाने की इच्छा अहंकार को समर्पण करना है, अहंकार का विसर्जन करना है। यह गुणात्मक भेद है।
फिर जवानी में भी हो सकती है यह घटना। बुद्ध उनतीस वर्ष के थे, तब सब छोड़-छाड़ दिया। सब था; जो हो सकता था उस समय, जो सुविधा, जो सुख, सब था। शंकर तो गरीब ब्राह्मण के बेटे थे; बुद्ध तो सम्राट के बेटे थे। शंकर ने तो शायद दुख जाने थे, दुख से अनुभव लिया था; बुद्ध ने सुख जाने थे और सुख से अनुभव लिया था। असली सवाल अनुभव लेना है। दुख से भी अनुभव लिए जा सकते हैं--अनुभव तो एक ही है, साक्षी का। चाहे दुख से लो, चाहे सुख से लो।
बुद्ध ने भी यह देख लिया थाः सब चीजें आती हैं, चली जाती हैं, बचता है सिर्फ एक भीतर देखने वाला। यह देखने वाला कौन है? मैं कौन हूं? यह मंथन, यह मनन पकड़ लिया उनके प्राणों को। सब इस पर दांव पर लगा दिया।
तो जवानी में भी लोगों के जीवन में प्रभु को पाने की आकांक्षा उठी है, सत्य को जानने की आकांक्षा उठी है, बुढ़ापे में भी उठी है। सवाल तुम्हारा है। किस कारण यह इच्छा उठ रही है, भरतराम? जीवन के दुख, जीवन के सुख, इनको देख-देख कर तुम्हारे भीतर साक्षी थोड़ा सा करवट लिया है? थोड़ा-थोड़ा जागा है? नींद थोड़ी टूटी है? तो ईश्वर की इच्छा सम्यक इच्छा है। और अगर सिर्फ इसलिए कि अब मौत करीब आ रही है, अब और जो करना था सो कर लिया, अब कुछ करने को

बचा नहीं, अब पैर लड़खड़ाने लगे हैं, हाथ कंपने लगे हैं, अब कौन जाने ईश्वर हो ही, तो अब कम से कम मरते वक्त थोड़ी उसकी प्रार्थना-पूजा कर लो। यह एक तरह की रिश्वत। स्तुति यानी एक तरह की खुशामद। स्तुति शब्द का अर्थ भी खुशामद ही होता है। लोग फिर खुशामद करते हैं। खुशामद किसकी करते हैं, इसका सवाल नहीं है। जहां खुशामद है वहां अहंकार है, वहां अपने को बचाने की इच्छा है।
अब तुम यह सोच रहे हो, मौत तो आती है, यह शरीर तो जाएगा, अब ईश्वर के सामने खड़ा होना होगा, और वह पूछेगा तो क्या जवाब देंगे? कभी राम-नाम तो लिया नहीं, कभी माला तो फेरी नहीं, कभी मंदिर तो गए नहीं--फुर्सत ही न मिली! और कभी फुर्सत मिली, तो ताश खेलने थे, क्लब जाना था, नाच देखना था। कभी राम की तरफ तो ध्यान दिया नहीं। अब जब उसके सामने खड़े होंगे तो कैसे आंखें उठाएंगे? किस मुंह से उसके सामने खड़े होंगे? और कौन जाने हो ही! न हो तब तो ठीक, झंझट मिटी। मगर कौन जाने? पक्का तो है नहीं। हो सकता है हो। तो फिर उसके सामने खड़ा होना बिल्कुल खाली हाथ बड़ा बेहूदा मालूम पड़ेगा। तो चलो, थोड़े हाथ भर लो, थोड़ी पुण्य की अशर्फियां इकट्ठी कर लो। थोड़ा दान कर लो, हज-यात्रा कर आओ, कुंभ के मेले हो आओ, साधु-संतों के पैर दबाओ, थोड़ा दान-दक्षिणा कर दो, सत्यनारायण की कथा करवा ली कभी-कभी, राम-कथा सुन आए, मंदिर जाने लगो, चर्च जाने लगो--थोड़ा कहने को तो रहेगा, दावा करने को तो रहेगा कि भई, जितना बना, किया! जरा देर से किया, मगर किया तो। उसका बदला मांगने की तैयारी तो रहेगी। सौदा हो जाएगा। नहीं बहुत बड़ा सुख मिलेगा तो भी कहीं न कहीं स्वर्ग में एकाध कोने में जगह मिल जाएगी। ठीक बगल में मकान न भी मिला परमात्मा के, तो भी कोई बात नहीं, मगर नरक में सड़ना तो ठीक नहीं है।
ऐसे डर के कारण, ऐसे भय के कारण, ऐसी भीरुता से अगर ईश्वर की इच्छा पैदा हो रही हो, तो वह झूठी है। वह समय का ही खेल है। जैसे बच्चों को खिलौनों में रस होता है, ऐसे बूढ़ों को ईश्वर में रस होता है। इसका कोई मूल्य नहीं है। ये बुढ़ापे के खिलौने हैं। यह मौत जब करीब आने लगती है तब ये खिलौने बड़े लुभावने मालूम होते हैं, बड़े सुहावने मालूम होते हैं।
मेरे एक मित्र हैं, बूढ़े आदमी हैं, अब तो कोई अस्सी वर्ष उनकी उम्र हुई। कृष्णमूर्ति को चालीस साल से सुनते हैं, पचास साल से सुनते हैं। न भजन करते, न कीर्तन। क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैंः न भजन में कुछ, न कीर्तन में कुछ। ध्यान भी नहीं करते। क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैंः ध्यान क्या? बस, जागरूकता पर्याप्त है।
और जागरूकता ही ध्यान है! मगर कृष्णमूर्ति ध्यान शब्द का उपयोग करना पसंद नहीं करते, पुराना शब्द है, वे जागरूकता शब्द का प्रयोग करते हैं। और उनके सुनने वाले इससे बड़ी राहत पाते हैं--न कीर्तन, न भजन, न ध्यान, कुछ भी नहीं करना। बिना किए सब हो जाएगा। मगर भीतर डरते भी हैं कि कर-कर के नहीं हुआ है लोगों को और हमको बिना किए हो जाएगा?
ये सज्जन मेरे पास आते थे तो उनको मैं कहता थाः कुछ ध्यान में डुबकी मारो! तो वे कहते कि लेकिन मैं कृष्णमूर्ति को मानता हूं। वे कहते हैंः ध्यान नहीं, जागरूकता। मैं उनसे पूछताः जागरूकता कृष्णमूर्ति चालीस साल से तुमसे कह रहे हैं, जागरूकता तुमने साधी कितनी? वे कहते कि यह बात तो सच है कि जागरूकता अभी साधी नहीं, मगर जागरूकता ही साधनी है। कब साधोगे? और ध्यान और जागरूकता भिन्न नहीं हैं। ध्यान तो जागरूकता की ही विधि है। मगर वे कहते, कृष्णमूर्ति कहते हैंः विधि-विधान की जरूरत ही नहीं है।
एक दिन उनका लड़का भागा हुआ आया और मुझसे कहा, आप जल्दी चलें, पिताजी को हृदय का दौरा पड़ा है। आप पास रहेंगे तो उनको राहत रहेगी।
मैं गया। कमरे में धीरे-धीरे प्रवेश किया कि आहट न हो, क्योंकि वे आंख बंद किए लेटे थे और डाक्टरों ने कहा था कि कोई उनको बाधा न डाले। मैं बहुत हैरान हुआ, उनके ओंठ हिल रहे हैं! तो मैं पास गया। राम-राम, राम-राम, राम-राम, राम-राम... । मैंने कहा कि अब भाड़ में जाए हृदय का दौरा, मैंने उन्हें हिलाया, मैंने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? जिंदगी भर जिससे बचे, अब बुढ़ापे में शर्म नहीं आती?
वे कहने लगे, आप बाधा न डालो!

मैंने उनसे कहा, मैं पहले कहता था ध्यान करो तो तुम कहते थे, ध्यान, कृष्णमूर्ति कहते हैं कोई विधि-विधान नहीं है।
उन्होंने कहा, कृष्णमूर्ति को जाने दो! इधर मौत सामने खड़ी है! और बाधा
न डालो! अभी मैं कोई सैद्धांतिक चर्चा नहीं करना चाहता।
मैंने कहा, अभी चर्चा करनी ही होगी! क्योंकि मौत सामने खड़ी है, मामला
तय हो जाए। यह तुम क्या कर रहे हो? राम-राम, राम-राम... !
उन्होंने कहा कि मौत को सामने देख कर मैं एकदम घबड़ा गया हूं, और सोचता हूं, पता नहीं, हो न हो। और वहां कृष्णमूर्ति क्या साथ आएंगे! अब रामचंद्र जी मिले कहीं, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी! वहां मैं कहूंगा भी कि कृष्णमूर्ति कहते थे, तो वे कहेंगे, तुमसे कहा किसने कि तुम कृष्णमूर्ति को मानो?
तो आदमी चाहता है कि दोनों तरफ सम्हाल ले। तो अभी राम-राम जप रहे हैं...
।
फिर वे ठीक हो गए। और जब वे ठीक हो गए, तो फिर वे कृष्णमूर्ति की बातें करने लगे। जब साल भर बाद मेरा उनसे फिर मिलना हुआ, मैंने कहा, अब क्या इरादे हैं?
उन्होंने कहा कि बात तो कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं।
मैंने कहा, देखो, कौन जाने राम-राम जपने से ठीक हुए होओ!
वे कहने लगे, कभी-कभी शक तो मुझे भी होता है, क्योंकि डाक्टर कहते थे
कि दौरा खतरनाक है, बचना मुश्किल है।
तो मैंने कहा कि अब तो सम्हलो!
वे कहते, लेकिन, मगर बात तो कृष्णमूर्ति की ठीक मालूम पड़ती है।
बात कृष्णमूर्ति की ठीक मालूम पड़ती है! और मैंने कहा, अगर दौरा फिर पड़ा, तो तुम मुझे आश्वासन देते हो, अब राम-राम नहीं कहोगे?
उन्होंने कहा कि वह आश्वासन अब नहीं दे सकता।
मगर इस राम-राम का क्या मूल्य होगा? यह तो भीरुता है। यह तो कायरता है। अगर कहीं कोई परमात्मा है, तो ऐसे आदमी को तो कभी क्षमा नहीं करेगा। कम से कम अपनी बात पर तो टिको! कहना कि जो मुझे ठीक लगा, वह मैंने किया था। और अब जो तुझे ठीक लगे, तू कर। और जो मैंने किया, उसका फल भोगने को मैं तैयार हूं। अगर मुझे भरोसा नहीं था तो मैं करता कैसे? श्रद्धा नहीं थी तो करता कैसे?
लेकिन नहीं, बुढ़ापे में लोग सभी धार्मिक हो जाते हैं। तुम मंदिरों- मस्जिदों में जाकर देखो, तुम्हें बूढ़े-बुढ़ियां बैठे दिखाई पड़ेंगे। जवान तो जाते ही कहां! अभी जवान को फुर्सत कहां! जवानों को वहां फुर्सत नहीं है जाने की। तुम्हें यहां मेरे पास जवान दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि मैं जिंदगी और धर्म को विपरीत नहीं मानता, एक ही मानता हूं। जिंदगी और धर्म इतने एक हैं कि बच्चे धार्मिक हो सकते हैं, जवान धार्मिक हो सकते हैं। इसके लिए कोई बुढ़ापे तक रुकने की जरूरत नहीं है।
मगर चालबाज लोग हैं, गणित बिठाते हैं। उन्होंने समाज को भी चार वर्णों में बांट दिया है और आदमी को भी चार आश्रमों में बांट दिया है। बांटने वाले हैं। तो आखिरी आश्रम, संन्यास! अंत में! वह अंत कब आएगा, क्या पक्का पता है! अंत तो कल आ सकता है। लेकिन अगर उनके हिसाब से चलो तो तुम संन्यासी कभी न हो सकोगे। क्योंकि उन्होंने सौ साल की उम्र मानी हुई है। पच्चीस साल ब्रह्मचर्य काल। फिर पच्चीस साल गृहस्थ। फिर पच्चीस साल वानप्रस्थ। पचास साल और पचहत्तर साल के बीच भी संन्यास नहीं, अभी सिर्फ संन्यास का विचार, वानप्रस्थ, जंगल की तरफ मुंह--अभी जाना नहीं है, प्रस्थान की तैयारी। अभी प्रस्थान नहीं करना है, प्रस्थान तो पचहत्तर साल में।
कितने लोग पचहत्तर साल जीएंगे? भारत में तो औसत उम्र ही बत्तीस साल है। तो हो गया फैसला। बत्तीस साल के हिसाब से बांटो। तो आठ साल में ब्रह्मचर्य समाप्त। आठ साल में गृहस्थ, आठ साल वानप्रस्थ, आठ साल संन्यास। अगर छब्बीस साल के हो गए, चौबीस साल के हो गए, बस बहुत, अब तैयारी कर लो। औसत उम्र ही इतनी अब है। यह सौ साल पता नहीं किन्होंने तय कर रखी थी!

तब भी आदमी की औसत उम्र सौ साल नहीं थी। अगर होती तो उपनिषदों के ऋषि लोगों को आशीर्वाद न देते कि सौ साल जीओ। अगर सौ साल औसत उम्र होती और तुम किसी से कहते कि सौ साल जीओ, तो वह कहता कि आप क्या मुझे जल्दी मारना चाहते हैं? तुम देखते हो, जब बत्तीस साल औसत उम्र है, तब भी कई लोग अस्सी साल तक जीते हैं। तो जब सौ साल औसत उम्र होती तो कई लोग तो तीन सौ साल तक जीते। तो किसी को आशीर्वाद देना कि बेटा, सौ साल तक जी! वह फौरन लट्ठ लेकर खड़ा हो जाता कि महाराज, अपने शब्द वापस लो। तुमने समझा क्या है? मुझे कोई औसत आदमी समझा है? तो जब ऋषि-मुनि सौ साल का आशीर्वाद देते थे तो समझ लेना कि उम्र तीस-चालीस साल से ज्यादा होती नहीं थी। औसत उम्र।
और विज्ञान में भी इसके प्रमाण हैं। जितनी पुरानी लाशें मिली हैं, उन हड्डियों की उम्र चालीस साल से ज्यादा नहीं पाई गई। अब तक कोई सौ साल पुरानी हड्डी--जो आदमी सौ साल जीया हो--ऐसी हड्डी नहीं मिली। चालीस साल ज्यादा से ज्यादा जीने वाले लोगों की हड्डियां मिली हैं, पुरानी से पुरानी हड्डियां। बात जंचती भी है कि हो सकता है चालीस साल औसत उम्र रही हो। चालीस साल औसत उम्र हो तो कुछ लोग सौ साल जीएंगे। क्योंकि चालीस साल में उनकी उम्र भी सम्मिलित है जो पैदा होते ही मर जाएंगे, जो मां के गर्भ में ही मर जाएंगे, जो साल भर में मर जाएंगे। अक्सर तो भारत में दस बच्चों में से नौ बच्चे मर जाते थे। उनकी उम्र सबकी उम्र को कम कर देती थी।
लोग सोचते हैं, संन्यास बुढ़ापे में, पचहत्तर साल के बाद!
जब हाथ-पैर हिलाना मुश्किल हो जाएगा, जब बुद्धि भी भीतर सठिया जाएगी,
तब संन्यास? जब किसी काम के न रह जाओगे, जब कूड़े के ढेर पर फेंकने के योग्य हो जाओगे, तब संन्यास? वह संन्यास कहलाएगा? जब संसार ही कहेगा कि भइया, अब तुम जाओ, अब बहुत हो गया, तब तुम संन्यास लोगे? वह संन्यास होगा? संन्यास दिलवाया जाएगा तब तुम संन्यास लोगे? कि लोग हाथ जोड़ कर प्रार्थना करेंगे कि आप संन्यासी हो जाइए अब! अब और न सताओ परिवार को, अब जंगल जाओ!
अगर ऐसे संन्यास की प्रतीक्षा है या ऐसे संन्यास का भाव है, भरतराम,
तो इस इच्छा में और बच्चों की और जवानों की इच्छा में कोई फर्क नहीं; सब समय की बात है फिर।
अपने सीने से लगाए हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतों जीस्त को नाशाद किया है मैंने
तूने तो एक ही सदमे से किया था दो-चार
दिल को हर तरह से बर्बाद किया है मैंने
जब भी राहों में नजर आए हरीरी मलबूस
सर्द आहों में तुझे याद किया है मैंने

और अब जब कि मेरी रूह की पहनाई में
एक सुनसान सी मगमूम छटा छाई है
तू दमकते हुए आरिज की शुआएं लेकर गुलशुदा शमएं जलाने को चली आई है

मेरी महबूब! यह हंगामाए-तजदीदे-वफा मेरी अफसुर्दा जवानी के लिए रास नहीं
मैंने जो फूल चुने थे तेरे कदमों के लिए
उनका धुंधला सा तसव्वुर भी मेरे पास नहीं

प्रेमी कह रहा हैः
अपने सीने से लगाए हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतों जीस्त को नाशाद किया है मैंने
तेरी प्रतीक्षा करता रहा--प्रेयसी की प्रतीक्षा करता रहा--उम्मीद की, आशा की लाश को छाती से लगाए बैठा रहा। जिंदगी को दुख, अंधेरे, विषाद से भरता रहा।
तूने तो एक ही सदमे से किया था दो-चार
तू एक ही बार क्या सामने आ गई थी कि मेरे टुकड़े-टुकड़े हो गए थे।

दिल को हर तरह से बर्बाद किया है मैंने
फिर उसके बाद मैंने सिर्फ अपने को बर्बाद किया है, और कुछ भी नहीं। जब भी राहों में नजर आए हरीरी मलबूस
और जब भी रास्ते पर कोई रेशमी वस्त्रों में ढंकी सुंदरी दिखी...
सर्द आहों में तुझे याद किया है मैंने
और अब जब कि मेरी रूह की पहनाई में
और अब जब कि मेरी आत्मा की विस्तीर्णता में...
एक सुनसान सी मगमूम छटा छाई है
और जब कि अब मैं बिल्कुल उदास हो गया हूं, हताश हो गया हूं, अब जब कि मैंने आशाओं को भी छोड़ दिया है, अब जब कि मैंने रस से ही संबंध तोड़ लिया है। और अब जब कि मेरी रूह की पहनाई में
एक सुनसान सी मगमूम छटा छाई है
तू दमकते हुए आरिज की शुआएं लेकर
अब तू चमकते हुए कपोलों को लेकर, अपने सौंदर्य को लेकर...
गुलशुदा शमएं जलाने को चली आई है
बुझ गए दीयों को फिर से जलाने के लिए तू आ गई?
मेरी महबूब! ...
मेरी प्रियतमा!
... यह हंगामाए-तजदीदे-वफा
यह वफादारी का पुनः प्रयास।
मेरी अफसुर्दा जवानी के लिए रास नहीं
मेरी जवानी कुम्हला चुकी। और अब मेरी कुम्हलाई जवानी के लिए तेरा वापस लौट आना राहत नहीं देता, रास नहीं आता।
मैंने जो फूल चुने थे तेरे कदमों के लिए
मैंने बहुत फूल इकट्ठे कर रखे थे तेरे कदमों पर चढ़ाने को।
उनका धुंधला सा तसव्वुर भी मेरे पास नहीं
फूल तो दूर, उन फूलों की याद भी मेरे पास नहीं है। अब तेरे चरणों में चढ़ाने को मेरे पास कुछ भी नहीं है।
जवानी के सपने बुढ़ापे में स्मरण तक नहीं रह जाते। बचपन के खिलौने जवान होते-होते स्मरण भी नहीं रह जाते।
छोटे बच्चे अपने खिलौनों को छाती से लगा कर रात सोते हैं। उनका खिलौना हाथ से छीन लो तो वे सोएंगे भी नहीं। जब सो जाते हैं तब उनका खिलौना अलग करना पड़ता है। चौबीस घंटे अपने खिलौनों को लादे फिरते हैं। और फिर एक दिन, एक घड़ी आती है अचानक, प्रौढ़ता की एक घड़ी कि खिलौना कोने में पड़ा रह जाता है कचरे में कहीं, और बच्चा फिर उस तरफ ध्यान भी नहीं देता।
ऐसे ही जवानी के भी खेल हैं। वे भी बड़े प्यारे लगते हैं। जब जवानी मन
को बेहोश रखती है, जब कामवासनाएं मन पर छाई होती हैं, तब सब तरफ उन्हीं वासनाओं के आधार पर हम एक जगत को देखते हैं, जो हमारी ही कल्पनाओं का निर्मित जगत है।
लेकिन एक दिन बुढ़ापा आएगा।
मेरी महबूब! यह हंगामाए-तजदीदे-वफा
मेरी अफसुर्दा जवानी के लिए रास नहीं
मैंने जो फूल चुने थे तेरे कदमों के लिए
उनका धुंधला सा तसव्वुर भी मेरे पास नहीं
तब जिंदगी में जवानी में तुमने जो-जो आकांक्षाएं की थीं, अगर वे पूरी होने को भी आ जाएं, तो तुम क्षमा मांगोगे। तुम कहोगे, अब नहीं! अब नहीं, अब बहुत देर हो चुकी; अब मैं पार हो चुका उन खिलौनों के। अब उन इच्छाओं से दूर आ चुका।
लेकिन यह दूर आना अगर साक्षीभाव में हुआ हो, तो तुम्हारे भीतर परमात्मा की आकांक्षा पैदा होगी। उसका समय से कोई संबंध नहीं है। तब तुम्हारे भीतर वस्तुतः अभीप्सा पैदा होगी ईश्वर को पाने की। उसका बुढ़ापे से कोई नाता नहीं, वह कभी भी पैदा हो सकती थी--बचपन में, जवानी में, बुढ़ापे में। उसका वय से, उम्र से कोई लेना-देना नहीं है।

तो भरतराम, तुम पर निर्भर है। तुम्हारा प्रश्न तो महत्वपूर्ण है, लेकिन उत्तर मैं नहीं दे सकता। उत्तर तुम्हें ही अपने हृदय में तलाशना होगा। तुम ईश्वर को क्यों चाह रहे हो अब? किसी भय के कारण? या किसी बोध के कारण? मौत डरा रही है, इसलिए या कि जीवन को देख लिया और कुछ भी न पाया, सिर्फ देखते-देखते देखने वाले पर पकड़ आ गई? इतना देखा, इतना देखा कि देखने वाले की याद आ गई?
तुम कभी सिनेमा देखने जाते हो। जब सिनेमा की फिल्म चलती होती है, पर्दे पर रंगीन तस्वीरें आती होती हैं, कहानी का उलझाव तुम्हें उलझा लेता है, तब तुमने एक बात देखी--तुम अपने को भूल जाते हो; कहानी ही सब कुछ हो जाती है। कभी-कभी तो कहानी ऐसे मन को जकड़ लेती है कि कोई तुम्हारी जेब भी काट ले तो तुम्हें पता नहीं चलता। तभी तो सिनेमागृहों में जेबें कट जाती हैं। तुम ऐसे आतुर हो गए होते हो कहानी में, ऐसे लीन, ऐसे तल्लीन, कि जेब कट गई, पता नहीं चलता।
लेकिन फिल्म समाप्त हुई, पर्दा चित्रों से खाली हुआ--और एकदम से जो पहली याद तुम्हें आती है, ख्याल करना, वह अपनी। एकदम से अपनी याद आती है--कि अरे, अब चलूं! अब उठूं! फिल्म खत्म हुई, कहानी समाप्त हुई, घर जाने का समय आ गया।
ऐसे ही इस जिंदगी में बहुत खेल हैं, बहुत कहानियां हैं, बहुत अफसाने हैं; एक के बाद एक सिलसिला है; अगर इन सारे सिलसिलों के बीच में तुम्हें एक याद बार-बार आती रहे--अपनी, कि अब चलूं, अब उठूं, कि अब कहानी खत्म हुई, कि अब घर जाने का समय आ गया--अगर यह परमात्मा की याद घर जाने की याद हो, तो यह सत्य है। फिर इसमें गुणात्मक भेद है। और अगर यह सिर्फ कायरता, भीरुता, भय, डर; मौत आ रही है, आगे का कुछ इंतजाम कर लो--अगर उससे पैदा हो रही हो, तो यह सिर्फ बुढ़ापे की निशानी है और कुछ भी नहीं। इसका कोई धार्मिक मूल्य नहीं है।
सोचना तुम्हें होगा। मैं इसका उतर नहीं दे सकता। इसे तुम्हें अपने ही हृदय में तलाशना होगा। और तलाशोगे तो जरूर उत्तर मिल जाएगा। सच तो यह है कि उत्तर तुम जानते ही होओगे! इतनी देर मैंने जो बात की, इस बात में तुम्हें उत्तर साफ हो ही गया होगा। इतनी देर जो मैंने तुम्हारे प्रश्न की चर्चा की, जो तुम्हारे प्रश्न की छानबीन की, विश्लेषण किया, तुम्हें भीतर दिखने ही लगा होगा कि किस कारण तुम आज ईश्वर में उत्सुक हुए हो।
समझो तुम्हारी उम्र सत्तर साल की हो गई और मैं तुमसे कहता हूं कि मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, सत्तर साल और जी सकते हो। क्या होगा? ईश्वर की इच्छा कायम रहेगी? या तुम कहोगे कि अब फिर देखेंगे! कि अब मिल गए चार दिन और, तो अब फिर चांदनी रातें; अब फिर मधुशालाएं; अब थोड़ा और भोग लें; अब ईश्वर फिर सत्तर साल प्रतीक्षा कर सकता है, जल्दी क्या है? जरा सोचो, अगर कोई चमत्कार घटे और तुमसे कह दिया जाए कि सत्तर साल और तुम जी सकते हो, तो ईश्वर की इच्छा खो जाएगी? या और बलवती हो जाएगी? तुम कहोगेः अहा, तो यह मौका मिला, अब सत्तर साल पूरे के पूरे लगा दूं ईश्वर की खोज में! पिछले सत्तर तो गए, अब ये सत्तर नहीं जाने दूंगा। अगर ऐसा भाव उठे तो समझना कि सच्ची आकांक्षा उठी।
लेकिन अगर यह सुन कर कि सत्तर साल और बचने का मौका मिला, तुम कहो कि यह अच्छा हुआ। वह धंधा शुरू किया था, आधा था, उसको पूरा कर लूं। जल्दी ही बयासी के चुनाव आ रहे हैं, घोड़े-गधे, खच्चर, सब खड़े हो रहे हैं, मैं भी यह मौका न चूकूं। अब रहा ईश्वर, सो ईश्वर प्रतीक्षा कर सकता है। अब क्या जल्दी है? अब देखेंगे बाद में। अब जब मौत फिर द्वार खटखटाएगी तब स्मरण कर लेंगे। अगर ऐसा भाव उठे, तो बस समझ लेना कि यह जो तुम्हारी अभीप्सा थी-- बचपन का खिलौना थी, जवानी की आकांक्षा थी, और इसमें, जरा भी फर्क नहीं, यह बुढ़ापे का खेल है।
साफ कर लो। क्योंकि अगर यह बुढ़ापे का खेल है, तो व्यर्थ है। और अगर यह जीवन की परिपक्वता का फूल है, तो यह परम सौभाग्य है, तुम बड़भागी हो! धन्यवाद दो ईश्वर को। देर सही, अबेर सही, घर आने की सुध आ गई।
और सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता है।